ओशो

बिरहिनी मंदिर दियना बार

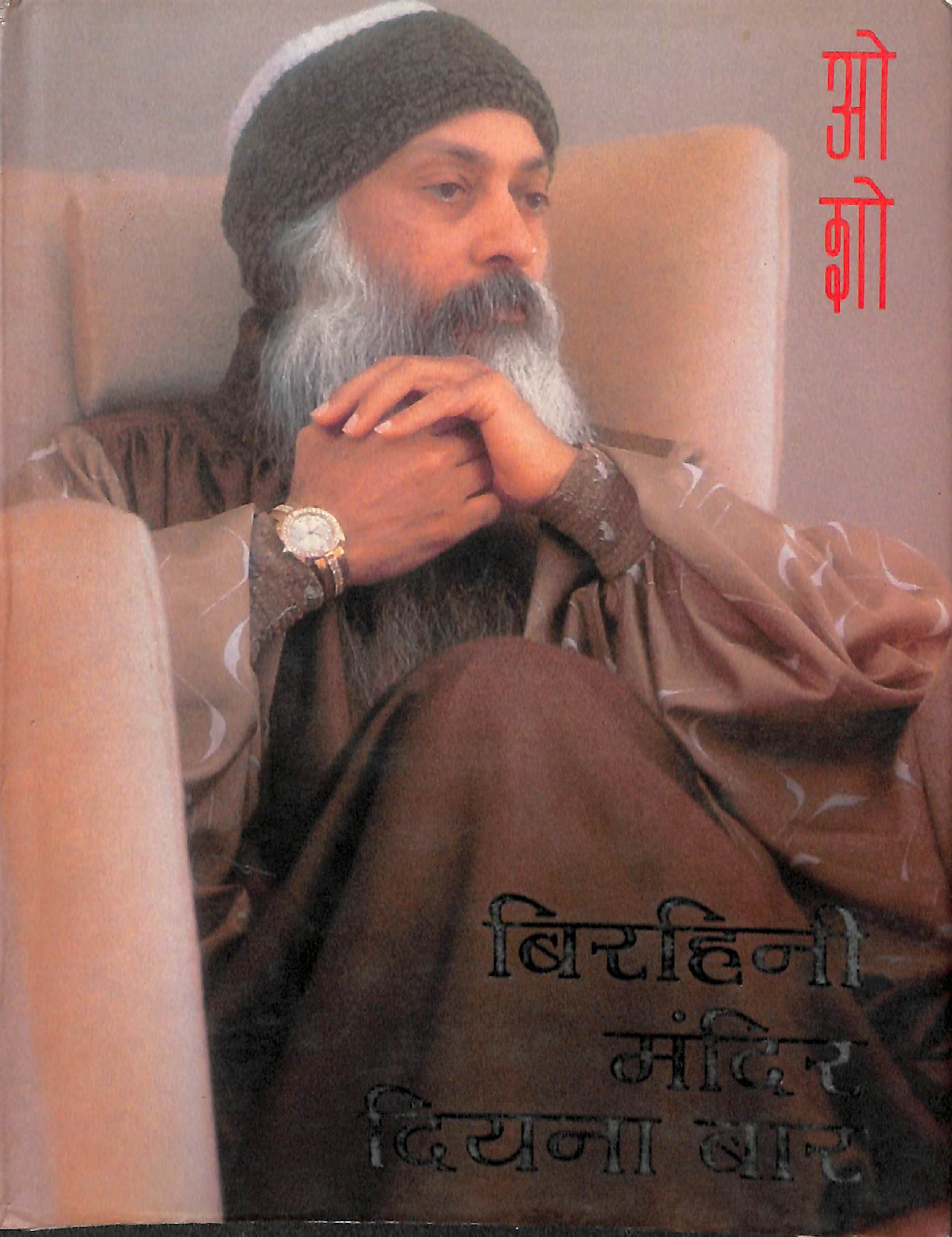

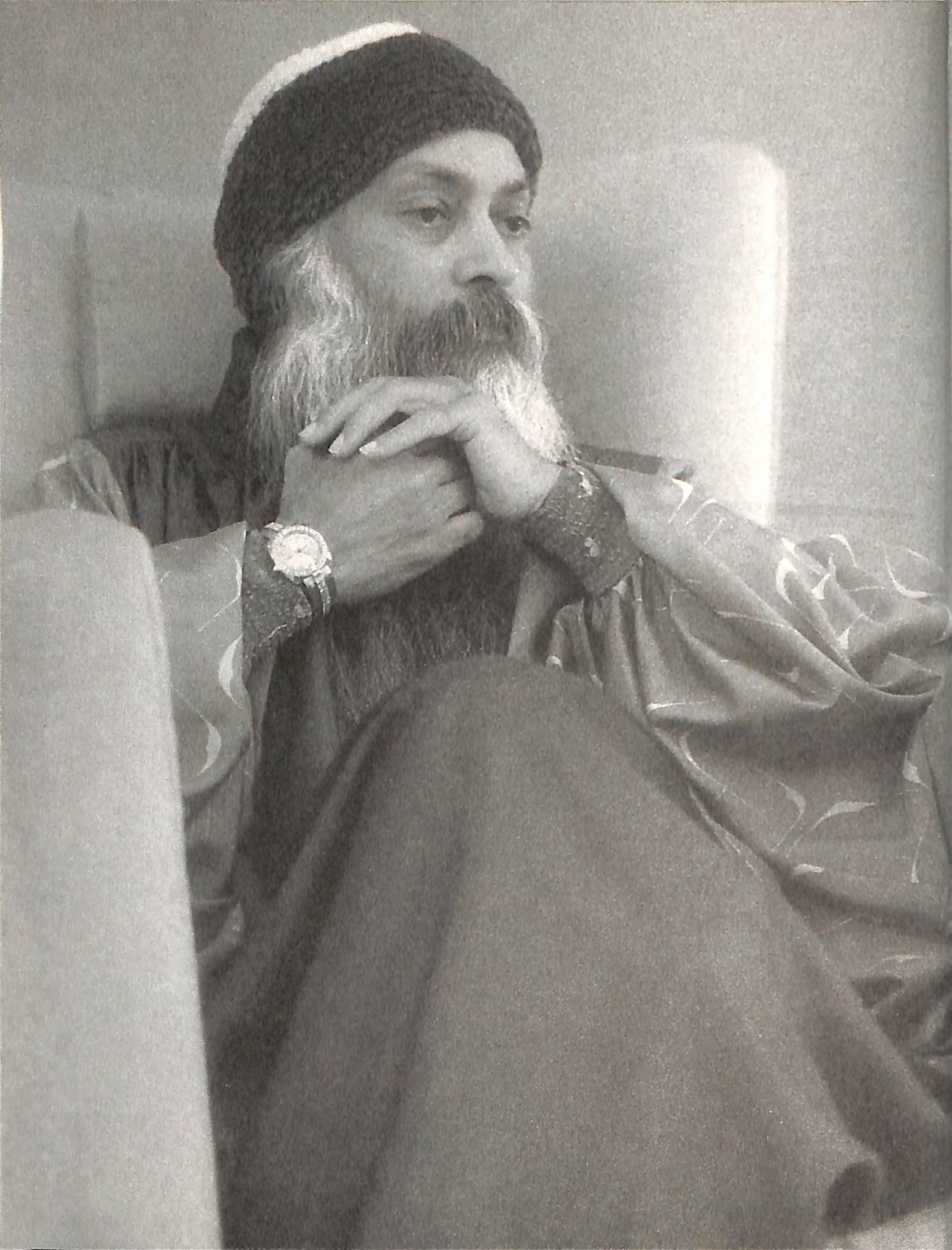

ओशो

बिरहिनी मंदिर दियना बार

ओशो द्वारा यारी-वाणी पर प्रश्नोत्तर सहित दिए गए दस अमृत प्रवचनों का संकलन

संकलन स्वामी अरुण सत्यार्थी
संपादन स्वामी आनंद सत्यार्थी
संयोजन स्वामी योग अमित
साज-सज्जा स्वामी बोधि ओजस
टाइपिंग मा सोनल, मा ज्योति, स्वामी अधीश, मा निरंजना
प्रूफ रीडिंग स्वामी शांति त्यौहार
फोटोटाइपसेटिंग ताओ पब्लिशिंग प्रा.लि., 50 कोरेगांव पार्क, पुणे
प्रकाशक रेबल पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., 50 कोरेगांव पार्क, पुणे
मुद्रण थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड, नई दिल्ली

Birhini Mandir Diyana Bar
Copyright © 1979 Osho International Foundation
All Rights Reserved

सर्वाधिकार सुरक्षित इस पुस्तक अथवा इस पुस्तक के किसी अंश को इलेक्ट्रानिक, मेकेनिकल, फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य सूचना संग्रह साधनों एवं माध्यमों द्वारा मुद्रित अथवा प्रकाशित करने के पूर्व ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन की लिखित अनुमति अनिवार्य है।

Osho® is a registered trademark of Osho International Foundation, used under license.

विशेष राजसंस्करण दिसंबर 2001 Rs 280/-

ISBN 81-7261-178-1

बिरहिनी मंदिर दियना बार

हम परमात्मा से कभी टूटे नहीं हैं। टूट सकते नहीं हैं। टूट जाएं तो जी सकते नहीं हैं। वियोग भ्रांति है। हम अभी भी जुड़े हैं। हम अब भी परमात्मा में हैं। मछली को सागर का पता हो या न हो, मछली सागर में है। और सागर में ही हो सकती है। मछली सागर का ही अंग है। सागर में ही जन्मती है, सागर में ही जीती है, सागर में ही विदा हो जाती है, लीन हो जाती है।

किसे खोजने चले हो? अपनी तुम्हें खबर नहीं है, और परमात्मा को खोजने चले हो! अपनी आंख खुली नहीं है, और प्रकाश को देखने चले हो!

नाहक, अकारण तुमने अपनी ऐसी हालत बना ली है कि जिनकी सुबह होती ही नहीं कभी, रात ही रात चल रही है जन्मों-जन्मों से!

मगर कौन जिम्मेवार है? अगर कोई और जिम्मेवार है, तब तो तुम कुछ भी न कर सकोगे। अगर कोई और जिम्मेवार है, तब तो धर्म व्यर्थ है, तब तो योग व्यर्थ है। क्योंकि तुम क्या कर सकोगे? धर्म और योग की सार्थकता है, क्योंकि तुम ही जिम्मेवार हो। सहर हो ही गई है, सुबह हो ही गई है। सुबह ही है। रात है ही नहीं। सिर्फ तुम्हारी बंद आंखों के कारण रात मालूम होती है।

मैं खिड़की पर खड़ा हूं, मुझे सूरज दिखाई पड़ रहा है। सुबह हो गई है। तुम आंख बंद किए बिस्तर में पड़े हो। ज्यादा दूर खिड़की से तुम भी नहीं। तुम पूछते हो कि वहीं से आप कुछ कहें। कुछ कह दें सूरज के संबंध में, मुझे क्यों उठाते हैं? अब आप तो देख ही रहे हैं।

आपने देख लिया तो मैंने देख लिया। वहीं से कुछ कह दें। मैं पड़ा-पड़ा बिस्तर में सुन लूंगा और समझ लूंगा।

मगर क्या कहा जा सकता है सूरज के संबंध में? और शब्द सूरज की रोशनी से रोशन न होंगे। और शब्दों में पक्षियों की चहचहाहट भी न होगी। और शब्दों में सुबह-सुबह खिले फूलों के रंग और सुवास भी न होगी। और शब्दों में पत्तों से सरकती, ढरकती ओस की ताजगी भी न होगी। और शब्दों में आकाश का नीला विस्तार भी न होगा। और शब्दों में आकाश में डोलते शुभ्र बादलों की छाया भी न पड़ेगी। क्या कहें? कह देंगे सूर्यास्त या सूर्योदय, पर इससे क्या हल होगा?

नहीं, सूर्य के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लेकिन तुम्हें चेताया जा सकता है कि उठ आओ, सुबह हो गई। जागो! निकल आओ बिस्तर के बाहर। बहुत दिन ओढ़े रहे यह कंबल अंधेरे का। आ जाओ खिड़की के पास, तुम भी देखो। तुम भी देखोगे तो ही जानोगे।...

जब तक तुम भी एक दीये की तरह न जल उठो, जब तक तुम भी एक दीया न बन जाओ—तब तक तुम रोशनी से संबंध न जोड़ सकोगे। रोशनी ही रोशनी से संबंध जोड़ सकती है। अंधेरे और रोशनी को तुमने कहीं मिलते देखा है? अंधेरे और रोशनी का कोई मिलन नहीं होता। अंधेरे और रोशनी का कोई सह-अस्तित्व नहीं होता। अंधेरा है तो रोशनी नहीं, रोशनी है तो अंधेरा नहीं। रोशनी से रोशनी का मिलन होता है।

तुम अगर जाग जाओ, तो जागे हुए परमात्मा से संबंध हो जाए। वह सदा जागा है। वह कभी सोता नहीं। कृष्ण ने कहा है कि योगी, जब सारे भोगी सोते हैं, तब भी जागता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि योगी खड़ा रहता है रात भर। इसका इतना ही अर्थ है कि शरीर तो सोता है, मगर योगी भीतर नहीं सोता। भीतर निद्रा होती ही नहीं। भीतर आंख खुली है सो खुली रहती है। बाहर की आंखें बंद हो जाती हैं, खुल जाती हैं; भीतर की आंख खुली है तो खुली रहती है। उस भीतर की खुली आंख से ही परमात्मा का संबंध हो पाता है।...

बिरहिनी मंदिर दियना बार।

इसलिए यारी कहते हैं: एक काम कर लो। तुम्हारा विरह मुझे छूता है, तुम्हारा दुख मुझे छूता है। तुम्हें मैं कुंजी देता हूं: बिरहिनी मंदिर दियना बार।

आत्म-ज्योति भीतर जलानी है। यह दीया तुम्हारी देह में जलना है। जलाना है, कहना शायद ठीक नहीं—जल ही रहा है, पहचानना है, प्रत्यभिज्ञा करनी है।

ऐ विरही लोगो! अपने घर में आत्म-ज्योति को जलाओ, या जलती आत्म-ज्योति को पहचानो।

ओशो

अ नु क्र म

1 यारी कहै सुनो भाई संतो	9
2 जागो सखि, वसंत आ गया	37
3 निरगुन चुनरी निर्बान	65
4 संन्यास—एक नई आंख	97
5 तत्त्वमसि	127
6 प्रार्थना के पंख	157
7 मरिके यारी जुग-जुग जीया	189
8 सत्य के अनबोले बोल	221
9 कह यारी घर ही मिलै	253
10 शरद चांदनी बरसी	285

यारी कहै सुनो भाई संतो

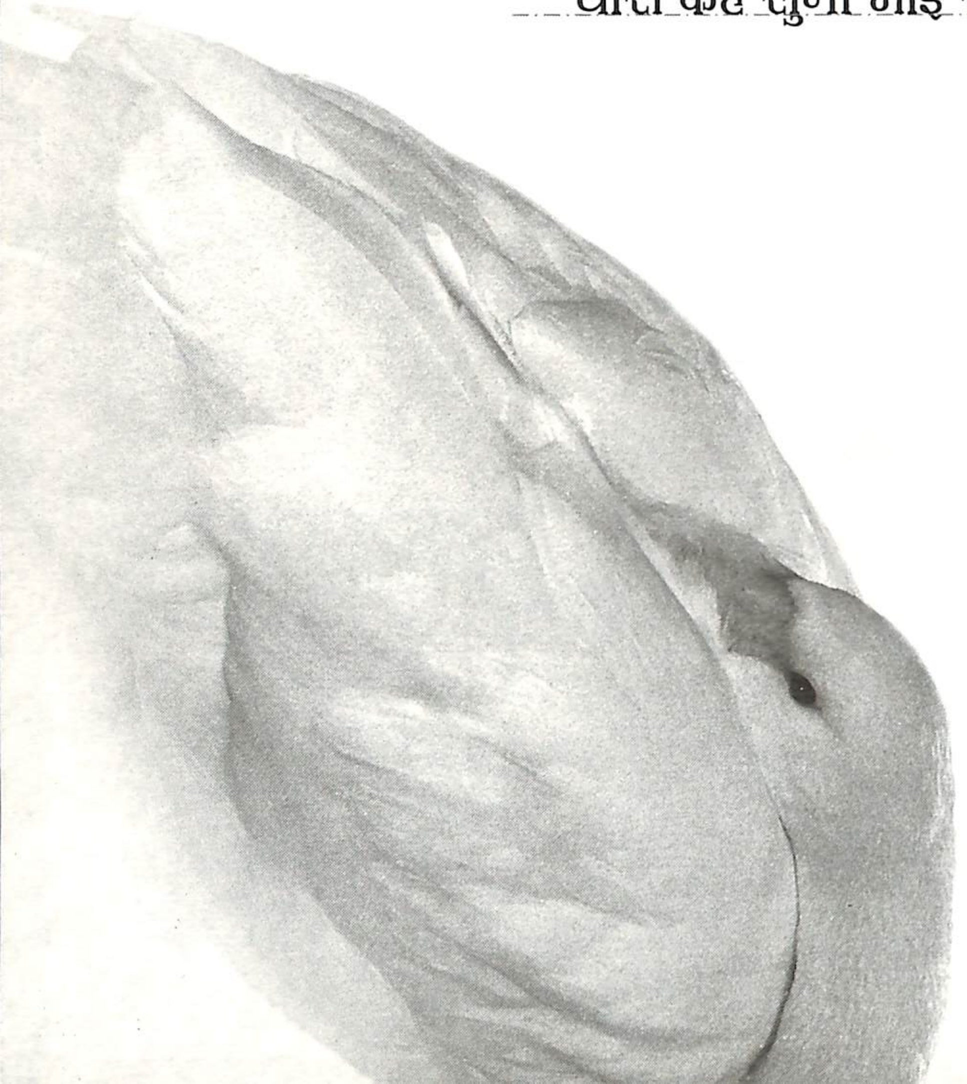

प्रवचन 1

बिरहिनी मंदिर दियना बार।
बिन बाती बिन तेल जुगति सों बिन दीपक उजियार।।
प्रानपिया मेरे गृह आयो, रचि-रचि सेज संवार।।
सुखमन सेज परमतत रहिया, पिया निर्गुन निरकार।।
गावहु री मिलि आनंद मंगल, यारी मिलि के यार।।

रसना राम कहत तें थाको।
पानी कहे कहुं प्यास बुझत है, प्यास बुझे जदि चाखो।।
पुरुष-नाम नारी ज्यों जानै, जानि बूझि जनि भाखो।।
दृष्टी से मुष्टी नहिं आवै, नाम निरंजन वाको।।
गुरु परताप साध की संगति, उलट दृष्टि जब ताको।।
यारी कहै सुनो भाई संतो, बज्र बेधि कियो नाको।।

दिल में नये अरमान बसाने का दिन आया
गुंचे की तरह दिल को खिलाने का दिन आया
फूलों की तरह हंसने-हंसाने का दिन आया
बादल की तरह झूम के छाने का दिन आया
मुस्कान की बरखा में नहाने का दिन आया

एक बुद्धपुरुष का जन्म इस पृथ्वी पर परम उत्सव का क्षण है। बुद्धत्व मनुष्य की चेतना का कमल है। जैसे वसंत में फूल खिल जाते हैं, ऐसे ही वसंत की घड़ियां भी होती हैं पृथ्वी पर, जब बहुत फूल खिलते हैं, बहुत रंग के फूल खिलते हैं, रंग-रंग के फूल खिलते हैं। वैसे वसंत आने पृथ्वी पर कम हो गए, क्योंकि हमने बुलाना बंद कर दिया। वैसे वसंत अपने आप नहीं आते, आमंत्रण से आते हैं। अतिथि बनाएं हम उन्हें तो आते हैं। आतिथेय बनें हम उनके तो आते हैं। प्रकृति का वसंत तो जड़ है, आता है, जाता है; लेकिन आत्मा के वसंत तो बुलाए जाते हैं तो आते हैं। हमने बुलाना ही बंद कर दिया। हमने प्रभु को पुकारना ही बंद कर दिया। पुकारते नहीं प्रभु को, आता नहीं प्रभु, तो फिर हम कहते हैं: प्रभु है कहां? प्रमाण क्या है उसका?

बिना बुलाए उसका कोई भी प्रमाण नहीं। बिना उसके आए उसका कोई भी प्रमाण नहीं। और जब आता है तो बाढ़ की तरह आता है। एक प्रमाण नहीं, अनंत प्रमाण लेकर आता है। स्वतःप्रमाण होकर आता है। जिस व्यक्ति ने भी कभी उसे पुकारा है, पुकार खाली नहीं गई है।

यारी की पुकार भी खाली नहीं गई। यारी भी भर उठे—बड़ी सुगंध से! और लुटी सुगंध! उनके गीतों में बंटी सुगंध! और जब भी किसी व्यक्ति के जीवन में परमात्मा का आगमन होता है तो गीतों की झड़ी लग जाती है; उस व्यक्ति की श्वास-श्वास गीत बन जाता है। उसका उठना-बैठना संगीत हो जाता है। उसके पैर जहां पड़ जाते हैं, वहां तीर्थ बन जाते हैं।

ऐसे ही एक अदभुत व्यक्ति के साथ आज हम यात्रा शुरू करते हैं। यारी का जन्म हुआ दिल्ली में। नाम था: यार मोहम्मद। फिर मोहम्मद तो जल्दी ही खो गया। क्योंकि जिसे परमात्मा को पुकारना हो, वह हिंदू नहीं रह सकता, वह मुसलमान भी नहीं रह सकता, वह ईसाई भी नहीं रह सकता। परमात्मा को पुकारने के लिए कुछ शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं। और पहली शर्त है—विशेषण छोड़ देने पड़ते हैं, आग्रह छोड़ देने पड़ते हैं, मंदिर और मस्जिद छोड़ देने पड़ते हैं। तभी तो खुद मंदिर बनोगे, खुद मस्जिद बनोगे। जब तक बाहर के मंदिर और मस्जिद को पकड़े रहोगे, याद ही न आएगी कि अपने भीतर भी एक मंदिर था। और उस मंदिर में न कभी दीप जले, और उस मंदिर में न कभी धूप जली। उस मंदिर में कभी नाद न हुआ। अपने भीतर भी एक मस्जिद थी, जिसमें कभी अजान न उठी, जिसमें कभी नमाजें न पढ़ी गईं, जहां अंधेरा था तो अंधेरा ही रहा।

बाहर के मंदिर-मस्जिदों में जो भटका है, वह भीतर के असली मंदिर और मस्जिद से वंचित रह जाएगा। जिसने नजर बाहर रखी, वह कभी परमात्मा को नहीं पा सकेगा। और धन को खोजने वाले भी बाहर खोजते हैं, और ध्यान को खोजने वाले भी बाहर खोजते हैं। धन के खोजने वालों को क्षमा किया जा सकता है, ध्यान के खोजने वालों को क्षमा नहीं किया जा सकता। धन तो बाहर है, ध्यान तो बाहर नहीं है। पद खोजते हो, प्रतिष्ठा खोजते हो; बाहर ही खोजनी पड़ेगी। परमात्मा खोजना है तो भीतर खोजना पड़ेगा। और भीतर कोई हिंदू है? कि भीतर कोई मुसलमान है? कि भीतर कोई ईसाई है? कि कोई जैन है? कि कोई बौद्ध है? कि कोई सिक्ख है? कि पारसी है? भीतर तो तुम निर्मल हो, निराकार हो। भीतर तो तुम विशेषणरहित हो—न तुम ब्राह्मण, न तुम शूद्र; न तुम स्त्री, न तुम पुरुष; न तुम गोरे, न तुम काले। भीतर तो तुम बच्चे भी नहीं, जवान भी नहीं, बूढ़े भी नहीं। भीतर तो तुम शाश्वत हो, समयातीत हो, कालातीत हो। और भीतर का ही स्वाद मिले तो परमात्मा का स्वाद मिले।

सो जल्दी ही यार मोहम्मद का मोहम्मद कहां खो गया, पता नहीं! अब तो लोग अनुमान लगाते हैं कि यार मोहम्मद नाम रहा होगा। यह अनुमान है, ऐतिहासिक कोई प्रमाण नहीं। ऐसा ही होता है। ये तो बाहर के रंग हैं। यह तो एक उसकी वर्षा का झोंका आया कि ये रंग बह जाएंगे। शिष्य थे वीरू फकीर के। वीरू मुसलमान नहीं हैं। वीरू तो जन्मे थे हिंदू घर में। लेकिन जब कोई ज्योति जलती है तो सब तरह के दीवाने चले आते हैं, भांति-भांति के परवाने चले आते हैं! उस मदमस्ती में कौन देखता है—कौन हिंदू, कौन मुसलमान? वीरू खुद एक मुसलमान फकीर स्त्री के शिष्य थे—बावरी साहिबा के।

संतों का जगत कुछ और ही है। वहां बाहर के भेदों का कोई मूल्य नहीं। यह स्त्री, बावरी साहिबा भी बड़ी अदभुत स्त्री थी। स्त्रियां तो थोड़ी ही हुई हैं जो अंगुलियों पर गिनी जा सकें, उनमें बावरी भी एक है। उसका तो नाम भी पता नहीं। ऐसी पागल हुई प्रभु के प्रेम में कि बस इतनी ही याद रह गई है कि बावरी थी, कि दीवानी थी, कि पागल थी। बावरी थी

मुसलमान—संस्कारगत, जन्मगत। शिष्य थे वीरू—जन्मगत, संस्कारगत हिंदू। प्रशिष्य थे यारी साहब, फिर मुसलमान। ऐसे यारी में दो धाराओं का मिलन हुआ। ऐसे यारी में संगम हुआ। और यारी के वचनों में जगह-जगह उस संगम की झलक मिलेगी।

पहले मोहम्मद गया; फिर यार थे, यार से यारी हो गए। वह बात भी समझ लेनी चाहिए। यार का अर्थ होता है—मित्र; यारी का अर्थ होता है—मैत्री, मित्रता। जब अहंकार खो जाए तो मित्र मैत्री हो जाता है, मित्र मित्रता हो जाता है। जब अहंकार खो जाए तो फूल खो जाता है, सुवास रह जाती है। फिर तुम पकड़ नहीं सकते इस सुवास को, मुट्ठी में बांध नहीं सकते इस सुवास को। न उसका कोई रूप है, न रंग है। ऐसी ही मैत्री है।

बुद्ध ने तो कहा है कि बुद्धपुरुष कल्याण-मित्र होते हैं। यारी एक कल्याण-मित्र हैं।

मगर एक और अनूठी बात कि यारी से यार शब्द भी खो गया। मित्र में भी थोड़ी सी सीमा है। मित्रता असीम है। मित्र में केंद्र है, कहीं छिपा मैं है। मित्रता में मैं तो गया, बिलकुल गया! प्रेम अपनी परिशुद्धि में प्रकट होता है। मित्रता और मैत्री में भी थोड़ा फर्क है। मित्रता होती है दो व्यक्तियों के बीच; एक संबंध है मित्रता। मैत्री संबंध नहीं है, समाधि की अवस्था है। मैत्री, दूसरा न भी हो तो भी चलती है, तो भी बहती है। मित्रता के लिए दूसरा जरूरी है, मैं और तू का नाता जरूरी है। मित्रता में द्वैत शेष रहता है। मैत्री में द्वैत भी अशेष हो जाता है।

मैत्री का अर्थ हैः वृक्ष हो तो, चट्टान हो तो, आकाश में बादल हो तो, कोई भी न हो तो, तो भी सुवास उड़ती रहती है; तू से नहीं बंधी है। जब मैं ही न रहा तो तू कैसे रहेगा? मैं और तू तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इधर गया मैं, उधर गया तू। तब एक सहज प्रेम का प्रवाह रह जाता है—निरुद्देश्य, किसी पते पर निवेदित नहीं। प्रेम की पाती तो लिखी जाती है, लेकिन किसी पते पर नहीं। और जब तुम बिना किसी पते के प्रेम की पाती लिखते हो तो परमात्मा तक पहुंचती है।

मैत्री मित्रता की पराकाष्ठा है। छूट गए सीमाओं के बंधन, गिर गईं जंजीरें, मैत्री ने पंख फैला दिए, उड़ गई आकाश में! प्रेम का चरम रूप है। इसलिए नाम प्यारा है! यार मोहम्मद से रह गए यार; फिर यार भी खो गया, बची यारी। और इसलिए मैं कहता हूंः

दिल में नये अरमान बसाने का दिन आया
गुंचे की तरह दिल को खिलाने का दिन आया
फूलों की तरह हंसने-हंसाने का दिन आया
बादल की तरह झूम के छाने का दिन आया
मुस्कान की बरखा में नहाने का दिन आया

गिरने देना यारी के वचनों को जैसे वर्षा की बूंदाबांदी हो। घिरने देना उनके मेघ को तुम्हारे ऊपर! नहा लेना! यही वस्तुतः गंगा का स्नान है। संतों की वाणी बरस जाए तुम पर तो देह ही नहीं शुद्ध हो जाती, प्राणों के प्राणों तक भी शुद्धि पहुंच जाती है। तन ही नहीं नहा लेता, मन ही नहीं नहा लेता, तन और मन के पीछे छिपा हुआ साक्षी भी सारी धूल झाड़ कर उठ बैठता है। नींद टूट जाती है। और तुम्हारे भीतर जो कली न मालूम कितने दिन से बे-खिली पड़ी थी, खिल उठती है। खिले हुए फूलों के संग-साथ का यही तो अर्थ है। खिले

हुए फूलों के संग-साथ का यही तो प्रयोजन है कि तुम्हें भी याद आ जाए कि तुम भी खिलने को आए थे यहां और बिना खिले मत लौट जाना। तुम्हें भी याद आ जाए कि खिलना तुम्हारी भी क्षमता है, तुम्हारा भी स्वभाव है।

ऐसे करना यारी का सत्संग!

सूत्रः **बिरहिनी मंदिर दियना बार।**

हम सब विरह में हैं, हमें पता हो या न पता हो। बीमार तो बीमार है, बीमार को पता हो या न पता हो। बीमारी महीनों चलती है; और जब तक कोई चिकित्सक न मिल जाए, ठीक-ठीक निदान भी नहीं हो पाता कि बीमारी क्या है। नहीं मिला था चिकित्सक तो भी बीमारी तो चलती थी।

रूस में एक बड़े वैज्ञानिक किरलियान ने एक नये किस्म की फोटोग्राफी का आविष्कार किया है, जिसमें बीमारी के आने के छह महीने पहले बीमारी का पता चल जाता है। बीमार होने के छह महीने पहले! अभी बीमार को भी छह महीने बाद पता चलेगा। और बीमार को भी पता चलते-चलते जब महीने, दो महीने बीत जाएंगे, तब वह चिकित्सक के पास जाएगा। लेकिन किरलियान फोटो से छह महीने पहले पता चल जाता है कि किस तरह की बीमारी, किस भांति की बीमारी पकड़ने वाली है। कहीं बीमारी ने पकड़ ही लिया है किसी गहरे तल पर। उस गहरे तल से आते-आते तुम्हारे चेतन तक, अचेतन से चेतन की यात्रा करते-करते समय लगेगा। फिर कुछ दिन तो तुम टालोगे। कुछ दिन तो तुम मन समझा लोगे कि यों ही होगा, कि सर्दी-जुकाम है, कि सिरदर्द है, कि थकान है, कि काम ज्यादा है, कि कल रात ठीक से सो नहीं पाए। टालते रहोगे कुछ बहाने खोज कर। और कुछ बीमारियां तो ऐसी हैं कि आदमी जिंदगी भर टाल सकता है। और कुछ बीमारियां तो इतनी सूक्ष्म हैं कि टालने की जरूरत ही नहीं पड़ती, पता ही नहीं चलता है। उतनी सूक्ष्म बुद्धि ही कम लोगों के पास है। उतनी प्रकीर्ण संवेदनशीलता ही बहुत कम लोगों के पास है।

फिर शरीर की बीमारियों की बात हुई यह तो; मन की बीमारियां और भी गहरी हैं। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि चार में से तीन लोग मानसिक रूप से बीमार हैं। चार में से तीन तो बड़ी संख्या हो गई! और मनोवैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि चौथा स्वस्थ है, यह भी हम गारंटी से नहीं कह सकते। तीन तो निश्चित बीमार हैं, चौथा संदिग्ध है।

यह तो खूब बात हुई! इसका तो अर्थ हुआ कि सारी मनुष्यता बीमार है! और यह तो मन की बीमारी की बात है; फिर उसके गहरे आत्मा की बीमारी है। जब मन में चार में से तीन बीमार हैं और चौथा संदिग्ध है, तो आत्मा के संबंध में तो निश्चित मानो कि चारों बीमार हैं और चारों की बीमारी सुनिश्चित है। उस बीमारी का नाम विरह है।

विरह का अर्थ होता हैः हमें अपनी जड़ें भूल गई हैं; हमारा परमात्मा से संबंध टूट गया है। हम जिसमें हैं, उसका ही हमें पता भूल गया है। जो हमारी श्वासों की श्वास है, जो हमारे प्राणों का प्राण है, उससे हमारे सेतु छिन्न-भिन्न हो गए हैं। जो हमारा आनंद बनेगा, उसकी ही तरफ हमने पीठ कर ली है। और जो हमें शाश्वत जीवन का द्वार खोलेगा, हम उस द्वार से विपरीत भागे जा रहे हैं। हम धन की तलाश में हैं, ध्यान की तलाश में नहीं। धन बाहर है, बहुत दूर है; क्षितिज की भांति है; भागते रहो, भागते रहो, कभी मिलता नहीं। और ध्यान

भीतर है; भागो तो नहीं मिलता, रुक जाओ तो मिल जाता है, ठहर जाओ तो मिल जाता है। और हम सब भाग रहे हैं। और हर भाग-दौड़ हमें अपने से ही दूर लिए जा रही है, अपने ही स्रोत से दूर लिए जा रही है।

जैसे कोई वृक्ष भागने लगे। बस फिर दुर्दिन आए! क्योंकि जड़ें उखड़ जाएंगी। और जहां प्राणों के स्रोत थे, जहां जलस्रोत थे, जिस भूमि से भोजन मिलता था, उससे नाते छिन्न-भिन्न हो जाएंगे। जैसे कोई वृक्ष आवारा हो जाए, घुमक्कड़ हो जाए, खानाबदोश हो जाए, तो क्या खाक जीएगा! जल्दी ही हरियाली खो जाएगी। जल्दी ही पत्ते झड़ जाएंगे। कलियां फूल तो न बनेंगी, कलियों की तरह ही झड़ जाएंगी और धूल में मिल जाएंगी। फूल फिर कभी न खिलेंगे। वसंत तो आता रहेगा, जाता रहेगा; मगर इस वृक्ष के जीवन में फिर कोई वसंत से संबंध न होगा। और वर्षा भी आएगी, और बादल भी घिरेंगे, और मेघ भी बरसेंगे, लेकिन इस वृक्ष पर अब हरी पत्तियां न फूटेंगी, अब नये कलगे न निकलेंगे। यह वृक्ष तो रूखा-सूखा, मुर्दा, अस्थिपंजर मात्र, सब तरफ से उद्विग्न, विक्षिप्त भटकता रहेगा। ऐसे हम हो गए हैं। ऐसा मनुष्य हो गया है।

विरह का अर्थ है: जिसके साथ हमारे जीवन का सारा सार है, उससे ही हम टूट गए हैं। जो हमारे प्राणों का प्राण है, जो हमारा प्यारा है, उससे ही हम विमुख हो गए हैं।

सम्मुख हो जाओ। उसकी तरफ आंखें उठाओ। उससे गले लग जाओ। उसमें डूबो। और उसमें डूब कर ही तुम पाओगे कि तुमने अपने को बचा लिया। और अपने को जो बचाएंगे, वे अंततः पाएंगे कि बुरी तरह डूबे, बुरी तरह टूटे, बुरी तरह मिटे! बचे तो नहीं, सब गंवा बैठे।

ऐसे लोग जो परमात्मा के विपरीत जीते हैं, खाली हाथ ही आते हैं और खाली हाथ ही जाते हैं। और भी ज्यादा खाली हाथ जाते हैं। वे लोग जो परमात्मा में जीते हैं, वे भरे-भरे जीते हैं। उनकी जिंदगी में एक परितोष होगा, एक अपूर्व आनंद होगा, एक उत्सव होगा। उनसे गीत फूटेंगे, उनसे नृत्य उमगेंगे। उनके पैरों में घूंघर बंधेगी। पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे! वे थोड़े से मतवाले लोग ही जीवन के रहस्य को पहचान पाते हैं, और जीवन के रस को पी पाते हैं। और जीवन का रस अमृत है; जिसने पी लिया, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं। और जो बिना पीए रह गया, उसका कोई जीवन नहीं। झूठा ही जीता है वह। ऐसे ही ऊपर-ऊपर जीता है वह। उसका जीवन नपुंसक है। उसमें कोई ऊर्जा नहीं है।

बिरहिनी मंदिर दियना बार।

यह तुमसे कहा है। यह सबसे कहा है। उन सबसे कहा है जो परमात्मा के विपरीत जी रहे हैं और विरह में तड़प रहे हैं। समझ में भी नहीं आता कि विरह किस बात का है! ऐसा लगता तो है, आभास तो होता है कि कुछ खोया-खोया है; कुछ जो होना था, नहीं हुआ है। ऐसी कुछ-कुछ झलक तो मिलती है, लेकिन बड़ी धुंधली-धुंधली, आभास मात्र; अनुमान सा लगता है। अंधेरे में देखा हो जैसे, ऐसा प्रतीत होता है। और उसी आभास के कारण हम और भी तेजी से दौड़ने लगते हैं, कि जरूर कुछ खोया है और पाना है। मगर जो खोया है वह भीतर खोया है; और दौड़ते हम बाहर हैं। जितना दौड़ते हैं, उतने ही दूर निकल जाते हैं—उससे जिसे पाना है।

इस दुनिया में जो बहुत सफल हो जाते हैं, ध्यान रखना, उनकी सफलता महंगी बात है। क्योंकि जितने वे सफल हो जाते हैं इस दुनिया में—धन पाने में, पद पाने में, प्रतिष्ठा पाने में—उतने ही असफल हो जाते हैं अपने अंतर्लोक में। इधर धन के ढेर लग जाते हैं, उधर भीतर दरिद्रता के ढेर लग जाते हैं। इधर बाहर पद ऊंचे से ऊंचा होने लगता है, भीतर खाई गहरी से गहरी होने लगती है। इधर बाहर प्रतिष्ठा मिलने लगती है, सम्मान मिलने लगता है, भीतर दीनता कांटे की तरह चुभने लगती है।

बिरहिनी मंदिर दियना बार।

मंदिर से अर्थ है तुम्हारी देह से। क्योंकि इसी मंदिर में तो परमात्मा विराजमान है। कहां भागे जाते हो? किसे खोजने निकले हो? अनंत से तो खोज रहे हो, मिला नहीं। जरूर कोई बुनियादी चूक हो रही है। जो भीतर हो, उसे बाहर खोजोगे तो कैसे पाओगे? मंदिर हो तुम!

और तुम्हारे तथाकथित पंडित-पुरोहित तुम्हारी देह की निंदा में संलग्न हैं। सदियों से उनका एक ही काम है कि तुम्हारी देह की निंदा करें, कि तुम्हें देह का शत्रु बनाएं, कि तुम्हें बताएं कि देह के कारण ही तुम परमात्मा से टूटे हो।

झूठी यह बात है, सरासर झूठी यह बात है, सौ प्रतिशत झूठी यह बात है। तुम्हारी देह परमात्मा के विपरीत नहीं है। तुम्हारी देह को तो परमात्मा ने अपना आवास बनाया है। तुम्हारी देह मंदिर है, पूजा का स्थल है, काबा है, काशी है! तुम्हारी देह को दबाना मत, सताना मत। तुम्हारी देह को तोड़ने में मत लग जाना। हालांकि यही तुम्हें सिखाया गया है, यही जहर तुम्हें पिलाया गया है। दूध के साथ, घुट्टी के साथ तुम्हें यह जहर पिलाया गया है कि देह पाप है। और जिसको यह समझ में आ गई बात, जिसके भीतर यह बात बहुत गहराई में बैठ गई, यह नासमझी कि देह पाप है, वह परमात्मा से कभी भी न मिल सकेगा। क्योंकि देह से डरा-डरा बाहर-बाहर रहेगा और देह के भीतर तो प्रवेश कैसे करेगा? पाप में कहीं प्रवेश किया जाता है!

देह उसकी भेंट है, पाप नहीं। देह पुण्य है, पाप नहीं। देह पवित्र है, अपवित्र नहीं। देह का सम्मान करो। देह का सत्कार करो। और तभी तो तुम प्रवेश कर पाओगे। देह से मैत्री बनाओ, यारी साधो! और धीरे-धीरे देह में भीतर सरको।

योग तैयार करता है तुम्हारी देह को, ताकि तुम भीतर सरक सको; तुम्हारे देह के द्वार खोलता है। और ध्यान तुम्हें देह के भीतर बैठने की कला सिखाता है। और जिसने देह के द्वार खोल लिए योग से और जिसने ध्यान से भीतर बैठने की कला सीख ली, पा लिया उसने परमात्मा को! सदा परमात्मा ऐसे ही पाया गया है।

...मंदिर दियना बार।

आत्म-ज्योति भीतर जलानी है। यह दीया तुम्हारी देह में जलना है। जलाना है, कहना शायद ठीक नहीं—जल ही रहा है, पहचानना है, प्रत्यभिज्ञा करनी है।

रंग है जिसमें मगर बू-ए-वफा कुछ भी नहीं,
ऐसे फूलों से न घर अपना सजाना हरगिज।
दिल तुम्हारा है वफाओं की परस्तिश के लिए,
इस मोहब्बत के शिवाले को न ढाना हरगिज।

यह तुम्हारी देह, यह तुम्हारा दिल धड़कता है जो भीतर, इसी के अंतरतम में परमात्मा विराजमान है। तुम झूठे फूलों में भटके हो, जब कि सच्चा फूल तुम्हारे भीतर खिलने को राजी है। तुम्हारी झील में नीलकमल खिलने को राजी है; और तुम मांगते फिरते हो प्लास्टिक के फूलों को! बाजारों में खरीद रहे हो कागज के फूलों को!

रंग हैं जिसमें मगर बू-ए-वफा कुछ भी नहीं,
ऐसे फूलों से न घर अपना सजाना हरगिज।
दिल तुम्हारा है वफाओं की परस्तिश के लिए,
इस मोहब्बत के शिवाले को न ढाना हरगिज।

उतरो देह की सीढ़ियों से, पाओगे हृदय को। वह तुम्हारा अंतरगृह है। फिर उतरो हृदय की सीढ़ियों से और तुम पाओगे उस अमृत के स्रोत को—जिसके बिना जीवन उदास है, जिसके बिना जीवन संताप है, जिसके बिना जीवन विषाद है!

बिरहिनी मंदिर दियना बार।

ऐ विरही लोगो! अपने घर में आत्म-ज्योति को जलाओ, या जलती आत्म-ज्योति को पहचानो।

कब ठहरेगा दर्द ऐ दिल, कब रात बसर होगी
सुनते थे वह आएंगे, सुनते थे सहर होगी
कब जान लहू होगी, कब अश्क गुहर होगा
किस दिन तेरी शनवाई ऐ दीदा-ए-तर होगी
कब महकेगी फस्ले-गुल, कब बहकेगा मयखाना
कब सुब्हे-सुखन होगी, कब शामे-नजर होगी
वाइज है न जाहिद है, नासेह है न कातिल है
अब शहर में यारों की किस तरह बसर होगी

दुनिया बड़ी सूनी हो गई है। दुनिया बड़ी सूनी है! अब नहीं मिलते यारी जैसे लोग। दुनिया बड़ी उदास है। आदमियों की भीड़ बढ़ती गई है और आदमी खोता गया है। आदमियों की भीड़ बढ़ती गई है और आत्मा खोती गई है। अब नहीं मिलते वे प्यारे लोग, या बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। कभी गांव-गांव उनके दीये जलते थे। कभी बस्ती-बस्ती उनकी रोशनी से रोशन थी। इस जमीन ने बड़े प्यारे फूल उगाए हैं!

क्यों ऐसा हो गया? अब प्यारे फूल क्यों नहीं उगते? झाड़ियां अब भी हैं, मगर गुलाब के फूलों के दर्शन नहीं होते। कहीं कोई बुनियादी चूक हमारे दृष्टिकोण में हो गई है। हम ज्यादा से ज्यादा बहिर्मुखी हो गए हैं। और अब तो बहिर्मुखता की हद आ गई! अब तो इस हद के आगे गए तो मौत है। इस हद के आगे गए तो आदमियत समाप्त है। अब तो लौट पड़ना होगा। अब तो फिर खोए खजाने खोजने होंगे।

कब ठहरेगा दर्द ऐ दिल, कब रात बसर होगी
सुनते थे वह आएंगे, सुनते थे सहर होगी

सदियों-सदियों तक लोगों ने परमात्मा की प्रतीक्षा में दिन और रातें बिताई थीं। अब तो याद भी नहीं आती! अब तो परमात्मा हमारी जिंदगी का हिस्सा ही नहीं है। अब तो हम

परमात्मा शब्द का भी उपयोग करते हैं तो औपचारिक ढंग से करते हैं। अब उसमें अर्थ नहीं रह गया है, क्योंकि अर्थ हम डालते ही नहीं हैं तो उसमें अर्थ आएगा कहां से? शब्दों में अर्थ नहीं होते, अर्थ तो जीवन से डालने होते हैं।

कब ठहरेगा दर्द ऐ दिल, कब रात बसर होगी

कब टूटेगी यह रात? और दिल की ये बेचैनियां और दिल के ये दुख भरे क्षण कब समाप्त होंगे?

सुनते थे वह आएंगे, सुनते थे सहर होगी

सुनते रहे हैं, सुनते रहे हैं कि सुबह होगी, सुबह होगी; होती मालूम नहीं होती। अंधेरा सघन से सघन होता जाता है।

कब जान लहू होगी, कब अश्क गुहर होगा

कब आएगा वह क्षण जब आंसू मोती बन जाते हैं?

सच, आंसू मोती बन जाते हैं! जो परमात्मा की राह पर रोता है, उसके आंसू मोती बन जाते हैं। आदमी की राह पर जो चलता है, उसके तो मोती भी आंसुओं से बदतर हैं। यहां तो धन भी पा लो तो निर्धनता ही हाथ लगती है। यहां तो मोती भी आज नहीं कल पता चलते हैं कि बस दो कौड़ी के थे। मगर एक और राह भी है।

कब जान लहू होगी, कब अश्क गुहर होगा
किस दिन तेरी शनवाई ऐ दीदा-ए-तर होगी

और कब तेरे दर्शन होंगे? उसके दर्शन होते ही तुम्हारी साधारण आंखें असाधारण दृष्टियों में बदल जाती हैं; तुम्हारी साधारण देह दीप्त हो उठती है। तुम्हारी देह फिर मिट्टी की नहीं रह जाती, आकाश की हो जाती है। फिर जमीन की कशिश तुम्हें नीचे नहीं खींच पाती, फिर आकाश का प्रसाद तुम्हें ऊपर उठा लेता है।

कब महकेगी फस्ले-गुल...

कब आएगा वसंत? कब खिलेंगे फूल? कब उठेगी महक?

कब महकेगी फस्ले-गुल, कब बहकेगा मयखाना

कब हम नाचेंगे दीवाने होकर? क्योंकि जो नहीं नाचा दीवाना होकर, वह व्यर्थ ही आया और व्यर्थ ही गया। जब तक पृथ्वी मयखाना न हो जाए, जब तक तुम्हारा जीवन मस्ती की एक लहर न हो जाए, जब तक तुम्हारी श्वास-श्वास में परमात्मा की शराब की सुगंध न आने लगे—तब तक जानना कि व्यर्थ ही जीए हो, तब तक जानना कि अभी यात्रा ने ठीक मोड़ नहीं लिया है।

कब महकेगी फस्ले-गुल, कब बहकेगा मयखाना
कब सुब्हे-सुखन होगी, कब शामे-नजर होगी

कब होगी वह प्यारी प्रभात जब सूरज उगेगा? कब आएगी वह सांझ विश्राम की, परम विश्राम की?

वाइज हैं न जाहिद हैं, नासेह हैं न कातिल हैं
अब शहर में यारों की किस तरह बसर होगी

अब तो यहां प्रेमियों का रहना मुश्किल हो गया। अब तो यहां भक्तों का जीना मुश्किल

हो गया। अब तो यहां संतों की संभावना ही क्षीण होती चली जाती है। यह हमने कैसी दुनिया बना ली! यह हमने आदमी को कैसी शक्ल दे दी! और परिणाम क्या है? परिणाम यही है कि चारों तरफ एक गहन हताशा है। परिणाम यही है कि चारों तरफ दिलों ने धड़कना बंद कर दिया है। आंखों में मस्ती नहीं है। प्राणों में कोई गीत नहीं है। पैरों में कोई नृत्य नहीं है। परिणाम यही है कि थके-मांदे, किसी तरह धक्के खाते भीड़ के, हम अपनी कब्रों की तरफ बढ़े जाते हैं। कहीं कोई तारा नहीं दिखाई पड़ता, दूर आकाश में भी कोई तारा नहीं दिखाई पड़ता।

तारों ही तारों से भर जाता है आकाश, बस भीतर की ज्योति दिखाई पड़ जाए पहले। वहीं से शुरू होती है ठीक-ठीक यात्रा। जिसने भीतर ज्योति देखी, उसे चारों तरफ ज्योतिर्मय के दर्शन होने लगते हैं।

बिरहिनी मंदिर दियना बार।

इसलिए यारी कहते हैं: एक काम कर लो। तुम्हारा विरह मुझे छूता है, तुम्हारा दुख मुझे छूता है। तुम्हें मैं कुंजी देता हूं:

बिरहिनी मंदिर दियना बार।
बिन बाती बिन तेल जुगति सों बिन दीपक उजियार।

मैं तुम्हें एक ऐसी युक्ति देता हूं। एक ऐसा चमत्कार तुम्हारे भीतर घट सकता है; क्योंकि मेरे भीतर घटा है। जो एक के भीतर घटा है, सबके भीतर घट सकता है। बिन बाती बिन तेल! वहां भीतर एक ज्योति जलती है; उसमें तेल नहीं डालना पड़ता, उसमें बाती नहीं लगानी पड़ती। वहां कोई दीपक भी है, यह कहना ठीक नहीं; मगर उजियारा बहुत है, रोशनी बहुत है। जिन दीयों में तेल भरना पड़ता है, वे तो बुझ जाएंगे, आज नहीं कल बुझ जाएंगे, तेल चुकेगा और बुझ जाएंगे। जिनकी बाती लगानी पड़ती है, बाती जल जाएगी और बुझ जाएंगे। जिन्हें दीयों की जरूरत पड़ती है—मिट्टी के दीये हैं, कभी भी टूट जाएंगे। एक ऐसी ज्योति खोजनी है...और वह ज्योति हमारा स्वरूप-सिद्ध अधिकार है; हम ही हैं वह ज्योति—न जहां तेल है, न बाती है, न दीया है, और उजियारा बहुत!

मगर तुमने तो भीतर आंख फेरनी ही बंद कर दी। तुम्हारी आंखें तो बाहर ऐसी अटक गई हैं कि भूल ही गई हैं कि भीतर भी एक लोक है। दौड़े चले जाते हो! बाहर की चीजों में बहुत चमक मालूम पड़ती है। बहुत चौंधियाए हुए हो!

बिन बाती बिन तेल जुगति सों बिन दीपक उजियार।

यह अपूर्व घटना घटती है साधक को। और जिस दिन यह घटती है उस दिन ही परमात्मा का रहस्य पहली दफा अनुभव में आता है—रहस्यों का रहस्य—कि हमारे भीतर एक शाश्वत उजियाला है, जो जन्म के पहले भी था और मृत्यु के बाद भी रहेगा! और ऐसा उजियाला, जिसका कोई कारण नहीं है, जो अकारण है! चूंकि अकारण है, इसलिए बुझाया नहीं जा सकता। चूंकि अकारण है, इसलिए मौत भी उसे मिटा न सकेगी। मिट्टी का दीया होता तो मौत मिटा देती। तुम देह नहीं हो। और अगर तेल भरा होता तो कभी न कभी चुक ही जाता। कितना ही तेल हो, कभी न कभी चुक जाएगा।

यह सूरज करोड़ों-करोड़ों वर्षों से, अरबों वर्षों से रोशनी दे रहा है। मगर वैज्ञानिक कहते हैं, यह भी चुक रहा है। इसका तेल भी चुका जा रहा है, इसका ईंधन भी चुका जा रहा

है। घबड़ा मत जाना, जल्दी नहीं चुकने वाला है। कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि कम से कम चार हजार साल और...मगर सूरज भी चुक जाएगा। सूरज कितना बड़ा दीया है! इस जमीन से साठ हजार गुना बड़ा है! लेकिन उसकी रोशनी भी रोज-रोज झरती जाती है, रोज-रोज कम होती जाती है। कितने ही बड़े खजाने हों, एक न एक दिन चुक ही जाएंगे—देर-अबेर!

सिर्फ एक खजाना नहीं चुकता है—वह परमात्मा का है। सिर्फ एक ज्योति नहीं बुझती है—वह परमात्मा की है। और जागो! तुम उस ज्योति के धनी हो। तुम उस ज्योति के मालिक हो। तुम्हें बहुमूल्य से बहुमूल्य भेंट दी गई है। और अभागे हो तुम कि उस भेंट को न तुम देखते हो, न उस भेंट का सम्मान करते हो, न उस भेंट के लिए तुमने परमात्मा को कोई धन्यवाद दिया है।

मलिका-ए-शहरे-जिंदगी तेरा
शुक्र किस तौर से अदा कीजे
दौलते-दिल का कुछ शुमार नहीं
तंगदस्ती का क्या गिला कीजे

हम कंजूस हैं, यह और बात; मगर जो हमें मिला है, वह अजस्र स्रोत है। लुटाते जाओ, लुटाते जाओ, तो भी लुटा न पाओगे। बांटो, कितना ही बांटो और बांट न पाओगे। मगर हम बड़े कंजूस हैं। हम देने में बड़े कंजूस हैं। हम प्रेम भी देने में डरते हैं। हम रोशनी भी देने में डरते हैं। हमें डर लगा रहता है, कहीं चुक न जाए! और हमारे डर का कारण है। हमने बाहर का गणित सीखा है। बाहर का गणित यही है कि चीजें चुक जाती हैं। कितना ही धन हो, चुक जाता है। अगर बांटते रहोगे तो जल्दी ही खजाने खाली हो जाएंगे।

मगर तुम्हें भीतर का गणित पता ही नहीं कि भीतर का गणित बाहर के गणित से ठीक उलटा है। बाहर का अर्थशास्त्र है कि बचाओगे तो बचेगा; बांटोगे, खत्म हो जाएगा। यह सीमित अर्थशास्त्र की भाषा है। भीतर का अर्थशास्त्र भी है—और वही वस्तुतः अर्थशास्त्र है। बाहर का अर्थशास्त्र तो अनर्थशास्त्र है। भीतर का ही अर्थशास्त्र वास्तविक है। वहां का सूत्र है: बांटो तो बचेगा, बचाया तो सड़ जाएगा।

बांटो ज्ञान! बांटो प्रेम! बांट सको जो भी भीतर का, बांटो। और तुम चकित होकर पाओगे: जितना बांटते हो, उतना ही बढ़ता जाता है। जिसने जितना बांटा, उसने उतना पाया।

मलिका-ए-शहरे-जिंदगी तेरा
शुक्र किस तौर से अदा कीजे
दौलते-दिल का कुछ शुमार नहीं
तंगदस्ती का क्या गिला कीजे

जो तेरे हुस्न के फकीर हुए
उनको तशवीशे-रोजगार कहां
दर्द बेचेंगे, गीत गाएंगे
इससे खुशवक्त कारोबार कहां

जिन्होंने एक बार तेरी संपदा देख ली, तेरी ज्योति देख ली...

जो तेरे हुस्न के फकीर हुए

और जिसने एक बार तेरा सौंदर्य देख लिया, तेरी महिमा देख ली...

जो तेरे हुस्न के फकीर हुए
उनको तशवीशे-रोजगार कहां

उन्हें फिर जिंदगी में कोई और कमाने जैसी चीज नहीं रह जाती। उन्होंने तो पा लिया। सब पाने का पा लिया। धनों का धन पा लिया।

जो तेरे हुस्न के फकीर हुए
उनको तशवीशे-रोजगार कहां
दर्द बेचेंगे, गीत गाएंगे
इससे खुशवक्त कारोबार कहां

अब तो तुझे ही बांटेंगे। अब तो तेरे ही गीत गाएंगे। तेरे विरह की पीड़ा बांटेंगे। तेरे मिलन के गीत गाएंगे।

जाम छलका तो जम गई महफिल
मिन्नते-लुत्फे-गमगुसार किसे?
अश्क टपका तो खिल गया गुलशन
रंजे-कमजर्फी-ए-बहार किसे?
जाम छलका तो जम गई महफिल

और जहां कभी ऐसा एक भी व्यक्ति हो जिसने भीतर का उजियाला देखा हो, उसका जाम छलकने लगता है, बहने लगता है ऊपर से। इतनी शराब उसके भीतर होती है कि बहने लगती है।

बुद्ध इसलिए नहीं बोले हैं कि तुम्हें समझाना था। वह तो गौण बात है। बोलना ही पड़ा।

जाम छलका तो जम गई महफिल

जीसस बोले हैं; इसलिए नहीं कि तुम्हें जगाना था। वह तो गौण बात है। वह तो परिणाम है। बोलना ही पड़ा। दीया जलेगा तो ज्योति बिखरेगी ही। इसलिए नहीं कि जो भटके हैं उन्हें राह मिल जाए। उन्हें राह मिल जाएगी, यह और बात। और फूल खिलेगा तो रंग, फूल खिलेगा तो गंध बिखरेगी। इसलिए नहीं कि तुम्हारे नासापुटों को सुवास मिल जाए। हां, जो पास से गुजरेंगे उनके नासापुट सुगंध से भर ही जाएंगे, वह गौण बात।

जाम छलका तो जम गई महफिल

इसलिए जहां भी कभी किसी ने भीतर का उजियाला देख लिया—बिन बाती बिन तेल जुगति सों बिन दीपक उजियार—उनका जाम छलकने लगता है। वहीं मधुशाला खुल जाती है।

जाम छलका तो जम गई महफिल
मिन्नते-लुत्फे-गमगुसार किसे?
अश्क टपका तो खिल गया गुलशन

उनका एक आंसू भी टपके तो बहार आ जाए। तो पूरी बगिया में फूल ही फूल हो जाएं। मीरा के आंसुओं की याद करो। कौन फूल मुकाबला करेगा उन आंसुओं का!

अश्क टपका तो खिल गया गुलशन
रंजे-कमजर्फी-ए-बहार किसे?
खुशनशीं हैं कि चश्मो-दिल की मुराद
दैर में हैं न खानकाह में हैं
हम कहां किस्मत आजमाने जाएं
हर सनम अपनी बारगाह में हैं

और यह बड़ी खुशी की बात है, यह सुसमाचार...। इसे खूब गांठ बांध कर हृदय में रख लेना।

खुशनशीं हैं कि चश्मो-दिल की मुराद
दैर में हैं न खानकाह में हैं

न तो वह मंदिर में है, न वह मस्जिद में है। यह खुशनसीब हो तुम। कहीं मंदिर में होता तो बहुत मुश्किल हो जाती। पंडित-पुरोहित तुम्हें वहां तक पहुंचने ही न देते।

मैंने सुना है कि एक नीग्रो एक रात एक चर्च के द्वार पर दस्तक दिया। लेकिन चर्च था सफेद चमड़ी वालों का। पादरी ने द्वार तो खोले, लेकिन पादरी डरा। यद्यपि यही पादरी रोज-रोज प्रवचन देता था कि सब परमात्मा के बेटे हैं, एक ही परमात्मा के बेटे हैं। और यही पादरी रोज-रोज समझाता था कि अपने पड़ोसी को वैसा ही प्रेम करो जैसा अपने को। और यही पादरी यह भी कहता था कि परमात्मा प्रेम है। लेकिन यह काला आदमी, यह नीग्रो रात चर्च के द्वार पर दस्तक देगा...पादरी थोड़ा डरा। वह चर्च तो सफेद चमड़ी वालों का था। उस नीग्रो ने कहा: मुझे भीतर आने दो। तुम्हारी बातें सुन-सुन कर मेरी हिम्मत बढ़ गई है। तुम कहते हो कि प्रेम परमात्मा है। तुम कहते हो कि पड़ोसी को प्रेम करो जैसा अपने को प्रेम करते हो। मैं भी पड़ोसी हूं तुम्हारा। और तुम कहते हो कि सभी उसकी संतान हैं। मैं भी उसकी संतान हूं। मुझे भीतर आने दो। मेरे हृदय में भी बड़ी पुकार उठी है और मैं उसकी प्रार्थना करना चाहता हूं।

पादरी एकदम न भी न कह सका, क्योंकि कैसे झुठलाए उन सारी बातों को जो उसने हमेशा कही हैं? और हां भी न कह सका, क्योंकि वे तो बातें ही थीं। वे तो करने के लिए अच्छी थीं। कुछ बातें होती हैं जो सिर्फ करने की होती हैं, कहने की होती हैं, बात के ही लिए होती हैं। जिंदगी उनसे बिलकुल भिन्न होती है। असलियत तो यह थी कि काला आदमी भीतर प्रवेश करे, यह उसकी हिम्मत न थी। उसने तरकीब निकाली।

पंडित-पुरोहित तो सदा से चालबाज रहे हैं, सदा से चालबाज और चतुर रहे हैं। चतुर थे इसीलिए तो पंडित-पुरोहित हो गए। चालबाज थे इसीलिए तो पंडित-पुरोहित हो गए। सदियों से उन्होंने शोषण किया है अपनी चालबाजी से।

उसे एक चालबाजी समझ में आई। उसने कहा कि जरूर-जरूर तुम आना, लेकिन पहले पवित्र हो लो। उपवास करो। प्रार्थना करो। सब पाप छोड़ो। कामवासना छोड़ो। क्रोध छोड़ो। लोभ छोड़ो। उसने इतनी लंबी फेहरिस्त दी, इसी आशा में कि न कभी यह नीग्रो ये बातें पूरी कर पाएगा और न यह झंझट खड़ी होगी इसके मंदिर में प्रवेश की। जैसे शूद्र को ब्राह्मण प्रवेश न करने दे मंदिर में, वैसी ही स्थिति अमरीका में नीग्रो के ऊपर है, नीग्रो शूद्र

हो गया है! उसका प्रवेश नहीं हो सकता चर्च में। पुरोहित खुश था। फेहरिस्त उसने इतनी लंबी दी थी कि बड़े-बड़े संत भी पूरी नहीं कर पाएं। और जब कर पाएगा पूरी तब देखेंगे।

चला गया नीग्रो। सीधा-सादा आदमी, मान ली उसने बात कि यह तो ठीक ही है, जब पवित्र हो जाऊं तभी तो प्रार्थना करूंगा। उस भोले आदमी को यह खयाल न आया कि सफेद आदमियों पर यह शर्त लागू नहीं होती। किन-किन सफेद लोगों से तुमने कहा है? किन-किन गोरों को तुमने कहा है कि पवित्र होकर आओ? मुझ अकेले पर यह शर्त लागू होती है! चला तो गया। सीधा-सादा आदमी, बात मान ली, लग गया अपने को पवित्र करने में।

तीन सप्ताह बाद पादरी चौंका। क्योंकि सुबह ही सुबह सूरज ऊग रहा था, द्वार खोल रहा था पादरी चर्च के, कि देखा कि वह नीग्रो आ रहा है। वह बहुत घबड़ाया कि अब यह फिर बात उठाएगा। और घबड़ाहट और भी बढ़ गई, क्योंकि उस नीग्रो के आसपास पवित्रता का एक ऐसा आभामंडल था जैसा कि इस पादरी ने कभी नहीं देखा था। इसने तो आभामंडल देखे थे केवल संतों की तस्वीर में। उस नीग्रो के चारों तरफ आभामंडल था। एक अपूर्व अंतर्ज्योति से दैदीप्यमान वह नीग्रो चला आता था। उसे किस मुंह से इनकार करेगा? अब तो बड़ी मुश्किल हुई जाती है।

लेकिन वह नीग्रो आया, द्वार के बाहर ही खड़ा हुआ, हंसा और वापस लौट गया। पादरी तो और भी चौंका कि बात क्या हुई? भागा, उस नीग्रो को पकड़ा, कहा कि क्या बात है? हंसे क्यों? लौट क्यों चले? पूछा क्यों नहीं मंदिर में आने के लिए?

उस नीग्रो ने कहा: कल रात परमात्मा प्रकट हुआ। तीन सप्ताह से उपवास करता था, प्रार्थना करता था, पूजा करता था...बस उसकी ही याद में लगा दिए थे तीन सप्ताह...तुमने जो कहा था। कल रात परमात्मा प्रकट हुआ और कहने लगा: पागल, तू उस चर्च में जाने की फिक्र छोड़। मैंने पूछा: क्यों? तो परमात्मा ने कहा: अब तू नहीं मानता तो तुझे बताए देता हूं। उस चर्च में जाने की तो मैं भी कई सदियों से कोशिश कर रहा हूं, वे मुझे भी भीतर नहीं घुसने देते, वे तुझे क्या भीतर घुसने देंगे!

मंदिर खाली पड़े हैं। मस्जिदें खाली हैं। चर्च खाली हैं। गुरुद्वारे खाली हैं। सिनागॉग खाली हैं। सदियां हो गईं, परमात्मा को भी वहां प्रवेश नहीं है। लेकिन यह अच्छा ही है।

खुशनशीं हैं कि चश्मो-दिल की मुराद

कि हमारे अंतरतम की आकांक्षा और हमारी आंखों की आकांक्षा; उसके दर्शन की इच्छा और दिल को उसके दिल में डुबा देने की इच्छा...

खुशनशीं हैं कि चश्मो-दिल की मुराद
दैर में हैं न खानकाह में हैं

अच्छा ही है कि वह हमारी आंखों का प्यारा, आंखों का तारा और हमारे दिल की प्यास न तो मंदिरों में है, न मस्जिदों में है।

हम कहां किस्मत आजमाने जाएं

अब कहीं और भाग्य को आजमाने की जरूरत नहीं है।

हर सनम अपनी बारगाह में हैं

अपने भीतर, अपनी बांहों में है!

बिन बातीं बिन तेल जुगति सों बिन दीपक उजियार।

प्रानपिया मेरे गृह आयो, रचि-रचि सेज संवार।

ऐसी तुम्हें जरा सी स्मृति आ जाए तो बस प्राणपिया आ गया।

प्रानपिया मेरे गृह आयो, रचि-रचि सेज संवार।

अब संवारो सेज को। तैयारी करो। इस देह को उसके योग्य बनाओ। इस मन को उसके योग्य बनाओ। उसने द्वार पर दस्तक दे दी। जैसे ही स्मरण आया कि वह मेरे भीतर है, मेरी बांहों में है, मेरे पास है, मुझसे भी ज्यादा पास है, मैं भी इतने पास नहीं जितना वह मेरे पास है—जैसे ही यह सवाल, जैसे ही यह समझ तुम्हारे भीतर तरंग लेने लगे, अब तैयारी करो! अब सजाओ—सेज को सजाओ।

प्रानपिया मेरे गृह आयो, रचि-रचि सेज संवार।

सुखमन सेज परमतत रहिया, पिया निर्गुन निरकार।

कैसे सजाओगे सेज? समाधि उसकी सेज है। तुम्हारे भीतर से सारी समस्याएं गिर जाएं और समाधान का उदय हो जाए तो फूलों से सज गई सेज! समाधि उसकी सेज है। और समाधि तक पहुंचने का रास्ता—संतुलन।

सुखमन सेज परमतत रहिया...

योग की भाषा में तीन नाड़ियां हैं—इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना। इड़ा एक तरफ, पिंगला दूसरी तरफ—अतियां। मध्य में है सुषुम्ना। सब अतियों को छोड़ दो और मध्य में आ जाओ। जिसको बुद्ध ने कहा है मज्झिम निकाय। बीच में आ जाओ। पाइथागोरस ने जिसको कहा है स्वर्ण-नियम। मध्य में आ जाओ। न बाएं झुको, न दाएं झुको। न त्याग, न भोग—मध्य में आ जाओ। न बहुत खाओ, न उपवास करो—मध्य में आ जाओ। न संसार में आसक्ति रखो, न विरक्ति रखो—मध्य में आ जाओ। न तो संसार में ही डूब रहो और न संसार से भगोड़े हो जाओ—मध्य में आ जाओ। संसार में ऐसे रहो, नहीं के जैसे, जल में कमलवत। बस सज गई सेज। संतुलन बना तुम्हारे भीतर कि सेज सज गई।

खयाल रखना, भोगी तो चूकता ही चूकता है, त्यागी भी चूक जाता है। भोगी चूक जाता है, क्योंकि धन, पद, प्रतिष्ठा को पागल की तरह पकड़ता है। त्यागी चूक जाता है, क्योंकि वह धन, पद, प्रतिष्ठा को पागल की तरह छोड़ता है। पकड़ोगे, जोर से पकड़ोगे, वह भी गलत है। छोड़ने का आग्रह करोगे, वह भी गलत है। न तो यहां कुछ पकड़ने योग्य है, न कुछ छोड़ने योग्य है। देख लो, सार देख लो और संतुलित हो जाओ। महावीर ने इसे सम्यकत्व कहा है। मध्य में आ जाओ। समतुल हो जाओ।

प्रानपिया मेरे गृह आयो, रचि-रचि सेज संवार।

सुखमन सेज परमतत रहिया...

एक बार तुम संतुलित हो जाओ तो जो परमतत्व है, बस प्रकट हो जाए। जो है, वह प्रकट हो जाए।

...पिया निर्गुन निरकार।

न तो उस प्यारे का कोई गुण है, न उस प्यारे का कोई आकार है। और अगर तुम्हें उस प्यारे से मिलना है तो तुम भी निर्गुण हो जाओ और तुम भी निराकार हो जाओ।

देह का आकार है। देह के भीतर जाओ। मन का भी आकार है, उतना ठोस नहीं जितना देह का। देह का आकार ऐसे है जैसे चट्टान का आकार। मन का आकार ऐसे है जैसे जल की धार का आकार—बदलता, भागता, परिवर्तनशील। पर आकार तो है। देह से चलो भीतर और मन से भी चलो भीतर, तो तुम पाओगे—शून्य आकाश, निराकार। न वहां चट्टान जैसा आकार है थिर और न वहां मन जैसा आकार है चंचल। वहां आकार नहीं है। जैसे बादलरहित आकाश! उस अवस्था में ही तुम परमात्मा से मिल सकते हो। उस अवस्था में ही विरह मिलन में रूपांतरित होगा।

गावहु री मिलि आनंदमंगल, यारी मिलि के यार।

फिर हो जाएगा प्रियतम से मिलन। फिर तो बचेगी एक ही बात—गावहु री मिलि आनंदमंगल! इसीलिए तो संतों ने खूब गाया, खूब जी भर गाया। सारे संतों ने गाया! जिससे जैसे बना वैसे गाया। वे कोई गायक नहीं हैं, न कोई कवि हैं, न कोई संगीतज्ञ हैं। मगर जिससे जैसा बना, गाया। जिससे जैसा बना, नाचे। जिससे जो भी वाद्य बज सका, बजाया। उसमें तुम कला मत खोजना। कला गौण है। उसमें तो तुम आत्मा खोजना, भाव खोजना।

जुनूं की याद मनाओ कि जश्न का दिन है
सलीब-ओ-दार सजाओ कि जश्न का दिन है
तरब की बज्म है, बदलो दिलों के पैराहन
जिगर के चाक सिलाओ कि जश्न का दिन है
तुनुक-मिजाज है साकी, न रंगे-मय देखो
भरे जो शीशा, चढ़ाओ कि जश्न का दिन है
तमीजे-रहबर-ओ-रहजन करो न आज के दिन
हर इक से हाथ मिलाओ कि जश्न का दिन है
है इंतजारे-मलामत में नासेहों का हुजूम
नजर सम्हाल के जाओ कि जश्न का दिन है
बहुत अजीज हो लेकिन शिकस्तादिल यारो
तुम आज याद न आओ कि जश्न का दिन है
वह शोरिशे-गमे-दिल जिसकी लय नहीं कोई
गजल की धुन में सुनाओ कि जश्न का दिन है

गाओ! उठने दो गजलें! पीओ! नाचो!

तुनुक-मिजाज है साकी, न रंगे-मय देखो
भरे जो शीशा, चढ़ाओ कि जश्न का दिन है

और वह जो ढाल दे तुम्हारी प्याली में, पी जाओ। और आज विधि-विधान न समझो। आज सब विधि-विधान तोड़ो और नाचो! ऐसे ही संत नाचे—मीरा और चैतन्य! ऐसे ही संत गाए—कबीर और नानक!

जुनूं की याद मनाओ कि जश्न का दिन है

ऐसे ही पागल हुए, मदमस्त हुए। इसी मदमस्ती से अदभुत वचनों का जन्म हुआ है।

गावहु री मिलि आनंदमंगल, यारी मिलि के यार।

सब बदल जाता है उसको मिलते ही। ऐसे कुछ भी नहीं बदलता और फिर भी सब बदल जाता है। यही होंगे वृक्ष, मगर यही नहीं होंगे। इनकी हरियाली में तुम उसकी हरियाली पाओगे। इनके फूलों में तुम उसकी खिलावट देखोगे। यही होंगे चांद-तारे, मगर यही नहीं होंगे। इनसे उसकी रोशनी को झरते पाओगे। यही होंगी गंगा और जमन, मगर यही नहीं होंगी। ये आकाश से उतरने लगेंगी। ये आकाशीय हो जाएंगी। यही होंगे लोग, मगर यही नहीं होंगे। क्योंकि इनके भीतर जो छिपा है, उसका तुम्हें दर्शन होने लगेगा। अभी तो तुमने देहें देखी हैं, बाहर-बाहर से देखी हैं। अभी भीतर का तो अनुभव नहीं हुआ है। उतना ही तुम दूसरों में भीतर देख सकते हो जितना अपने भीतर देख लेते हो।

तुम न आए थे तो हर चीज वही थी कि जो है,
आसमां हद्दे-नजर, राहगुजर राहगुजर, शीशा-ए-मय शीशा-ए-मय
और अब शीशा-ए-मय, राहगुजर, रंगे-फलक
रंग है दिल का मेरे 'खूने-जिगर होने तक'
चंपई रंग कभी, राहते-दीदार का रंग
सुर्मई रंग कि है साअते-बेजार का रंग
जर्द पत्तों का, खस-ओ-खार का रंग
सुर्ख फूलों का, दहकते हुए गुलजार का रंग,
जहर का रंग, लहू का रंग, शबे-तार का रंग,
आसमां, राहगुजर, शीशा-ए-मय
कोई भीगा हुआ दामन, कोई दुखती हुई रग
कोई हर लहजा बदलता हुआ आईना है
अब जो आए हो तो ठहरो कि कोई रंग, कोई रुत,
कोई शै एक जगह पर ठहरे
फिर से इक बार हर इक चीज वही हो कि जो है
आसमां हद्दे-नजर, राहगुजर राहगुजर, शीशा-ए-मय शीशा-ए-मय

झेन फकीर कहते हैं: साधक तीन अवस्थाओं से गुजरता है। पहली—जब पहाड़ पहाड़ हैं और नदियां नदियां हैं। दूसरी—जब पहाड़ पहाड़ नहीं रह जाते, नदियां नदियां नहीं रह जातीं। और तीसरी—जब पहाड़ फिर पहाड़ हो जाते हैं और नदियां फिर नदियां हो जाती हैं।

प्यारा वचन है यह। पहले पहाड़ पहाड़ हैं—जैसे तुमने देखे हैं, धूल भरी आंखों से; उदास, सुस्त, अंधेरे भरे हृदय से। देखे और नहीं देखे। देखने की फुर्सत कहां थी? भीतर विचारों का इतना हुजूम था, इतनी भीड़ थी! अपने में ही इतने उलझे और खोए थे कि कहां खोलते आंख? कि कैसे देखते पहाड़ और कैसे देखते नदियों को?

फिर चित्त शांत होता है। विचार शून्य होने लगते हैं। ध्यान की दशा आती है। और

अचानक पहली दफा भीतर का जंजाल समाप्त हो जाता है, शोरगुल बंद हो जाता है—और जगत की रौनक बदल जाती है।

इसलिए झेन फकीर कहते हैं: पहले पहाड़ पहाड़ थे, नदियां नदियां थीं। फिर ऐसी घड़ी आई कि पहाड़ पहाड़ न रहे, नदियां नदियां न रहीं। सब बदल गया। वह ध्यान की अवस्था है। सब नया हो गया। सब ऐसा हो गया जैसा कभी न था। और फिर समाधि की अवस्था। फिर सब ठहर गया। फिर वापस सब वही हो गया जैसा था। लेकिन अब तुम वही नहीं हो। और जब तुम वही नहीं हो तो संसार भी वही नहीं है।

नरक है तो यहां। स्वर्ग है तो यहां। मोक्ष है तो यहां। सब तुम्हारी चित्त की दशाएं हैं।

तुम न आए थे तो हर चीज वही थी कि जो है,
आसमां हद्दे-नजर, राहगुजर राहगुजर, शीशा-ए-मय शीशा-ए-मय
और अब शीशा-ए-मय, राहगुजर, रंगे-फलक
रंग है दिल का मेरे 'खूने-जिगर होने तक'
चंपई रंग कभी, राहते-दीदार का रंग
सुर्मई रंग कि है साअते-बेजार का रंग
जर्द पत्तों का, खस-ओ-खार का रंग
सुर्ख फूलों का, दहकते हुए गुलजार का रंग,
जहर का रंग, लहू का रंग, शबे-तार का रंग,
आसमां, राहगुजर, शीशा-ए-मय
कोई भीगा हुआ दामन, कोई दुखती हुई रग
कोई हर लहजा बदलता हुआ आईना है
अब जो आए हो तो ठहरो कि कोई रंग, कोई रुत,
कोई शै एक जगह पर ठहरे
फिर से इक बार हर इक चीज वही हो कि जो है
आसमां हद्दे-नजर, राहगुजर राहगुजर, शीशा-ए-मय शीशा-ए-मय

प्यारा आ जाए एक बार तो जरूरी नहीं है कि रुके। बहुत बार झलकें आएंगी और झलकें जाएंगी। उस अवस्था का नाम ध्यान है, जब झलक आती है, झलक जाती है। और जब प्यारा ठहर जाता है, उस अवस्था का नाम समाधि है। फिर कोई जाना नहीं, फिर कोई आना नहीं।

रसना राम कहत तें थाको।

कब से राम-राम जप रहे हो, थक नहीं गए हो? यारी कहते हैं कि मैं तो बहुत थक गया राम-राम जपते-जपते।

रसना राम कहत तें थाको।

मैं तो खूब जपा, खूब थक गया! असल में राम-राम दोहराने से सिवाय थकान के कुछ और मिलता भी नहीं। राम-राम जपने से थक जाते हो, उसी थकने को तुम विश्राम समझ लेते हो!

थकान और विश्राम में बड़ा भेद है। थकान नकारात्मक अवस्था है। विश्राम विधायक अवस्था है। थकान है टूट कर गिर पड़ना। विश्राम है मौज से लेट जाना। और थकान को अनेक लोग विश्राम समझ लेते हैं, क्योंकि विश्राम का उन्हें पता नहीं है। इसलिए अनेक लोगों को यह खयाल है, मंत्र-जाप से बड़ा विश्राम मिलता है। मंत्र-जाप से विश्राम नहीं मिलता। मंत्र-जाप से तुम थक जाते हो, मन थक जाता है। थकान से निद्रा आ जाती है।

इसलिए मंत्र, जिनको नींद नहीं आती, उनके लिए बड़ा सम्यक उपाय है। और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि महर्षि महेश योगी जैसे लोग, जो सिर्फ मंत्र सिखाते हैं, अमरीका जैसे देश में काफी अनुयायी खोज लेते हैं। क्योंकि अमरीका नींद की बीमारी से परेशान है, नींद आती नहीं। अनिद्रा अमरीका के लिए बड़े से बड़ा सवाल है। इसलिए किसी भी तरह नींद आ जाए। और ठीक ही है कि नींद की दवा लेने की बजाय तो राम-राम जप कर नींद ले आना ठीक है। मैं भी पक्ष में हूं। मगर खयाल रहे, यह कोई ध्यान नहीं है।

यह तो ऐसे ही है जैसे कि बेटा नहीं सोता, छोटा बच्चा नहीं सोता और मां लोरी गाती है। लोरी में ज्यादा शब्द नहीं होते, मंत्र जैसी होती है लोरी। वही-वही सब दोहराना पड़ता है—राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा। राजा बेटा सुनते-सुनते घबड़ा जाता है। सुनते-सुनते थक जाता है कि यह भी क्या लगा रखा है—राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा! एक ही लय, एक ही धुन! उदासी आती है, थकान आती है, ऊब आती है। और राजा बेटा भाग भी नहीं सकता। भाग कर जाए भी कहां? एक ही भागने का उपाय बचता है कि नींद में भाग जाए। तो चुपचाप नींद में सरक जाता है। बचने के लिए यही एक उपाय है कि नींद में सरक जाए।

इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि धार्मिक सभाओं में लोग सोते हैं, क्योंकि वही कहानी है जो बहुत बार सुनी है। वही राम-कथा, वही सीता का चोरी जाना, वही रावण। कितनी बार तो सुन लिया और कितनी बार तो देख लिया! नींद न आ जाए तो क्या हो! कई डाक्टर तो अपने मरीजों को, जो सो नहीं सकते, धर्मसभाओं में भेजते हैं कि वहां बैठना। और कोई दवा काम करे या न करे, लेकिन धर्मसभा में नींद निश्चित आ जाती है।

मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था। दर्शनशास्त्र में एक प्रोफेसर थे, जिनको मानना पड़ेगा कि वे इस ढंग से बोलते थे कि जो रात भर भी ठीक से सोया हो, उसे भी नींद आ जाए! तो जब भी कोई विद्यार्थी, कोई संगी-साथी नींद से परेशान होता, मैं कह देता कि तुम उनकी क्लास में चले जाओ। और यह बात रामबाण की तरह काम करती। धीरे-धीरे तो यह खबर पहुंच गई, और लोगों को भी खबर लग गई। और वे बड़े प्रभावित होते थे, क्योंकि उनकी कक्षा में भीड़ काफी लोगों की होती। परीक्षा के दिनों में तो बहुत लोग जाते; क्योंकि परीक्षा के दिनों में विद्यार्थियों को घबड़ाहट में नींद नहीं आती। मगर उनकी वाणी सुनते ही... संस्कृत के पंडित थे और संस्कृत के बड़े उल्लेख देते थे। और एक स्वर में बोलते थे। जैसे इकतारा बजता है, ऐसे बजते थे! किसी को भी नींद आ जाती थी।

यारी कहते हैं: **रसना राम कहत तें थाको।**

मैं थक गया राम-राम रटते-रटते, जीभ थक गई मेरी, तब कहीं मुझे समझ आई कि यह बाहर-बाहर राम को दोहराना किसी काम का नहीं!

पानी कहे कहुं प्यास बुझत है...

पानी को रटने से, पानी-पानी कहने से प्यास नहीं बुझती। यह मैं क्या पागलपन करता रहा कि राम-राम रटता रहा!

...प्यास बुझे जदि चाखो।

प्यास बुझती है अगर पानी को पीओ तो। बैठ कर जपते रहो एच टू ओ, एच टू ओ, एच टू ओ—पानी का मूल सूत्र; शायद नींद आ जाए, मगर प्यास तो न बुझे। और प्यास न बुझे तो नींद भी कितनी देर रहेगी? जल्दी ही टूटेगी; प्यास नींद को तोड़ देगी।

रसना राम कहत तें थाको।

पानी कहे कहुं प्यास बुझत है, प्यास बुझे जदि चाखो।

पुरुष-नाम नारी ज्यों जानै, जानि बूझि जनि भाखो।

इस देश में तो प्रचलन रहा है कि पत्नी पति का नाम नहीं लेती—समादर में। यद्यपि यह अधूरा नियम था। अगर पतियों ने भी पाला होता तो यह नियम बड़ा महत्वपूर्ण होता। अगर पत्नियों का नाम भी पतियों ने प्रेम में और आदर में न लिया होता तो बड़ी सम्मानजनक यह बात होती। मगर एक सम्मानजनक बात भी अधूरी हो तो अपमानजनक हो जाती है। पत्नियों को तो पतियों ने सिखा दिया कि पति परमात्मा है। पतियों ने ही शास्त्र लिखे, या पुरुषों ने। लेकिन किसी एक ने भी यह न कहा कि पत्नी भी परमात्मा है! स्त्री तो नरक का द्वार और पति परमात्मा है! इस तरह की मूढ़तापूर्ण बातें शास्त्रों में भरी पड़ी हैं। और इस तरह के अहंकार से भरे हुए वक्तव्य इधर से उधर तक शास्त्रों में छाए हुए हैं। स्त्री नरक का द्वार! और स्त्री से ही सब पैदा हुए हो! और बड़े से बड़े संत तुम्हारे, फिर चाहे वे तुलसीदास ही क्यों न हों, स्त्री से ही पैदा हुए हैं। लेकिन स्त्री की गिनती करते हैं—ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी! इनको तो पीटो, मारो; यही इनका अधिकार है। यही इनका हक है। यही इनको मिलना चाहिए। और स्त्री नरक का द्वार है, और पुरुष पति है—और पति परमात्मा है! पति यानी स्वामी। और स्त्री दासी है!

मगर बात में मूल्य तो था, खराब हाथों में पड़ कर खराब हो गई। और कभी-कभी तो अमृत भी गलत हाथों में पड़ जाए तो जहर हो जाता है। बात का मूल्य तो था। स्त्री पति का नाम नहीं लेती, यद्यपि जानती है; भीतर-भीतर जानती है, बाहर-बाहर नहीं लेती, आदरवश नहीं लेती। इस बात का यारी ने खूब ठीक उपयोग किया।

यारी कहते हैं: मुझे भी पता है उसका नाम, लेकिन ले नहीं सकता; आदर के कारण नहीं लेता हूं अब। भीतर-भीतर रखता हूं, भीतर-भीतर सम्हालता हूं।

पुरुष-नाम नारी ज्यों जानै, जानि बूझि जनि भाखो।

उसे कहना थोड़े ही है, उसे तो भीतर सम्हालना है। जैसे बीज भूमि के अंतरगर्भ में समा जाता है, ऐसे ही राम, ऐसे ही अल्लाह, ऐसे ही उसकी याद तुम्हारे अंतरतम में समा जानी चाहिए, तुम्हारे हृदय में प्रविष्ट हो जानी चाहिए। बाहर बकवास करने से क्या होगा?

दृष्टी से मुष्टी नहिं आवै, नाम निरंजन वाको।

और तुम सोचते हो कि बहुत-बहुत तरह के दर्शनशास्त्र सीख लोगे तो उसे मुट्ठी में ले लोगे, तो गलती में हो।

दृष्टी से मुष्टी नहिं आवै...

असल में दृष्टि तो बाधा है। सब दर्शनशास्त्र दृष्टियां हैं और दृष्टि बाधा है। आंख होनी चाहिए—दृष्टि से मुक्त, पक्षपात से मुक्त। दृष्टि यानी पक्षपात। हिंदू की दृष्टि, मुसलमान की दृष्टि, जैन की दृष्टि—ये सब दृष्टियां हैं, नय, देखने के ढंग। तुमने पहले ही तय कर लिया कि इस ढंग से देखेंगे परमात्मा को। तुमने पहले ही पक्षपात बना लिए। अब परमात्मा को तुम अपनी दृष्टि की चौखट से देखोगे, कभी न पकड़ पाओगे। क्योंकि वह किसी चौखट में नहीं आता। वह निराकार है; तुम्हारी दृष्टि का आकार है। वह निःशब्द है; तुम्हारी दृष्टि शब्दों से बनी है। वह अज्ञेय है; तुम्हारी दृष्टि ज्ञान का हिस्सा है। और सब ज्ञान उधार है, सब बासा है; दूसरों से सीख लिया है।

दृष्टी से मुष्टी नहिं आवै...

इसलिए जिसका भी कोई पक्षपात है, जो कहता है कि ऐसा हो परमात्मा, ऐसा ही है परमात्मा—कि उसके चार हाथ हैं, कि तीन सिर हैं, कि सूंड है उसकी हाथी जैसी—जिसने कोई दृष्टि बना ली है, वह तो चूक जाएगा।

कहते हैं, तुलसीदास को जब कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया तो वे झुके नहीं। क्योंकि उन्होंने कहा कि जब तक धनुष-बाण हाथ नहीं लोगे, मैं नहीं झुक सकता। उन्होंने एक दृष्टि बना ली है कि परमात्मा को धनुष-बाण लिए ही होना चाहिए। अब धनुष-बाण कोई बड़ा सुंदर प्रतीक भी नहीं है; हिंसा का प्रतीक है, हत्या का प्रतीक है। धनुष-बाण सुसंस्कृत भी नहीं है। लेकिन बस तुलसीदास को एक दृष्टि बंध गई कि धनुष-बाण वाले राम को ही झुकूंगा। मुरली वाले कृष्ण के सामने न झुक सके। मुरली कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण प्रतीक है। मुरली कहीं अधिक बहुमूल्य है—संगीत का, स्वर का, गीत का, उत्सव का प्रतीक है! धनुष-बाण तो युद्ध का प्रतीक है, हिंसा का, वैमनस्य का, संघर्ष का। धनुष-बाण तो राजनीति का प्रतीक है, युद्ध का प्रतीक है। बांसुरी तो प्रेम का प्रतीक है। लेकिन बांसुरी हाथ में लिए कृष्ण के सामने तुलसीदास नहीं झुके, ऐसा नाभादास ने अपने संस्मरणों में लिखा है। कहा कि नहीं, जब तक धनुष-बाण हाथ न लोगे, तब तक नहीं झुकूंगा।

तो तुलसीदास जैसे पंडित, विचारशील व्यक्ति की ऐसी हालत है तो साधारण आदमी की तो क्या कहो! उसने भी धारणा बना ली है। जैन हिंदू मंदिर में नहीं झुकता।

एक जैन मित्र को लेकर मैं एक हिंदू मंदिर में गया था। वे तो नहीं झुके। मैंने पूछा: बात? झुकने का तो अपना मजा है। किसके सामने झुके, यह तो बहाना है। झुकने का अपना आनंद है। झुके क्यों नहीं?

उन्होंने कहा: कैसे झुकता? मैं तो सिर्फ वीतराग प्रभु के सामने झुकता हूं। यहां तो रामचंद्र जी सीता जी के साथ खड़े हैं, वीतराग नहीं हैं। मैं तो वीतराग प्रभु...यह तो राग है। ये तो आभूषण पहने खड़े हैं। मुकुट बांधा हुआ है। मैं नहीं झुकूंगा! मैं तो वीतराग दिगंबर प्रभु के सामने झुकता हूं, अरिहंत के सामने झुकता हूं, निर्ग्रंथ के सामने झुकता हूं!

बात ही चूक गए! झुकने से मिलता है प्रभु। और जब तुमने कहा इसके सामने झुकूंगा, तो तुमने अपने आग्रह को झुकने से भी महत्वपूर्ण बना लिया। बस चूक गए। जहां आग्रह है वहां चूक है। सत्य का कोई आग्रह नहीं होता।

इसलिए मैं कहता हूं: महात्मा गांधी ने सत्याग्रह शब्द बड़ा गलत शब्द निर्माण किया। सत्य का कोई आग्रह नहीं होता। सब आग्रह असत्य के होते हैं। आग्रह मात्र असत्य का होता है, सत्य तो निराग्रही होता है। सत्य की कोई न दृष्टि होती है, न पक्षपात होता है।

दृष्टी से मुष्टी नहिं आवै, नाम निरंजन वाको।

वह तो निरंजन है। वह तो निराकार है। वह तो समष्टि में व्याप्त है। उसका न रूप है, न रंग है। तुम दृष्टि बना कर मत चलो। तुम किसी सिद्धांत को लेकर उसे खोजने मत निकलो। जो सिद्धांत लेकर खोजने निकला है, उसे सत्य कभी न मिलेगा; उसका सिद्धांत ही बाधा बनेगा। तुम तो खाली मन, शून्य भाव से, कोरी आंखें लेकर चलो। बस कोरी आंखों से ही प्रभु का मिलन होता है। कोरी आंखों में ही आता है वह। कोरे, निर्मल, निर्दोष हृदय में ही प्रवेश करता है वह।

गुरु परताप साध की संगति, उलट दृष्टि जब ताको।

दो बातें बहुमूल्य हैं—गुरु परताप, साध की संगति। गुरु का सत्संग, गुरु का आशीष, गुरु का प्रसाद, गुरु की महिमा...। किसे गुरु कहें? जिसने पा लिया। जो फूल खिल गया। खिले फूल के साथ कली रह जाए तो कितनी देर कली रहेगी? देर-अबेर याद आ ही जाएगी कि मैं भी खिल सकती हूं। देर-अबेर स्मरण बैठ ही जाएगा। उत्साह जग ही आएगा। उमंग पैदा हो जाएगी। यात्रा शुरू हो जाएगी।

तुमने देखा, मृदंग पर थाप पड़ी और तुम्हारे पैर भी थाप देने लगते हैं! क्या हो गया तुम्हें? मृदंग की थाप तुम्हारे भीतर भी किसी सोए हुए संगीत को जगाने लगी। कोई वीणा बजी और तुम्हारा सिर डोलने लगा। क्या हुआ तुम्हें? वीणा ने तुम्हारे भीतर पड़ी वीणा को भी छेड़ दिया। ऐसी ही घटना घटती है गुरु के सत्संग में। मगर उसकी वीणा बजनी चाहिए। उसकी मृदंग पर थाप पड़नी चाहिए। गुरु वह है जो जाग गया है। गुरु वह है जो पहुंच गया घर। अब उसकी वीणा बज रही है। अब उसके मृदंग पर थाप पड़ रही है। नृत्य शुरू हो गया है। उसके नाचते हुए पैरों को तुमने देख लिया है। तुम्हारे पैर भी फड़क उठेंगे। तुम्हारे भीतर भी सोई हुई ऊर्जा अंगड़ाई लेगी, करवट लेगी। तुम्हारे भीतर भी कुछ होना शुरू हो जाएगा। तुम अपने को अचानक पाओगे कि जैसे एक धारा में पड़ गए, एक प्रवाह में पड़ गए—जो ले चला तुम्हें सागर की तरफ।

गुरु परताप साध की संगति...

तो ऐसे के साथ होना जिसने पा लिया। और ऐसों के साथ होना जो पाने की राह पर चल पड़े हैं—साध की संगति।

बुद्ध ने तीन शरण कहे हैं: बुद्धं शरणं गच्छामि। उसकी शरण जाओ जो जाग गया। संघं शरणं गच्छामि। उनकी शरण जाओ जो जागने की यात्रा पर चल पड़े हैं, साध-संगति। धम्मं शरणं गच्छामि। और तब तीसरी शरण संभव होगी कि तुम धर्म की शरण जा सकोगे। पहले उसको पकड़ो जो जाग गया है। फिर उनके साथ हो लो जो जागने की यात्रा में संलग्न हैं। उनकी रौ में बह जाओ।

ध्यान रखना, अकेले-अकेले यात्रा कठिन है। अकेले-अकेले भटकने की बहुत संभावना है। जब लोग किसी दुर्गम यात्रा पर निकलते हैं तो संग-साथ में निकलते हैं, दस-पांच मित्र

साथ होकर निकलते हैं। क्योंकि बहुत डर है। जंगली जानवर हैं। अंधेरी रातें हैं। लुटेरे हैं। हत्यारे हैं। और फिर रात कहीं रुकना होगा अंधेरे में; अकेला आदमी होगा तो मुश्किल में पड़ जाएगा। दस आदमी होंगे तो नौ सोएंगे, एक जाग कर पहरा देगा। और जब उसे नींद आने लगेगी, दूसरे को जगा देगा। और जब उसे नींद आने लगेगी, तीसरे को जगा देगा। पहरा जारी रहेगा। सुरक्षा बनी रहेगी।

इसलिए समस्त जाग्रत बुद्धों ने संघ का निर्माण किया है। यही मेरे संन्यास का अर्थ है। मेरा साथ तो तुम्हें मिले ही, लेकिन साध-संग भी मिले। संन्यासियों का रंग भी मिले। और जहां बड़ी उत्तुंग लहर चल रही हो, जहां बहुतों ने अपनी बूंदों को मिला कर एक उत्तुंग लहर बनाई हो, अगर तुम उस पर चढ़ जाओ तो यात्रा बहुत आसान हो जाएगी।

ऐसा ही समझो न, नदी में छोड़ते हैं नाव को और अगर हवा जा रही हो तो पाल खोल देते हैं। बस, फिर पतवार नहीं चलानी पड़ती, हवाएं भर जाती हैं पाल में और नाव बहने लगती है। और कुशल नाविक ठीक-ठीक हवा के क्षण में अपनी नाव के पाल को खोल लेता है। जब हजारों लोग सत्य की खोज में संलग्न होते हैं तो हवाएं बहती हैं परमात्मा की तरफ। समझदार आदमी अपनी नाव का पाल उनके साथ खोल लेता है।

चश्मे-मयगूं जरा इधर कर दे
दस्ते-कुदरत को बेअसर कर दे
तेज हूँ आज दर्दे-दिल साकी
तल्खी-ए-मय को तेजतर कर दे
जोशे-वहशत हूँ तिश्नाकाम अभी
चाके-दामन को ता-जिगर कर दे
मेरी किस्मत से खेलने वाले
मुझको किस्मत से बेखबर कर दे
लुट रही हूँ मेरी मताए-नियाज
काश वह इस तरफ नजर कर दे
'फैज' तकमीले-आरजू मालूम
हो सके तो यूं ही बसर कर दे

चश्मे-मयगूं जरा इधर कर दे

मद भरी आंख जरा इधर कर दे।

दस्ते-कुदरत को बेअसर कर दे

और प्रकृति का जो मेरे ऊपर प्रभाव है, उसे बेअसर कर दे।

सदगुरु की आंख हो जाए तुम्हारी तरफ...

चश्मे-मयगूं जरा इधर कर दे

उसकी आंख में मद भरा है परमात्मा का। उसकी आंख में शराब ढल रही है परमात्मा की। सदगुरु की आंख तुम्हारी तरफ हो जाए तो बड़ी आसान है बात, कि वह जो प्रकृति की

तुम्हारे ऊपर बड़ी जकड़ है, वह तत्क्षण ढीली हो जाए। जब बड़ी शराब उतरने लगे तो छोटी शराबें अपने आप रास्ते से हट जाती हैं।

तेज हैं आज दर्दे-दिल साकी
तल्खी-ए-मय को तेजतर कर दे

यही प्रार्थना है शिष्य की गुरु से कि और तेज, और तेज करता जा अपनी मस्ती को, और मेरी तरफ, और गहरे में मेरी अंतरात्मा में अपनी आंख को डालता जा।

जोशे-वहशत हैं तिश्नाकाम अभी
चाके-दामन को ता-जिगर कर दे
मेरी किस्मत से खेलने वाले
मुझको किस्मत से बेखबर कर दे
लुट रही हैं मेरी मताए-नियाज
काश वह इस तरफ नजर कर दे

बस एक ही प्रार्थना है, एक ही श्रद्धा है कि काश वह इस तरफ नजर कर दे!

'फैंज' तकमीले-आरजू मालूम

इतना ही मालूम हो जाए कि उसकी नजर किसी दिन मेरी तरफ होगी तो भी पर्याप्त है।

हो सके तो यूं ही बसर कर दे

तब तो फिर जिंदगी ऐसे भी बसर हो सकती है। इतना भरोसा हो जाए!

'फैंज' तकमीले-आरजू मालूम
हो सके तो यूं ही बसर कर दे

फिर तो शिष्य पड़ा रह जाता है गुरु के चरणों में इस राह में कि ठीक है, आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कभी तो उसकी नजर होगी। कभी तो उसकी मदमस्ती मुझमें भी उतरेगी। और उतरती है, और निश्चित उतरती है, क्योंकि जिसकी प्रतीक्षा है और जिसकी श्रद्धा है, वह खाली नहीं लौटता है।

गुरु परताप साध की संगति, उलट दृष्टि जब ताको।

दृष्टि को उलटा करना है। आंख को भीतर ले जाना है। कौन पलटाएगा तुम्हारी आंख भीतर? बाहर देखने की आदत जड़ हो गई है। जिसने अपनी आंख भीतर पलटा ली है, वही तुम्हें सूत्र दे सकता है। वही तुम्हें जुगति सिखा सकता है, युक्ति दे सकता है।

यारी कहै सुनो भाई संतो, बज्र बेधि कियो नाको।

कठिन मार्ग है। वज्र को बेध कर रास्ता बनाना है। संग-साथ चाहिए होगा। मशाल की तरह कोई राह दिखाए अंधेरे में। और संगी-साथी हों, ताकि अकेले में भय न पकड़ ले, घबड़ाहट न पकड़ ले, भीरुता न पकड़ ले। टूट जाती हैं वज्र जैसी कठिनाइयां भी।

चश्मे-नम, जाने-शोरीदा काफी नहीं
तोहमते-इश्क-पोशीदा काफी नहीं
आज बाजार में पा-ब-जौंला चलो
चश्मे-नम, जाने-शोरीदा काफी नहीं

उद्विग्न प्राण ही पर्याप्त नहीं हैं।

तोहमते-इश्क-पोशीदा काफी नहीं

इतना ही काफी नहीं है कि तुम, प्रेम नहीं मिल रहा है परमात्मा का मुझे, इसकी शिकायत करते रहो।

आज बाजार में पा-ब-जौंला चलो

पैर में जंजीरें हैं, कोई फिक्र नहीं, उठो और चलो। सिर्फ बैठे-बैठे प्यास की बात और परमात्मा का प्रेम नहीं मिल रहा है, इसकी शिकायत से काम नहीं होगा।

आज बाजार में पा-ब-जौंला चलो

जंजीर है पैर में सही, जंजीर बांधे ही चलो!

दस्त-अफ्सां चलो, मस्त-ओ-रक्सां चलो

मस्ती से चलो। रहने दो जंजीर, फिक्र न करो। जो भी चले हैं, पहले जंजीरों के साथ ही चले हैं। फिर वही जंजीरें एक दिन आभूषण हो गई हैं। जो भी चले हैं, अंधेरे में चले हैं। फिर वही अंधेरे एक दिन सुबह के आगमन के आधार बन गए हैं। रातें ही दिन बन गई हैं!

दस्त-अफ्सां चलो, मस्त-ओ-रक्सां चलो
खाक-बर-सर चलो, खूं-ब-दामां चलो
राह तकता है सब शहरे-जानां चलो
हाकिमे-शहर भी, मजमाए-आम भी
तीरे-इल्जाम भी, संगे-दुश्नाम भी
सुब्हे-नाशाद भी, रोजे-नाकाम भी
इनका दमसाज अपने सिवा कौन है
शहरे-जानां में अब बा-सफा कौन है
दस्ते-कातिल के शायां रहा कौन है

घबड़ाओ मत! यह भी मत सोचो कि मैं पापी और कैसे पहुंच पाऊंगा?

इनका दमसाज अपने सिवा कौन है

तुम्हारे जैसे ही लोग सदा रहे हैं। तुम्हारे ही जैसे लोग आज भी हैं।

इनका दमसाज अपने सिवा कौन है
शहरे-जानां में अब बा-सफा कौन है

अब इस दुनिया में पवित्र है कौन? इस दुनिया में कभी कोई पवित्र पैदा नहीं होता। पवित्रता तो इस दुनिया में ही अर्जित करनी होती है।

इनका दमसाज अपने सिवा कौन है
शहरे-जानां में अब बा-सफा कौन है
दस्ते-कातिल के शायां रहा कौन है

अब परमात्मा के चरणों में सिर को चढ़ा सके, उसकी खंजर से अपने सिर को कटा सके—दस्ते-कातिल के शायां रहा कौन है—अब इस योग्य कौन है?

मगर फिक्र न करो। तुम्हीं योग्य हो जाओगे।

रख्ते-दिल बांध लो, दिलफिगारो चलो
फिर हमीं कत्ल हो आएं यारो चलो

कोई फिक्र न करो। दिल का सामान, सफर का सामान बांध लो।

रख्ते-दिल बांध लो, दिलफिगारो चलो
फिर हमीं कत्ल हो आएं यारो चलो

अब नहीं हैं पवित्र लोग परमात्मा की राह पर मिट जाने को तो क्या करें, हम ही चलेंगे।

रख्ते-दिल बांध लो, दिलफिगारो चलो
फिर हमीं कत्ल हो आएं यारो चलो

जो मिटता है वही उसे पाता है। मिटना ही उसे पाने की कला है। बूंद जब सागर में मिट जाती है तो सागर हो जाती है।

आज इतना ही।

जागो सखि, वसंत आ गया

प्रवचन 2

उस परम प्रभु परमात्मा का सत्य नाम क्या है?

सिक्ख-निरंकारी संघर्ष के संबंध में आपका क्या मत है? क्या यह खतरा नहीं है कि जो लोग आपके दर्शन या विचार के साथ असहमत ही नहीं, उसे सहने को भी तैयार नहीं हैं, वे आपके साथ भी ऐसी ही स्थिति पैदा करें?

अगर मैं अपनी खुद की बात कहूं तो ध्यान के गहरे अनुभव, जब मैंने कृष्णमूर्ति या आपका नाम तक न सुना था, तब हुए। यह स्वानुभव किसी भी विधि का अभ्यास किए बिना ही हुआ। इसलिए कृष्णमूर्ति जब यह कह रहे हैं कि किसी विधि का अभ्यास मत करो, वह सहज घटित होता है, तब यह बात मुझे स्वाभाविक मालूम होती है। आखिर कृष्णमूर्ति का जोर सतत जागरूकता और केंद्ररहित हो जीवन से ही सीखना, इस पर तो है ही, जिसके फलस्वरूप ध्यान घट सकता है। अगर मैं भूलता नहीं हूं, तो आप कृष्णमूर्ति के इस विधान से सहमत नहीं हैं। इससे मुझे तो काफी अचरज भी होता है। आपका दृष्टिकोण समझने की उम्मीद रखता हूं।

संन्यास लूं या नहीं? डर लगता है संसार का। झेल पाऊंगा लोगों का विरोध या नहीं?

पहला प्रश्नः उस परम प्रभु परमात्मा का सत्य नाम क्या है?

नाम तो सभी असत्य हैं। परमात्मा अनाम है। इसलिए जो भी नाम दिए गए हैं, दिए जाएंगे, सब कल्पित हैं। उनका उपयोग है जरूर, लेकिन उनकी प्रामाणिकता कोई भी नहीं है। जैसे और नाम कल्पित हैं, ऐसे ही परमात्मा के नाम भी कल्पित हैं।

एक बच्चा पैदा होता है, अनाम। हम देते हैं उसे नाम। बिना नाम जीवन कठिन होगा। कैसे तो कोई उसे पुकारेगा? कैसे कोई पत्र लिखेगा? जीवन अड़चन होगी। एक कृत्रिम नाम जीवन में सहयोगी हो जाता है; उसकी उपयोगिता है।

एक वृक्ष को हम कहते हैं पीपल, एक को कहते हैं नीम, एक को कहते हैं आम; नाम तो किसी के भी नहीं हैं। आम को तो पता भी नहीं होगा कि मेरा नाम आम है। पर उपयोगिता है; भेद करने में सुविधा हो जाती है। जहां-जहां भेद करना है, वहां-वहां नाम की उपयोगिता है। लेकिन परमात्मा तो सारी सत्ता का प्रतीक है, अभेद का प्रतीक है, एक का प्रतीक है। जहां अनेक हैं, वहां तो नाम की उपादेयता भी है। लेकिन जहां अनेकता नहीं है, वहां तो बहुत उपादेयता भी नहीं है।

लेकिन फिर भी, उसकी खबर देनी हो, जिनको मिल गया हो, जिन्होंने जाना हो, उन्हें दूसरों को जगाना हो, तो थोड़ी सी उपयोगिता है; फिर राम कहो, ओंकार कहो, अल्लाह कहो। पर ध्यान रखना, उसका कोई भी नाम नहीं है। उसका कोई नाम हो भी नहीं सकता। अनाम को भूल मत जाना। नाम के पीछे अनाम छिपा है, यह स्मरण बना रहे, तो नाम का

कोई खतरा नहीं है। लेकिन ऐसी भ्रांति न हो जाए कि नाम ही सच हो जाए और अनाम का विस्मरण हो जाए। तो बड़ी चूक हो गई। तो फिर जपते रहना तुम राम-राम; फिर करते रहना अल्लाह-अल्लाह। यारी ने कहा न कि जबान थक गई चिल्लाते-चिल्लाते, कुछ मिला नहीं, कुछ हाथ न लगा। हाथ लगे भी कैसे? पानी-पानी कहने से प्यास नहीं बुझती, जब तक कि पानी चखो न। चखने की फिक्र करो, नाम की फिक्र छोड़ो। स्वाद की चिंता लो। और स्वाद मिल गया तो सब मिल गया।

एक अर्थ में उसका कोई भी नाम नहीं। दूसरे अर्थ में, वृक्षों से गुजरती हवाएं उसी के नाम का उदघोष करती हैं। सागर की उत्ताल तरंगें उसी के नाम का जप करती हैं। पहाड़ों से उतरते झरने उसको ही तो गुनगुनाते हैं। तुम्हारे हृदय की धड़कन, कि तुम्हारे श्वासों की आवाज, किसकी याद कर रही है? तुम्हें पता भी न हो, तो भी उसी की याद चल रही है। अनेक-अनेक रूपों में उसी का स्मरण हो रहा है। कोई उसे आनंद की तरह स्मरण कर रहा है, कोई उसे प्रेम की तरह स्मरण कर रहा है, कोई उसे सौंदर्य की तरह स्मरण कर रहा है। किसी ने उसकी भनक संगीत में सुनी है, वीणा के तारों में सुनी है।

तुम यहां मेरे पास बैठे उसी की याद के गीत तो सुन रहे हो! उसी की तो खोज चल रही है! उसकी खोज यानी अपनी खोज—अपने स्वभाव की खोज।

...यही तो गा रहे हैं पेड़
यही सरिता की लहर में कांपता है
यही धारा के प्रपातित बिंदुओं का हास है।
...इसी से
मर्मरित होंगी लताएं
सिहर कर झर जाएंगी कलियां अदेखी
मेघ घन होंगे
बलाकाएं उड़ेंगी
झाड़ियों में चिहुंक कर पंछी
उभारे लोम
सहसा बिखर कर उड़ जाएंगे
ओस चमकेगी विकीरित रंग का उल्लास ले
पहली किरण में।
...फैली धुंध में बांधे हुए है अखिल संसृति
नियम में शिव के
यही तो नाम...
यही तो नाम—
जिसे उच्चारते ये ओंठ आतुर
झिझक जाते हैं
...पास आओ :

जागरित दो मानसों के संस्फुरण में
नाम वह संगीत बन कर मुखर होता है।
कहां हैं दोनों तुम्हारे हाथ
सम्पुटित करके मुझे दे दो :
कोकनद का कोष वह
गुंजरित होगा
नाम से—
उस नाम से...

जहां प्रेम है, वहां प्रार्थना है। और जहां प्रार्थना है, वहां परमात्मा है। किसी की आंख में प्रीति से झांको, उसी का नाम उभर आएगा। किसी का हाथ प्रेम से हाथ में ले लो, उसी का नाम उभर आएगा। ऐसे तो उसका कोई भी नाम नहीं और ऐसे सभी नाम उसके हैं। क्योंकि वही है, अकेला वही है, उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। हम सब उसी की लहरें हैं, उसी के वृक्ष के पत्ते-फूल! हम सब उसी के अंग! न हम उसके बिना हैं, न वह हमारे बिना है। हम भी नहीं हो सकते उसके बिना, अंग भी नहीं हो सकता उसके बिना। अंशी के बिना अंश कैसे हो सके? और ध्यान रखना, दूसरी बात भी भूल मत जाना : अंश के बिना अंशी भी नहीं हो सकता। न तो भक्त के बिना भगवान है, और न भगवान के बिना भक्त है। भक्त और भगवान के बीच जो घटता है, वही उसका नाम है।

क्या घटता है? कहना कठिन। कभी कहा नहीं गया, कभी कहा भी न जा सकेगा। चुपचाप घटता है, मौन सन्नाटे में घटता है, अपूर्व शून्य में घटता है। और जब घट जाता है तो जीवन में आ गया वसंत! खिल जाते हैं सारे फूल, जन्मों-जन्मों जो नहीं खिले थे। गीत झरने लगते हैं जीवन से, जो तुमने कभी कल्पना भी नहीं किए थे, जिनके तुम सपने भी नहीं देख सकते थे! तुम्हारा रोआं-रोआं किसी उल्लास से, किसी उत्सव से भर जाता है—अपरिचित, अनजाना उत्सव। लेकिन तलाश उसी की थी, खोज उसी की थी, टटोलते उसी को थे—अंधेरे में, लंबी अंधेरी रातों में, जन्मों-जन्मों में, न मालूम किन ग्रह-उपग्रहों पर, कितने-कितने प्रकारों से! नहीं जिसे देखा था, उसी को देखने की लालसा भटकाती थी। नहीं जिसे सुना था, उसी का मधुर रव कान में भर जाए, इसके लिए प्राण आतुर थे। नहीं जिसे चखा था, उसी की प्यास लिए चलती थी।

जिस दिन भक्त और भगवान के बीच शून्य का सेतु बनता है, उस दिन मिलन हुआ। उस दिन ही तुम जानोगे कि क्या उसका नाम है, या कि वह अनाम है।

मलय का झोंका बुला गया
खेलते से स्पर्श से
वो रोम-रोम को कंपा गया—
जागो, जागो,
जागो सखि, वसंत आ गया! जागो!

पीपल की सूखी खाल स्निग्ध हो चली
सिरिस ने रेशम से वेणी बांध ली
नीम के भी बौंर में मिठास देख,
हंस उठी है कचनार की कली
टेसुओं की आरती सजा के
बन गई वधू वनस्थली।
स्नेह भरे बादलों से
व्योम छा गया
जागो, जागो,
जागो सखि, वसंत आ गया! जागो!

चेत उठी ढीली देह में लहू की धार
बेध गई मानस को दूर की पुकार
गूंज उठा दिग्दिगंत
चीन्ह के दुरंत यह स्वर बार-बार :
'सुनो सखि! सुनो बंधु!
प्यार ही में यौवन है, यौवन में प्यार!'
आज मधु-दूत निज
गीत गा गया
जागो, जागो,
जागो सखि, वसंत आ गया! जागो!

मधुमास में ही पहचान पाओगे उसके असली नाम को। क्योंकि उसका नाम, नाम से हम जो समझते हैं, ऐसा नहीं है। स्वाद है उसका नाम। अनुभव है उसका नाम। प्राणों की अंतर्तम अनुभूति है उसका नाम।

तो मैं तुमसे कहूं राम उसका नाम है, तो झूठ होगा। मैं कहूं अल्लाह उसका नाम है, तो झूठ होगा। ऐसे ये सब नाम भी उसी के हैं। अल्लाह और राम ही नहीं, कृष्ण और रहीम ही नहीं, तुमने भी जो नाम रख लिए हैं अपने-अपने बच्चों के, अपने पड़ोसियों के, ये सब नाम भी उसी के हैं। अच्छे-बुरे सभी नाम उसके हैं, छोटे-बड़े सभी नाम उसके हैं, प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी नाम उसके हैं। इसमें तुम विरोधाभास मत देख लेना। जिसका कोई नाम नहीं है, उसी के सभी नाम हो सकते हैं। और सभी जिसके नाम हैं, उसका कोई नाम कैसे होगा? एक में उसे तुम न बांध पाओगे। बांधने की आतुरता भी क्यों?

चाहते क्या हो? प्रश्न में तुम्हारी जिज्ञासा क्या है? यही न कि एक नाम तुम्हारी पकड़ में आ जाए तो बैठ कर दुहराओ, कि माला पर जपो, कि मंत्र बना लो! मगर उससे तो सिर्फ रसना थकेगी, उससे तो सिर्फ जीभ थकेगी। और जीभ पर जो दोहराया गया है, जीभ पर ही रह जाएगा, प्राणों तक न पहुंच पाएगा।

इसे खयाल में ले लो: जो परिधि पर है, परिधि पर ही रह जाता है, केंद्र पर नहीं पहुंचता; यद्यपि जो केंद्र पर है वह परिधि पर भी आ जाता है। जो भीतर है, प्राणों के प्राण में है, वह तो बहेगा और परिधि को भी घेर लेगा, आवृत कर लेगा; लेकिन जो परिधि पर है वह प्राणों में नहीं जा सकता। जो अंतस में है वह तो आचरण बन जाता है; लेकिन जो सिर्फ आचरण में है वह अंतस नहीं बनता है। भीतर से बाहर की तरफ तो यात्रा है; बाहर से भीतर की तरफ कोई यात्रा नहीं है।

तुम नाम जानना चाहते हो, मैं तुम्हें अनाम देना चाहता हूं।

तुम नाम से तृप्त होना चाहते हो, मैं तुम्हें स्वाद देना चाहता हूं।

मत पूछो नाम, मत पूछो पता। उसी ने तुम्हें घेरा है। वही है तुम्हारे चारों तरफ। पीओ, खूब-खूब पीओ, जी भर कर पीओ!

देखते हो, चारों तरफ से हवा ने तुम्हें घेरा है, दिखाई तो नहीं पड़ती है! मगर तुम पी रहे हो तो जी रहे हो। मुर्दा भी एक लाकर यहां रख दो, वह भी है, उसको भी चारों तरफ से हवा ने घेरा है; लेकिन हवा को पी नहीं रहा है, इसलिए मुर्दा है।

भक्त में और साधारणजन में उतना ही भेद है जितना जीवित और मुर्दे में। साधारणजन चारों तरफ परमात्मा से उतना ही घिरा है जितना भक्त। लेकिन भक्त पी रहा है, जी भर कर पी रहा है, श्वास-श्वास में उसी को पी रहा है, रोएं-रोएं को उसी में डूबने दे रहा है। और जो भक्त नहीं है वह भी उसी से घिरा है—उतना ही जितना भक्त; लेकिन वह श्वास में उसे भीतर नहीं लेता।

भक्त जब श्वास लेता है तो सिर्फ हवा ही भीतर नहीं जाती, वह भी भीतर जाता है। भक्त जब भोजन करता है तो अन्न ही भीतर नहीं जाता, अन्नं ब्रह्म, अन्न के साथ-साथ ब्रह्म भी भीतर जाता है। भक्त फूल को देखता है, फूल ही नहीं देखता, उस फूल में खिले उस परमात्मा को भी देखता है। भक्त सूरज को उगते देखता है, झुक जाता है। क्योंकि तुम्हें सिर्फ सूरज दिखाई पड़ रहा है, उसे उस सूरज की रोशनी में उसकी ही रोशनी दिखाई पड़ रही है। भक्त तो वृक्ष के पास भी झुक जाता है; क्योंकि तुम्हें सिर्फ वृक्ष दिखाई पड़ रहा है, उसे तो वृक्ष के भीतर दौड़ती हुई जो हरित धारा है जीवन की, वह जो प्राण वृक्ष को आंदोलित किए है, जो उसके पत्तों को हरा किए है और जिसने उसके फलों में रस भर दिया है—रसो वै सः! भक्त तो उस परम रस को भी देख रहा है।

तुम भी परमात्मा से घिरे हो, भक्त भी परमात्मा से घिरा है; इसमें जरा भी भेद नहीं है। परमात्मा की तरफ से जरा भी अन्याय नहीं है। लेकिन तुम हो कि अपने को बंद किए मुर्दे की भांति, श्वास नहीं लेते। फिर पूछते हो, उसका नाम क्या है?

नाम तो हम उसका पूछते हैं जो हम से भिन्न हो। नाम तो हम उसका पूछते हैं जो दूर हो, जिसका पता-ठिकाना लगाना हो। उसका क्या नाम पूछना जो श्वासों से भी ज्यादा तुम्हारे पास है? तुम भी अपने इतने पास नहीं, इतना वह तुम्हारे पास है। उसका नाम क्या पूछना है? खड़े हो सरोवर में, सरोवर का नाम पूछते हो और प्यास से तड़पे जा रहे हो! पीते क्यों नहीं?

दूसरा प्रश्नः सिक्ख-निरंकारी संघर्ष के संबंध में आपका क्या मत है? क्या यह खतरा नहीं है कि जो लोग आपके दर्शन या विचार के साथ असहमत ही नहीं, उसे सहने को भी तैयार नहीं हैं, वे आपके साथ भी ऐसी ही स्थिति पैदा करें?

किशोरदास! धर्म के साथ संघर्ष का कोई भी संबंध नहीं है। और जहां संघर्ष महत्वपूर्ण हो जाता है, वहां धर्म विलीन हो जाता है, वहां राजनीति अड्डा जमा लेती है। सब झगड़ों के पीछे राजनीति होती है। ऊपर-ऊपर झगड़ों के नाम कुछ भी हों—हिंदू-मुसलमान का झगड़ा हो, कि सिक्ख-निरंकारी का झगड़ा हो, कि ईसाई-यहूदी का झगड़ा हो—ये तो झगड़ों को दिए गए प्यारे-प्यारे आवरण हैं, सुंदर-सुंदर आवरण हैं! जैसे खतरनाक तलवार पर किसी ने मखमल चढ़ा दी है, मखमल की म्यान बना दी है। अक्सर तलवारों की म्यानें मखमल की होती हैं। सोना-चांदी भी जड़ सकते हो, हीरे-जवाहरात भी। तलवारें छिप जाती हैं ऐसे। मगर सिर्फ अंधों को छिपती हैं, आंख वालों को नहीं छिपतीं।

धर्म के नाम पर खूब राजनीति चलती रही है, चलती है, और लगता है आदमी को देखते हुए कि चलती ही रहेगी। और जब धर्म के नाम पर राजनीति चलती है तो बड़ी सुविधा हो जाती है राजनीति को चलने में; क्योंकि हत्यारे सुंदर मुखौटे लगा लेते हैं। जितना बुरा काम करना हो उतना सुंदर नारा चाहिए, उतना ऊंचा झंडा चाहिए, रंगीन झंडा चाहिए। आड़ में छिपाना होगा न फिर!

आदमी जंगली है, अभी तक आदमी नहीं हुआ। इसलिए कोई भी बहाना मिल जाए, उसका जंगलीपन बाहर निकल आता है। ये सब बहाने हैं। एक बहाना हटा दो, दूसरा बहाना ले लेगा, मगर लड़ाई जारी रहेगी; क्योंकि आदमी बिना लड़े नहीं रह सकता। आदमी अभी उस जगह नहीं आया जहां शांति में आनंद पा सके। अभी तो वैमनस्य, द्वेष, ईर्ष्या, हिंसा—उसमें ही उसे थोड़ी त्वरा, थोड़ा उन्मेष जीवन का मालूम होता है, थोड़ा मजा मालूम होता है।

देखते नहीं, घर से गए हो दवा लेने पत्नी के लिए, और राह पर दो आदमी लड़ रहे हैं, बस खड़े हो गए; भूल ही गए पत्नी, भूल गए दवा! दो आदमी लड़ते थे, तुम्हें देखने के लिए खड़े हो जाने की क्या जरूरत थी? अशोभन है यह। यह तुम्हारी संस्कारशीलता का लक्षण नहीं है। लड़ना या लड़ते हुओं को देखना एक ही वृत्ति का प्रतीक है; तुम्हें कुछ न कुछ रस आ रहा है। और अगर दो आदमी लड़ते हुए और भीड़ देखती हुई, अचानक सहमत हो जाएं कि चलो भाई, नहीं लड़ते, चलो। तो सारी भीड़ उदास हो जाती है कि नाहक इतनी देर खड़े रहे और कुछ भी न हुआ! इतनी देर व्यर्थ ही खड़े रहे! और मजा ऐसा था, भीड़ में से लोग कह रहे थे कि भाई, लड़ो मत! क्यों लड़ते हो? लड़ने में क्या रखा है! भीड़ में से एक-दूसरे को लोग पकड़ भी रहे थे कि कहीं झगड़ा न हो जाए। यह सब ऊपर-ऊपर था, भीतर आकांक्षा थी कि हो ही जाए, कि देख ही लें!

अभी भी खून बहता हुआ देख कर, तुम्हारे भीतर कोई छिपा हुआ पशु है अचेतन में जो तृप्त होता है। फिर खून किस बहाने बहता है, इसकी फिक्र नहीं—खून बहना चाहिए! तीन हजार साल के इतिहास में आदमी ने पांच हजार युद्ध लड़े हैं। लगता है आदमी यहां जमीन पर युद्ध लड़ने को ही पैदा हुआ है। और कितने-कितने अच्छे नामों पर युद्ध लड़े

गए—इस्लाम खतरे में है, कि ईसाइयत खतरे में है, कि मातृभूमि खतरे में है, कि कम्युनिज्म खतरे में है, कि लोकतंत्र खतरे में है! खतरे ही खतरे हैं सबको! शांति के लिए युद्ध लड़े गए हैं, और मजा! हम कहते हैं, युद्ध लड़ेंगे तो शांति हो जाएगी। यह तो ऐसा हुआ जैसे किसी को जीवन देने के लिए जहर पिलाओ! किसी को बचाने के लिए उसकी गर्दन काटो! लेकिन यह गणित जारी रहा।

और ऐसा भी नहीं है कि एक मसला हल हुआ हो तो युद्ध समाप्त हुआ। एक मसला हल होता है, हम तत्क्षण दूसरा मसला खड़ा कर लेते हैं! हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटा था तो सोचा था कि चलो, अब हिंदू-मुस्लिम के दंगे न होंगे। उनका देश हो गया मुसलमानों का अलग, हिंदुस्तान हो गया अलग। हिंदू-मुस्लिम दंगे थोड़े क्षीण भी पड़े, लेकिन नये दंगे शुरू हो गए। हिंदुस्तान में इतनी भाषाएं हैं, भाषाओं के नाम पर दंगे शुरू हो गए; इतने प्रदेश हैं, प्रदेशों के नाम पर दंगे शुरू हो गए। गुजराती और मराठी लड़ेंगे कि बंबई किसका हो! ये तो दोनों ही हिंदू थे। इनमें तो झगड़ा नहीं होना था। ये तो एक ही धर्म को मानते, एक ही राम को, एक ही कृष्ण को मानते। लेकिन गुजराती और मराठी में झगड़ा हो जाएगा—बंबई किसका हो? राम और कृष्ण से लेना-देना किसको है—बंबई किसका हो? छोटी-मोटी सीमाओं पर, कि नर्मदा का जल किस प्रांत को कितना मिले, इस पर झगड़े हो जाएंगे। और नर्मदा को दोनों पूजते हैं। दोनों नर्मदा को पवित्र मानते हैं। लेकिन जब बांटने का सवाल आ गया, तो झगड़े खड़े हो जाएंगे। कि एक तहसील इस प्रदेश में रहे कि उस प्रदेश में, कि एक जिला इस प्रदेश में रहे कि उस प्रदेश में—छुरेबाजी हो जाएगी! कि हिंदी भाषा हो राष्ट्र की भाषा, कि कोई और भाषा हो राष्ट्र की भाषा—बस छुरे चल जाएंगे! तुम देखते हो, एक बहाना छूटता नहीं कि दूसरा बहाना मिल जाता है।

फिर देखा, पाकिस्तान में क्या हुआ? बंगाली और पंजाबी मुसलमान लड़ गए, जो कभी न लड़े थे! क्योंकि पहले हिंदुओं से लड़ने में निकल जाती थी भीतर की जो पाशविकता है। अब हिंदू तो बचे नहीं; हिंदू तो उन्होंने साफ ही कर दिए। पाकिस्तान में हिंदू तो बचे नहीं; उसी दिन उन्होंने खतरा ले लिया। काटने की वृत्ति तो बची, हिंदू न बचे! अब काटने की वृत्ति क्या करेगी? पशु तो बचा, पुराना बहाना हाथ से चला गया! तो पाकिस्तान आपस में लड़ गया। तो पंजाबी मुसलमान ने बंगाली मुसलमान को इस तरह मारा, जिस तरह न तो कभी हिंदुओं ने मुसलमानों को मारा था, न मुसलमानों ने हिंदुओं को मारा था।

फिर तुम यह भी मत सोचना कि इससे कुछ हल होता है। पाकिस्तान बंट गया, दो हिस्से हो गए। पहले हिंदुस्तान बंटा और दो देश हुए, फिर पाकिस्तान बंटा और दो देश हो गए। और फिर जिस आदमी ने, मुजीबुर्रहमान ने बंगाल को मुक्त कर लिया पाकिस्तान के कब्जे से, उसकी क्या गति हुई? उसके साथ बंगालियों ने क्या व्यवहार किया? भून डाला! पूरा परिवार—छोटे-छोटे बच्चे, दुधमुंहे बच्चों से लेकर मुजीबुर्रहमान तक, सबको एक साथ भून डाला! बंगाली बाबुओं से ऐसी तो आशा न थी। लेकिन बंगाली बाबुओं ने ऐसा कर दिखाया! पंजाबियों ने अगर थोड़ी ज्यादती की थी, समझ में आ सकती है बात। पंजाबी थोड़ा उस ढंग का आदमी है। लेकिन बंगाली बाबू! ढीली धोती, कि भाग भी न सकें! भागें तो अपनी ही धोती में फंस कर गिर जाएं! इनको क्या हुआ?

बंगाली हो कि पंजाबी, भीतर पशु एक है। बहाने बदल जाते हैं, आदमी नहीं बदलता।

किशोरदास! आदमी बदलेगा तो स्थिति बदलेगी। अब बहाने बदलने की बात हम छोड़ दें। बहाने तो पांच हजार साल में बहुत बार बदले, बात वहीं की वहीं बनी रहती है। आदमी को बदलें! और आदमी के बदलने में सबसे बड़ी कठिनाई क्या है? आदमी क्यों इतनी पशुता, इतनी हिंसा और घृणा से भरा हुआ है?

मेरे देखे, हमने मनुष्य को प्रेम करने की कला नहीं सिखाई, इसलिए। हमने मनुष्य को प्रेम की हवा नहीं दी, इसलिए। हमने मनुष्य को प्रेम का स्वाद नहीं दिया, इसलिए। जिस व्यक्ति को भी प्रेम का स्वाद मिल जाए, उसके जीवन से घृणा अपने आप विसर्जित हो जाती है। क्योंकि एक ही ऊर्जा है, जो प्रेम बनती है या घृणा बनती है। अगर प्रेम न बन पाए तो घृणा बनती है। एक ही ऊर्जा है, जो निर्माण बनती है और ध्वंस बनती है। निर्माण न बन पाए तो ध्वंस बनती है।

अब तक आदमी हमने जो निर्मित किया है जमीन पर, उसमें सृजनात्मकता के बीज हम नहीं डाल पाए हैं। इसलिए विध्वंस उसका स्वर है। फिर राष्ट्र के नाम पर, धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर, वर्ण के नाम पर विध्वंस प्रकट होता है। जहर हो गई है वही शक्ति, जो खिल जाती तो गीत बनती और नाच बनती! जो प्रकट होती तो बांसुरी पर बजती, वही तलवार की धार हो गई है!

मैं यहां कोई नया धर्म नहीं सिखा रहा हूं। धर्म तो जमीन पर बहुत हैं—तीन सौ धर्म हैं। अब इस उपद्रव में और उपद्रव बढ़ाने से क्या होगा? मैं यहां कोई नया शास्त्र नहीं दे रहा हूं। शास्त्र काफी हैं—वेद हैं, और कुरान हैं, और बाइबिलें हैं, और धम्मपद हैं, और गुरुग्रंथ हैं—और शास्त्र ही शास्त्र हैं!

मैं तो यहां मनुष्य को बदलने का एक नया विज्ञान दे रहा हूं। उस विज्ञान की आधारभूत शिला यही है कि हम मनुष्य को स्वयं से प्रेम करना सिखाएं। यह बात अभी तक नहीं की गई है। तुमसे यह तो कहा गया है कि देश को प्रेम करो। और तुमसे यह भी कहा गया है कि धर्म को प्रेम करो। और तुमसे यह भी कहा गया है कि जरूरत पड़े तो देश के लिए मर जाना, धर्म के लिए मर जाना। लेकिन तुमसे यह किसी ने भी नहीं कहा है कि अपने से इतना प्रेम करो, कि न तो देश के लिए मरने की तुम्हारी तैयारी हो, न धर्म के लिए मरने की तुम्हारी तैयारी हो। अपने से इतना प्रेम करो, कि तुम्हें कोई भी उपद्रवी, कोई भी पागल किसी तरह की आत्महत्या के लिए राजी न कर पाए। अपने से इतना प्रेम करो! तुम परमात्मा की कृति हो!

मगर तुम ऐसे तैयार रहते हो मरने को जिसका हिसाब नहीं! बहाना मिल जाए कि तुम मरने-मारने को तैयार हो! कारण साफ है, तुम्हारी जिंदगी बेमानी है। तुम्हारी जिंदगी में कोई अर्थवत्ता नहीं है। जिंदगी में कोई ऐसी रसधार नहीं बह रही है कि तुम थोड़े झिझको। जिंदगी इतनी उदास है और जिंदगी इतनी ऊब से भरी है और जिंदगी इतनी बोझिल है कि तुम्हें कोई मौका मिल जाए मरने-मारने का तो तुम कहते हो कि चलो छुटकारा हुआ। चलो इस बहाने त्याग कर दें, शहीद हो जाएं! दिल में कम से कम एक आशा तो रहती है कि जिंदा तो किसी ने पूछा नहीं—शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले! चलो मर कर...चिता पर मेले इकट्ठे होंगे।

मैं तुमसे कह रहा हूं: देश के लिए मत मरना, जाति के लिए मत मरना, धर्म के लिए मत मरना। तुम्हें परमात्मा ने मरने के लिए नहीं पैदा किया, नहीं तो पैदा ही क्यों करता? तुम्हें परमात्मा ने पैदा किया है...जीना! फूलों के लिए जीना, चांद-तारों के लिए जीना, अपने लिए जीना, लोगों के लिए जीना। जीवन परम मूल्य है, और जीवन किसी भी चीज पर निछावर नहीं किया जा सकता। जीवन पर सब कुछ निछावर है, और जीवन किसी चीज पर निछावर नहीं किया जा सकता। ऐसी आधारशिला बदलनी होगी आदमी की।

लेकिन लोगों को लगता है, मैं स्वार्थ सिखा रहा हूं। चलो यही सही; वह शब्द कुछ बहुत बुरा नहीं है, शब्द अर्थपूर्ण है। स्वार्थ का अर्थ होता है—स्व के निमित्त, आत्मा के निमित्त। शब्द कुछ बुरा नहीं है, प्यारा है! स्वार्थ सही, मैं स्वार्थ सिखाता हूं। परार्थ तो बहुत सिखाया गया है; उसका परिणाम क्या हुआ है? उसका परिणाम यह हुआ है कि तुम अपने को प्रेम नहीं कर पाए, तो तुम दूसरे को भी प्रेम नहीं कर पाए। प्रेम का दीया पहले तुम्हारे भीतर जले, तो ही उसकी रोशनी दूसरों तक पहुंचेगी। लेकिन तुम्हें सिखाया गया है: मां-बाप को प्रेम करो, पत्नी को प्रेम करो, पति को प्रेम करो, बेटों को प्रेम करो। तुमसे कोई यह कहता ही नहीं कि अपने को प्रेम करो। अपने से तो घृणा करो। अपनी तो निंदा करो—मैं तो पापी हूं। मैं तो धूल हूं आपके चरणों की! मैं तो कुछ भी नहीं! अपने को घृणा करो, अपना तिरस्कार करो और सबको प्रेम करो।

अब थोड़ा सोचो, इसका परिणाम क्या होगा? हर व्यक्ति अपना तिरस्कार कर रहा है और हर व्यक्ति अपनी निंदा कर रहा है। सारा जगत आत्मनिंदा से भर गया है। और जहां आत्मनिंदा है, वहां आत्मा के फूल नहीं खिलते। सोचो कि गुलाब की झाड़ी अगर आत्मनिंदा से भर जाए तो क्या खाक फूल खिलेंगे! फूल तो खिलते हैं अहोभाव में, आत्मनिंदा में नहीं। थोड़ा सोचो, चांद आत्मनिंदा से भर जाए तो क्या खाक चमकेगा! चमक तो होती है आत्मगरिमा में, गौरव में, आत्मसम्मान में। लेकिन तुम्हें सिखाया गया है—घृणा करो अपने को। तुम पापी हो! जन्मों-जन्मों के पाप तुम्हारे पीछे हैं। और तुम्हें डराया गया है—अपने को प्रेम मत करना; वह स्वार्थ है; और स्वार्थ बड़े से बड़ा पाप है।

मैं तुमसे कहता हूं: स्वार्थ ही परार्थ की आधारशिला है। जिस व्यक्ति ने अपने को प्रेम किया, अपना सम्मान किया, वह किसी का भी अपमान न कर सकेगा। क्योंकि जिसने अपना सम्मान किया, उसे दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है कि जो जीवन मुझमें है, वही सबमें है; जो ज्योति इस दीये में जली है, वही ज्योति सब दीयों में जली है। और जिसने अपनी गरिमा पहचानी, उसे सारे जगत की महिमा का अनुभव शुरू हो जाता है।

मैं यहां कोई नया धर्म नहीं दे रहा हूं। मैं तो यहां जीवन की एक नई शैली दे रहा हूं। एक नये मनुष्य की आधारशिला रख रहा हूं। पुराने ढंग का मनुष्य असफल हो गया है; एक नये ढंग की मनुष्यता चाहिए।

इसलिए तुम मुझसे यह मत पूछो किशोरदास, कि सिक्ख-निरंकारी संघर्ष के संबंध में आपका क्या मत है? सभी संघर्षों के संबंध में मेरा यही मत है, कि वे सब गलत आदमी के आधार पर पैदा हुए हैं। यह प्रश्न सिक्ख और निरंकारी का नहीं है, न हिंदू-मुसलमान का है, न ईसाई-यहूदी का है, न जैन-बौद्ध का है। अगर तुमने इसको ऐसे ऊपर-ऊपर पकड़ा तो

लक्षण ही पकड़ोगे, बीमारी पकड़ में न आएगी। और लक्षण के इलाज से बीमारी का इलाज नहीं होता है। आदमी गलत है। वह सिक्ख हो, निरंकारी हो, हिंदू हो, मुसलमान हो, जैन हो, बौद्ध हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता—आदमी गलत है! और हमें एक नये आदमी की व्यवस्था करनी है। और आदमी की बुनियादी गलती यही है—आत्मगौरव का बोध नहीं है। मेरे भीतर कौन छिपा है, इसका कुछ अनुभव नहीं है।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं: तुम पापी नहीं हो, तुम परमात्मा हो! इससे तुम जरा भी कम नहीं हो। तुम परमात्मा की अनूठी कृति हो। याद रखना मेरे शब्द—अनूठी कृति! क्योंकि तुम जैसा व्यक्ति न तो उसने पहले कभी बनाया और न फिर कभी बनाएगा। तुम बिलकुल अकेले हो; तुम बेजोड़ हो! तुम किसी की कार्बन कापी नहीं हो, तुम मौलिक हो। परमात्मा ने तुम्हारा गीत बस पहली बार लिखा है और आखिरी बार लिखा है। और अगर तुमने यह गीत न गुनगुनाया, तो यह गुह्य गीत बिना गाया रह जाएगा। और तुम ही इसे गुनगुना सकते हो, दूसरा नहीं।

आत्मसम्मान करो! आत्मगौरव करो! परमात्मा की इस अनोखी भेंट के लिए, जो तुम्हें मिली है, धन्यवाद दो! नाचो! इसी नाच से प्रार्थना पैदा होती है। और इसी गहरे आत्म-अनुभव से और मनुष्यों के प्रति, और पशुओं के प्रति, और वृक्षों के प्रति, जहां-जहां जीवन है—ये सब जीवन के अलग-अलग ढंग, अभिव्यक्तियां हैं—वहां-वहां तुम्हें परमात्मा की छवि की धीरे-धीरे झलक, धीरे-धीरे अनुभव, उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ने लगती है।

मेरा संन्यासी न तो हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न जैन, न सिक्ख, न निरंकारी। मेरा संन्यासी एक नये ढंग का आदमी है, जो अपने प्रेम में तल्लीन है, जो स्वयं को प्रेम करने की दिशा में गतिमान है। अभी तो स्वार्थी लगेगा, क्योंकि तुम्हारी पुरानी जो व्याख्या है, वह व्याख्या खूब जड़ जमा कर बैठी है। लेकिन अगर यह संन्यासी, यह रंग जमीन पर फैल सका, तो तुम पाओगे, इसी स्वार्थ से ऐसे परार्थ के फूल खिलेंगे, जिनकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते थे! क्योंकि तुमने सदा स्वार्थ और परार्थ को विरोधी समझा है; वे विरोधी नहीं हैं। स्वार्थ की जड़ों पर ही परार्थ के फूल लगते हैं। वे परिपूरक हैं।

और हम मनुष्य को, यह जीवन गलत है, ऐसा सिखाते रहे हैं सदियों-सदियों से! ऐसा सिखाते रहे हैं कि तुम्हें जीवन मिला है तुम्हारे पापों के दंड के लिए।

जरा सोचो तो, अगर जीवन पापों के दंड के लिए मिला है, तो दो कौड़ी का है! इसका मूल्य क्या? ले लो तो मूल्य नहीं है, दे दो तो मूल्य नहीं है!

मैं तुमसे कहना चाहता हूं: तुम्हारे पापों का दंड नहीं है जीवन, तुम्हारे पुण्यों का पुरस्कार है। और तब पूरी दृष्टि बदलेगी। इसलिए नहीं कि तुमने बुरे काम किए थे इसलिए तुम जन्मे हो। तुमने कुछ सुंदर किया होगा। और परमात्मा ने तुम्हें फिर भेजा है कि तुम और सुंदर करो, और सुंदरतर! रवींद्रनाथ ने मरते समय प्रार्थना जो अंतिम की थी, वह प्रीतिकर है। प्रार्थना की थी कि हे प्रभु, अगर मैंने कुछ भी ऐसा जीवन में किया हो जो तेरे मन भाया हो, तो मुझे बार-बार जीवन में भेज देना।

लेकिन तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी प्रार्थना एक ही करते हैं कि हे प्रभु, आवागमन से कैसे छुटकारा हो? और जब आवागमन से छुटकारे की प्रार्थना चल रही हो, तो तुम

कैसे जीवन के प्रति धन्यवाद, जीवन के प्रति कैसे अहोभाव, कैसे कृतज्ञता अनुभव करोगे? जीवन तो कारागृह है—तुम्हारी भाषा में। इससे तो जैसे जल्दी छुटकारा हो जाए, उतना अच्छा! अब कारागृह में कोई फूल तो नहीं उगाता। कारागृह को कोई सजाता तो नहीं। कारागृह में कोई वीणा तो नहीं बजाता। कारागृह में तो लोग प्रतीक्षा करते हैं कि कितने जल्दी छूट जाएं; किसी भी तरह बाहर निकल जाएं।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं: यह संसार कारागृह नहीं है। यह संसार परमात्मा की अभिव्यक्ति है। यह संसार परमात्मा से भिन्न नहीं है, विपरीत तो बिलकुल नहीं है। कहीं चित्रकार से विपरीत होता है उसका चित्र? और कहीं संगीतज्ञ से विपरीत होता है उसका संगीत? और कहीं नर्तक से विपरीत होता है उसका नृत्य? और अगर तुम चित्र की निंदा करोगे, तो क्या तुम सोचते हो कि चित्र की निंदा करके तुम चित्रकार की प्रशंसा कर रहे हो? चित्र की निंदा में चित्रकार की निंदा हो गई। चित्र की प्रशंसा में चित्रकार की प्रशंसा होती है।

तुम्हारे अब तक के तथाकथित पंडित-पुरोहित तुम्हें जीवन-विरोध सिखाते रहे हैं, जीवन-निषेध सिखाते रहे हैं। उन्होंने तुम्हें नहीं का भाव, नकार का भाव तुम्हारे हृदय में भर दिया है। और नकार मृत्यु है, जीवन नहीं। नकार में सड़ सकते हो, खिल नहीं सकते। नकार जहर है, अमृत नहीं।

मैं तुम्हें जीवन का विधेय देता हूं। मैं सिखाता हूं जीवन का स्वीकार। यह जीवन परमात्मा की अनुपम भेंट है। न तो इसे तोड़ना, न इसे नष्ट करना और न इसे किसी क्षुद्र मानवीय धारणा पर समर्पित करना। मंदिर आदमियों के बनाए हुए हैं, जल जाएं, जल जाएं; आदमियों को मरने की जरूरत नहीं है। फिर मंदिर बना लेंगे। मस्जिदें आदमी की बनाई हुई हैं। किताबें आदमी की बनाई हुई हैं। आदमी भर आदमी का बनाया हुआ नहीं है। इसलिए आदमी को किसी भी चीज पर न्योछावर नहीं किया जा सकता। आदमी का मूल्य परम है। आदमी के ऊपर कुछ भी नहीं है।

चंडीदास का प्रसिद्ध वचन है: साबार ऊपर मानुष सत्य, ताहार ऊपर नाहीं। सबसे ऊपर है मनुष्य का सत्य, उसके ऊपर कुछ भी नहीं।

साबार ऊपर मानुष सत्य! सबसे ऊपर है मनुष्य का सत्य, इसकी उदघोषणा करो! चढ़ जाओ मकानों की मुंडेरों पर, गांव-गांव, द्वार-द्वार, घर-घर इसकी घोषणा करो: साबार ऊपर मानुष सत्य! मनुष्य के सत्य से ऊपर कोई और सत्य नहीं है। तब बदलेगी कुछ बात।

यह आवागमन से छूटने की बकवास, यह संसार को पाप और पाप का फल कहने की बकवास, लोगों के जीवन को विषाक्त करने की चेष्टा—ये आधार हैं तुम्हारी बीमारी के। लक्षणों की मैं बात नहीं करता। सिक्ख और निरंकारी, हिंदू और मुसलमान, जैन और बौद्ध—ये तो लक्षण हैं। ये तो कोई भी बहाने खोज रहे हैं। ये तो खूंटियां हैं! मैं तो तुम्हारे कोट की बात कर रहा हूं जो तुम खूंटी पर टांगते हो, खूंटियों की बात नहीं कर रहा। खूंटी तुम्हें एक नहीं मिलेगी, तुम दूसरी पर टांग दोगे। खूंटी बिलकुल न मिलेगी तो लोग दरवाजों पर टांग देते हैं, खिड़कियों पर टांग देते हैं। मगर कोट है तो कहीं न कहीं टांगेंगे। जब तक मनुष्य जैसा अब तक रहा है ऐसा ही रहेगा, तब तक ये उपद्रव जारी रहेंगे। मनुष्य को बदलना है।

इसलिए मैं गौण लक्षणों की चिंता नहीं करता। कोई असली चिकित्सक लक्षणों की चिंता नहीं करता, नकली चिकित्सक लक्षणों की चिंता करते हैं। जैसे किसी आदमी को बुखार चढ़ा है। नकली चिकित्सक होगा, वह कहेगा, इसका शरीर गरम हो गया है, ठंडे पानी में डाल दो, कि इसको फव्वारे के नीचे बिठा दो। शरीर गरम हो रहा है, ठंडा करना जरूरी है।

शरीर तो ठंडा होगा कि नहीं, यह मरीज ही ठंडा कर देगा। बुखार तो लक्षण है, बीमारी भीतर है। इस आदमी के भीतर तुमुल युद्ध छिड़ा है। इसके भीतर घर्षण हो रहा है! इसके भीतर स्वास्थ्य की और बीमारी की शक्तियों में गृह-युद्ध हो रहा है! उस गृह-युद्ध के कारण शरीर उत्तप्त हो गया है। उस गृह-युद्ध को शांत करना होगा। शमन भीतर करना होगा, बाहर अपने आप ज्वर समाप्त हो जाएगा। ज्वर को ठंडा करने की जरूरत नहीं है। ज्वर की जड़ को काटने की जरूरत है। पत्ते मत काटो, शाखाएं मत काटो; इससे कुछ भी न होगा। जड़ काटो। मैं जड़ को काटने में लगा हूं।

और किशोरदास, यह तुम ठीक कहते हो कि क्या यह खतरा नहीं है कि जो लोग आपके दर्शन या विचार के साथ असहमत ही नहीं, उसे सहने को भी तैयार नहीं हैं, वे आपके साथ भी ऐसी ही स्थिति पैदा करें?

यह खतरा है। खतरा क्या, करीब-करीब यह बात सुनिश्चित है, होनी ही है। यह होनी इसलिए है कि यही सदा होती रही है।

जीसस को लोगों ने सूली दी। मंसूर को काट डाला। सुकरात को जहर पिला दिया। इनका कसूर क्या था? इनका एक ही कसूर था कि ये आदमी को स्वस्थ करने की चेष्टा में संलग्न थे। और आदमी अपनी बीमारियों से इतना घिर गया है और अपनी बीमारियों को ही मानने लगा है कि यही मैं हूं, कि जब कोई उसकी बीमारी छीनता है तो वह नाराज होता है। तुम अपनी जंजीरों को ही समझने लगे हो तुम्हारे आभूषण हैं! और जब कोई तुम्हारी जंजीरें छीनता है, तुम समझते हो लुटेरा है। तुम उससे बदला लेने लगते हो।

दुर्भाग्य है यह। अगर यह दुर्भाग्य न घटा होता—अगर जीसस को सूली न लगी होती, सुकरात को जहर न दिया गया होता, मंसूर के हाथ-पैर न काटे गए होते—तो यह दुनिया दूसरी होती। ये सिक्ख और निरंकारियों के झगड़े न होते। ये हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे की गर्दनें न काटते। यह आदमी दूसरा होता। यह जमीन स्वर्ग हो गई होती! लेकिन इस जमीन को जो लोग भी स्वर्ग बना सकते थे, उनके साथ ही हमने दुर्व्यवहार किया है।

इसलिए इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। यह हो सकता है। मगर यह इकतरफा होगा। इकतरफा होगा, इसका अर्थ यह है कि हमारी तरफ से कोई झगड़ा नहीं है किसी से। झगड़ा अगर होगा तो इकतरफा होगा। इकतरफा ही चल रहा है।

कल ही मैंने एक पत्रिका में पढ़ा, पत्रिका में सुझाव दिया गया है सरकार को, कि मुझे मृत्यु-दंड दे देना चाहिए, इससे कम नहीं। क्योंकि मेरे जैसा आदमी जिंदा रहे, यह खतरनाक है। और मृत्यु-दंड इसलिए दे देना चाहिए, ताकि आगे फिर कभी कोई आदमी इस तरह की दुबारा हिम्मत न कर सके।

मैं समझ पाता हूं कि अड़चन कहां है। इससे मैं नाराज नहीं हूं। इससे मुझमें सिर्फ करुणा ही पैदा होती है। यह स्वाभाविक है। लोग बीमारियों के आदी हो गए हैं। सदियों-सदियों से

बीमारियों में रहे हैं, बीमारियों से तादात्म्य हो गया है। और मैं उनकी बीमारियों की जड़ पर चोट कर रहा हूं। अड़चन तो आएगी, कठिनाई तो होगी। मगर यह इकतरफा होगी।

हम तो अपने गीत गाते रहेंगे और नाचते रहेंगे और गुनगुनाते रहेंगे। लोगों की जो मर्जी हो वे करें। लोगों को जैसा ठीक लगे वैसा करें। हमारी तरफ से कोई संघर्ष नहीं है। हमारी तरफ से कोई प्रतिकार नहीं है। अगर यही होना है तो यही होगा। लेकिन एक बात एक पत्थर पर खींची गई लकीर की तरह रह जाएगी कि कुछ लोग बिना लड़े, नाचते हुए, गीत गाते हुए भी मर सकते हैं! जीवन से हमारा प्रेम इतना है कि हम मृत्यु को भी उत्सव बना लेंगे! प्रत्युत्तर नहीं होगा। प्रत्युत्तर क्या है? हमारा प्रत्युत्तर यही है कि हम मृत्यु को उत्सव बना लेंगे! मगर हम किसी से लड़ने को उत्सुक नहीं हैं। लड़ने की जड़ काटना चाहते हैं तो लड़ने को उत्सुक कैसे हो सकते हैं? यह तो फिर वही पुरानी कहानी होगी। हम किसी को मिटाने में उत्सुक नहीं हैं; हां, बीमारी मिटाने में उत्सुक हैं।

और इसलिए एक और आश्चर्य की बात किशोरदास—सिक्खों को तकलीफ होगी निरंकारियों से, निरंकारियों को तकलीफ होगी सिक्खों से, बाकी मुल्क में किसी को कोई अड़चन नहीं है। हिंदुओं को अड़चन होगी मुसलमानों से, मुसलमानों को अड़चन होगी हिंदुओं से, बाकी किसी को अड़चन नहीं है। मेरा मामला तो थोड़ा भिन्न है। हिंदू को भी मुझसे अड़चन है, मुसलमान को भी मुझसे अड़चन है, ईसाई को भी मुझसे अड़चन है, जैन को भी मुझसे अड़चन है। मेरे साथ सभी को अड़चन है; क्योंकि मैं पत्ते नहीं काट रहा हूं, मैं जड़ काट रहा हूं। अगर तुम एक पत्ता काट रहे हो तो बाकी पत्ते कहेंगे—अच्छा है, कटने दो, हमें क्या लेना-देना! शायद खुश ही होंगे कि जितना रस इस पत्ते को मिलता था, अब हमको मिल जाएगा। पास-पड़ोस के पत्ते कहेंगे, हम तो पहले से ही चाहते थे यह खत्म हो। लेकिन मैं जड़ काट रहा हूं। इसलिए सारे पत्ते मेरे खिलाफ होंगे। और सारे पत्ते मेरी खिलाफत में साथ हो जाएंगे।

जीसस को यहूदियों ने मारा था, मंसूर को मुसलमानों ने। अगर मैं कभी मारा गया तो यह एक नई कहानी होगी, एक नई शुरुआत होगी; मुझे मारने वालों में सारे लोग सम्मिलित होंगे! यह सौभाग्य की बात भी होगी; जिसके खिलाफ सारे लोग हों, जरूर वह कोई जड़ की बात कर रहा होगा—ऐसी जड़ की, जिसके काटने से सब कटते हैं!

मैं मौलिक रूपांतरण की बात कर रहा हूं। और सिर्फ बात ही नहीं कर रहा हूं, उस नये आदमी को पैदा करने की चेष्टा में लगा हूं। यह कोई शास्त्रार्थ नहीं है जो मैं चला रहा हूं। शास्त्रार्थ में मेरा रस ही नहीं है। मैं तो नया आदमी पैदा करने में लगा हूं। वही सबूत होगा, वही गवाह होगा कि मैं जो कहता हूं वह हो सकता है या नहीं? क्या एक ऐसा व्यक्ति पैदा किया जा सकता है, जो हिंदू न हो, मुसलमान न हो, ईसाई न हो, भारतीय न हो, पाकिस्तानी न हो, जापानी न हो, चीनी न हो?

किया जा सकता है! उसी का प्रयोग चल रहा है। मेरा संन्यासी विश्व का नागरिक है। उसकी कोई और राष्ट्रीय मान्यता नहीं है। उसका कोई चर्च नहीं है, कोई संप्रदाय नहीं है। वह समस्त चर्चों और संप्रदायों से मुक्त व्यक्ति है। और मेरा संन्यासी जीवन को दंड नहीं मानता है, अनुग्रह मानता है। और मेरा संन्यासी आवागमन से मुक्त नहीं हो जाना चाहता है।

मेरा संन्यासी अपनी कोई चाह नहीं रखता है; परमात्मा जैसे जिलाए उसमें राजी है—जो उसकी मर्जी!

और मेरा संन्यासी जीवन के किन्हीं भी अंगों का तिरस्कार नहीं करता है। मेरा संन्यासी जीवन की समग्रता को स्वीकार करता है और उस समग्रता को जीने की चेष्टा करता है। मेरा संन्यासी चेष्टा में संलग्न है कि उसके भीतर कोई भी अंग निषिद्ध न हो। क्योंकि जो भी अंग हम निषिद्ध करते हैं, वह अंग बदला लेता है। अगर कामवासना का निषेध करोगे, तो कामवासना बदला लेगी, तुम्हारे चित्त को कामवासना ही कामवासना से भर देगी। अगर तुम क्रोध को दबाओगे, तो तुम्हारे भीतर क्रोध रोएं-रोएं में समा जाएगा। अगर तुम शरीर का दमन करोगे, तो तुम यह मत सोचना कि तुम आत्मवादी हो जाओगे; तुमसे ज्यादा शरीरवादी खोजना मुश्किल हो जाएगा। अगर तुम बाहर के जगत को इनकार करके हिमालय की गुफा में भाग जाना चाहोगे, तो हिमालय की गुफा में बैठ कर भी तुम बाहर के जगत का ही चिंतन-मनन करोगे।

मैं पूरे मनुष्य में भरोसा करता हूं। बाहर भी अपना है, भीतर भी अपना है। बाजार भी अपना है और मंदिर भी अपना है। धन भी अपना है और ध्यान भी अपना है। प्रेम में भी डूबो और समाधि को भी मत भूलो। दोनों पंखों को एक साथ सम्हाल लेना है।

और जीवन में जो भी परमात्मा ने दिया है—क्रोध हो, कि लोभ हो, कि काम हो, कि अहंकार हो—इन सभी का रूपांतरण हो सकता है। क्रोध का जब रूपांतरण होता है तो करुणा निर्मित होती है। और अहंकार का जब रूपांतरण होता है तो आत्मभाव पैदा होता है। और काम का जब रूपांतरण होता है तो ब्रह्मचर्य का जन्म होता है। इनमें से कोई भी ऊर्जा निषेध करने के लिए नहीं है। ये सारी ऊर्जाएं शुद्ध करने के लिए हैं। इनका इनकार नहीं, इनका परिष्कार!

तो निश्चित ही, किशोरदास, तुम्हारी चिंता ठीक है। ऐसा हो सकता है। लेकिन उससे हमें कोई चिंता नहीं है। न होगा तो समझना कि चमत्कार हुआ! न होगा तो ही हम चकित होंगे। होना तो सुनिश्चित ही है, देर-अबेर!

लेकिन फिर भी हम मनुष्य-जाति के लिए एक नये प्रयोग की संभावना को वास्तविक करके छोड़ जाएंगे। एक प्रयोग को प्राण दे जाएंगे। और यह प्रयोग अगर थोड़े से लोगों में भी सफल हो गया तो मनुष्य का भविष्य का इतिहास एकदम भिन्न होगा।

अब तक का धर्म अधूरा-अधूरा था, अंतर्मुखी था। इसलिए जिन देशों ने धार्मिक होने की चेष्टा की, वहां विज्ञान पैदा नहीं हुआ। अंतर्मुखी व्यक्ति कैसे विज्ञान को जन्म दे? तुम अगर गरीब हो, तो तुम्हारे धर्म के कारण गरीब हो। यह देश अगर भूखा मर रहा है, तो धन्यवाद दो तुम्हारे साधु-संतों-महात्माओं को! उनकी कृपा से! क्योंकि विज्ञान जन्मे कैसे? विज्ञान के लिए बहिर्मुखी होना जरूरी है। विज्ञान का अर्थ ही होता है—बाहर जो है उसका निरीक्षण, गहरा निरीक्षण, गहरा अवलोकन—पदार्थ का अवलोकन। और तुम्हारे साधु-संत कहते रहे: भइया, पदार्थ तो माया है। माया का कहीं कोई निरीक्षण करता है? है ही नहीं। ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या। जगत है ही नहीं। जो है ही नहीं, उसका विज्ञान कैसे बनेगा? और जो है ही नहीं, उसमें उत्सुकता क्या लेनी?

पश्चिम के लोगों ने कहा कि ब्रह्म मिथ्या, जगत सत्य। तो उन्होंने विज्ञान तो निर्मित कर लिया, लेकिन ध्यान खो गया। विज्ञान तो खूब फला; धन का अंबार लग गया; लेकिन भीतर आदमी बिलकुल दरिद्र हो गया।

मैं तुमसे क्या कहता हूं? मैं कहता हूं: ब्रह्म सत्य, जगत सत्य। मैं कहता हूं: दोनों सत्य हैं। दोनों एक ही सत्य के दो पहलू हैं। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उनमें कोई भी असत्य नहीं है। न तो मैं कार्ल मार्क्स से राजी हूं, जो कहता है कि जगत सत्य, ब्रह्म मिथ्या; न मैं शंकराचार्य से राजी हूं, जो कहते हैं कि ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या। मेरी उदघोषणा तो है: दोनों सत्य हैं। जगत भी सत्य, ब्रह्म भी सत्य। जगत है ब्रह्म की देह, ब्रह्म है जगत का प्राण। दोनों साथ-साथ हैं। और दोनों हैं, इसलिए जीवन अति सुंदर है!

भविष्य का मनुष्य वैज्ञानिक और धार्मिक साथ-साथ होगा, धार्मिक और वैज्ञानिक साथ-साथ होगा। उस धर्म और विज्ञान के समन्वय को मैं पैदा करने की कोशिश कर रहा हूं। इसलिए और भी आश्चर्य की बात: धार्मिक ही मेरा विरोध नहीं करेंगे, अधार्मिक भी मेरा विरोध करेंगे। अध्यात्मवादी ही विरोध नहीं करेंगे, पदार्थवादी भी विरोध करेंगे। क्यों? क्योंकि उनको लगता है कि मैं परमात्मा को बीच में ला रहा हूं—जो नहीं लाना चाहिए, पदार्थ पर्याप्त है। अध्यात्मवादी को लगता है कि मैं पदार्थ को क्यों बीच में ला रहा हूं? परमात्मा पर्याप्त है। और मैं कहता हूं: तुम निर्णय न करो कि क्या पर्याप्त है; सिर्फ निरीक्षण करो। दोनों मौजूद हैं। दोनों जरूरी हैं। दोनों अपरिहार्य अंग हैं। और दोनों की मौजूदगी से अस्तित्व में वैविध्य है, सौंदर्य है, गरिमा है, महिमा है।

थोड़े से फूल बो जाना है। जितनी देर मौका मिले, थोड़े से फूल बो जाना है। फूल लोग बो ही नहीं पाते। जिनको तुम बहुत अच्छे-अच्छे लोग कहते हो, वे भी ज्यादा से ज्यादा इतना ही कर पाते हैं कि कांटे न बोएं, बस। तुम्हारा संत जो है वह कांटे नहीं बोता। मेरे संत की जो धारणा है वह फूल बोने की धारणा है। कांटे नहीं बोना नकारात्मक है; पर्याप्त नहीं। तुमने बगीचे में कांटे नहीं बोए, इससे मत सोचना कि फूल खिलेंगे। कांटे तो नहीं बोने हैं निश्चित; फूल बोने हैं।

मेरा किसी से कुछ विरोध नहीं है। इसलिए सारे धर्मों के शास्त्रों पर बोल रहा हूं, ताकि उनमें जो भी सुंदर है, नया मनुष्य उसे आत्मसात कर ले। जो भी सुंदर है, जो भी श्रेष्ठ है, वह नये मनुष्य की श्वासों में समा जाए! मेरा संन्यासी हिंदू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं। लेकिन मैं बाइबिल पर बोल रहा हूं, ताकि बाइबिल में जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुंदर है...और सभी सुंदर नहीं है, सभी श्रेष्ठ नहीं है। वेद में जो भी सुंदर है, श्रेष्ठ है...और ध्यान रखना, सभी सुंदर नहीं है, सभी श्रेष्ठ नहीं है। क्योंकि वेद किसी एक व्यक्ति के लिखे हुए नहीं हैं, न बाइबिल किसी एक व्यक्ति की लिखी हुई है; न मालूम कितने लोगों ने लिखे हैं, न मालूम कितने लोगों के हाथ लगे हैं! ऐसे लोगों की भी पंक्तियां उनमें हैं जो परमज्ञान को उपलब्ध हुए थे और ऐसे लोगों की भी जो कोरे पंडित थे। इसलिए छांट रहा हूं। उसमें जो भी सुंदर है, फिर किसी दिशा से आता हो—फिर जरथुस्त्र से आता हो कि लाओत्सु से, कि चीन से आता हो कि ईरान से—जहां से भी आता हो, सारी मनुष्य-जाति की संपदा हमारी है। उसमें जो-जो फूल हैं, चुन लेने हैं—और एक गुलदस्ता तुम्हें दे जा रहा हूं!

लेकिन लोग उसमें नाराज होने वाले हैं, क्योंकि जो मैं छोड़ दूंगा, जो मैं नहीं चुनूंगा, वही उनकी अड़चन होगी। कुछ बातें मैं नहीं चुन सकता हूं। क्योंकि वे बातें परमज्ञान से उदभूत नहीं हुई हैं। या अगर परम ज्ञानियों ने भी कही हैं तो सामयिक थीं; उनका मूल्य समय के साथ समाप्त हो गया। उनका कोई शाश्वत मूल्य नहीं है। तो जो भी सनातन है, शाश्वत है—एस धम्मो सनंतनो—उस सबका सार-निचोड़, उस सबको इत्र की तरह तुम्हें भेंट कर रहा हूं!

इसमें बहुत नाराजगियां होंगी, बहुत विरोध होंगे। लेकिन हमारा किसी से विरोध नहीं है, हमारी किसी से नाराजगी नहीं है। हम किसी के खिलाफ नहीं लड़ रहे हैं। मगर फिर भी यह आघात जड़ पर है; इसलिए सभी पत्ते नाराज हो जाने वाले हैं।

किशोरदास! तुम्हारी चिंता तो उचित है, लेकिन इससे बचने का कोई उपाय नहीं। ऐसी दुनिया है। और जैसी दुनिया है, उसके साथ काम करना है।

समझौता नहीं होगा। समझौते कर-कर के ही यह दुनिया अब तक बनी रही है। मेरी दृष्टि में कोई समझौता नहीं है। वही कहूंगा, जैसा है। वही कहूंगा, जैसा मुझे दिखाई पड़ता है। फिर जो भी उसका परिणाम होता है, वह शुभ है। उस परिणाम के लिए भी परमात्मा को धन्यवाद देना है।

तीसरा प्रश्नः अगर मैं अपनी खुद की बात कहूं, तो ध्यान के गहरे अनुभव, जब मैंने कृष्णमूर्ति या आपका नाम तक न सुना था, तब हुए। यह स्वानुभव किसी भी विधि का अभ्यास किए बिना ही हुआ। इसलिए कृष्णमूर्ति जब यह कह रहे हैं कि किसी विधि का अभ्यास मत करो, वह सहज घटित होता है, तब यह बात मुझे स्वाभाविक मालूम होती है। आखिर कृष्णमूर्ति का जोर सतत जागरूकता और केंद्ररहित हो जीवन से ही सीखना, इस पर तो है ही, जिसके फलस्वरूप ध्यान घट सकता है। अगर मैं भूलता नहीं हूं, तो आप कृष्णमूर्ति के इस विधान से सहमत नहीं हैं। इससे मुझे तो काफी अचरज भी होता है। आपका दृष्टिकोण समझने की उम्मीद रखता हूं।

निपुण शास्त्री! पहली तो बात कि ध्यान के गहरे अनुभव अगर कृष्णमूर्ति और मुझे सुनने के पहले हुए थे, तो मुझे और कृष्णमूर्ति को सुनने की जरूरत क्या है? प्रयोजन क्या है? उन ध्यान के गहरे अनुभवों को और गहराओ। उस स्वानुभव में और उतरो।

बहुत गहरे न हुए होंगे अनुभव, कहीं कोई कोर-कमी रह गई होगी। इसीलिए तलाश शुरू हुई। और अब तो समझ आ गई; अब भी मुझे सुनने आए हो, अब भी पूछ रहे हो! पूछना संदेह का सूचक है। तुम्हें अपने अनुभवों पर भरोसा नहीं मालूम होता। कहीं दूर गहरे में संदेह छिपा है कि पता नहीं ध्यान के अनुभव थे वे या मन की ही कल्पनाएं थीं!

और क्या अनुभव हुआ था? क्योंकि अगर सच समझो तो ध्यान का कोई अनुभव नहीं होता। जब सब अनुभव समाप्त हो जाते हैं, तब जो शेष रह जाता है, उसका नाम ध्यान है। ध्यान के न तो उथले अनुभव होते हैं, न गहरे अनुभव होते हैं। ध्यान अनुभव का नाम ही

नहीं है। जहां तक अनुभव है, वहां तक ध्यान नहीं; और जहां से ध्यान शुरू होता है, वहां कहां अनुभव? अनुभव तो हमेशा बाहर-बाहर रह जाता है। अनुभव का तो अर्थ है कि चेतना में कोई विषय-वस्तु है। और ध्यान का अर्थ है: विषय-वस्तु रहित चैतन्य। अगर लगे कि खूब सुख का अनुभव हो रहा है, तो इसका अर्थ हुआ कि चेतना है और सुख का अनुभव है। सुख का अनुभव चेतना में खड़ा है या चेतना को घेरे है। चेतना तो भिन्न है। चेतना तो वह है जिसे सुख का अनुभव हो रहा है। सुख का अनुभव चेतना नहीं है।

फिर ध्यान का कैसे अनुभव होगा? ध्यान का अनुभव होता ही नहीं। दर्पण है, दर्पण पर कोई प्रतिबिंब बनता है, तो अनुभव। और जब दर्पण पर कोई प्रतिबिंब नहीं बनता, दर्पण निराकार है, शून्य है—तब ध्यान। ज्ञान के अनुभव होते हैं, ध्यान के अनुभव नहीं होते। जहां तक अनुभव है, वहां तक मन है। मन अनुभवों का जोड़ है। सुख के अनुभव, दुख के अनुभव, गहराइयों के अनुभव, ऊंचाइयों के अनुभव—सब अनुभव मन के भीतर हैं। और ध्यान अमन की दशा है, उन्मनी दशा है—जहां मन न रहा, जहां सब अनुभव गए; जहां एक शब्द भी उठता नहीं; जहां एक विषय भी छाया नहीं डालता। उस निर्दोष, उस निर्मल चैतन्य का नाम ध्यान है।

तुम कहते हो: 'अगर मैं अपनी खुद की बात कहूं, तो ध्यान के गहरे अनुभव, जब मैंने कृष्णमूर्ति या आपका नाम तक न सुना था, तब हुए।'

अनुभव हुए होंगे, पर उन्हें ध्यान के अनुभव न कहो। प्रीतिकर अनुभव हुए होंगे, सुखद अनुभव हुए होंगे, मधुर अनुभव हुए होंगे, मगर उन्हें ध्यान के अनुभव न कहो। ध्यान का अनुभव होता ही नहीं। ध्यान अनुभव नहीं है। ध्यान अनुभव से मुक्ति है। ध्यान अनुभवातीत है, भावातीत है, अतिक्रमण है।

दूसरी बात: 'यह स्वानुभव किसी भी विधि का अभ्यास किए बिना ही हुआ। इसलिए कृष्णमूर्ति जब यह कह रहे हैं कि किसी विधि का अभ्यास मत करो, वह सहज घटित होता है, तब यह बात मुझे स्वाभाविक मालूम होती है।'

अब समझना! किसी विधि का अभ्यास मत करो, यह एक विधि है। यह नकारात्मक विधि है। विधियां दो तरह की होती हैं—विधायक और नकारात्मक। विधायक विधि में कहा जाता है—इस विधि का अभ्यास करो, उस विधि का अभ्यास करो। नकारात्मक में कहा जाता है—किसी विधि का अभ्यास न करो। इसका अर्थ क्या हुआ? अविधि का अभ्यास करो। अगर इसका ठीक-ठीक अर्थ समझो तो इसका अर्थ हुआ—अविधि का अभ्यास करो। विधि से बचो। विधि आए तो पकड़ो मत। विधि मिल भी जाए तो उपयोग मत करो। मगर यह नकारात्मक विधि हुई। यह कोई नई बात तो नहीं।

उपनिषद कहते हैं: नेति-नेति। न यह, न वह। छोड़ते चलो, किसी विधि का अभ्यास न करो।

बुद्ध ने तो नकार पर बड़ा जोर दिया है; कोई विधि नहीं!

ईसाई फकीरों में एक वर्ग हुआ है, इकहार्ट और उन जैसे फकीरों का, जो कहते हैं—वॉया निगेटिवा; नकार से मार्ग है; नहीं से द्वार है। यह भी एक विधि है। यह नकारात्मक विधि है।

मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि अगर विधि ही पकड़नी हो तो विधायक पकड़ना। क्योंकि विधायक विधि को छोड़ना आसान होगा, नकारात्मक विधि को छोड़ना बहुत मुश्किल होगा। क्योंकि पहले तो तुम यह समझोगे कि यह विधि ही नहीं है, तो छोड़ने का सवाल ही न उठेगा।

मैंने सुना है, एक आदमी बहुत सी पट्टियां मुंह पर बांधे है, क्योंकि एक कार दुर्घटना में बड़ी उसे चोट लगी, और ऐसा दिग्भ्रमित कि आंखें उसकी बिलकुल अभी तक चकराई हुई हैं, अभी तक उसे भरोसा नहीं आ रहा है कि क्या हुआ है। दांत के चिकित्सक के वहां पहुंचा। क्योंकि दांतों में भयंकर चोट लगी है, पूरा जबड़ा हिल गया है, और दांत सब उखड़ गए हैं। उन दांतों को निकलवाए बिना कोई चारा नहीं है। डाक्टर ने उसका निरीक्षण किया और फिर अपने सहयोगी को बोला कि मैं बड़ी मुश्किल में हूं।

क्या मुश्किल है? सहयोगी ने पूछा।

उसने कहा: मुश्किल यह है कि इस आदमी की हालत बड़ी खराब है। यह करीब-करीब बेहोश जैसी अवस्था में है। और इसके दांत निकालने में भयंकर पीड़ा होगी। और दांत निकालने के पहले क्लोरोफार्म दिए बिना कोई चारा नहीं है।

पर, सहयोगी ने कहा कि इसमें मुझे कुछ अड़चन नहीं मालूम होती, तो क्लोरोफार्म दें।

उसने कहा: अड़चन यही तो है, क्लोरोफार्म देने के बाद यह कैसे पता चलेगा, कब पता चलेगा कि यह आदमी बेहोश हो गया? यह आदमी करीब-करीब बेहोश है। तो क्लोरोफार्म देने पर कब मैं रुकूं, कहां रुकूं, कि पता चल जाए कि यह आदमी बेहोश हो गया?

नकारात्मक विधि का जो आदमी उपयोग करेगा, पहले तो वह मान कर चलता है कि यह विधि नहीं है; यहीं खतरा है। तो छोड़ने का तो सवाल ही न उठेगा।

एक झेन फकीर के पास उसका शिष्य आया। बीस वर्षों से श्रम कर रहा है। और फकीर ने कहा है: एक हाथ की ताली की आवाज कैसी होती है, इस पर ध्यान करो। अब एक हाथ की ताली की आवाज कुछ होती ही नहीं! ताली तो बजती दो हाथों से है। आवाज ही जब होगी तो दो हाथों से होगी। दो टकराएंगे तो आवाज होगी; आवाज का अर्थ है टकराहट। एक हाथ की ताली कैसे बजेगी? बहुत तरह के उत्तर युवक खोज कर लाता रहा। लेकिन कोई उत्तर सही नहीं हो सकता। गुरु उत्तर सुनता ही नहीं था, वह पहले ही कह देता था—गलत! अभी उसने उत्तर बताया भी नहीं है। उसने एक दिन पूछा भी कि आप भी हैरान करते हैं मुझे! मैं खोज कर लाता हूं महीनों की मेहनत के बाद, ध्यान करते-करते खोजता हूं कि यह उत्तर ठीक होगा, और मैं बोल भी नहीं पाता और आप...दरवाजे के भीतर आता हूं, कह देते हैं—गलत, यह भी गलत!

गुरु ने कहा कि सभी उत्तर गलत हैं। इसलिए पूछने और सुनने की जरूरत क्या है? उत्तर तुम जब तक लाते रहोगे, तब तक गलत! जिस दिन तुम शून्य आओगे, निरुत्तर आओगे, यह जान कर आओगे कि कोई उत्तर नहीं है, शून्य का अनुभव करके आओगे, उस दिन कुछ बात बनेगी।

बीस साल लंबे श्रम के बाद शून्य का अनुभव हुआ। तुम सोच सकते हो उस व्यक्ति की खुशी और आनंद और उल्लास! बीस वर्ष...लंबी साधना थी! आधी उम्र निकल गई।

लेकिन घटना आज घटी। आधी रात थी जब यह घटना घटी; मगर सुबह तक वह प्रतीक्षा न कर सका। यह समाचार तो गुरु को अभी देना है। बीस वर्ष से वे भी प्रतीक्षा करते हैं। और आज वह शुभ घड़ी आ गई कि मैं जाकर निवेदन कर दूं। वह भागा, आधी रात में जाकर द्वार खटखटाए। गुरु के चरणों पर गिर पड़ा। गुरु ने एक नजर उसकी तरफ देखा और कहा : जा बाहर, इसको भी फेंक कर आ!

उस युवक ने कहा : किसको फेंक कर आऊं? अब तो कुछ बचा नहीं है। शून्य का अनुभव हुआ है।

गुरु ने कहा : बस, बाहर जा। शून्य का कहीं अनुभव होता है! और जिसका अनुभव हो जाए वह शून्य न रहा। शून्य भी अगर अनुभव हो जाए तो शून्य नहीं रहा। अब तुझे शून्य को छोड़ना पड़ेगा। अब तू शून्य को भी छोड़ दे, तब तू सच में शून्य हो जाएगा।

नकारात्मक विधि का यही खतरा है कि वह पहले से ही नकार है। अब वह युवक सिर धुनने लगा और कहने लगा कि यह तो बड़ी मुश्किल हो गई! कुछ हो तो छोड़ना आसान है, अब शून्य को कैसे छोड़ूं? शून्य कुछ है तो नहीं जिसे छोड़ूं!

नकारात्मक विधि से जो चलेगा, वह अड़चन में पड़ेगा एक दिन। अड़चन यह आएगी कि जब नकारात्मक विधि छोड़नी पड़ेगी तो क्या छोड़ोगे?

पहले तो यह समझ लेना कि नकारात्मक विधि भी विधि है। कृष्णमूर्ति कहते हैं : किसी विधि का अभ्यास मत करो! यह तो विधान हो गया। यह तो आज्ञा हो गई। यह तो आदेश हो गया। अनुशासन दे दिया गया—किसी विधि का अभ्यास मत करो! यह विधि है। अविधि का अभ्यास, या विधि का अनभ्यास—जो भी नाम देना चाहो दे लो।

कृष्णमूर्ति चालीस वर्षों से यही तो समझा रहे हैं। अगर कोई विधि न होती तो चालीस वर्षों तक समझाते क्या? समझाने को क्या बचता है? चुप बैठ गए होते। तुम पूछते और वे हंसते। तुम पूछते और वे चुप रहते और चुप ही रहते। जब कोई विधि ही नहीं है, तो शिक्षण कुछ हो नहीं सकता। लेकिन अविधि भी विधि है। और सच तो यह है कि विधि का शिक्षण तो जल्दी हो जाता है, अविधि के शिक्षण में काफी दिक्कत होती है। क्योंकि लोगों को समझाना नकार को कठिन पड़ता है। विधेय तो पकड़ में आता है, नकार पकड़ में नहीं आता। इसलिए चालीस साल का अथक श्रम, और कितने लोग पकड़ पाए हैं नकार की विधि को? कृष्णमूर्ति को सुनते रहे हैं, सुनते रहे हैं...। हां, एक बात हो गई है उनके भीतर—इतनी बात समझ में आ गई है कि किसी विधि को नहीं करना है। मगर यह अविधि क्या है, यह अभी भी समझ में नहीं आया है। और तब चूक हो रही है।

और कृष्णमूर्ति जैसे-जैसे बूढ़े होते जाते हैं, वैसे-वैसे देखते हैं कि जीवन भर की चेष्टा परिणाम कुछ भी नहीं ला पाई है। तो कभी-कभी तो बोलते-बोलते बहुत उत्तेजित हो जाते हैं। स्वाभाविक, कि इन्हीं लोगों को इतने दिन से समझा रहे हैं, किसी की कुछ समझ में आता मालूम नहीं पड़ता।

नकारात्मक विधि को समझाना कठिन होता है। मगर विधि फिर भी विधि है।

तुम कहते हो : 'इसलिए कृष्णमूर्ति जब यह कहते हैं कि किसी विधि का अभ्यास मत करो, वह सहज घटित होता है, तब यह बात मुझे स्वाभाविक मालूम होती है।'

तो फिर घट जाने दो। बात को स्वाभाविक बनाए रखने से क्या होगा? फिर घट क्यों नहीं जाने देते? फिर रुकावट क्या है? विधि तो कुछ करनी नहीं है। और बिना विधि के भी तुम कहते हो ध्यान के गहरे अनुभव हुए थे। तो फिर रोक कौन रहा है? अगर विधि साधनी होती तो रुकावट भी हो सकती थी कि जब विधि साधेंगे, तब परिणाम होगा। विधि तो साधनी नहीं है। फिर हो क्यों नहीं जाती बात?

और क्या तुम सोचते हो दुनिया में सारे लोग ध्यान की विधियां साध रहे हैं, इसलिए अड़चन पड़ रही है? कितने लोग ध्यान कर रहे हैं? अगर यह बात सहज होती है, तो सिर्फ ध्यान करने वालों को छोड़ कर बाकी सब को होनी चाहिए। इतनी बड़ी पृथ्वी पर, चार अरब लोग हैं, कितने लोग ध्यान कर रहे हैं? अरबों लोग ध्यान नहीं कर रहे हैं। अगर ध्यान न करने से ही विधि पूर्ण हो जाती है और ध्यान लग जाता है, तो सिर्फ ध्यानी भर चूकता, गैर-ध्यानी सब पा लेते। अगर बात स्वाभाविक है तो घटती क्यों नहीं?

फिर कृष्णमूर्ति किसको समझा रहे हैं? क्या प्रयोजन है समझाने का? जो बात स्वाभाविक है, स्वाभाविक है; समझाने से अस्वाभाविक हो जाएगी। समझाने से अड़चन हो जाएगी। फिर तो आदमी जैसा है, बिलकुल ठीक है।

नहीं, कृष्णमूर्ति व्यर्थ नहीं समझा रहे हैं। आदमी जैसा है, वैसे ही ध्यान को उपलब्ध नहीं हो जाएगा। और जो लोग ध्यान नहीं कर रहे हैं, प्रमाण है इस बात का कि वे ध्यान को उपलब्ध नहीं हो गए हैं।

फिर कृष्णमूर्ति का प्रयोजन क्या है, जब वे कहते हैं कि कोई विधि का अभ्यास मत करो? तुम मुझे समझोगे तो ही उस बात का प्रयोजन समझ में आएगा। क्योंकि कृष्णमूर्ति का दृष्टिकोण थोड़ा एकांगी है, समग्र नहीं है। मैं विधि भी सिखाता हूं, अविधि भी सिखाता हूं। मेरा दृष्टिकोण सर्वांगीण है। मैं कहता हूं: पहले खूब विधि साधो। इतनी साधो कि साधते-साधते थक जाओ, चरम अवस्था में पहुंच जाओ साधने की। जितनी साध सको उतनी साधो। शिखर पर पहुंच जाओ। और फिर भी तुम पाओगे—अभी ध्यान नहीं मिला है, अभी ध्यान नहीं मिला है। दौड़ो, दौड़ो, जितना दौड़ सको, दौड़ो—और पाओगे कि ध्यान है कि क्षितिज जैसा दूर हटा जाता है! और ध्यान है कि लगता है मिला, मिला, मिला...और मिलता नहीं। और इतने पास है कि चार कदम और दौड़ लूं तो मिल जाए, हाथ आ जाए।

और मैं कहता हूं: और जोर से दौड़ो! और जोर से दौड़ो! एक दिन दौड़ते-दौड़ते ही जब तुम्हारी दौड़ने की सारी क्षमता टूट जाएगी, चुक जाएगी, जब तुम अपने आप गिर पड़ोगे—उस गिरने में ही घटना घटेगी।

ध्यान की विधि से ध्यान नहीं मिलेगा; लेकिन ध्यान की विधि का उपयोग करते-करते एक दिन इतने थक कर गिरोगे कि करने को कुछ भी बचेगा नहीं। उस अविधि में, उस अप्रयास के क्षण में ध्यान बरस जाता है।

इसलिए जो ध्यान नहीं कर रहे हैं उनको ध्यान नहीं मिल रहा है और जो ध्यान कर रहे हैं उनको ध्यान नहीं मिल रहा है। ध्यान उनको मिलता है जो ध्यान करते हैं और करते-करते उस जगह पहुंच जाते हैं जहां आगे करने को कुछ भी शेष नहीं रह जाता। करने की थकान से टूट कर गिर जाते हैं, उनको ध्यान मिलता है।

तो अगर तुम मुझसे पूछो कि संक्षिप्त में मेरा क्या संदेश है? विधि को साधो, ताकि अविधि को उपलब्ध हो सको। और जिस दिन अविधि को उपलब्ध होते हो, उस दिन ध्यान अपने आप बरस जाता है। ध्यान सहज-स्वाभाविक है। मगर सहज-स्वाभाविक ध्यान, सिर्फ न करने से नहीं मिलता है। कर के, कर-कर के न करने की दशा उपलब्ध हो जाती है, तब मिलता है।

ऐसे बुद्ध को मिला। छह वर्ष अथक विधि है। सब दांव पर लगा दिया, कुछ भी बचाया नहीं। और छह वर्ष सब दांव पर लगाने के बाद एक सांझ पाया कि पाया क्या? कुछ भी तो मिला नहीं! सब किया जो किया जा सकता था; मानवीय रूप से जो भी संभव था, सब किया। कुछ मिला तो नहीं! उस रात थक गए थे, बुरी तरह थक गए थे। उस रात ध्यान भी छोड़ दिया, विधि भी छोड़ दी, योग भी छोड़ दिया, तप भी छोड़ दिया। उनके पांच शिष्य थे, वे यह देख कर कि उन्होंने तप-जप-ध्यान सब छोड़ दिया, बुद्ध को छोड़ कर चले गए। उन्होंने कहा: यह तो भ्रष्ट हो गया, यह गौतम भ्रष्ट हो गया! स्वभावतः, वे बुद्ध के पीछे इसलिए लगे थे कि वे बुद्ध की तपश्चर्या से बड़े प्रभावित हुए थे। तीन-तीन महीने के बुद्ध ने उपवास किए। उनमें पांचों में से कोई भी तीन महीने का उपवास नहीं कर सकता था, इसलिए वे प्रभावित थे। कोई तीन सप्ताह कर सकता था, कोई चार सप्ताह; तीन महीने का उपवास कोई भी नहीं कर सकता था, तो वे प्रभावित थे कि यह है गुरु! शरीर को सुखा डाला था! उन्होंने बहुत गुरु देखे थे, लेकिन ऐसा गुरु नहीं देखा था—तपस्वी! कहानी कहती है कि पेट पीठ से लग गया था। शरीर को ऐसा सुखा डाला था कि छाती की एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी। चमड़ी और छाती के बीच में मांस-मज्जा बिलकुल नहीं रह गए थे, चमड़ी सीधी हड्डियों से जुड़ गई थी। इसीलिए तो वे प्रभावित थे!

इस दुनिया में लोगों के प्रभावित होने के भी अजीब-अजीब ढंग हैं! लोग इतने रुग्ण हैं कि गलत चीजों से प्रभावित होते हैं! कोई आदमी सिर के बल खड़ा है, उससे प्रभावित हो जाते हैं। अब अगर परमात्मा की यही मर्जी थी, तो सभी को सिर के बल खड़ा किया होता; यह भूल क्यों करता परमात्मा कि पैर के बल खड़ा करता! अब यह जो मूढ़ सिर के बल खड़ा हो गया है...ये योगिराज हो जाते हैं! अगर परमात्मा की यही मर्जी थी कि पेट पीठ से लग जाए, तो पेट पीठ से ही लगा हुआ पैदा किया होता।

जिस दिन बुद्ध ने घोषणा कर दी कि बस, जो मैं कर सकता था कर चुका, और मैंने पाया कि यह सब व्यर्थ है, यह सब आयोजन व्यर्थ है! मैं आज सब त्याग रहा हूं। संसार मैं पहले छोड़ चुका था, साधना आज छोड़ रहा हूं। जिस दिन उन्होंने यह घोषणा की—संसार तो छोड़ ही चुके थे—साधना भी छोड़ रहा हूं; इस लोक से तो थक ही गया था, अब उस लोक से भी थक गया; इहलोक छोड़ा, परलोक भी छोड़ता हूं—उसी दिन पांचों शिष्यों ने आपस में विचार किया कि यह गौतम भ्रष्ट हो गया! अब हम इसके पास रह कर क्या करें? वे छोड़ कर चले गए।

और बुद्ध उसी रात समाधि को उपलब्ध हुए, उसी रात! क्योंकि उस रात चिंता न रही, पाने की कोई आकांक्षा न रही—न इस लोक में, न परलोक में। ध्यान और समाधि पाने की वासना भी न रही।

वासना मात्र बाधा है। तुम विधि का उपयोग क्यों करते हो? क्योंकि वासना है—ध्यान पाना चाहते हो। कोई धन पाना चाहता है, तुम ध्यान पाना चाहते हो। पाना चाहने में तो कुछ भेद नहीं है, चाह तो है! और चाह दोनों को खींचेगी भविष्य की तरफ। और चाह विश्राम में न उतरने देगी। और चाह दौड़ाएगी; चाह ठहरने न देगी। और चाह चित्त को चलाएगी और चंचल रखेगी। और चाह रहेगी तो चित्त चलता रहेगा, चित्त में चलने की गरमी बनी रहेगी। फिर धन पाना है कि ध्यान, भेद नहीं पड़ता; कुछ भी पाना है तो महत्वाकांक्षा है। और जहां महत्वाकांक्षा है वहां मन है। और जहां मन है वहां ध्यान कहां!

उस रात सारी महत्वाकांक्षा छूट गई। उस रात कोई भाव न था, कोई विचार न था, कोई भविष्य न था। उस रात सो रहे। लेटे थे, पूर्णिमा की रात थी। पूर्णिमा के प्रकाश में सूखी देह, अत्यंत कृशकाय हुए, अमानवीय मालूम होते होंगे, भूत-प्रेत जैसे मालूम होते होंगे! एक स्त्री ने मनौती मनाई थी कि उस वटवृक्ष को, पूर्णिमा की रात, अगर वह गर्भिणी हो जाएगी, तो खीर भेंट करेगी। वह गर्भिणी हो गई थी, पूर्णिमा की रात आ गई थी, तो वह सुजाता नाम की स्त्री, थाल में खीर भर कर, मिष्ठान्न लेकर, सुस्वादु भोजन लेकर, वटवृक्ष को चढ़ाने आई थी, निरंजना नदी के तीर पर। देखा वहां उसने, उस पूर्णिमा के प्रकाश में, जैसे वटवृक्ष का देवता स्वयं प्रकट हुआ हो! वह तो भाव-विभोर हो उठी, चरण छुए और कहा : हे वटवृक्ष के देवता! मैंने तो कभी कल्पना भी न की थी कि आप प्रकट होकर लेंगे! मगर मैं धन्यभागी हूं, मेरी भेंट स्वीकार करें!

कोई और दिन होता तो बुद्ध पहले तो रात को रात्रि-भोजन ही नहीं करते, रात्रि-भोजन तो पाप था! फिर अपरिचित, अनजान महिला, जिसका नाम सुजाता हो!

ध्यान रखना, सुजाता नाम की महिला जरूर ही शूद्र रही होगी; क्योंकि सुजात नाम रखते ही कुजात हैं, नहीं तो कौन सुजात नाम रखेगा! तुम देखते हो न, जिसका नाम सुंदरबाई...समझ जाना! नयनसुख दास...समझ जाना! जब तक आंखें खराब न हों, तब तक कोई नयनसुख दास नाम होता है! सुंदरबाई! उसका मतलब है, साफ है मामला—जो नहीं है, उसको नाम से आरोपित किया गया है।

सुजाता! सुजात न रही होगी, ब्राह्मण न रही होगी, क्षत्रिय न रही होगी। क्योंकि ब्राह्मण ऐसे नाम रखते हैं—सुजाता! क्या प्रयोजन है? कुजात रही होगी, शूद्र रही होगी। यह भी न पूछा कि तेरी जात क्या है? और दिन होता तो पूछते थे, जात क्या है? और दिन होता तो ऐसे अनजान, अपरिचित व्यक्ति से आधी रात में मिष्ठान्न और खीर स्वीकार न कर लेते। और खीर और मिष्ठान्न तो वर्षों से नहीं लिए थे; जब से महल छोड़ा था, तब से नहीं लिए थे। मगर अब कोई अड़चन न थी। जब कुछ पाना ही न था तो खोने को क्या था! चुपचाप अंगीकार कर लिया। वर्षों बाद पहली बार ठीक से भोजन किया, और पहली बार ठीक से सोए निश्चिंत। जब कोई चिंता न थी तो कोई स्वप्न भी न बने उस रात। चिंताओं की ही छाया तो स्वप्न है। रात सन्नाटे में बीत गई—एक गहन सन्नाटा!

पतंजलि ने कहा है : समाधि और सुषुप्ति में भेद नहीं है। बस इतना सा भेद है कि सुषुप्ति है बेहोश और समाधि है होशपूर्ण; अन्यथा सुषुप्ति और समाधि का एक ही रंग, एक ही ढंग, एक ही स्वाद है। उस रात स्वप्न तो नहीं थे, इसलिए प्रगाढ़ सुषुप्ति रही। और सुबह

जब आंख खुली...भोर का आखिरी तारा डूबता था। उस आखिरी तारे को डूबते देख कर डूबते देख कर, भीतर भी कुछ आखिरी हिस्सा डूब गया अहंकार का।

अहंकार ही तो है जो कहता है—धन पाओ। और अहंकार ही तो है, निपुण शास्त्री, जो कहता है—ध्यान पाओ। अहंकार ही कहता है कि संसार में बन जाओ सिकंदर, और अहंकार ही कहता है कि परलोक में हो जाओ महावीर, बुद्ध, कृष्ण! ये अहंकार की ही आकांक्षाएं हैं।

डूबता आखिरी तारा...अहंकार बिलकुल डूब गया! न कुछ पाने को है, न कहीं जाने को है। जैसा है वैसा ठीक है। तथाता का भाव पैदा हुआ। इसलिए बुद्ध का एक नाम पड़ाः तथागत! जो है, जैसा है, ठीक है। जैसा है, बिलकुल वैसा ही ठीक है। यथाभूतम्! जैसा है, बस बिलकुल वैसा ही ठीक है। इसमें कुछ भी नहीं करना है। अन्यथा कुछ होना नहीं है, करना नहीं है। समाधि खिल गई! समाधि का नीलकमल खिल गया!

यहीं मेरा कृष्णमूर्ति से भेद है; मैं उनसे सहमत भी और असहमत भी। सहमत, क्योंकि वे आधी बात कह रहे हैं; आधी बात तो सच है। असहमत, क्योंकि आधी बात मौजूद नहीं है। सीढ़ी का आखिरी हिस्सा तो है, सीढ़ी का पहला हिस्सा नहीं है। और बिना पहले हिस्से के तुम आखिरी हिस्से पर न पहुंच सकोगे। यद्यपि आखिरी हिस्से पर पहुंचना है, मगर पहला हिस्सा कहां है? सीढ़ी तब पूरी होती है जब जमीन और आसमान दोनों को छुए। क्योंकि जमीन पर हम खड़े हैं, अगर सीढ़ी जमीन न छुए तो हम चढ़ेंगे कैसे? और अगर सीढ़ी आसमान न छुए तो चढ़ने का फायदा क्या, कहीं बीच में लटके त्रिशंकु हो जाएंगे।

एक तरफ लोग हैं महर्षि महेश योगी जैसे; उनके पास भी आधी सीढ़ी है—सीढ़ी का पहला हिस्सा, विधि मात्र। दूसरी तरफ कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति हैं; उनके पास सीढ़ी का दूसरा आधा हिस्सा है—विधि नहीं, प्रयास नहीं, सहजता। दोनों अधूरे हैं। महर्षि महेश योगी के साथ जो चलेगा, विधि पर अटक जाएगा—बुद्ध के पहले छह वर्ष! कृष्णमूर्ति के साथ जो चलेगा, चल ही नहीं पाएगा। भ्रांति में रहेगा कि चल रहा हूं। सब चलना बौद्धिक रहेगा, सोच-विचार का रहेगा, जीवंत नहीं होगा। क्योंकि सीढ़ी का पहला हिस्सा मौजूद नहीं है, तुम दूसरे हिस्से पर पहुंचोगे कैसे? तुम जमीन पर हो, सीढ़ी आकाश में लगी है! तुम्हारे और सीढ़ी के बीच में इतना फासला है, इसको कैसे पार करोगे?

मैं समग्रता की बात कह रहा हूं—अनंत आयामी समग्रता की बात कह रहा हूं। सब दिशाओं में समग्रता की बात कह रहा हूं! विधि को करो और समग्रता से करो; उसी में खिलेगा फूल अविधि का! और अविधि से सुवास उठती है समाधि की!

आखिरी प्रश्नः संन्यास लूं या नहीं? डर लगता है संसार का। झेल पाऊंगा लोगों का विरोध या नहीं?

विरोध तो सुनिश्चित है। और झेल पाओगे। आत्मवान हो। अगर विरोध न झेल पाओगे, तो इसका सबूत होगा कि मुर्दे हो, जिंदा नहीं हो। आत्मा भीतर है, सब झेलने में

समर्थ है। और फिर कुछ आंधी-तूफान चाहिए आत्मा को प्रगाढ़ करने के लिए, आत्मा को एकाग्र करने के लिए। आत्मा के निखार के लिए कुछ आंधी-तूफान चाहिए।

फूल कांटों में खिला था, सेज पर मुरझा गया।

जगमगाता था ऊषा सा कंटकों में वह सुमन,
स्पर्श से उसके तरंगित था सुरभिवाही पवन,
ले कपूरी पंखुरियों में फुल्ल मधुऋतु का सपन,
फूल कांटों में खिला था, सेज पर मुरझा गया।

प्रखर रवि का ताप, झंझा के असह झोंके कठिन,
कर न पाए उस तरुण संघर्ष-कामी को मलिन,
किंतु झाड़ी से अलग हो रह न पाया एक दिन,
फूल कांटों में खिला था, सेज पर मुरझा गया।

जो अडिग रहता अड़ा तूफान में, बरसात में,
टूट जाता हँ वही तारा शरद की रात में,
मुक्त जीवन की प्रगति भी द्वंद्व में, संघात में,
फूल कांटों में खिला था, सेज पर मुरझा गया।

कांटों से डरो न। आंधियों से भगो न। तूफानों में ही आत्मा का जन्म होता है।

संन्यास लोगे, अड़चनें तो होंगी; बहुत अड़चनें होंगी, सब तरह की अड़चनें होंगी। मैं तुम्हें आश्वासन नहीं दे सकता कि अड़चनें नहीं होंगी। इतना ही आश्वासन दे सकता हूं कि तुम उन सारी अड़चनों को झेल सकने में समर्थ हो। प्रत्येक व्यक्ति समर्थ है। जो भी जीवंत है, समर्थ है। और झेल सकोगे तो निखरोगे! और झेल सकोगे तो कितने ही कांटे हों, फूल को खिलने से न रोक पाएंगे।

लेकिन तुम्हारी चिंता भी मैं समझता हूं; तुम्हारी ही नहीं, सबकी चिंता है। ऐसा ही हमारा मन है। मन हमेशा दुविधा में है। मन दुविधा है—करूं? न करूं? और ऐसा नहीं है कि कोई बड़े-बड़े सवालों में दुविधा है, छोटे-छोटे सवालों में—इस फिल्म को देखने जाऊं कि उस फिल्म को देखने जाऊं? यह साड़ी पहनूं कि वह साड़ी पहनूं? स्त्रियां खोल कर खड़ी हो जाती हैं अपने भंडार को! और घंटों लग जाते हैं यही तय करने में कि कौन सी साड़ी पहनूं! मन दुविधा है। ताला लगा कर लोग जाते हैं घर में, फिर दस-पांच कदम के बाद लौट आते हैं और खटखटा कर देखते हैं—लगा गए कि नहीं? जो होशियार हैं, वे तो और भी गजब कर देते हैं!

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे कह गई थी कि दरवाजे पर नजर रखना। वह गई थी बाहर शादी-विवाह में किसी के घर और देर से लौटेगी रात। मुल्ला किसी तरह थोड़ी-बहुत

देर तो देखता रहा, दरवाजे को अब कब तक बैठे देखते रहें! उसे जाना है मधुशाला। सो उसने उखाड़ा दरवाजा, रखा कंधे पर और चल पड़ा। रास्ते में पत्नी आती थी, वह मिली कि कहां जा रहे हो? और यह दरवाजा कहां ले जा रहे हो?

उसने कहा : तू कह गई कि दरवाजे पर नजर रखना। अब कब तक वहीं बैठा रहूं? तो रखूंगा दरवाजे पर नजर। अब जहां भी बैठूंगा, वहीं सामने रख लूंगा और नजर रखे रहूंगा।

मन का अर्थ ही यह होता है कि जो सदा बंटा हुआ है, जो सदा द्वंद्व में है—कहता है बाएं चलो, कहता है दाएं चलो; जो कभी एकजूट नहीं होता। और उसको एकजूट करने का एक ही उपाय है कि जीवन में कुछ ऐसे निष्कर्ष लो जो निष्कर्ष तुम्हारी सारी शैली को बदल जाएं, जो तुम्हें आमूल रूपांतरित कर जाएं। जीवन में कुछ ऐसे निष्कर्ष लो कि वे निष्कर्ष तुम्हारे टूटे हुए खंडों को जोड़ जाएं।

फिक्रे-दिलदारी-ए-गुलजार करूं या न करूं
जिक्रे-मुर्गाने-गिरफ्तार करूं या न करूं
किस्सा-ए-साजिशे-अगयार कहूं या न कहूं
शिकवा-ए-यारे-तरहदार करूं या न करूं
जाने क्या वज्अ है अब रस्मे-वफा की, ऐ दिल
वज्ए-दैरीना पे इसरार करूं या न करूं
जाने किस रंग में तफसीर करें अहले-हवस
मदहे-जुल्फ-ओ-लबो-रुखसार करूं या न करूं
यूं बहार आई है इमसाल कि गुलशन में सबा
पूछती है गुजर इस बार करूं या न करूं
गोया इस सोच में है दिल में लहू भरके गुलाब
दामन-ओ-जेब को गुलनार करूं या न करूं
है फकत मुर्गे-गजलख्वां कि जिसे फिक्र नहीं
मोतदिल गर्मी-ए-गुफ्तार करूं या न करूं

सुनते हो!

गोया इस सोच में है दिल में लहू भरके गुलाब
दामन-ओ-जेब को गुलनार करूं या न करूं

जैसे गुलाब तैयार है सुर्खी से लबालब भीतर, और सोच रहा है कि इस बार खिलूं या न खिलूं? इस बार सुगंध उड़ाऊं कि न उड़ाऊं?

गोया इस सोच में है दिल में लहू भरके गुलाब
दामन-ओ-जेब को गुलनार करूं या न करूं

संन्यास का भाव जगा तो गैरिक रंग तुम्हारे हृदय में भर गया है, इसलिए जगा।

गोया इस सोच में है दिल में लहू भरके गुलाब
दामन-ओ-जेब को गुलनार करूं या न करूं

अब क्या झिझकते हो? अब कैसी झिझक? अगर हृदय में गैरिक रंग छाया है तो खिल जाने दो गुलाब को अब, अब छा जाने दो बाहर भी। अड़चनें तो आएंगी। अड़चनें स्वाभाविक हैं। और अड़चनें सौभाग्य हैं। क्योंकि अड़चनें न आएं तो तुम कभी विकसित न होओगे, और आंधियां न आएं तो कभी आत्मा न जगेगी।

हैं फकत मुर्गे-गजलख्वां कि जिसे फिक्र नहीं

सिर्फ एक गाता हुआ पंछी है कि जिसे चिंता ही नहीं है, वह गाए ही चला जा रहा है। गुलाब सोच में पड़ा है कि खिलूं या न खिलूं?

हैं फकत मुर्गे-गजलख्वां कि जिसे फिक्र नहीं

लेकिन एक पक्षी भी है जो गाए चला जा रहा है।

मोतदिल गर्मी-ए-गुफ्तार करूं या न करूं

उसे गर्मी और सर्दी की भी चिंता नहीं है—वह गाए ही चला जा रहा है। सुबह हो कि सांझ हो, गाए ही चला जा रहा है। कि दुपहरी हो कि आधी रात हो, गाए ही चला जा रहा है।

मेरा गीत सुनो, मैं गाए चला जा रहा हूं।

हैं फकत मुर्गे-गजलख्वां कि जिसे फिक्र नहीं
मोतदिल गर्मी-ए-गुफ्तार करूं या न करूं

और एक तुम हो कि भीतर संन्यास का भाव उठा है, अब तुम सोच रहे हो : संन्यास लूं या नहीं?

भाव न उठे तो कभी मत लेना। भाव न उठे तो प्रश्न ही नहीं उठता। भाव न उठे तो भूल कर मत लेना। किसी की नकल मत करना। किसी और ने लिया हो, इसलिए मत ले लेना। क्योंकि वह झूठ होगा और उसका कोई अर्थ नहीं होगा।

लेकिन भाव उठा हो, तो फिर सारी दुनिया भी कहे तो रुकना मत। फिर तो जितना ही दुनिया रोके, उतना ही रुकना मत। क्योंकि यह जीवन तुम्हारा है, और इस जीवन को जीने का निर्णय तुम्हारा होना चाहिए। तुम्हारे उस संकल्प में ही तुम्हारी साधना की शुरुआत है।

आज इतना ही।

निरगुन चुनरी निर्बान

प्रवचन ३

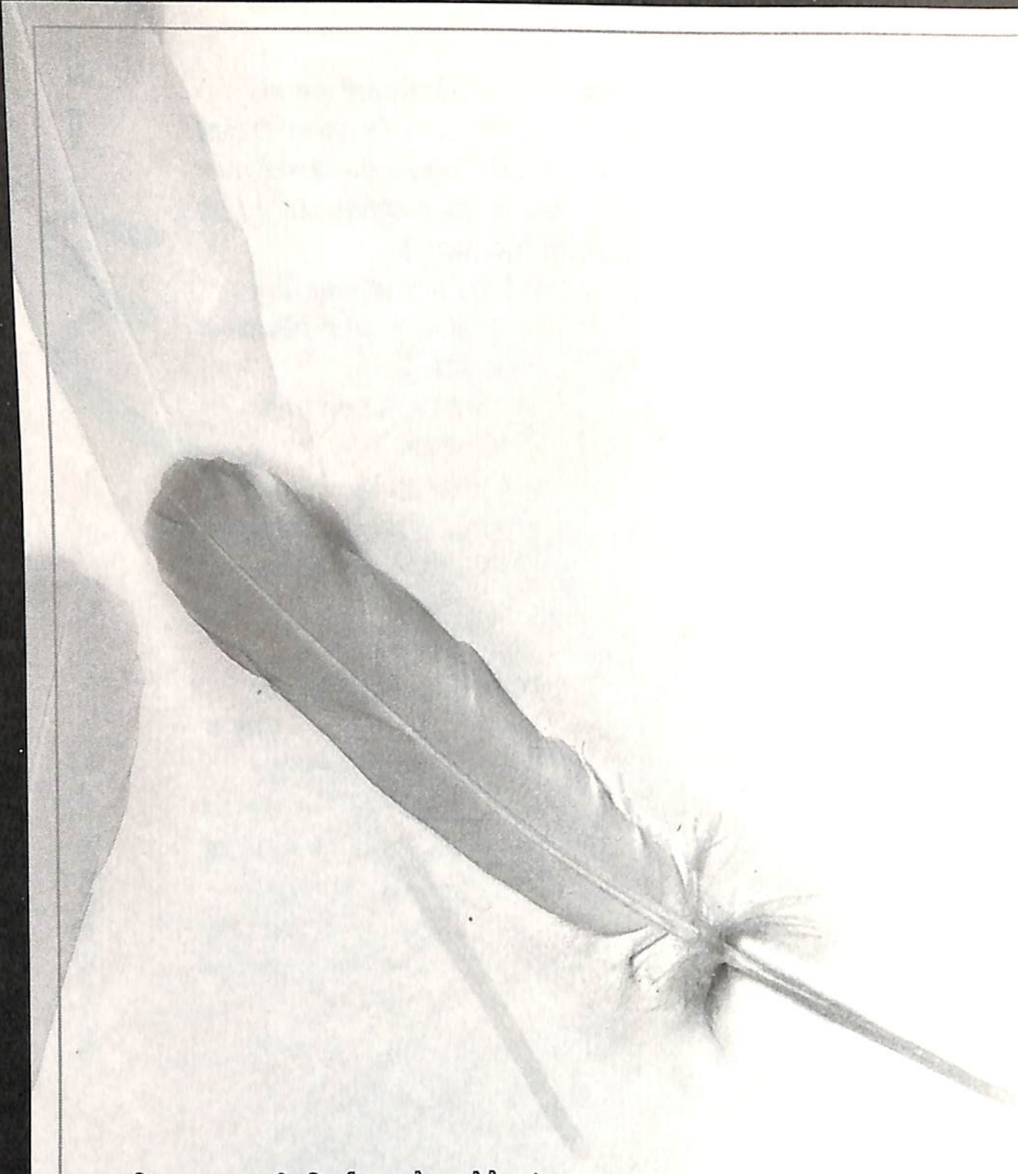

निरगुन चुनरी निर्बान, कोउ ओढ़ै संत सुजान।।
षट दरसन में जाइ खोजो, और बीच हैरान।।
जोतिसरूप सुहागिनी चुनरी, आव बधू धर ध्यान।।
हद बेहद के बाहरे यारी, संतन को उत्तम ज्ञान।।
कोऊ गुरु गम ओढ़ै चुनरिया, निरगुन चुनरी निर्बान।।

उड़ू उड़ू रे विहंगम चढ़ु आकाश।
जहं नहिं चांद सूर निसबासर, सदा अमरपुर अगम बास।।
देखै उरध अगाध निरंतर, हरष सोक नहिं जम कै त्रास।।
कह यारी उहं बधिक फांस नहिं, फल पायो जगमग परकास।।

आइए, हाथ उठाएं हम भी
हम जिन्हें रस्मे-दुआ याद नहीं
हम जिन्हें सोजे-मोहब्बत के सिवा
कोई बुत, कोई खुदा याद नहीं

आइए, अर्ज गुजारें कि निगारे-हस्ती
जहरे-इमरोज में शीरानी-ए-फर्दा भर दे
वह जिन्हें ताबे-गरांबारी-ए-अय्याम नहीं
उनकी पलकों पे शबो-रोज को हलका कर दे

जिनकी आंखों को रुखे-सुबह का यारा भी नहीं
उनकी रातों में कोई शमअ मुनव्वर कर दे
जिनके कदमों को किसी राह का सहारा भी नहीं
उनकी नजरों पे कोई राह उजागर कर दे

जिनका दीन पैरवी-ए-कज्बो-रिया है उनको
हिम्मते-कुफ्र मिले, जुरअते-तहकीक मिले
जिनके सिर मुंतजिरे-तेगे-जफा हैं उनको

दस्ते-कातिल को झटक देने की तौफीक मिले

इश्क का तीर निहां, जान तपां है जिससे
आज इकरार करें और तपिश मिट जाए
हर्फे-हक दिल में खटकता है जो कांटे की तरह
आज इजहार करें और खलिश मिट जाए

आइए, हाथ उठाएं हम भी
हम जिन्हें रस्मे-दुआ याद नहीं
हम जिन्हें सोजे-मोहब्बत के सिवा
कोई बुत, कोई खुदा याद नहीं

प्रेम को जिसने जाना, उसे फिर कुछ और जानने की आवश्यकता भी नहीं है; क्योंकि प्रेम ही अपनी ऊंचाइयों में प्रार्थना बन जाता है। और प्रार्थना ही अंततः परमात्मा का रूप ले लेती है। प्रेम सीढ़ी का पहला पायदान है; प्रार्थना मध्य है; परमात्मा अंत।

जिन्होंने प्रेम को परमात्मा से भिन्न समझा है, वे चूक ही गए रास्ते से, भटक ही गए रास्ते से। जिन्होंने प्रेम के बिना प्रार्थना की है, उनकी प्रार्थना दो कौड़ी की है, क्योंकि उनकी प्रार्थना में कोई रसधार नहीं है। उनकी प्रार्थना में उनके हृदय का कोई संग-साथ नहीं है। उनकी प्रार्थना गणित है, हिसाब है। उनकी प्रार्थना तर्क है। और तर्क, हिसाब से, गणित से कोई कभी परमात्मा तक पहुंचा है? वहां तो चाहिए हृदय की मस्ती। वहां तो बेहोश होने की क्षमता चाहिए!

आइए, हाथ उठाएं हम भी
हम जिन्हें रस्मे-दुआ याद नहीं

अच्छा ही है कि रस्मे-दुआ याद नहीं है। जिन्हें प्रार्थना की तरकीब पता है, तरकीब के कारण ही प्रार्थना मर जाती है। प्रार्थना कोई तकनीक नहीं है, कोई तरकीब नहीं है। प्रार्थना का कोई शास्त्र नहीं है। प्रार्थना की कोई विधि नहीं है। प्रार्थना तो एक पागलपन है—प्रेम से भरा पागलपन—प्रेम और दीवानगी। प्रार्थना तो एक नशा है। परमात्मा के नशे से मदमस्त आंखों का नाम प्रार्थना है। परमात्मा के आनंद में, अहोभाव में झूमता हुआ आदमी प्रार्थना है।

आइए, हाथ उठाएं हम भी
हम जिन्हें रस्मे-दुआ याद नहीं

हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं...अड़चन कहां हो गई है? मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, सब भक्तों से भरे हैं और भगवान की कहीं झलक मिलती नहीं। इतने लोग प्रार्थनाएं कर रहे हैं और प्रेम की वर्षा कहीं होती नहीं। इतने लोग नमाजों में झुके हैं और अहंकार उनके अकड़े ही खड़े हैं। शरीर झुक जाते हैं, अहंकार अकड़े के अकड़े रह जाते हैं। औपचारिक है सब। और औपचारिक से कोई रहस्य के द्वार न खुलेंगे।

परमात्मा के साथ कोई शिष्टाचार नहीं निभाना है। और जिसने शिष्टाचार निभाया,

उसने दूरी कायम रखी। प्रेम में इतनी दूरी न चलेगी। प्रेम दूरी मानता नहीं। प्रेम आलिंगन है—अस्तित्व से आलिंगन। इसका कोई विधि-विधान नहीं होता।

लेकिन हर बच्चे को हम प्रार्थना सिखा देते हैं—और इस तरह प्रार्थना से वंचित कर देते हैं। हम उसे शब्द सिखा देते हैं थोथे, जो उसके हृदय में उभरे नहीं, हमने ऊपर से थोप दिए हैं। अब इन्हीं शब्दों को दोहराता रहेगा जीवन भर। और सोचता रहेगा कि कहां कोई भूल हो गई है? शब्द तो रोज दोहरा लेता हूं, परमात्मा को रोज पुकार लेता हूं, लेकिन मेरी पुकार सुनी क्यों नहीं जाती? प्रार्थना उसके कानों तक पहुंचती क्यों नहीं?

कबीर ने किसी को जोर से खुदा को पुकारते देख कर कहा था: इतने जोर से क्यों? क्या तेरा खुदा बहरा है? इतने जोर से क्यों?

सच तो यह है कि ओंठ भी नहीं हिलते और प्रार्थना पूरी हो जाती है। ओंठ तक भी नहीं आती, वहीं गहन अंतस्तल में पूरी हो जाती है। शब्द भी नहीं बनती, निःशब्द में ही पूरी हो जाती है।

शब्द तो सीखे हुए हैं। शब्द तो आदमी के गढ़े हुए हैं। शब्द तो बाजार में जरूरी हैं; प्रेम में अनावश्यक हैं।

जितना गहरा प्रेम होता है, उतना ही अभिव्यक्त करना कठिन हो जाता है। और जहां प्रेम की परिपूर्णता होती है, वहां शून्य अपने आप ठहर जाता है। शब्द विलीन हो जाते हैं, निःशब्द का आकाश! उस निःशब्द के आकाश में ही उड़ता है प्रेम का पक्षी।

आइए, हाथ उठाएं हम भी
हम जिन्हें रस्मे-दुआ याद नहीं

तो मेरा पहला काम तो यहां यही है—जो कि सदा से ही मेरे जैसे लोगों का काम रहा है—कि तुमने जो रस्मे-दुआ सीख ली है, वह जो तुमने झूठी प्रार्थना सीख ली है, वह तुमसे छीन ली जाए। वह जो उधार है, वह तुमसे झटक ली जाए। वह जो तुम्हारे ऊपर दूसरों ने थोप दी है, उसे तुम्हें छोड़ना होगा, उससे तुम्हें मुक्त होना होगा। तभी तुम्हारी अंतस धारा चट्टान के हट जाने पर बह उठेगी।

काश, हम बच्चों को प्रार्थना न सिखाएं, सिर्फ प्रेम सिखाएं, तो प्रार्थना एक दिन अपने आप पैदा हो। होनी ही चाहिए। बीज बोते हैं, वृक्ष की फिक्र करते हैं, एक दिन फूल अपने से आ जाते हैं, फूलों को लाना नहीं पड़ता। कोई खींच-खींच कर फूलों को निकालना नहीं पड़ता। कलियों को जबर्दस्ती पकड़-पकड़ कर फूल नहीं बनाना पड़ता। सब अपने से हो जाता है। प्रेम का बीज हम सिखाएं तो प्रार्थना का फूल अपने से खिलेगा।

इस पृथ्वी पर प्रार्थना के फूल नहीं खिल रहे हैं। मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे और चर्च बहुत हैं; मगर प्रार्थी कहां है? प्रार्थना करने वाला आदमी कहां है? अंगुलियों पर गिने जा सकें, इतने लोग ही जमीन पर प्रार्थना करना जान पाते हैं। क्या हो जाता है अनंत-अनंत लोगों को? असंख्य लोगों को?

सोच में भी न आए, ऐसी भूल हो जाती है। प्रार्थना सिखा दी जाती है, वहीं अड़चन हो जाती है, वहीं चट्टान पड़ जाती है। फिर सीखे हुए ये लोग तोते की भांति दोहराते रहते हैं। और जब तक तुम्हारे हृदय के भाव न उमगेंगे, तब तक परमात्मा से दूरी बनी रहेगी। क्योंकि

परमात्मा मस्तिष्क से नहीं मिलता, हृदय से मिलता है। सिखाया हुआ मस्तिष्क में रह जाता है, हृदय तक नहीं पहुंचता।

आइए, हाथ उठाएं हम भी
हम जिन्हें रस्मे-दुआ याद नहीं
हम जिन्हें सोजे-मोहब्बत के सिवा
कोई बुत, कोई खुदा याद नहीं

बस इतनी बात हो जाए तो सब हो जाए। इतनी हो बात, तो मेघ घिर जाएं तुम्हारे प्राणों के आकाश में, अमृत की वर्षा हो जाए।

हम जिन्हें सोजे-मोहब्बत के सिवा

प्रेम की ज्वाला के सिवाय हमें कुछ भी याद न हो, बस! न कोई बुत, न कोई खुदा।

लोग पूछते हैं: परमात्मा कहां है? यह प्रश्न ही गलत है। पूछना चाहिए: प्रेम कहां है? और परमात्मा का फूल अपने से खिलेगा। प्रेम की तो लोग पूछते ही नहीं, लोगों ने तो मान लिया है कि प्रेम उन्हें आता ही है। उसी मानने में भूल हो गई। प्रेम नहीं आता है तुम्हें। प्रेम के नाम पर तुमने न मालूम और क्या-क्या जाल रच रखे हैं, मगर प्रेम नहीं है वहां। प्रेम के नाम पर अक्सर कुछ और ही छिपा है। प्रेम की आड़ में घृणा छिपी है। प्रेम की आड़ में दूसरों पर मालकियत करने की राजनीति छिपी है। प्रेम की आड़ में महत्वाकांक्षा छिपी है। प्रेम की आड़ में वासना छिपी है। प्रेम की आड़ में न मालूम कितना जहर है! प्रेम का प्यारा शब्द स्वभावतः अच्छी आड़ बन गया है। उसमें कुछ भी छिपा लो, चल जाता है।

मां-बाप बच्चों को प्रेम करते हैं, कहते हैं। लेकिन बच्चों को प्रेम नहीं करते। अपने हैं, अपना खून हैं, इसलिए प्रेम करते हैं। अपना विस्तार है, अपने ही बढ़े हुए हाथ हैं, इसलिए प्रेम करते हैं। अपने ही अहंकार की पूर्ति है, इसलिए प्रेम करते हैं। यह प्रेम न रहा। और इन बच्चों के कंधों पर बंदूकें रख कर चलाना चाहते हैं।

कोई बाप खूब धन कमाना चाहता था, नहीं कमा पाया। इस दुनिया में कौन कब कमा पाता है उतना जितना कि चाहता है? चाहें हमेशा अधूरी रह जाती हैं। अब सोचता है कि बेटा करेगा। अब बेटे को तैयार करता है कि मेरी महत्वाकांक्षा जो अधूरी रह गई है, वह मेरा बेटा पूरी करे। प्रेम की आड़ में महत्वाकांक्षा छिपी है।

मेरे एक मित्र थे। उनका छोटा बेटा मर गया। वे बहुत दुखी हुए। इतने कि आत्मघात का विचार करने लगे। मुझसे मिलने आए थे तो कहने लगे कि मैं अपने बच्चों को—दो ही तो मेरे बेटे हैं—इतना प्रेम करता हूं कि अब मैं जी नहीं सकता। एक बेटा मेरा मर गया, अब जीना फिजूल है।

मैं जानता था, जो बेटा मर गया, वह मंत्री था। और उनकी महत्वाकांक्षा को पूरी कर रहा था। यही उनके जीवन भर की महत्वाकांक्षा थी। जिंदगी भर राजनीति में रहे, मंत्री कभी हो न पाए। दूसरा बेटा तो मंत्री नहीं था। मैंने उनसे पूछा कि एक बात पूछूं, नाराज न होना। आप दुखी हैं। ऐसी घड़ी में ऐसी बात पूछनी भी नहीं चाहिए। अगर आपका बड़ा बेटा मर गया होता तो भी आप इतने दुखी होते?

एक क्षण वे झिझके, फिर मेरे सामने झूठ बोल भी न सके, और कहा कि अजीब सी

बात आपने पूछी है, लेकिन मैं भी चौंका हूं। नहीं, मेरा बड़ा बेटा मरता तो मैं इतना दुखी नहीं होता। उससे मुझे मिला ही क्या? उससे मुझे बदनामी ही मिली। क्योंकि बड़ा बेटा शराबी है और जुआरी भी। उससे मुझे बदनामी के सिवाय क्या मिला? वह मर जाता तो अच्छा था। वह तो होता ही न तो अच्छा था। उसके लिए मैं नहीं मर सकता था। उसके मरने पर तो शायद मैं अपने को निर्भार अनुभव करता कि चलो एक झंझट मिटी, एक दाग मिटा!

बेटे से भी प्रेम नहीं होगा, अगर बदनामी लाए। क्योंकि तब अहंकार को चोट लगती है। बेटे से प्रेम होगा, अगर नाम लाए, यश लाए, प्रशंसा लाए, सम्मान लाए। क्योंकि अहंकार पर नये-नये आभूषण चढ़ते जाते हैं। यह तो प्रेम न हुआ। यह तो राजनीति हुई। यह तो महत्वाकांक्षा हुई। यह तो अहंकार की यात्रा हुई।

पति प्रेम करते हैं पत्नियों को, पत्नियां प्रेम करती हैं पतियों को; लेकिन कुछ और है भीतर। ईर्ष्या है बहुत, जलन है बहुत, भय है बहुत, संदेह है बहुत; प्रेम में इन सब चीजों का कहीं पता भी नहीं चलता। प्रेम के आकाश में संदेह के बादल नहीं होते। प्रेम के आकाश में ईर्ष्या की लपटें नहीं होतीं। प्रेम के आकाश में दूसरे की मालकियत करने का सपना नहीं जगता। मगर यही सब है।

और तुम सबने मान रखा है कि प्रेम तुम्हें पता है। प्रेम तो पता ही है! इसलिए तुम परमात्मा को पूछने चल पड़ते हो। मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं: प्रेम पता हो तो परमात्मा अपने आप पता चल जाए। इसलिए परमात्मा असली सवाल नहीं है, असली सवाल प्रेम है।

हम जिन्हें सोजे-मोहब्बत के सिवा
कोई बुत, कोई खुदा याद नहीं

चाहता हूं कि तुम ऐसी जगह आ जाओ, जहां तुम यह कह सको कि हम तो सिर्फ प्रेम की ज्वाला जानते हैं, फिर न किसी मूर्ति को जानते हैं, न किसी मंदिर को जानते हैं, न मस्जिद को, न काबा को, न काशी को, न कैलाश को। हम कुछ नहीं जानते। हमें कोई और तीर्थ पता नहीं है; हमें तो सिर्फ प्रेम का तीर्थ पता है। प्रेम हमारा काबा है। प्रेम हमारा मंदिर है।

और तब तुम चकित हो जाओगे कि कैसी अजस्र धार प्रकाश की तुम्हारे ऊपर पड़नी शुरू हो गई! तुम समझ ही बूझ न पाओगे कि तुम्हारे ऊपर चारों तरफ से कैसे-कैसे रहस्य के अनुभव बरसने लगे! कैसे अमृत की बूंदाबांदी होने लगी, कब, कहां से! तुमने न तो कमाया था यह अमृत, न तुम्हारे ऐसे पुण्य थे।

नहीं, लेकिन प्रेम पर्याप्त पुण्य है। प्रेम से बड़ा कोई और पुण्य नहीं है।

आइए, अर्ज गुजारें कि निगारे-हस्ती
जहरे-इमरोज में शीरानी-ए-फर्दा भर दे
वह जिन्हें ताबे-गरांबारी-ए-अय्याम नहीं
उनकी पलकों पे शबो-रोज को हलका कर दे

और जहां प्रेम है, वहां अपने लिए ही प्रार्थना नहीं होती, वहां तो समस्त के लिए प्रार्थना होती है। जहां प्रेम नहीं है, वहां प्रार्थना सिर्फ अपने लिए होती है। वहां प्रार्थना भी बड़ी संकीर्ण होती है। और जब प्रार्थना संकीर्ण होती है तो मर जाती है। क्योंकि प्रार्थना विस्तार है। जितनी संकीर्ण होगी, उतनी ही उसकी सांसें घुट जाएंगी।

बुद्ध ने कहा है: तुम जब ध्यान करो तो तत्क्षण ध्यान के बाद जो अमृत तुम्हें अनुभव में आए, उसे सारे जगत को बांट देना। उसे बचाना मत। उसे बचाया कि सड़ जाएगा।

तो हर प्रार्थना के बाद, हर पूजा के बाद, हर आराधना के बाद, हर ध्यान के बाद बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा था—स्मरणपूर्वक, ध्यानपूर्वक जो भी पाया है, कहना कि यह सबको मिल जाए, यह सारे जगत को, प्राणी मात्र को मिल जाए, यह मेरा ही न हो।

एक बड़ी प्रसिद्ध कथा है कि एक आदमी बुद्ध को सुनने आता था। और बुद्ध इस पर नित-प्रतिदिन जोर देते थे कि ध्यान के बाद जो भी मैंने पाया है, वह सारे जगत को मिल जाए। उस आदमी ने कहा कि आपकी बात बिलकुल ठीक है, लेकिन मैं इतना पूछना चाहता हूं कि अगर मैं ऐसा कहूं कि मेरे पड़ोसी को छोड़ कर सारे जगत को मिल जाए, तो चलेगा? क्योंकि पड़ोसी की मैं कल्पना ही नहीं कर सकता; वह इतना दुष्ट है, और उसने मुझे इस तरह सताया है, और मेरी जिंदगी इस जहर से भर दी है कि मैं उसको भर छोड़ना चाहता हूं, बाकी सब को मिल जाए।

बुद्ध ने कहा: एक को भी छोड़ा तो सब छूट गए। वह छोड़ने की वृत्ति...यह तो इस बात का सबूत हुआ कि तुमने अभी ध्यान भी नहीं जाना और प्रेम भी नहीं जाना। नहीं तो छोड़ने की बात ही न उठेगी। बेशर्त होगा दान।

आइए, अर्ज गुजारें कि निगारे-हस्ती

प्रार्थना करें कि जीवन का सौंदर्य...

जहरे-इमरोज में शीरानी-ए-फर्दा भर दे

यह जो वर्तमान का दुख है, यह जो नरक है, इस जहर में थोड़ा अमृत आ जाए। इस कड़वाहट में थोड़े भविष्य की मिठास उतर आए।

वह जिन्हें ताबे-गरांबारी-ए-अय्याम नहीं

जिनको जीवन के बोझ को उठाने की शक्ति नहीं है...

उनकी पलकों पे शबो-रोज को हलका कर दे

उनकी आंखों पर बोझ थोड़ा हलका हो जाए, उनकी दृष्टि थोड़ी निर्मल हो जाए। उन्हें भी दिखाई पड़ने लगे जीवन का सौंदर्य।

जिनकी आंखों को रुखे-सुबह का यारा भी नहीं

जिनकी आंखों ने कभी सुबह का प्यारा मुखड़ा नहीं देखा है, जिन्होंने कभी सूर्योदय नहीं जाना है, जिनका संबंध प्रकाश से नहीं हुआ...

जिनकी आंखों को रुखे-सुबह का यारा भी नहीं
उनकी रातों में कोई शमअ मुनव्वर कर दे

हे प्रभु! जिन्होंने सुबह का मुखड़ा नहीं देखा है, जिन्होंने सुबह का कभी घूंघट नहीं उठाया है, हिम्मत नहीं जुटा सके हैं आंख खोलने की और हिम्मत नहीं जुटा सके हैं घूंघट उठाने की, जिन्होंने रोशनी से कोई दोस्ती नहीं बांधी है—तू इतना कर, उनकी अंधेरी रातों में इतना तो कर कम से कम कि एक शमा जला दे, एक दीया जला दे! न सही सूर्योदय, एक दीया भी बहुत है। न सही सागर, एक बूंद भी बहुत है।

जिनकी आंखों को रुखे-सुबह का यारा भी नहीं

उनकी रातों में कोई शमअ मुनव्वर कर दे
जिनके कदमों को किसी राह का सहारा भी नहीं
उनकी नजरों पे कोई राह उजागर कर दे

इतने लोग हैं जगत में और भटके चले जाते हैं!

जिनके कदमों को किसी राह का सहारा भी नहीं
उनकी नजरों पे कोई राह उजागर कर दे

प्रार्थना ऐसी होगी, समस्त के लिए होगी, अस्तित्व मात्र के लिए होगी, जीवन मात्र के लिए होगी। जब भी तुम अपने लिए प्रार्थना करते हो, तभी चूक हो जाती है। इसीलिए तुम्हारी प्रार्थना नहीं पहुंचती। उसकी उड़ान बहुत नहीं हो सकती। जितनी विस्तीर्ण होगी, उतनी जल्दी परमात्मा तक पहुंच जाएगी। अगर बेशर्त हो और समस्त के लिए हो तो तुमने यहां की, उसके पहले पहुंच जाएगी।

जिनका दीन पँरवी-ए-कज्बो-रिया हैं उनको

जिनका धर्म ही झूठ और मक्कारी का समर्थन हो गया है...

जिनका दीन पँरवी-ए-कज्बो-रिया हैं उनको
हिम्मते-कुफ्र मिले...

विद्रोह करने का साहस मिले।

हिम्मते-कुफ्र मिले, जुरअते-तहकीक मिले

और जिज्ञासा करने का साहस मिले। यह वचन प्यारा है!

जिनका दीन पँरवी-ए-कज्बो-रिया हैं उनको
हिम्मते-कुफ्र मिले, जुरअते-तहकीक मिले

तुम जरा सोचना अपने संबंध में, औरों के संबंध में। तुमने अपने धर्म को क्या बना लिया है? तुम्हारा धर्म है अंधविश्वासों का समर्थन। तुम्हारा धर्म है झूठ और मक्कारी को समर्थन। तुम्हारे धर्म की बुनियाद ही असत्य पर है।

लोग अपने बच्चों से कहते हैं: परमात्मा पर भरोसा करो, विश्वास करो। और बच्चे अगर पूछें कि हमें दिखाई तो नहीं पड़ता, तो वे कहते हैं: चुप रहो! भरोसा करो तो दिखाई पड़ेगा। यह बात तो उलटी हो गई। दिखाई पड़े तो भरोसा होता है। यह तो झूठ हो गई, यह तो मक्कारी हो गई—कि भरोसा करो तो दिखाई पड़ेगा। और इस मक्कारी में बड़ा जाल है। जब तक दिखाई नहीं पड़ेगा, वे कहेंगे: तुमने भरोसा नहीं किया। और भरोसा तब तक किया ही नहीं जा सकता, जब तक दिखाई न पड़े। तो न तुम भरोसा कर सकोगे, न दिखाई पड़ेगा और वे सदा कहते रहेंगे कि भरोसा करते तो जरूर दिखाई पड़ता। तुमने भरोसा ही न किया। कसूर तुम्हारा है। परमात्मा करे भी तो क्या करे?

और यही लोग उसी जबान से यह भी कहते हैं कि ईश्वर पर भरोसा करो, यद्यपि तुम्हें अभी उसका पता नहीं है। और उसी जबान से यह भी कहते हैं: ईमानदार रहना, सच्चे रहना! एक ही जबान से दोनों बातें चल रही हैं। अगर कोई आदमी सच्चा रहे तो जिस परमात्मा को नहीं जाना है उस पर भरोसा कैसे करे? और जो आदमी उस परमात्मा पर भरोसा कर ले जिसे जाना नहीं, देखा नहीं, पहचाना नहीं, तो सच्चा कैसे रहे?

तुम्हारी नीति तुम्हें पाखंड सिखाती है। तुम्हारे धर्म तुम्हें खंडों में बांट देते हैं। तुम्हारे धर्म तुम्हें मक्कार बना देते हैं, बेईमान बना देते हैं। तुम्हारी समझ की ज्योति को नहीं जलाते, वरन तुम्हारी समझ की ज्योति न जल पाए, इसकी पूरी चेष्टा करते हैं। तुम अंधेरे में ही जीओ, यही पंडित और पुरोहित के हित में है। क्योंकि तुम जितने अंधेरे में, उतने ही तुम उसके कब्जे में। तुम रोशन हो जाओ तो तुम मुक्त हो जाओगे।

जिनका दीन पैरवी-ए-कज्बो-रिया हैं उनको
हिम्मते-कुफ्र मिले, जुरअते-तहकीक मिले

ऐसी करना प्रार्थना कि जिन्होंने अंधविश्वास और मक्कारी को ही धर्म समझ लिया है और उसको सहारा दे रहे हैं, उनको धर्मद्रोह की हिम्मत मिले, कि उठ सकें वे विद्रोह में—उस सबके विद्रोह में जो जबर्दस्ती थोपा गया है—परंपरा के विद्रोह में, अतीत के विद्रोह में, पंडित-पुरोहितों के विद्रोह में, ताकि परमात्मा से सीधा संबंध हो सके। हटाओ सब को बीच से! कोई बिचवइयों की जरूरत नहीं है। किन्हीं दलालों की कोई जरूरत नहीं है।

परमात्मा तुम्हारा है उतना, जितना बुद्ध का था, जितना कृष्ण का था, जितना यारी का था, मीरा का था; जितना मेरा है, उतना तुम्हारा है। किसी को बीच में लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। सीखो सबसे, समझो सबसे, मगर किसी को भी बीच में खड़ा करने का कोई प्रयोजन नहीं है। तुम्हें परमात्मा सीधा-सीधा मिलेगा। तुम उसी से आते हो। वह तुम्हारी प्रतीक्षा करता है कि कब तुम लौट आओ घर।

जिनका दीन पैरवी-ए-कज्बो-रिया हैं उनको
हिम्मते-कुफ्र मिले, जुरअते-तहकीक मिले

और हे प्रभु! ऐसा कर कि जो जिज्ञासा ही नहीं करते हैं, वे जिज्ञासा करें, मुमुक्षा करें। उनके जीवन में प्रश्न उठे।

तुमने प्रश्न ही उठाना बंद कर दिया है। तुम्हारे प्रश्नों की गर्दन घोंट दी गई है। प्रश्नों को मार डाला गया है और जबर्दस्ती विश्वास उनके ऊपर आरोपित कर दिए गए हैं। प्रश्न सच्चे थे; विश्वास झूठे हैं। जो प्रश्नों को मान कर चलेगा, वह एक दिन सच्चे ज्ञान तक पहुंच जाता है। और जो प्रश्नों को दबा लेगा, उनकी गर्दन घोंट देगा और झूठे, उधार विश्वासों को आरोपित कर लेगा, वह सत्य से रोज-रोज दूर निकलता जाता है।

इसलिए जगत में जिन्होंने भी जाना है, उन्होंने बगावत दी। जिन्होंने जाना है, वे क्रांति लाए। और इस जगत में सिर्फ क्रांतिकारी ही सत्य के प्रेम में रहे हैं—बगावती और विद्रोही। लेकिन पंडित और पुरोहित तो स्थिति-स्थापक है। वह तो जो चलती हुई व्यवस्था है, उसका ही अंग है, उसका ही चाकर है। वह विद्रोह नहीं सिखाता, विश्वास सिखाता है।

इसे तुम कसौटी समझना। जहां विद्रोह सिखाया जाता हो, उसे सत्संग जानना। जहां बगावत के बीज बोए जाते हों, वहां समझना कि परमात्मा कार्य में संलग्न है। और जहां विश्वास सिखाए जाते हों, गुलामी सिखाई जाती हो, अंधविश्वासों से तुम्हें थोपा जाता हो, अंधविश्वासों में दबाया जाता हो, वहां से भाग खड़े होना, वहां से हट जाना। वहां तुम्हारी हत्या की जा रही है। यद्यपि बड़े-बड़े प्यारे नाम उन्होंने हत्या को दिए हैं और बड़े-बड़े सुंदर शास्त्रीय विवेचन तुम्हारी हत्या के किए हैं। लेकिन तुम्हें जगाने का, तुम्हें उज्ज्वल करने का,

तुम्हारे जीवन को एक ज्योतिशिखा बनाने का वहां आयोजन नहीं है। तुम अंधकार में ही रहो, इसी में उनके न्यस्त स्वार्थ हैं।

जिनका दीन पैरवी-ए-कज्बो-रिया है उनको
हिम्मते-कुफ्र मिले, जुरअते-तहकीक मिले
जिनके सिर मुंतजिरे-तेगे-जफा हैं उनको
दस्ते-कातिल को झटक देने की तौफीक मिले

ऐसी प्रार्थना करना कि जो आदी हो गए हैं अत्याचारियों की तलवार गर्दन पर झेलने के, उनके हाथों को इतनी ताकत मिले कि अत्याचारियों के हाथों को झटके दे दें।

जिनके सिर मुंतजिरे-तेगे-जफा हैं उनको
दस्ते-कातिल को झटक देने की तौफीक मिले

इतनी सामर्थ्य मिले कि झटक दें कातिलों के हाथों को।

इश्क का तीर निहां, जान तपां है जिससे
आज इकरार करें और तपिश मिट जाए

एक प्रेम का तीर ही है जो चुभ जाए तो जीवन की सारी तपिश मिट जाती है; जीवन का सारा ताप, जीवन का सारा संताप, जीवन की सारी बेचैनी मिट जाती है। एक प्रेम की बरखा ही है जो जीवन की सारी प्यास को बुझा देती है।

इश्क का तीर निहां, जान तपां है जिससे
आज इकरार करें और तपिश मिट जाए
हर्फे-हक दिल में खटकता है जो कांटे की तरह
आज इजहार करें और खलिश मिट जाए

आइए, हाथ उठाएं हम भी
हम जिन्हें रस्मे-दुआ याद नहीं
हम जिन्हें सोजे-मोहब्बत के सिवा
कोई बुत, कोई खुदा याद नहीं

ऐसी प्रार्थना के साथ यारी के इन सूत्रों को समझो। ये सूत्र प्रेम के सूत्र हैं। इन सूत्रों में तुम न तर्क पाओगे, न कोई प्रमाण पाओगे। इन सूत्रों में तुम कोई बौद्धिक विलास न पाओगे। ये सूत्र सीधे-सीधे हृदय से झरे हुए सूत्र हैं। इनमें जरूर तुम प्यार की गर्मी पाओगे, आलिंगन का आस्वाद पाओगे, जीवन के सौंदर्य की झलक पाओगे।

निरगुन चुनरी निर्बान, कोउ ओढ़ै संत सुजान।

एक-एक शब्द प्यारा है। थोड़े से ही शब्द हैं; मगर एक-एक शब्द एक-एक शास्त्र बन जाए, इतना गहन! इतना सरल और इतना गहन! इतना सीधा-साफ और इतना गंभीर!

निरगुन चुनरी निर्बान।

निर्वाण को यारी ने चुनरी कहा। जैसे नई-नई वधू चुनरी पहन लेती है, अपने प्यारे से मिलने जा रही है। सुहागरात के लिए तैयार होती है। रंगबिरंगी चुनरी पहन लेती है।

कबीर ने तो कहा है कि मैं रंगरेज हूं; तुम आओ, तुम्हारी चुनरी रंग दूं।

किस चुनरी की बात हो रही है?

निरगुन चुनरी निर्बान।

निर्वाण प्रेमियों के लिए चुनरी है, जो हम उस परम प्यारे से मिलने के लिए ओढ़ते हैं।

निर्वाण शब्द का अर्थ समझो। निर्वाण शब्द का अर्थ होता है: दीये का बुझ जाना। तुमने अभी जो दीया अपने भीतर जला रखा है अहंकार का, वह बुझ जाए तो निर्वाण। तुम्हारे अहंकार का दीया बुझ जाए तो उसी क्षण तुम्हारे भीतर शाश्वत दीये का अनुभव हो। उस दीये की ज्योति प्रकट हो—बिन बाती बिन तेल—जो जलता ही रहा है, जलता ही रहेगा! जो तुम्हारे जीवन का जीवन है, प्राणों का प्राण है!

लेकिन तुम अहंकार की धुंधली सी रोशनी में जी रहे हो, धुंधियाती रोशनी में जी रहे हो। निर्वाण का अर्थ होता है: अहंकार को जाने दो। यह मैं-भाव चला जाए। और जिसका मैं-भाव गिरा, उसने उस परम प्यारे से मिलने की तैयारी कर ली, उसने चुनरी ओढ़ ली!

और यह चुनरी निर्गुण है, निर्दोष है, निराकार है। आकाश जैसी कोरी है। इस चुनरी में कोई दाग नहीं। दाग तो सब विचारों के हैं, वासनाओं के हैं। इस चुनरी में न कोई विचार है, न कोई वासना है। चित्त की एक ऐसी दशा, जहां सारे विचार खो गए, सारी वासनाएं खो गईं, बस एक सन्नाटा रह गया! एक शून्य संगीत तुम्हारे भीतर बजने लगा! शून्य का इकतारा बजा तुम्हारे भीतर! खोजने से विचार नहीं मिलते। खोजने से वासना का पता नहीं चलता। किसी कोने-कातर में भी छिपी कहीं कोई वासना और विचार की धारा न रही। ऐसे शांत क्षण का नाम: निर्गुण। तुम निर्गुण हुए। तुम पर सारे आवरण थे, वे गिर गए। भीतर अहंकार गिर गया, बाहर आवरण गिर गए। एक अर्थ में तुम मर ही गए।

झेन फकीर रिंझाई से किसी ने पूछा कि हम कैसे जीएं कि जीवन में कोई भूल न हो, चूक न हो, कोई पाप न हो?

रिंझाई ने कहा: ऐसे जीओ, जैसे मर गए हो। ऐसे जीओ, जैसे हो ही नहीं।

महावीर घर छोड़ना चाहते थे। अपनी मां से आज्ञा चाही। चरणों में सिर रखा होगा, और कहा कि मैं संन्यासी होना चाहता हूं, संसार छोड़ देना चाहता हूं। लेकिन मां ने कहा कि बस, दोबारा यह बात मेरे सामने मत उठाना। जब मैं मर जाऊं तब तुम्हें जो करना हो करना। मैं न झेल सकूंगी यह बात। मैं न देख सकूंगी तुम्हें जंगल में जाते।

तो महावीर, कहते हैं, चुप हो गए। फिर जब मां की मृत्यु हो गई, तो पिता से पूछा। पिता ने कहा: बस, यह बात मेरे सामने करना मत। एक तो तुम्हारी मां चली गई, और अब तुम जंगल जाओगे! मुझ बूढ़े को क्यों सताना? मैं जब मर जाऊं तब तुम्हें जो करना हो करना।

फिर पिता भी चल बसे, तो मरघट से लौटते थे, अपने बड़े भाई से कहा कि अब मुझे आज्ञा मिल जाए। अब मैं काफी प्रतीक्षा कर चुका। मां ने कहा तो रुका, फिर पिता ने कहा तो रुका; अब तुम मत रोकना।

भाई ने कहा कि यह बात ही मत उठाना। मां मर गई, पिता मर गए, तुम ही हो एक अकेले मेरे। मुझे छोड़ कर जाओगे...तुम्हें थोड़ी भी दया-ममता नहीं है?

तो महावीर ने कहा: ठीक। वे घर छोड़ कर नहीं गए; लेकिन घर में ही ऐसे हो रहे जैसे कि हों ही न। उनकी मौजूदगी का पता चलना ही बंद हो गया। नकार की तरह जीने लगे।

किसी के बीच न आएं। किसी को बाधा न बनें। किसी को आज्ञा न दें। किसी से काम न करवाएं। इस तरह रहने लगे कि पैर की आवाज भी किसी को सुनाई न पड़े। धीरे-धीरे घर के लोग ही भूल गए कि महावीर हैं भी या नहीं। फिर भाई को लगा कि अब रोकना व्यर्थ है। हमारा रोकना काम नहीं आया। उन्होंने तो घर को ही जंगल बना लिया है।

सारे घर के लोग इकट्ठे हुए और महावीर से प्रार्थना की कि आप जाएं। आप तो जा ही चुके हैं, छाया मात्र रह गई है। आत्मा का पक्षी तो कभी का उड़ गया है। अब आप हमारे बीच हैं नहीं; इसलिए अब हम रोकें, यह उचित भी नहीं है। हमने इतना रोका, उसके लिए क्षमा करें।

ऐसी आज्ञा मिल गई तो महावीर जंगल चले गए। महावीर जंगल न भी जाते तो भी निर्वाण घट गया था। महावीर जंगल न भी जाते तो भी जंगल घट गया था। एक तो है हिमालय जाना, और एक है हिमालय को अपने भीतर ले आना। दूसरी बात ज्यादा मूल्यवान है। जहां भी हो, धीरे-धीरे अपने को विदा कर दो। अपने को नमस्कार कर लो, अलविदा कह दो! और इस तरह रहने लगो कि तुमसे किसी को बाधा न पड़े, कि तुम किसी के आड़े न आओ, कि तुम किसी के बीच में विघ्न न बनो, कि तुम किसी के जीवन में किसी तरह का अवरोध न खड़ा करो। तो निर्वाण घट गया। तो तुम निर्गुण हो गए। चुनरी तैयार हो गई। यह बड़ी प्यारी चुनरी है। इसको जिसने ओढ़ लिया, उससे प्यारे को मिलना ही होगा।

यारी ने शब्द तो ज्ञानियों के उपयोग किए हैं, लेकिन रंग प्रेमियों का दे दिया। निर्वाण शब्द ज्ञानियों का है, निर्गुण शब्द भी ज्ञानियों का है। लेकिन प्रेमी के हाथ में जो भी पड़ जाए, उस पर प्रेम का रंग चढ़ जाता है। बदल दिए शब्द, रंग दिए प्रेम में। बह गई उनमें रसधार प्रेम की। बुद्ध के हाथ में निर्वाण शब्द रूखा-सूखा है। महावीर के हाथ में निर्गुण शब्द रूखा-सूखा है। यारी ने संगीत छेड़ दिया! एक छोटा सा शब्द दोनों के बीच में रख दिया—निरगुन चुनरी निर्बान! यह चुनरी शब्द जो बीच में रख दिया, सारा रंग बदल दिया! गद्य को पद्य कर दिया! सूनी पड़ी सितार पर तार छेड़ दिए! बांस की पोंगरी थी, फूंक मार दी! मधुर संगीत जन्म उठा! एक छोटा सा शब्द—चुनरी। एक साधारण बोलचाल का शब्द—चुनरी। लेकिन चुनरी निर्वाण पर पड़ गई, निर्गुण पर पड़ गई—और निर्वाण और निर्गुण भी दुल्हन जैसे सज गए।

निरगुन चुनरी निर्बान, कोउ ओढ़ै संत सुजान।

पर विरले ही ओढ़ पाते हैं इस चुनरी को!

कोउ ओढ़ै संत सुजान।

क्यों विरले ओढ़ पाते हैं? सभी संत भी नहीं ओढ़ पाते हैं। साधारणजनों की तो बात ही छोड़ दो, उन्हें तो प्रेम का ही पता नहीं तो वे कैसे ओढ़ेंगे? लेकिन सभी संत भी नहीं ओढ़ पाते हैं, इसलिए शर्त जोड़ी है यारी ने—कोउ ओढ़ै संत सुजान—जो सुजान भी हो। नहीं तो संत भी रूखे-सूखे रह जाते हैं। उनका संतत्व भी औपचारिकता रह जाता है। उनका संतत्व भी गणित ही रह जाता है; उसमें काव्य की धारा नहीं बहती। उनका संतत्व भी संगीत-शून्य रह जाता है। न हरे पत्ते लगते हैं, न लाल फूल खिलते हैं, न चांद-तारे उगते हैं। उनका संतत्व ऐसा होता है, जैसे जबर्दस्ती संसार को छोड़ दिया है। सिकुड़ जाते हैं तुम्हारे संत, फैल नहीं पाते।

और जो नहीं फैल पाता, वह चाहे कितना ही सात्विक जीवन जीए, उसके जीवन में कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में, कोई न कोई कमी रह जाती है। ब्रह्म तो विस्तार है। जो फैलता है, वही उस फैले हुए को पाता है। उस जैसे होओगे तो ही उसे पाओगे।

दीदा-ए-तर पे वहां कौन नजर करता है
शीशा-ए-चश्म में खूं-नाबे-जिगर लेके चलो
अब अगर जाओ पये-अर्ज-ओ-तलब उनके हुजूर
दस्त-ओ-कशकोल नहीं, कासा-ए-सर लेके चलो
दीदा-ए-तर पे वहां कौन नजर करता है

आंसू भरी आंख पर्याप्त नहीं है। रोते-गिड़गिड़ाते मत जाना। तुम्हारी प्रार्थना रोना और गिड़गिड़ाना न हो। तुम्हारी प्रार्थना भिखमंगे की प्रार्थना न हो। और प्रार्थना करीब-करीब भिखमंगे की हो गई है। तुम्हारी प्रार्थना का रंग-ढंग भिक्षापात्र का है। तुम जाते ही हो प्रार्थना करने जब तुम्हें कुछ मांगना होता है। तुमने प्रार्थना कर-कर के इतना मांगा है कि प्रार्थना शब्द का ही अर्थ मांगना हो गया है। और मांगने वाले को हम प्रार्थी कहते हैं। यह तो बात ही बिगड़ गई। तुम स्वर्ग के तारों को जमीन की कीचड़ में उतार लाए। तुमने फूलों को मिट्टी से भर दिया!

दीदा-ए-तर पे वहां कौन नजर करता है

ये गिड़गिड़ाती आंखें, ये गिड़गिड़ाती बातें, यह भिखमंगापन लेकर वहां मत जाना। वहां कोई नजर भी न करेगा।

शीशा-ए-चश्म में खूं-नाबे-जिगर लेके चलो

अगर आंख ही ले जानी है तो गिड़गिड़ाते हुए आंसू नहीं, मस्ती! सुर्खी मस्ती की! आंखें जीवन के खून से लाल हों, जीवन के आनंद से मदमस्त हों।

शीशा-ए-चश्म में खूं-नाबे-जिगर लेके चलो
अब अगर जाओ पये-अर्ज-ओ-तलब उनके हुजूर

अब अगर विनती करने उस मालिक के सामने खड़े होओ, उसका आमना-सामना हो...

अब अगर जाओ पये-अर्ज-ओ-तलब उनके हुजूर
दस्त-ओ-कशकोल...

तो हाथों का भिक्षापात्र मत बनाना। हाथों के भिक्षापात्र नहीं पहुंचते हैं।

दस्त-ओ-कशकोल नहीं, कासा-ए-सर लेके चलो

अब अगर बनाना ही हो भिक्षापात्र तो अपने सिर का बनाना। अपनी गर्दन काट कर ही रख सकोगे तो सम्राट की तरह पहुंचोगे।

फूल मत चढ़ाओ प्रार्थना में, अपने को चढ़ाओ। और चूंकि बहुत कम लोग अपने को चढ़ा पाते हैं, बहुत विरले लोग अपने को चढ़ा पाते हैं। इतनी हिम्मत कहां जुटा पाते हैं लोग! लोग अपने को जैसा है वैसा ही रखना चाहते हैं। और परमात्मा भी मिल जाए। लोग चाहते हैं: मैं जैसा हूं, इसी में परमात्मा आकर जुड़ जाए। ऐसा तो नहीं हो सकता। परमात्मा तुमसे नहीं जुड़ सकता। तुम मिटो, तो परमात्मा हो सकता है। यह शर्त पूरी चूंकि विरले लोग करते हैं, इसलिए विरले लोग उपलब्ध होते हैं।

कोउ ओढ़ै संत सुजान।

यह जो निर्वाण की, निर्गुण की चुनरी है, इसे कभी कोई ओढ़ पाता है। वह भी सभी संत नहीं ओढ़ पाते। क्योंकि कुछ संत सिर्फ रूखे-सूखे गणित बिठाने में रह जाते हैं। हिसाब-किताब ही लगाते रहते हैं। पिछले जन्मों में बुरे कर्म किए हैं, इसलिए अच्छे कर्म करके बुरे कर्मों को काटते रहते हैं, हिसाब-किताब ही बिठाते रहते हैं। उनका सोचना सौंदर्य, जीवन के महोत्सव में सम्मिलित होने का नहीं है, उनका सोचना-समझना दुकानदार का है। खाते-बही ही उनकी जीवन-दृष्टि है। इसलिए इस प्यारी चुनरी को बहुत कम लोग ओढ़ पाते हैं। साधारणजन तो छोड़ ही दो, सभी संत भी नहीं ओढ़ पाते; संतों में कोई विरले संत ओढ़ पाते हैं।

इन दिनों रस्म-ओ-रहे-शहरे-निगारां क्या है
कासिदा कीमते-गुलगश्ते-बहारां क्या है
कू-ए-जानां है, कि मकतल है, कि मयखाना है
आजकल सूरते-बर्बादी-ए-यारां क्या है

पूछता है कवि—

इन दिनों रस्म-ओ-रहे-शहरे-निगारां क्या है

रूप-नगर की रस्म इन दिनों क्या चल रही है? इन दिनों क्या हालचाल हैं? उस परम सौंदर्य को पाने के रास्ते पर इन दिनों कौन सी चाल चलनी पड़ती है?

इन दिनों रस्म-ओ-रहे-शहरे-निगारां क्या है

उस प्यारे के रास्ते पर इन दिनों कौन सी विधियां कारगर हो रही हैं?

कासिदा कीमते-गुलगश्ते-बहारां क्या है

उसके वसंत में प्रवेश करने के लिए, उसकी बहार में सैर करने के लिए आजकल क्या कीमत चुकानी पड़ती है?

कू-ए-जानां है, कि मकतल है, कि मयखाना है

प्रेमिका की गली के संबंध में कुछ बताओ कि आजकल वहां हालत क्या है? क्या अभी तक वहां कत्ल होना पड़ता है? क्या अभी भी वहां मदमस्त हुए बिना पहुंचने का कोई रास्ता नहीं है?

आजकल सूरते-बर्बादी-ए-यारां क्या है

अभी भी प्रेमियों को बर्बाद ही होना पड़ता है? क्या वही पुराना रिवाज चल रहा है?

ऐसा जो लोग पूछते हैं, वे तो चल ही नहीं पाते। वही है रिवाज अब भी जो सदा का है। उस रिवाज में कोई फर्क नहीं आता, और न कभी आएगा। वहां तो बर्बाद होने की क्षमता रखने वाले लोग ही पहुंचते हैं। वहां तो पागल होने की हिम्मत जुटाने वाले लोग ही पहुंचते हैं। वहां तो मदमस्तों की ही गति है। हिसाब-किताब करने वाले तो क्षुद्र से ही अटके रह जाते हैं। हिसाब-किताब क्षुद्र है! विराट को हिसाब-किताब से नहीं पाया जाता। दुकान चल जाती होगी, मंदिर नहीं। बाजार में ठीक है। प्रेम की गली में, कू-ए-जानां, प्रेम की गली में, उस प्यारे की गली में ये हिसाब-किताब नहीं चलते। वह तो मकतल ही है। वहां तो जो कत्ल होने को तैयार हैं, वे ही पहुंचते हैं।

और वह तो मयखाना ही है। वहां तो जो उसके प्रेम में अपने को भूलने, अपने को डुबाने का साहस जुटा पाते हैं, बस उनकी ही गति है। इसलिए बहुत कम लोग ओढ़ पाते हैं इस निर्वाण की, निर्गुण की चुनरी को।

तुम ओढ़ना! क्योंकि बिना इस चुनरी को ओढ़े, आए न आए सब बराबर है। इस जमीन पर कुछ और पाने जैसा नहीं है। यहां कुछ और बनाने जैसा नहीं है। यहां तो वही निर्गुण-निर्वाण की चुनरी बन जाए। उसी के तागे बिठाओ, उसी के ताने-बाने बुनो।

सूफियों की एक कहानी है, ईसा के संबंध में। बाइबिल में तो नहीं है। लेकिन सूफियों के पास कई कहानियां हैं ईसा के संबंध में, जो बाइबिल में नहीं हैं। और बड़ी प्यारी कहानियां हैं। कहानी है कि ईसा ध्यान करने पर्वत पर गए। पर्वत बिलकुल निर्जन था; मीलों-मीलों तक किसी का कोई पता न था। लेकिन एक बूढ़ा आदमी उन्हें उस पर्वत पर मिला। एक वृक्ष के नीचे बैठा—मस्त! पूछा उस बूढ़े आदमी से : कितने दिनों से आप यहां हैं? क्योंकि वह इतना बूढ़ा था कि लगता था होगा कम से कम दो सौ साल उम्र का।

उस बूढ़े ने कहा : सौ साल के करीब मुझे यहां रहते-रहते हो गए हैं।

तो ईसा ने चारों तरफ देखा—न कोई मकान है, न कोई छप्पर है। तो पूछा कि धूप आती होगी, वर्षा आती होगी; न कोई छप्पर, न कोई मकान! यहां सौ साल से रह रहे हैं? कोई मकान नहीं बनाया?

तो वह बूढ़ा हंसने लगा। उसने कहा : मालिक, तुम जैसे और जो पैगंबर पहले हुए हैं, उन्होंने मेरे संबंध में यह भविष्यवाणी की थी कि केवल सात सौ साल जीऊंगा। अब सात सौ साल के लिए कौन झंझट करे मकान बनाने की—केवल सात सौ साल! दो सौ तो गुजर ही गए। और जब दो सौ गुजर गए तो बाकी पांच सौ भी गुजर जाएंगे। दो और पांच में फासला कुछ बहुत तो नहीं। सात सौ साल मात्र के लिए कौन चिंता करे छप्पर बनाने की!

यह कहानी प्रीतिकर है। हम तो सत्तर साल रहते हैं तो इतनी चिंता करते हैं! इतनी चिंता करते हैं कि भूल ही जाते हैं कि यहां सदा नहीं रहना है! भूल ही जाते हैं कि मौत है, और मौत प्रतीक्षा कर रही है। और आज नहीं कल, कल नहीं परसों द्वार पर दस्तक देगी। और सब जो बनाया है, छिन जाएगा। सिर्फ निर्वाण की चुनरी मौत नहीं छीन पाती। उसी के ताने-बाने बुनो। उसका ही ताना-बाना जो बुनने लगे उसे मैं संन्यासी कहता हूं।

और मेरे लिए संन्यास चुनरी है। मेरे लिए संन्यास रूखी-सूखी बात नहीं है। मेरे लिए संन्यास बड़ी रस-विमुग्ध दशा है। इसलिए तो इस जगह को मैं मंदिर नहीं कहता, मयखाना कहता हूं।

षट दरसन में जाइ खोजो, और बींच हैरान।

खोजते रहो दर्शन शास्त्रों में। छहों दर्शन उलट कर देख लो। सब पढ़ डालो शास्त्र। मगर यारी कहते हैं : मैं तुम्हें बताए देता हूं, हैरानी बढ़ जाएगी, कम न होगी। और भी हैरान हो जाओगे! जितना सोचोगे उतना दूर निकल जाओगे, पास नहीं। क्योंकि सोचना जोड़ता नहीं, तोड़ता है। विचार तोड़ते हैं, जोड़ते नहीं। भाव जोड़ते हैं।

इस दुनिया में इतने लोग हैं, इनको किसने तोड़ दिया है? कोई हिंदू, कोई मुसलमान, कोई ईसाई, कोई जैन, कोई बौद्ध...इनको किसने तोड़ दिया है? विचारों ने! हिंदू का अपना

विचार है, वह मुसलमान से कैसे राजी हो? मुसलमान का अपना विचार है, वह ईसाई से कैसे राजी हो? और फिर इतनी तो छोड़ ही दो बात, ईसाई में भी कैथलिक का अपना विचार है, प्रोटेस्टेंट का अपना विचार है; वे एक-दूसरे से कैसे राजी हों? फिर उनके भी और-और छोटे-छोटे संप्रदाय हैं। हिंदुओं में तो कितने संप्रदाय हैं जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है, कौन किससे राजी हो?

विचार तोड़ता है, विचार जोड़ता नहीं। यह दुनिया अति विचार के कारण खंड-खंड में टूट गई है। और विचार लड़ाता है। झगड़े ही क्या हैं? विचार के झगड़े हैं।

प्रेम जोड़ता है। और जो जोड़ता है, वही सेतु बन सकता है। विचार तो दीवाल बन जाता है।

यारी कहते हैं: **षट दरसन में जाइ खोजो, और बीच हैरान।**

और मैं तुमसे कहे देता हूं, बहुत हैरानी में पड़ोगे। बहुत बिगूचन में पड़ोगे। बहुत किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाओगे।

और सच है यह बात। जिस व्यक्ति ने भारत के छहों दर्शन पढ़ लिए, वह विक्षिप्त हो जाएगा। क्योंकि किसी बात पर ये दर्शनशास्त्री राजी नहीं हैं—किसी बात पर! हिंदू कहते हैं: आत्मा है, परमात्मा है। जैन कहते हैं: सिर्फ आत्मा है, कोई परमात्मा नहीं। बौद्ध कहते हैं: न आत्मा है, न परमात्मा है। क्या करोगे? किसकी सुनोगे? किसकी मानोगे? छोटी-छोटी बात में विरोध है। छोटी-छोटी बात में बाल की खाल निकाली जाती है। और इस तरह के व्यर्थ के विवादों में लोग उलझे रह जाते हैं।

और जिंदगी बड़ी छोटी है, यूं ही सरक जाती है, हाथ से यूं ही खिसक जाती है। जिंदगी खिसकी ही जा रही है। तुम किताबों में मत गंवा देंना। यारी कहते हैं: सोचने-विचारने में ही मत पड़े रह जाना।

इक जरा सोचने दो!
इस बियाबां में जो इस लहजा बियाबां भी नहीं
कौन सी शाख में फूल आए थे सबसे पहले
कौन बेरंग हुई दर्द-ओ-ताब से पहले
और अब से पहले
किस घड़ी कौन से मौसम में यहां
खून में कहत पड़ा
गुल की शह-रग पे कड़ा
वक्त पड़ा
सोचने दो,
इक जरा सोचने दो!

यह भरा शहर जो वादी-ए-वीरां भी नहीं
इसमें किस वक्त, कहां

आग लगी थी
इसके सफ़बस्ता दरीचों में से किसमें अव्वल
जह हुई सुर्ख शुआओं की कमां
सोचने दो!

हमसे उस देस का तुम नाम-ओ-निशां पूछते हो
जिसकी तारीख न जुगराफ़िया अब याद आए
और याद आए तो महबूबे-गुजश्ता की तरह
रूबरू आने से जी घबराए
हां, मगर जैसे कोई
ऐसे महबूब का दिल रखने को
आ निकलता है कभी रात बिताने के लिए
हम अब इस उम्र को आ पहुंचे हैं जब हम भी यूं ही
दिल से मिल आते हैं बस रस्म निभाने के लिए
दिल की क्या पूछते हो
सोचने दो!

लोग तो प्रेम के संबंध में भी सोच रहे हैं!

दिल की क्या पूछते हो
सोचने दो!

और तो ठीक, लोग प्रेम के संबंध में भी सोचते हैं! और सोचना तो ऊपर-ऊपर है, तुम्हारी परिधि है। प्रेम तुम्हारा अंतरतम है। परिधि तुम्हारे अंतरतम को न छू पाएगी। जैसे सागर की छाती पर लहरें होती हैं, ये लहरें लाख उपाय करें तो भी सागर की गहराइयों में नहीं पहुंच पाएंगी। हो ही सकती हैं सतह पर, गहराई में कोई लहर नहीं हो सकती। सतह पर हो सकती हैं, क्योंकि सतह पर हवाओं के झोंके टकराते हैं। गहराइयों में हवाएं कहां?

ऐसे ही तुम्हारे मस्तिष्क की सतह पर विचारों की लहरें होती हैं, क्योंकि संसार की हवाओं के झोंके तुम्हें आंदोलित करते हैं। लेकिन तुम्हारे अंतरतम में, तुम्हारे मंदिर के गहन गर्भगृह में न कोई संसार की लहर पहुंचती है, न कोई हवा, न कोई आंधी, न कोई तरंग। वहां कोई तूफान नहीं पहुंचता, कोई भूकंप नहीं पहुंचता। और वहीं तुम हो, और वहीं तुम्हारा प्रेम है, और वहीं तुम्हारी प्रार्थना है, और वहीं तुम्हारा परमात्मा है। सोचने-विचारने का सवाल नहीं है, भाव में मग्न होने का सवाल है।

षट दरसन में जाइ खोजो, और बीच हैरान।

क्या करोगे? परमात्मा के संबंध में लोग सोच रहे हैं; सोचते ही रहे हैं, सदियां बीत गईं। सदियां आईं और गईं और आदमी सोचता ही रहा है। अब तक एक भी प्रमाण नहीं जुटा पाया परमात्मा के लिए। जरा सोचो तो, आदमी के सोचने की नपुंसकता! कम से कम दस हजार साल आदमी ने सोचा है, और ज्यादा सोचा होगा, दस हजार साल का तो इतिहास

है। दस हजार साल से आदमी सोच रहा है—ईश्वर के लिए कोई प्रमाण। एक प्रमाण नहीं खोज पाया। और ऐसा नहीं है कि प्रमाण नहीं खोजे; खोजे, मगर कोई प्रमाण प्रमाण नहीं बन पाता। कुछ भी कहो, सब प्रमाण अधकचरे हैं। और सभी प्रमाणों में भूल निकल आती है। और सभी प्रमाण बचकाने हैं। हां, बच्चों को भला राजी कर देते हों, लेकिन जो जरा सोच-विचार करता है, उसे राजी नहीं कर सकते। सारे सोच-विचार का परिणाम है कि दुनिया में नास्तिकता सघन हो गई है; कम नहीं हुई, रोज बढ़ती गई है। जितनी शिक्षा बढ़ी, जितना विचार बढ़ा, जितनी विचार की क्षमता बढ़ी, जितनी तर्क की कुशलता बढ़ी, उतना ही पाया गया कि तुम्हारे सब प्रमाण झूठे हैं। छोटे बच्चे को समझाना हो तो काम कर जाती है यह बात। गांव के ग्रामीण को समझाना हो तो काम कर जाती है यह बात। आदिवासी को समझाना हो तो चल जाती है यह बात। कि जैसे कुम्हार के बिना घड़ा कैसे बनेगा? वैसे इतना बड़ा संसार है, इसको बनाने वाला कोई होना चाहिए। यह बच्चे को बात जंच जाती है। लेकिन यह बात बच्चे को ही जंचती है। और यह भी हो सकता है कि यह बच्चा कभी इस पर सवाल न उठाए। मगर फिर भी, जैसे ही उम्र बड़ी होगी, वैसे ही सवाल भीतर कहीं उठना शुरू हो जाएगा, किसी अचेतन तल पर खड़ा होगा। होना ही चाहिए, नहीं तो यह बच्चा बच्चा ही रह जाएगा।

यह भी कोई बात हुई! नास्तिक कहता है कि ठीक है, चलो मान लें कि जैसे कुम्हार चाहिए घड़ा बनाने को, ऐसे ही परमात्मा ने इस संसार को बनाया; वह कुंभकार है। मगर हम यह पूछते हैं: परमात्मा को किसने बनाया? जब घड़े को बनाने के लिए कुम्हार चाहिए, कुम्हार को बनाने के लिए परमात्मा चाहिए, तो परमात्मा को किसने बनाया?

और नास्तिक को जवाब नहीं दे पाता आस्तिक। और आस्तिक जो भी जवाब देता है, वह जवाब नहीं है। या तो वह नाराज हो जाता है। या तो वह झगड़ने को तैयार हो जाता है। या म्यान से तलवार निकाल लेता है। लेकिन गर्दन काटना कोई तर्क नहीं है। या जो उत्तर देता है, वह उसके ही प्रमाण को काट जाता है।

आस्तिक कहते हैं: परमात्मा को बनाने वाला कोई भी नहीं! यह तो बात ही व्यर्थ हो गई! नास्तिक पूछता है: अगर परमात्मा बिना बनाए बन सकता है तो फिर घड़ा क्यों नहीं बन सकता? जब परमात्मा जैसा अपूर्व व्यक्तित्व बिना बनाए बन सकता है तो घड़ा तो छोटी-मोटी चीज है। फिर घड़े को ही बनाने वाले कुम्हार की क्या जरूरत है? यह तो तर्क नहीं हुआ, बच्चों को समझाया...बच्चों को समझाना हुआ। यह तो बड़ी बचकानी बात है!

मैंने सुना है, एक आदमी ने विज्ञापन पढ़ा कि पच्चीस रुपये में—सिर्फ पच्चीस रुपये में! पच्चीस रुपये भेज दो और एक ऐसा वाद्य यंत्र हम भेजेंगे, जो सभी जगह संगीत पैदा करता है। जंगल में जाओ, पहाड़ पर जाओ, साथ रखो उसे, हर जगह संगीत पैदा करता है। मधुर संगीत पैदा होता है—हर स्थिति में, हर जगह! बिजली की जरूरत नहीं, बैटरी की जरूरत नहीं। आदमी उत्सुक हुआ, पच्चीस रुपये में ऐसे संगीत का वाद्य मिल जाए जो हर जगह संगीत पैदा करे। बिजली की जरूरत नहीं, बैटरी की जरूरत नहीं—सिर्फ पच्चीस रुपये में! भेज दिए उसने। बड़ा सुंदर बाक्स आया। बड़ी उसने आतुरता से उसे खोला। और जो वाद्य मिला, वह था बच्चों का एक घुनघुना। स्वभावतः, कहीं भी बजाओ, न बैटरी की

जरूरत, न बिजली की जरूरत, जंगल में ले जाओ, पहाड़ पर ले जाओ, हवाई जहाज पर ले जाओ, कहीं भी घुनघुना बजाओ, बजेगा।

अब तक आस्तिकों ने जितने तर्क खोजे हैं, सब बच्चों के घुनघुने हैं। और मैं तुमसे कहना चाहता हूं: परमात्मा है। लेकिन उसके लिए खोजे गए सब तर्क व्यर्थ सिद्ध हुए हैं। परमात्मा केवल उनके लिए ही प्रमाणित होता है, जो प्रेम से उसे जान पाते हैं। और तर्क से जो मानता है, वह तो एक तरह के झूठ में जीता है। उसने ठीक से तर्क नहीं किया, बस इतनी ही बात है। अगर तर्क के कारण तुम आस्तिक हो तो तुमने ठीक से तर्क नहीं किया इसलिए आस्तिक हो। अगर ठीक से तर्क करते तो तुम नास्तिक हो जाते।

तर्क की अंतिम परिणति नास्तिकता है और प्रेम की अंतिम परिणति आस्तिकता है। प्रेम की अंतिम परिणति में कभी नास्तिकता नहीं आ सकती। और तर्क की अंतिम परिणति में कभी आस्तिकता नहीं आ सकती।

एक और ढंग है जीवन को देखने का—प्रेम का ढंग। एक और आंख है; उस आंख से दिखाई पड़ता है परमात्मा।

खामुशी दश्त पे जिस वक्त कि छा जाती है
उम्र भर जो न सुनी हो वो सदा आती है

जब चित्त चुपचाप होता है, मौन में होता है, लवलीन होता है, प्रेम की गंध में आंदोलित होता है, ध्यान में होता है, तब एक ऐसी आवाज आने लगती है जो कभी नहीं सुनी थी। एक ऐसा संगीत सुनाई पड़ता है जो अनसुना है। और एक ऐसा रूप दिखाई पड़ता है जो इन आंखों से नहीं देखा जाता, जो केवल हृदय की आंखों से देखा जाता है।

खामुशी दश्त पे जिस वक्त कि छा जाती है
उम्र भर जो न सुनी हो वो सदा आती है
भीनी-भीनी सी मचलती है फजां में खुशबू
ठंडी-ठंडी लबे-साहिल से हवा आती है
दश्ते-खामोश की उजड़ी हुई राहों से मुझे
जादा-पैमाओं के कदमों की सदा आती है
पास आकर मेरे गाती है कोई जहरा-जमाल
और गाती हुई फिर दूर निकल जाती है
मुस्कुराती है जो रह-रह के घटा में बिजली
आंख सी कोहे-बयाबां की झपक जाती है
करने लगते हैं नजारे से जो बादल मायूस
बर्क आहिस्ता से कुछ कान में कह जाती है
झाड़ियों को जो हिलाते हैं हवा के झोंके
दिले-शबनम के धड़कने की सदा आती है
मुझसे करते हैं घने बाग के साये बातें
ऐसी बातें कि मेरी जान पे बन आती है

गुनगुनाते हुए मैंदान के सन्नाटे में
आप ही आप तबीयत मेरी भर आती है
यूं नबातात को छूती हुई आती है हवा
दिल में हर सांस से इक फांस सी चुभ जाती है
जब हरी दूब के मुड़ जाते हैं नाजुक रेशे
शीशा-ए-कल्ब में इक ठेस सी लग जाती है
बांसुरी जैसे बजाता हो कहीं दूर कोई
यूं दबे पांव बयाबां से हवा आती है
हसरतें खाक की गुंचों से उबल पड़ती हैं
रूह मैंदान के फूलों से निकल आती है
तबए-शायर को रवानी का इशारा करके
नहर शाखों के घने साये में सो जाती है
इन मनाजिर को मैं बेजान समझ लूं कैसे
'जोश'! कुछ अक्ल में यह बात नहीं आती है

एक ऐसी घड़ी है प्रेम के अनुभव की, सौंदर्य के अनुभव की, कि तुम इस अस्तित्व को बिना जान के कैसे समझ लोगे? यह बात समझ में ही न आएगी कि इतना अपूर्व सौंदर्य, यह रहस्य का अनंत उत्सव, प्राणहीन है? चैतन्यहीन है?

इन मनाजिर को मैं बेजान समझ लूं कैसे

इस अपूर्व दृश्य को मैं प्राणहीन कैसे देख लूं? कैसे मान लूं?

'जोश'! कुछ अक्ल में यह बात नहीं आती है

तर्क से नहीं, सौंदर्य की प्रतीति से। तर्क से नहीं, संगीत के आह्लाद से। तर्क से नहीं, प्रेम के हृदय में उठते हुए गीत से। तर्क से नहीं, संवेदनशीलता से परमात्मा का प्रमाण मिलता है। उस सारी संवेदनशीलता का ही नाम प्रेम है।

तुम जितने संवेदनशील होओगे, जितने इस जगत को खुले, उपलब्ध; सूरज को, हवा को, चांद-तारों को तुम जितना पीओगे; फूलों को, नदियों को, पहाड़ों को तुम जितने करीब आकर प्रेम और आनंद से मग्न होकर देखोगे, अनुभव करोगे—उतना ही तुम्हारे भीतर एक प्रमाण उठने लगेगा, जो प्रमाण तर्क पर आधारित नहीं है, जो प्रमाण तुम्हारी हार्दिक अनुभूति है।

जोतिसरूप सुहागिनी चुनरी, आव बधू धर ध्यान।

प्रेयसी बन कर आओ, वधू बन कर आओ। प्रेम में पड़ कर आओ। जैसे नववधू नाचती हुई चली आए, ऐसे आओ तो जान पाओगे। परमात्मा को प्रियतम की तरह जानो तो ही जान पाओगे।

यह जो तुमने बकवास लगा रखी है कि परमात्मा स्त्रष्टा है, तो एक इंजीनियर होकर रह जाता है। कोई बड़ा संबंध नहीं जुड़ता। अब बनाई होगी दुनिया, और अच्छी बनाई है, सुंदर बनाई है। मगर एक इंजीनियर कितना ही सुंदर भवन बना दे, इससे भी कोई प्रेम का नाता तो

नहीं पैदा हो जाता! या परमात्मा होगा बड़ा गणितज्ञ। खूब गणित बिठाया है, कि जिंदगी चलती है व्यवस्था से और व्यवस्था टूटती नहीं। मगर गणितज्ञ होने से कोई प्रेम तो नहीं हो जाता! अलबर्ट आइंस्टीन रहे होंगे बड़े गणितज्ञ, इससे कुछ प्रेम तो न हो जाएगा।

परमात्मा न तो स्रष्टा, न गणितज्ञ, न यांत्रिक, न वैज्ञानिक। इन शब्दों में सोचा तो चूकते चले जाओगे। प्रियतम की तरह सोचो। कबीर कहते हैं: मैं राम की दुल्हनिया! ऐसे सोचो। दुल्हन बन कर सोचो।

जोतिसरूप सुहागिनी चुनरी, आव बधू धर ध्यान।

अब तो ऐसा ध्यान धरो उसका, जैसे नववधू ध्यान धरती है अपने प्यारे का।

अब जिन दिनों ये पद लिखे गए थे, उन दिनों की याद तुम्हें आए तो ही तुम समझ पाओगे। अब हालत बदल गई है। जिन दिनों ये पद लिखे गए थे, उन दिनों नई वधू को अपने पति, अपने प्यारे का चेहरा भी पता नहीं होता था। छोटे-छोटे बच्चों के विवाह होते थे। विवाह के पहले उन्हें मिलने-जुलने नहीं दिया जाता था। एक-दूसरे को देखने का तो सवाल ही न उठता था!

तो नववधू यारी के जमानों की सोचना। उसे कुछ पता नहीं उसका प्यारा कैसा है! उसे कुछ उसका रूप-रंग, कुछ भी पता नहीं। लेकिन फिर भी उसके हृदय में एक गहरी उमंग है, एक उत्साह है—प्यारे से मिलने जा रही है! डोले पर सवार हुई है। शायद दिनों लगेंगे। लंबी यात्रा होगी। पैदल यात्रा होती थी। या बैलगाड़ी पर सवार होगी, या डोले पर सवार होगी। दिन, दो दिन, चार दिन की यात्रा होगी। लेकिन हृदय में बस प्यारा ही धड़कता रहेगा—अनजाना, अपरिचित, जिसके चेहरे का पता नहीं! जो कैसा होगा, कुछ पता नहीं। लेकिन फिर भी एक भीतर ज्योति जल रही है, एक स्मरण चल रहा है!

आव बधू धर ध्यान।

जैसे वधू अनजान-अपरिचित पति का ध्यान धरती हुई चली आती है, ऐसे ही तुम्हें भी उस प्यारे का ध्यान रख कर आना होगा, तो ही आ पाओगे। और ऐसे आओ तो तुम्हारी चुनरी के भीतर अपने आप ज्योतिर्मय प्रकट होने लगे।

जोतिसरूप सुहागिनी चुनरी...

और जब तक तुमने परमात्मा से संबंध नहीं जोड़ा है, तब तक तुम सुहागिन नहीं हो। तब तक तुम्हारा सौभाग्य ही कहां? सुहागिन कैसे? उससे संबंध जुड़े तो ही सुहाग। और उससे संबंध जुड़े तो सुहागरात, तो मिलन का वह अपूर्व क्षण! उस क्षण की ही आकांक्षा है; वही निर्वाण है, वही मोक्ष है।

भाव गीतों का समझती हूं न पर मैं साथ गाती
मैं तुम्हारे साथ गाती।
ज्योति के पायल पहन नक्षत्र सी मैं जगमगाती
मैं तुम्हारे साथ गाती।

अर्थ समझूं मैं न—कड़ियों की विकलता जानती हूं

मैं स्वरों के साथ उठती आग को पहचानती हूं।
पूर्णता की प्यास ले ज्यों सरि चले सागर मिलन को
मैं तुम्हारे राग में तृष्णा वही—मैं मानती हूं।
लांघ सीमा रिक्तता की मैं चली पूर्णत्व पाने
मैं अपरिचित थी—पवन की लय मुझे आई बुलाने
और मेरे फुल्ल मन में भी पिकी का दाह जागा
छोड़ घूंघट और अकुलाहट उठी मैं स्वर मिलाने
मैं सजीली, प्यार-भीनी छांह सी हूं साथ जाती।
मैं तुम्हारे साथ गाती।

मुग्ध ओंठों बीच सिमटी बंसरी सी मैं नहाती!
दौड़ती फिरती तुम्हारे साथ जीवन की गली में
हूं घुली जाती लहर सी मैं तुम्हारी काकली में
प्राण की यह सिक्त तन्मयता—न रस का अंत जैसे
जाग उठा हो मूर्ति का ज्यों देवता प्रस्तर-तली में
वायु चंचल प्राण की किस मुक्ति का मर्मर लिए हैं
आज मेरा कंठ किस मधु का महासागर पीए हैं
ज्योति यह आनंद की मन की द्विधाएं भस्म करती
गीत का लय भार मेरे कंकणों को रत किए हैं
हो शिथिल अवरोह में—आरोह में नभ चूम आती
मैं तुम्हारे साथ गाती!

मैं वसंती वायु से उठती लता सी कसमसाती
रूप पाती रश्मि मुझसे—सृष्टि नव प्राणद विपुलता
हैं यही संगीत अंबर के घनों में पूर्ति भरता
भीग कर उस तान में शारद निशा अवदात होती
हैं वसंती तारकों का राग यह पथ-ताप हरता
बांध लेता हैं प्रकृति को संचरण पुलकावली का
गंध के परिप्रोत से बनता सुमन लघु तन कली का
इस अनामी गीत का मैं अर्थ समझी हूं न अब तक
किंतु रंग देता यही मुख प्रति पवन की अंजली का
मैं गुंथी जाती इसी की मुग्धमीड़ों में समाती
मैं तुम्हारे साथ गाती!

न अर्थ समझ में आता है, न कभी आएगा समझ में। इस जगत का अर्थ इतना बड़ा है कि जितना समझोगे, उतना ही पाओगे कि समझने को पड़ा है। इस जगत का अर्थ इतना बड़ा

है कि जितना समझोगे, उतना ही पाओगे कि नासमझ हूं। यहां नासमझ अपने को समझदार समझ लें, मगर यहां समझदार अपने को समझदार नहीं समझ सकते हैं।

उपनिषद कहते हैं: जो कहे कि मैंने जाना, जान लेना कि नहीं जाना।

सुकरात ने कहा है: जब जाना तो इतना ही जाना कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।

अर्थ यह समझ में न आएगा। अर्थ यह समझ के परे है। अर्थ यह समझ से बड़ा है। यह अर्थ समझ में न आएगा, ऐसे ही जैसे कोई चाय की चम्मच में और सागर को भरने चले! अब सागर कैसे चाय की चम्मच में समाए? और हमारा सिर, हमारी बुद्धि, हमारी समझ—चाय की चम्मच से भी छोटी है इस विराट के समक्ष। शायद सागर तो किसी दिन चाय की चम्मच में समा भी जाए, क्योंकि सागर की सीमा है। यह विराट तो असीम है। यह तो हमारे मस्तिष्क में न समा सकेगा।

अर्थ नहीं समझा जा सकता, लेकिन फिर भी गीत तो गाया जा सकता है। और वही भक्त का राज है, रहस्य है। अर्थ को समझने की पड़ी किसको है? इतना आनंद बरस रहा है! इस महोत्सव में जो अर्थ को समझने बैठे हैं, कुछ रुग्ण होंगे। नाचो! नृत्य का अर्थ क्या समझना है? अनुभव कर लो। और अगर अनुभव ही अर्थ हो जाए तो ठीक। लेकिन अनुभव अर्थ नहीं होता। जैसे अनुभव बढ़ता है, वैसे ही रहस्य और गहन होता जाता है। जिस दिन रहस्य इतना अनंत हो जाता है कि तुम्हें स्पष्ट हो जाता है कि मेरा जानना ना-कुछ है और रहस्य अनंत है; जिस दिन जानना शून्य और रहस्य पूर्ण हो जाता है—उसी दिन भक्त की बूंद भगवान के सागर में लीन हो जाती है। उसी दिन भक्त भगवान हो जाता है।

हद बेहद के बाहरे यारीं...

वह हद के तो बाहर है ही, बेहद के भी बाहर है। सीमा के तो बाहर है ही, असीमा के भी बाहर है।

...संतन को उत्तम ज्ञान।

और यह जो संतों का उत्तम ज्ञान है, इसको इसीलिए उत्तम कहा है कि इसमें ज्ञान का कोई बोध नहीं है। जहां ज्ञान का बोध है, जहां ज्ञान की अकड़ है, वहां तो समझना कि पांडित्य है। और जहां ज्ञान का कोई बोध नहीं है, जहां ज्ञान की कोई अकड़ नहीं है, जहां ज्ञान का कोई दावा नहीं है, वहां जानना कि उत्तम ज्ञान है। उत्तम ज्ञान का लक्षण यही है कि जानने वाले को सिर्फ इतना ही पता चलता है कि मुझे कुछ भी पता नहीं है।

कोऊ गुरु गम ओढ़ै चुनरिया, निरगुन चुनरी निर्बान।

कोई मिल जाए सदगुरु। कोई मिल जाए जिसने चुनरिया ओढ़ ली हो। कोई मिल जाए ऐसा ज्ञानी जिसे अपने अज्ञान का पता हो। कोई मिल जाए ऐसा जो मिट चुका हो। कोई मिल जाए ऐसी बूंद जो सागर में अपने को खो चुकी हो। तो उसके प्रसाद से ही, उसकी सामर्थ्य से ही, उसकी अनुकंपा, उसके आशीष से ही तुम्हारे सिर पर भी चुनरिया पड़ जाए! यही शिष्यत्व का अर्थ है। गुरु ने ओढ़ ली चुनरिया, वह जानता है चुनरिया का रंग-ढंग, वह तुम्हें भी चुनरिया ओढ़ना सिखा देगा।

कोऊ गुरु गम ओढ़ै चुनरिया, निरगुन चुनरी निर्बान।
उड़ू उड़ू रे विहंगम चढ़ु आकाश।

और मिल जाए गुरु तो बस एक ही पुकार उठने लगती है—उड़ू उड़ू रे विहंगम चढ़ु आकाश! कि उड़ो पक्षी! यह खुला आकाश तुम्हारा है। यह सारा आकाश तुम्हारा है कि उड़ो, कि खोलो पंख।

तुम्हें पता है, अगर किसी पक्षी को अंडे से जन्म के पहले ही मां से अलग कर लिया जाए, बिजली के इन्कुबेटर में अंडे को रख कर ताप दिया जाए और पक्षी बिजली के यंत्र में ही अंडे से बाहर निकले—तो उड़ नहीं सकेगा। पंख तो होंगे, मगर उड़ नहीं सकेगा। इस पर वैज्ञानिकों ने प्रयोग किए हैं। पंख हैं, पक्षी उड़ता क्यों नहीं? उसने किसी को उड़ते देखा नहीं कभी। बिना किसी को उड़ते देखे कैसे पता चले कि उड़ना भी होता है?

तुमने कहानियां सुनी होंगी, घटनाएं हैं वास्तविक। अभी कुछ दिन पहले लखनऊ के पास...कुछ वर्ष पहले, एक छोटा बच्चा जंगल में मिला था। भेड़ियों ने पाला था उसे। राम उसका नाम था। अखबारों में तुमने खबर सुनी होगी। उसको ले आया गया। जब लाया गया तो उसकी उम्र कोई नौ साल थी, मगर वह दो पैरों पर खड़ा होना नहीं जानता था। वह चारों हाथ-पैर से चलता था, जैसे भेड़िये चलते हैं। उसने किसी को कभी दो पैर पर खड़े देखा ही न था। तो स्मरण भी कैसे आए? छह महीने डाक्टरों को लग गए उसे दो पैर पर खड़ा करना सिखाने में। और उसी में उसकी जान गई। मर गया वह!

जब आया था तो इतना स्वस्थ था, भेड़ियों जैसा स्वस्थ था! दो-चार आदमियों को पछाड़ देना उसे कठिन काम न था। और उसकी दौड़ इतनी तेज थी कि कोई आदमी उसके साथ नहीं दौड़ सकता था। और चारों हाथ-पैर से दौड़ता था। उसके नाखून बड़े थे और खतरनाक थे। खूंखार था, मांसाहारी था। उसको कर-कर के मालिश, दे-दे कर दवाएं खड़ा करने की कोशिश की, क्योंकि उसकी रीढ़ चार हाथ-पैर से चलने की आदी हो गई थी। उसकी जो छह महीने मालिश और चिकित्सा की गई, वह जो उसको सताया गया...वे सोच रहे थे उसके भले के लिए कर रहे हैं, लेकिन उसको मार डाला। वह मर गया। वह रोज कमजोर होता गया।

यह मनुष्य का बच्चा दो पैर से खड़ा न हो सका! यह नौ साल का था, लेकिन एक शब्द नहीं बोल सकता था। इसने शब्द सुने ही न थे तो बोलता कैसे? फ्रेंच घर में बच्चा पैदा होता है तो फ्रेंच भाषा बोलता है। चीनी घर में पैदा होता है तो चीनी भाषा बोलता है। चीनी घर में पैदा होकर फ्रेंच भाषा नहीं बोलता। बोल ही नहीं सकता! अगर पक्षी को अपनी मां को, अपने पिता को उड़ते देखने का मौका न मिले, तो उसे कभी याद भी न आएगी कि मेरे पास पंख हैं, कि मैं भी उड़ सकता हूं।

यही तुम्हारी दशा है। तुम्हें किसी आकाश में उड़ते पक्षी का संग-साथ खोजना होगा। सदगुरु का इतना ही अर्थ है: जिसे तुम उड़ता हुआ देख सको। और उसको उड़ते देखते ही, तत्क्षण तुम्हारे पंखों में एक सरसराहट हो जाएगी, एक बिजली दौड़ जाएगी। तुम्हें पहली दफा याद आएगी कि यही मैं भी हूं। ऐसा ही मैं भी उड़ सकता हूं। यह आकाश और इसके सारे तारे मेरे हैं—उतने ही, जितने किसी और के। मैं भी बुद्ध हो सकता हूं।

मगर बुद्ध के पास ही यह स्मरण आएगा।

उड़ू उड़ू रे विहंगम चढ़ु आकाश।

तब एक ही गूंज उठने लगती है भीतर कि हे पक्षी, तू भी उड़! कि हे प्राणों के पक्षी, तू भी उड़!

हो सकता है कि याद आ जाने के बाद भी कुछ दिन पंखों को सम्हालना सीखना पड़े। क्योंकि जन्मों-जन्मों से पंखों का उपयोग नहीं हुआ है। उनमें खून की धार नहीं बही है। वे निष्प्राण हो गए होंगे! शायद थोड़े दिन पंखों को फड़फड़ाना सीखना पड़े। शायद थोड़े दिन, थोड़ी-थोड़ी छलांगें ही भर कर अपने को तृप्त रखना पड़े—एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर। इतना ही बहुत होगा। फिर धीरे-धीरे, शनैः-शनैः हिम्मत भी बढ़ेगी, साहस भी बढ़ेगा। पंख भी पुनरुज्जीवित हो उठेंगे। फिर लहू की धार उनमें बहेगी। फिर उत्साह जगेगा। और आकाश की चुनौती स्वीकार हो जाएगी।

उसी दिन, जिस दिन तुम आकाश की चुनौती स्वीकार करते हो, तुम्हारे भीतर मनुष्य का जन्म होता है। उसके पहले नाम मात्र की मनुष्यता है। सिर्फ शिष्य ही मनुष्य है।

उड़ू उड़ू रे विहंगम चढ़ु आकाश।

अजल से ही मुझको तेरी आरजू थी
तेरी आरजू थी, तेरी जुस्तजू थी

प्रथम दिन से ही यही आकांक्षा है कि आकाश में उड़ना हो। प्रथम दिन से ही हम परमात्मा की तलाश कर रहे हैं। प्रथम दिन से ही, सृष्टि के प्रथम क्षण से ही हम अपने मूल उदगम को खोज रहे हैं।

अजल से ही मुझको तेरी आरजू थी
तेरी आरजू थी, तेरी जुस्तजू थी
बहुत सैर की हमने दैरो-हरम की
अजब शोरगुल था, अजब हायो-हू थी
खुदी का उठाया जो पर्दा तो देखा
वह शमअ-दरख्शां मेरे रूबरू थी
रसा हो न हो तेरी फरियाद बुलबुल
सरापा-तरन्नुम बहुत खुशगुलू थी
चले तो हैं 'जीनत' इबादत को लेकिन
न फिक्रे-नमाज और न यादे-वजू थी

याद आए न आए, मगर तुम खोज उसी को रहे हो। धन में, पद में, प्रतिष्ठा में, संसार में तुम खोज उसी को रहे हो। खोज गलत हो भला, दिशा गलत हो भला, लेकिन आकांक्षा, जुस्तजू उसी परम सत्य की है, उसी परम प्यारे की है।

बहुत सैर की हमने दैरो-हरम की

मंदिरों में गए, मस्जिदों में गए।

अजब शोरगुल था, अजब हायो-हू थी

वहां बहुत ढंग देखे, बहुत तरकीबें, बहुत व्यवस्थाएं, बहुत औपचारिकताएं, बहुत क्रियाकांड!

बहुत सैर की हमने दैरो-हरम की

अजब शोरगुल था, अजब हायो-हू थी
खुदी का उठाया जो पर्दा तो देखा
वह शमअ-दरख्शां मेरे रूबरू थी

लेकिन जिस दिन अहंकार को हटाया, अहंकार का पर्दा उठाया, तो देखा कि वह शमा, वह ज्योति तो मेरे ही भीतर जल रही थी और सदा से मेरे समक्ष थी। मैं ही पीठ किए खड़ा था। मैं ही अपने अहंकार में डूब गया था और उसे भूल गया था।

खुदी का उठाया जो पर्दा तो देखा
वह शमअ-दरख्शां मेरे रूबरू थी

और फिर कोई चिंता नहीं रह जाती।

रसा हो न हो तेरी फरियाद बुलबुल

फिर तो प्रार्थना सुनी जाए या न सुनी जाए, कौन चिंता करता है! मालिक भीतर विराजमान है। जिसे खोजने चले हैं, वह खोजी में ही है। फिर भी प्रार्थना उठती है, यही मजा है। फिर ही प्रार्थना उठती है, यही मजा है। लेकिन तब प्रार्थना सिर्फ एक अहोभाव होता है, एक धन्यवाद, कोई मांग नहीं।

रसा हो न हो तेरी फरियाद बुलबुल
सरापा-तरन्नुम बहुत खुशगुलू थी

फिर कौन फिक्र करता है कि मेरी मांग सुनी गई कि नहीं, कि मेरी आवाज उस तक पहुंची या नहीं। फिर तो इतना ही काफी तृप्तिदायी है कि जो मैंने गाया गीत वह बड़ा प्यारा था, कि उससे मैं भी मस्त हुआ! कि बुलबुल ने जो गीत गाया, फूल उसमें खूब नाचे! बस इतना काफी है। फूल में भी वही है, बुलबुल में भी वही है।

चले तो हैं 'जीनत' इबादत को लेकिन

और तब एक नये ढंग की पूजा शुरू होती है, एक नई प्रार्थना, एक नई अर्चना।

चले तो हैं 'जीनत' इबादत को लेकिन
न फिक्रे-नमाज और न यादे-वजू थी

फिर कौन फिक्र करता है नमाज की, कि मुसल्ला बिछाया गया कि नहीं, कि नमाज ढंग से पढ़ी गई कि नहीं, कि नमाज में कोई भूल-चूक तो नहीं हो गई, कि शब्द ठीक-ठीक थे कि नहीं, कि व्याकरण दुरुस्त थी कि नहीं!

चले तो हैं 'जीनत' इबादत को लेकिन

फिर भी इबादत तो चलती है। मगर फिर कौन फिक्र करता है कि मंदिर में की गई कि मस्जिद में की गई! फिर तो जहां बैठ जाता है भक्त, वहीं मंदिर बन जाता है। फिर तो जहां उसके पैर पड़ते हैं, वहीं तीर्थ निर्मित हो जाते हैं।

न फिक्रे-नमाज और न यादे-वजू थी

फिर कौन फिक्र करता है कि हाथ धोए गए कि नहीं, कि नमाज ठीक-ठीक पढ़ी गई कि नहीं, कि ठीक समय पर पढ़ी गई कि नहीं। फिर क्रियाकांड छूट जाते हैं। फिर एक सहजता होती है प्रार्थना में। एक सहज-स्फूर्तता होती है अर्चना में। फिर जैसे दीये से प्रकाश झरता है और जैसे फूल से गंध बहती है, ऐसे ही फिर भक्त से प्रार्थना उठती रहती है!

उड़ उड़ रे विहंगम चढ़ु आकाश।

जहं नहिं चांद सूर निसबासर...

यह किस आकाश की बात हो रही है? यह बाहर के आकाश की बात नहीं हो रही है। जैसे बाहर एक आकाश है, ऐसे ही भीतर एक आकाश है—चिदाकाश, चैतन्य का आकाश।

जहं नहिं चांद सूर निसबासर...

वहां चांद भी नहीं है, सूरज भी नहीं है। न वहां दिन होता है कभी, न कभी रात होती है। वहां सब एकरस है, सदा एकरस है। वहां कुछ बदलता ही नहीं। वहां शाश्वत है, और वैसा का वैसा है, जैसा था वैसा ही है। वहां समय नहीं है, परिवर्तन नहीं है।

जहं नहिं चांद सूर निसबासर, सदा अमरपुर अगम बास।

वहां तो अमृत है, मृत्यु नहीं है। क्योंकि जहां समय नहीं, वहां जन्म नहीं, मृत्यु नहीं। न कुछ प्रारंभ होता है, न कुछ अंत होता है। वहां सब ठहरा हुआ है—शांत, थिर। वहां कोई तरंग नहीं उठती। उस निस्तरंग, उस अमृत के लोक में वास हो जाता है भक्त का। जरा अहंकार गिरे। जरा निर्वाण सधे।

निरगुन चुनरी निर्बान।

जरा चुनरी ओढ़ो निर-अहंकार की! अपने को मिटाओ! और तुम पहली दफा पाओगे कि तुम वस्तुतः हुए। मिट कर ही कोई होता है। खोकर ही कोई पाता है।

देखै उरध अगाध निरंतर, हरष सोक नहिं जम कै त्रास।

वहां जो भीतर का लोक है, उसमें प्रवेश किया तो बस ऊपर से ऊपर उठते चले जाते हो। बाहर के जगत में नीचे ही नीचे गिरना पड़ता है। बाहर का जगत अधोगामी है; अंतर्जगत ऊर्ध्वगामी है। बाहर के जगत में हर चीज नीचे की तरफ जाती है, जैसे जलधार, बस बहती है गड्ढों की तरफ—नीचे, नीचे, नीचे...। भीतर के जगत में हर चीज ऊपर की तरफ जाती है, जैसे दीये की ज्योति, जैसे अग्नि की लपट—बस ऊपर ही ऊपर जाती है। तुम दीये को उलटा भी कर दो, तो दीया उलटा हो जाएगा, मगर ज्योति ऊपर की तरफ ही भागती रहेगी। ज्योति नीचे की तरफ जा ही नहीं सकती।

तुम्हारे भीतर उस ज्योति का आवास है। तुम्हारे भीतर परम ज्योति विराजमान है। जरा आंख भीतर मुड़े! यारी ने कहा न, जरा आंख उलटी करो। बहुत देखा बाहर, अब भीतर देखो।

देखै उरध अगाध निरंतर...

और तब चकित हो जाना पड़ता है—ऊपर और ऊपर...और अंत नहीं ऊपर का! अगाध है! जैसे सागर नीचे की तरफ अगाध है, ऐसे अंतस चैतन्य का सागर ऊपर की तरफ अगाध है, अंत नहीं आता।

...हरष सोक नहिं जम कै त्रास।

न वहां हर्ष है, न शोक। न वहां दुख, न सुख। वहां तो परम शांति है, पूर्ण शांति है। उस पूर्ण शांति का ही नाम आनंद है। और वहां मृत्यु का कोई त्रास नहीं है। वहां कुछ मिटा ही नहीं कभी और मिटता ही नहीं कभी। इस शाश्वत को पाए बिना संतोष नहीं होगा। मृत्यु का भय बना रहेगा। मौत द्वार पर दस्तक देती रहेगी। एक बार भीतर जिसने देख लिया, उसकी मृत्यु मिट जाती है।

कह यारी उहं बधिक फांस नहिं, फल पायो जगमग परकास।

कह यारी उहं बधिक फांस नहिं...

वहां काल नहीं है। वहां कोई तुम्हें मारने न आएगा। वहां तुम्हारी मृत्यु नहीं है। कृष्ण कहते हैं : नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः! मुझे न तो शस्त्र छेद सकते हैं, न अग्नि जला सकती है। तुम्हारे भीतर भी वह छिपा है जिसे शस्त्र नहीं छेद सकते, अग्नि नहीं जला सकती! देह मरती है, जन्मती है। तुम अजन्मा हो! तुम अमृत हो! अमृतस्य पुत्रः! वेद कहते हैं कि तुम अमृत के पुत्र हो और भूल गए, भटक गए और मृत्यु के साथ अपना संबंध जोड़ लिया और देह के साथ तादात्म्य कर लिया! अब बड़े चिंतित हो, बड़े परेशान हो।

...फल पायो जगमग परकास।

और जिसने भीतर देखा, उसे फल मिला। नहीं तो जीवन निष्फल है। बाहर तुम कितना ही कमा लो, निष्फल के निष्फल रहोगे, असफल के असफल रहोगे! कितना ही कमा लो, खाली हाथ ही जाना पड़ेगा! बाहर की कमाई, कमाई नहीं है, गंवाई है! क्योंकि उन्हीं क्षणों को तुम भीतर लगा सकते थे; और वहां कुछ कमा लेते तो मौत तुमसे छीन न पाती, लुटेरे लूट न पाते। और जो तुम भीतर कुछ पा लेते, तुम्हारे साथ जाता।

बाहर संपदा नहीं है, संपदा भीतर है। बाहर तो विपदा है। संपत्ति नहीं है बाहर, विपत्ति है। संपत्ति तो भीतर है।

तुम देखते हो : संपत्ति, संपदा, ये उसी धातु से बने हैं जिससे समाधि। उसी धातु से बने हैं जिससे सम्यकत्व, संबोधि। ये सब सम शब्द से बने हैं। और सम का अर्थ होता है—न जहां शोक, न जहां हर्ष—समता, सम्यकत्व, संतुलन। जहां बीच में ठहर गए, न यह, न वह। नेति-नेति! जहां मध्य में आ गए। उसी से संपत्ति शब्द बना है। बाहर तो संपत्ति हो ही नहीं सकती, क्योंकि वह मध्य बिंदु तुम्हारे भीतर है। न बाएं, न दाएं। न संसारी, न त्यागी। ठीक मध्य में आ गए। न भोगी, न त्यागी। न धन को पकड़ने को आतुर, न धन को छोड़ने को आतुर।

न बाहर कुछ पकड़ने योग्य है, न कुछ छोड़ने योग्य है—स्मरण रखो, बार-बार स्मरण रखो! क्योंकि बाहर अगर कुछ छोड़ने योग्य है तो उसका अर्थ हुआ, बाहर कुछ पकड़ने योग्य भी है। पकड़ने योग्य ही नहीं है, छोड़ने योग्य कैसे होगा? तुम्हारा भोगी भी भ्रांत है, तुम्हारा त्यागी भी भ्रांत है। बाहर न तो कुछ पकड़ने योग्य है, न छोड़ने योग्य है। जो कुछ है भीतर है।

कह यारी उहं बधिक फांस नहिं, फल पायो जगमग परकास।

वहां मृत्यु का कोई डर नहीं है। मृत्यु खो गई; मृत्यु के साथ ही सारा अंधकार भी खो गया, सारा भय भी खो गया। फिर प्रकाश ही प्रकाश जगमग हो रहा है। इस प्रकाश का ही दूसरा नाम परमात्मा है।

शुरू-शुरू में इसकी क्षण भर को झलक मिलेगी और खो जाएगी, जैसे बिजली कौंधे। मगर उतने से ही भरोसा आने लगेगा। उसको ही मैं भरोसा कहता हूं; विश्वास को नहीं, अनुभव को। पहले झलक आएगी, जैसे क्षण भर को झरोखा खुल गया और तुमने आकाश देख लिया! फिर बंद हो जाएगा; पुरानी आदतें, संस्कार, मन, चित्त, अहंकार फिर वापस

हमला कर देंगे। मगर एक बार भी धीरे-धीरे झलक मिलने लगे तो तुम्हारे जीवन में क्रांति शुरू हो गई। अब तुम जान लोगे कि बाहर कुछ भी नहीं है। अब तुम बाहर जीओगे, लेकिन धुन भीतर की बनी रहेगी।

आव बधू धर ध्यान।

जस पनिहार धरै सिर गागर! रख लेती है सिर पर गागर पनिहारिन, हाथ से पकड़ती भी नहीं, सहेलियों से बातें भी करती जाती है, गीत भी गुनगुनाती है, गपशप भी करती है, राह में हंसी-ठिठोली भी करती है। मगर ध्यान उसका लगा ही रहता है गागर पर, कि कहीं गागर गिर न जाए। जस पनिहार धरै सिर गागर!

एक बार तुम्हें भीतर की झलक आने लगे, फिर तुम बाजार में रहोगे, दुकान भी करोगे...करनी ही है, कहीं भागना नहीं है। सब भगोड़े हो जाएंगे तो जगत बहुत बेरौनक हो जाएगा। सब वैसा ही करना है जैसे करते थे। लेकिन अब एक याद तुम्हारे भीतर आनी शुरू हो जाएगी। झलक को धीरे-धीरे तुम पकड़ोगे, टिकाओगे। अपने को योग्य बनाओगे कि थोड़ी और टिके, थोड़ी और टिके।

ठहर जाओ, घड़ी भर और
तुमको देख लें आंखें!

अभी कुछ देर मेरे कान
में गूंजे तुम्हारा स्वर
बहे प्रतिरोम से मेरे
सरस उल्लास का निर्झर
बुझा दिल का दीया शायद
किरण सा खिल उठे जलकर,
ठहर जाओ, घड़ी भर और
तुमको देख लें आंखें!

तुम्हारे रूप का सित आवरण
कितना मुझे शीतल
तुम्हारे कंठ की मधु-बंसरी
जलधार सी चंचल
तुम्हारे चितवनों की छांह
मेरी आत्मा उज्ज्वल,
उलझतीं फड़फड़ातीं प्राण
पंछी की तरुण पांखें।

लुटाता फूल सौरभ सा

तुम्हें मधु-वात ले आया,
गगन की दूधिया गंगा
लिए ज्यों शशि उतर आया
ढहे मन के महल में भर
गई किस स्वप्न की माया
ठहर जाओ, घड़ी भर और
तुमको देख लें आंखें!

मुझे लगता तुम्हारे सामने
मैं सत्य बन जाता,
न मेरी पूर्णता को देवता
कोई पहुंच पाता,
मुझे चिरप्यास वह अमरत्व
जिससे जगमगा जाता,
ठहर जाओ, घड़ी भर और
तुमको देख लें आंखें!

धीरे-धीरे पुकार उठेगी, प्यास उठेगी, प्रार्थना जगेगी। और जो क्षण भर को होता है, देर-देर तक टिकने लगेगा। उस प्यारे के साथ संबंध गहन होने लगेगा। और आज नहीं कल, कल नहीं परसों...प्रतीक्षा और धैर्य—बस इतना ही चाहिए साधक को। घटना निश्चित घटती है। और एक दिन ऐसा आ जाता है कि वह प्रियतम सदा को तुम्हारे भीतर ठहर जाता है। द्वारे खुले, फिर बंद नहीं होते। उसी घड़ी निर्वाण की चदरिया तुम्हारे ऊपर पड़ गई, चुनरी ओढ़ ली!

निरगुन चुनरी निर्बान, कोउ ओढ़ै संत सुजान।

स्मरण रखो, इस चुनरी की तलाश करनी है। इस चुनरी को बिना लिए इस जगत से मत जाना। क्योंकि इस चुनरी को बिना लिए जो जाता है, वह अकारथ आया, अकारथ गया। यह चुनरी मिलनी ही चाहिए। यह हमारा अधिकार है, इसी की खोज के लिए हम आए हैं। इस खोज को पूरा करना है। जगाओ इस संकल्प को—इस खोज को पूरा करना है। प्राणों को भरो इस संकल्प से—इस खोज को पूरा करना है। और यह खोज पूरी हो जाती है एक छोटे से सूत्र से। उस सूत्र का नाम प्रेम है।

आइए, हाथ उठाएं हम भी
हम जिन्हें रस्मे-दुआ याद नहीं
हम जिन्हें सोजे-मोहब्बत के सिवा
कोई बुत, कोई खुदा याद नहीं

आज इतना ही।

प्रवचन 5

संन्यास—एक नई आंख

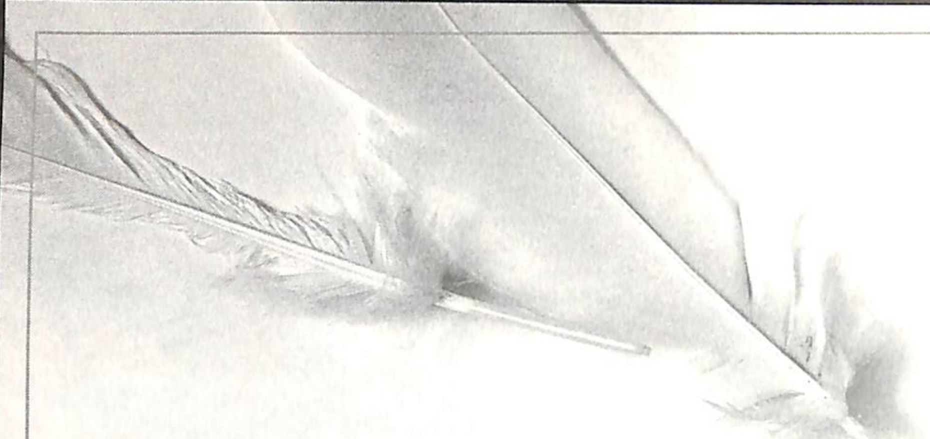

बचपन से ही सुनता रहा हूं तथाकथित साधु-महात्माओं से कि संसार असार है। इधर आप कहते हैं कि संसार असार नहीं है—एक प्रेमपूर्ण महोत्सव है, अविरल रसपूर्ण बहता हुआ झरना है। पीने वाला चाहिए।
रवीन्द्रनाथ ने भी एक बार कहा था: 'मोरिते चाहिना आमि, ए शुन्दोर भूवने! मैं इस सुंदर रसपूर्ण संसार को छोड़ कर यूं ही मरना नहीं चाहता।'
यह सब मुझे विश्वास ही नहीं आता था। न जाने किसके अनजान आमंत्रण से यहां चला आया, अनायास; और यहां आश्रमवासियों में जो एक निष्पाप बालक-सुलभ चपलता देखी, तो बस ठगा सा रह गया। मनुष्य के जीवन में इतना रस, ऐसे अकथनीय अमृत की रसधार परमात्मा के रूप में आप बरसाते हैं—ऐसी कल्पना ही न थी। लेकिन इधर आपने खूब फंसाया मुझे। अब आफत में पड़ा। क्योंकि जब अब घर वापस लौटूंगा तो वही बासा घिसा-पिटा जीवन उपलब्ध होगा। कृपया अब आप ही मेरा मार्गदर्शन करें। इसलिए कल आपके पवित्र कर-कमलों से संन्यास भी लिया है। अब तो तुम्हीं ने दर्द दिया है, तुम्हीं दवा देना!

आश्चर्य है कि भारत की राजधानी से निकलने वाली एक पोर्नो पत्रिका ने, जो अश्लीलता का धंधा करती है, लिखा है कि आपको फांसी दे दी जाए। इसका राज क्या है?

मैं हृदय की वेदना व्यक्त करना चाहता हूं, जो कि मैंने आज तक किसी से व्यक्त नहीं की। मेरे मन की हालत खंड-खंड हो गई है। एक तरफ सत्संग का प्रेम और परमात्मा से मिलन की चाहत और दूसरी तरफ भौतिक कामवासना की तरफ हर पल का झुकाव। आज प्रौढ़ावस्था तक उससे छुटकारा नहीं पा सका हूं। समझ आती है तो अधूरी रहती है। और स्त्री-शरीर के अनेक अनुभवों के बावजूद भी और ज्यादा वृत्ति तंग करती है। सब अच्छी कही हुई बातें और सिखावनें बाहर ही रह जाती हैं। मैं वही का वही! सब भूल कर लोलुप हो जाता हूं। वासना मन को घेरे रहती है। स्वप्न में भी वही चलता है। किस क्रिया से मैं छुटकारा या समता पा सकूं, वह रास्ता दिखाएं। कृपा करें।

प्रेम को अंधा कहा गया है, और आप प्रेम सिखाते हैं। प्रेम को पागलपन कहा है, और आप प्रेम सिखाते हैं। प्रेम को स्वप्न कहा गया है, और आप प्रेम सिखाते हैं। क्यों?

पहला प्रश्नः बचपन से ही सुनता रहा हूं तथाकथित साधु-महात्माओं से कि संसार असार है। इधर आप कहते हैं कि संसार असार नहीं है—एक प्रेमपूर्ण महोत्सव है, अविरल रसपूर्ण बहता हुआ झरना है। पीने वाला चाहिए।

रवीन्द्रनाथ ने भी एक बार कहा थाः 'मोरिते चाहिना आमि, ए शुन्दोर भूवने! मैं इस सुंदर रसपूर्ण संसार को छोड़ कर यूं ही मरना नहीं चाहता।'

यह सब मुझे विश्वास ही नहीं आता था। न जाने किसके अनजान आमंत्रण से यहां चला आया, अनायास; और यहां आश्रमवासियों में जो एक निष्पाप बालक-सुलभ चपलता देखी, तो बस ठगा सा रह गया। मनुष्य के जीवन में इतना रस, ऐसे अकथनीय अमृत की रसधार परमात्मा के रूप में आप बरसाते हैं—ऐसी कल्पना ही न थी। लेकिन इधर आपने खूब फंसाया मुझे। अब आफत में पड़ा। क्योंकि जब अब घर वापस लौटूंगा तो वही बासा घिसा-पिटा जीवन उपलब्ध होगा। कृपया अब आप ही मेरा मार्गदर्शन करें। इसलिए कल आपके पवित्र कर-कमलों से संन्यास भी लिया है। अब तो तुम्हीं ने दर्द दिया है, तुम्हीं दवा देना!

रजत बोस! मनुष्यता के जीवन में जो सबसे बड़ी दुर्घटना घटी है, वह हैं तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी। उन्होंने मनुष्य के चित्त को विषाक्त कर दिया है। उन्होंने मनुष्य के चित्त को रुग्ण कर दिया है। उन्होंने ऐसी बातें समझाई हैं कि मनुष्य की जड़ें पृथ्वी से

कंप गई हैं, हिल गई हैं। और जब किसी वृक्ष की जड़ें पृथ्वी से हिल जाएं, उखड़ जाएं, तो पत्ते भी मुरझा जाते हैं, कलियां फूल नहीं हो पातीं, फलों के आने की तो बात ही बहुत दूर हो जाती है। इतनी जो उदासी है जगत में, उसके पीछे तुम्हारे साधु-संन्यासियों का हाथ है।

जगत असार नहीं है, क्योंकि जगत में परमात्मा के हाथ का हस्ताक्षर है, असार कैसे होगा? जगत परमात्मा की अभिव्यक्ति है, उसका गीत है, उसका नृत्य है। एक-एक पत्ती, एक-एक फूल पर, एक-एक कण पर तुम उसकी छाप पाओगे। इसे जिन्होंने असार कहा, उन्होंने परमात्मा को ही नासमझ कह दिया, मूढ़ कह दिया। परमात्मा मूढ़ हो, तो ही उसका जगत असार हो सकता है। परमात्मा विक्षिप्त हो, तो ही असार का निर्माण करेगा।

अब यह बहुत मजे की बात है, यही साधु-संन्यासी तुम्हें समझाते हैं कि परमात्मा स्रष्टा है; उसने ही संसार बनाया है; उसने ही यह खेल रचा; उसने ही यह लीला जन्माई। और अगर जगत असार है तो फिर परमात्मा में कैसे सार हो सकता है? अगर गीत विक्षिप्त है तो गायक पागल रहा होगा। और नृत्य अगर नृत्य नहीं, सिर्फ उछलकूद है, तो नर्तक नर्तक न रहा, रुग्ण हो गया।

संसार को असार कहना, तो फिर तुम परमात्मा को असारता से बचा न सकोगे। संसार के संबंध में जो भी कहा गया है वह तुम्हारे परमात्मा पर लागू हो जाएगा। और जिसने संसार को इनकार कर दिया उसने परमात्मा के साथ सेतु बनाने की व्यवस्था ही तोड़ दी। इन्हीं फूलों के संग, इन्हीं रंगों के संग तो उसके भुवन तक की यात्रा करनी है, उसके लोक तक की यात्रा करनी है। इन्हीं प्रकृति के पंखों पर सवार होकर तो परमात्मा की खोज में निकलना है। यह देह भी उसकी है। यह चित्त भी उसका है। यह संसार भी उसका है। इसमें जिसका भी तुम निषेध करोगे उतने ही तुम पंगु हो जाओगे।

तुम्हारे साधु-संन्यासियों ने तुम्हें पंगु बनाया, क्योंकि जो पंगु होता है वह गुलाम होने को राजी होता है। जो पंगु होता है उसे दूसरे के सहारे की जरूरत होती है। जो पंगु होता है उसे बैसाखी चाहिए पड़ेगी। और तुम्हारे साधु-संन्यासी तुम्हारी बैसाखी बन गए। पहले तुम्हें पंगु बनाया, पहले तुम्हारे पैर तोड़ दिए, फिर तुम्हें बैसाखियां बेचने लगे। ये एक ही धंधे के दो हिस्से हैं। पहले तुम्हें कहा संसार में कोई सार नहीं। फिर तुम खिन्न हुए, उदास हुए, फिर तुम्हें बताया कि तुम्हारी उदासी को दूर करने का उपाय है: आओ भजन करो, कीर्तन करो, ध्यान लगाओ।

और मैं तुमसे कहता हूं: तुम्हारा भजन भी झूठा होगा। क्योंकि जिसको फूलों में कुछ रस न दिखाई पड़ा और जिसे चांद-तारों में कोई रस न दिखाई पड़ा, उसे थोथे शब्दों में...हरे कृष्णा हरे रामा...इसमें कुछ मिल जाएगा? जिसे इतने हरे जगत में हरियाली न दिखाई पड़ी, उसे अपने ही ओंठों से उठाए गए शब्दों में जीवन के स्रोत मिल जाएंगे? जिसे सूरज में उसकी छवि नहीं दिखाई पड़ी, अपनी ही गढ़ी प्रतिमा में उसे खोज लेगा? जो इतना ज्वलंत होकर प्रकट है और नहीं दिखाई पड़ता, उसे तुम मंदिर और मस्जिद में पा लोगे? और जिसके वेद झरने गा रहे हैं और जिसकी कुरान आकाश में बादलों में गीत बन कर गरजती है और जिसकी गीता समुद्र की लहरों पर उठती है, नाचती है—वहां तुम्हें न दिखाई पड़ी, आदमी की छपी, हाथ की लिखी किताबों में तुम उसे पा लोगे? उसकी ही लिखी किताब

असार और तुम्हारे पंडितों के द्वारा लिखी गई पोथियां सार? यह तो बड़ा अजीब हुआ। पंडित तो खुद उसका लिखा हुआ है और उसका लिखा संसार असार! तुम असार! तुम्हारा जीवन असार! फिर सार कहां पाओगे? कहीं भी न पाओगे। तब तुम द्वार-द्वार दरवाजे-दरवाजे भीख मांगोगे और तुम्हारा जीवन एक लंबी दुर्घटना हो जाएगी। वही हुआ है।

लेकिन मंदिर-मस्जिद जीते ही तुम्हारे जीवन के दुख पर हैं। तुम जितने बीमार रहो, उतना ही उनके हित में है। तुम जितने सड़ो-गलो, उतना ही उनके हित में है। तुम नाचने लगो, तुम अलमस्त हो जाओ, तुम मंदिर जाओगे? तुम मस्जिद जाओगे? तुम तो जहां बैठोगे वहीं मंदिर होगा। तुम्हारी मस्ती तुम्हारा मंदिर होगी। तुम्हारा आनंद तुम्हारा भजन होगा। तुम्हारे भीतर जब रसधार बहेगी तो तुम किसी और से पूछने जाओगे—परमात्मा कहां है? उसका प्रमाण खोजोगे? भीतर प्रमाण मिलेंगे। भीतर उसकी ज्योति जगेगी। फिर कौन फिक्र करता है शास्त्रों की?

शास्त्रों की फिक्र सिर्फ अंधे करते हैं, सिर्फ अज्ञानी करते हैं। जिसके भीतर ज्ञान की छोटी सी भी किरण जनम जाती है, उसके लिए सब शास्त्र फीके पड़ जाते हैं। उसके अपने भीतर ही गीता पैदा होने लगी। भगवान उसके भीतर बोलने लगा। भगवदगीता उसके भीतर जन्मने लगी। भगवान उसके भीतर गुनगुनाने लगा। कुरान उसके भीतर पैदा होने लगी। अब क्यों किसी कुरान में, क्यों किसी पुराण में... ?

पंडित और पुरोहित जी ही तब तक सकता है, जब तक तुम मुर्दा रहो, तुम मुर्दा-मुर्दा रहो। तुम्हारी मुर्दगी में उसका शोषण है। वहीं कुंजी छिपी है।

रजत! यहां मैं कुछ और ही पाठ दे रहा हूं। इसलिए अगर पंडित-पुरोहित, तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी मुझसे नाराज हैं, तो आश्चर्य नहीं है; गणित साफ है। मैं उनके धंधे की जड़ काट रहा हूं। अगर तुमने मेरी बात सुनी तो तुम उनसे मुक्त हो जाओगे। तुमने अगर मेरी बात सुनी तो तुम उनके ग्राहक न रह जाओगे। तुम्हें अगर मेरी जरा सी भी बात समझ में आ गई तो तुम छूट जाओगे हजारों साल के शोषण के आल से, गुलामी से। और जिन्होंने तुम्हें चूसा है, वे तुम्हें और भी चूसना चाहते हैं। वे तुम्हें सदा चूसना चाहते हैं। वे तुम्हें इतनी आसानी से छोड़ नहीं देना चाहते। इसलिए वे मुझसे नाराज हैं।

मेरा तो संदेश यही है कि परमात्मा के लिए और किसी प्रमाण की जरूरत नहीं है—प्रकृति को परखो! जरा आंखें गड़ा कर गुलाब के फूल में झांको, और तुम्हें उसका मुखड़ा दिखाई पड़ेगा। बेले की सुगंध को नासापुटों में भर जाने दो, और तुम पाओगे—वही लहरा गया तुम्हारे भीतर।

हम ऐसे अहले-नजर को सबूते-हक के लिए
अगर रसूल न आते तो सुबह काफी थी

जरा सी समझ हो तो पैगंबरों की कोई जरूरत न थी आने की, तीर्थंकरों की कोई आने की जरूरत न थी।

हम ऐसे अहले-नजर को सबूते-हक के लिए

परमात्मा का प्रमाण देने के लिए, परमात्मा की गवाही देने के लिए किसी और बात की जरूरत न थी, बस थोड़ी सी समझ चाहिए।

अगर रसूल न आते तो सुबह काफी थी

अगर न आते पैगंबर और न आते मसीहा और न आते तीर्थंकर, कोई चिंता की बात न थी। सुबह काफी थी। सुबह उठता हुआ सूरज पर्याप्त प्रमाण है। सांझ उगा हुआ चांद पर्याप्त प्रमाण है। आकाश के तारों का संगीत काफी प्रमाण है। और क्या प्रमाण चाहिए?

एक बीज टूट जाता है और हरे पत्ते निकल आते हैं—परमात्मा का प्रमाण है। और क्या प्रमाण चाहिए? और बड़ा क्या चमत्कार होगा? मुर्दा से दिखते बीज से हरे पत्ते निकल आए हैं, पत्तों में पत्ते निकलते गए हैं, कलियां आ गई हैं, हरे पत्तों में लाल कलियां आ गई हैं! फूल खिल आया है। जिन पत्तों में कोई गंध न थी, जिस भूमि से पत्ते उठे उस भूमि में कोई गंध न थी, और फूल ने वातावरण को सुगंध से भर दिया, आपूरित कर दिया! और क्या चमत्कार है? इतना काफी है। जिनके पास आंखें हैं, जिनके पास अनुभव करने को हृदय है, जिनके पास थोड़ी सी भी प्रज्ञा है, जरा सा भी बोध है—उनके लिए परमात्मा का प्रमाण सुबह में मिल जाता है, सांझ में मिल जाता है, उठते-बैठते मिल जाता है, लोगों की आंखों में मिल जाता है। उनके लिए किसी रसूल की कोई जरूरत नहीं है।

स्वप्न है संसार, तो किस सत्य के कवि गीत गाए?
तोड़ कर अपना हृदय किस सत्य की प्रतिमा बनाए?
जानता कवि कौन सा सुख, फूल को जो फल बनाता;
दूज का क्यों चांद दौड़ा पूर्णिमा की ओर जाता?
जागती पिक की कुहुक से प्राण में कैसी कहानी;
रूप स्वप्नातीत किसका रात कर देता सुहानी?
गंध से आतुर समीरण, ज्योति से उमगे सितारे,
स्नेह से फैली नदी, सौंदर्य से जकड़े किनारे,
लोच भर देती हवा में खेतियां क्यों लहलहातीं,
जान पड़ जाती किरण में सुन खगों की क्यों प्रभाती?
मेघ वर्षा के धरा को नित नया संस्कार करते,
चंद्र किरणों में शिथिल नव किसलयों के गात झरते,
स्वप्न हैं ये सब अगर, किस सत्य के कवि गीत गाए?
कौन सुषमा से बड़ा संदेश मानव को सुनाए?

नहीं, प्रभात से बड़ी कोई प्रभाती नहीं है। तुम्हारी प्रभातियां दो कौड़ी की हैं। प्रभात को देखो। तुम्हारे गढ़े हुए देवता तुम्हारे ही गढ़े हुए देवता हैं—तुम्हारे हाथ के खिलौने हैं! उसके गढ़े हुए जगत को देखो। वहां तुम्हें उसकी थोड़ी-बहुत झनक मिल जाए तो मिल जाए।

और कैसा मजा है! जगत असार है, इसी के पत्थरों से तुम्हारा परमात्मा निर्मित होता है। जगत असार है, इसी की मिट्टी तुम्हारे देवता बनाती है। जगत असार है, इसी जगत में तुम्हारे साधु-संन्यासी जन्मे हैं। जगत असार है तो तुम कैसे सार हो जाओगे? अगर मूल ही असार है तो तुम कैसे सार हो जाओगे?

नहीं, जगत असार नहीं है। हां, तुमसे यह जरूर कहूंगा: जगत से भी बड़ा और सार है। मगर जगत असार नहीं है। जगत तो सार है, पर जगत पर ही रुक मत जाना—और भी बड़े सार हैं! जगत तो बहुमूल्य है, मगर वहीं अटक मत जाना—और भी बड़ी संपदाएं हैं। जगत के भी पार और जगत हैं!

तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जगत में उलझ जाना। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जगत में ही रह जाना, रुक जाना। मैं यह कह रहा हूं: जगत को सीढ़ी बनाओ। यह उसी के मंदिर की सीढ़ी है, इसको असार मत कहो। लेकिन सीढ़ी मंदिर नहीं है, यह भी ध्यान रखना; नहीं तो दूसरी भूल हो जाएगी कि सीढ़ी पर ही बैठ रहो। सीढ़ी मंदिर नहीं है। यद्यपि बिना सीढ़ी के मंदिर नहीं हो सकता। और सीढ़ी तोड़ दी तो मंदिर तक कभी न पहुंच पाओगे। जीवन को उसके समस्त सौंदर्य में स्वीकार करो। जीवन को उसके सारे छंद में अंगीकार करो।

मुझे दे दे
रसीले ओंठ, मासूमाना पेशानी, हसीं आंखें
कि मैं इक बार फिर रंगीनियों में गर्क हो जाऊं
मेरी हस्ती को तेरी इक नजर आगोश में ले ले
हमेशा के लिए इस दाम में महफूज हो जाऊं
जिया-ए-हुस्न से जुल्माते-दुनिया में न फिर आऊं
गुजश्ता हसरतों के दाग मेरे दिल से धुल जाएं
मैं आने वाले गम की फिक्र से आजाद हो जाऊं
मेरे माजी-ओ-मुस्तकबिल सरासर मह्व हो जाएं
मुझे वह इक नजर, इक जाविदानी सी नजर दे दे

एक ही प्रार्थना की जा सकती है कि मुझे वह आंख मिल जाए, मुझे वह दृष्टि मिल जाए।

मुझे वह इक नजर, इक जाविदानी सी नजर दे दे

वह स्वर्णिम आंख दे दे, जो तुझे देख ले, तुझे पहचान ले।

मुझे दे दे
रसीले ओंठ, मासूमाना पेशानी, हसीं आंखें
कि मैं इक बार फिर रंगीनियों में गर्क हो जाऊं

यह संसार उसकी रंगीनी है। यह उसका विलास है, उसका वैभव है। ईश्वर का ऐश्वर्य है यह संसार। इसी ऐश्वर्य के कारण तो वह ईश्वर है। यह उसका साम्राज्य है। इसी साम्राज्य के कारण तो वह सम्राट है।

कि मैं इक बार फिर रंगीनियों में गर्क हो जाऊं
मेरी हस्ती को तेरी इक नजर आगोश में ले ले

मेरे सारे प्राणों को तू अपनी गोद में ले ले।

हमेशा के लिए इस दाम में महफूज हो जाऊं

मैं तेरे इस प्यारे जाल में हमेशा के लिए खो जाना चाहता हूं, डूब जाना चाहता हूं, एक

हो जाना चाहता हूं। माना कि यह जाल है, मगर बड़ा प्यारा है। और उस प्यारे का जाल है, कौन इसमें न फंसना चाहेगा! इससे जो भागते हैं, भगोड़े हैं। इससे जो भागते हैं, उन्होंने परमात्मा का अस्वीकार कर दिया, इनकार कर दिया। जब परमात्मा जाल फेंके, तो मछलियो, उसमें फंस जाना।

जीसस ने एक दिन एक मछुए के कंधे पर हाथ रखा। सुबह-सुबह थी। अभी सूरज उगता था क्षितिज पर। आकाश लालिमा से भरा था। उस मछुए ने जाल फेंका ही था कि जीसस ने उसके कंधे पर हाथ रखा पीछे से आकर। उसने लौट कर देखा। जीसस ने कहा : कब तक तू इन साधारण मछलियों को पकड़ता रहेगा? मैं तुझे आदमियों को फांसने का रास्ता बताऊंगा। तू मेरे साथ आ।

जीसस की आंखें! सुबह की वह प्यारी घड़ी। कुछ हो गया। उस मछुए ने जाल वहीं छोड़ दिया, निकाला भी नहीं। जीसस के साथ हो लिया। उसके भाई ने, जो उसके ही पास खड़ा नाव में जाल फेंक रहा था, चिल्ला कर कहा कि कहां जाते हो?

उस मछुए ने कहा : मैंने बहुत दिन तक मछलियां पकड़ीं, इस आदमी ने मुझे पकड़ लिया! इसकी आंख के जाल में उलझ गया। मैं जाता हूं। अलविदा!

गांव के बाहर ही पहुंच पाए थे जीसस उस युवक को लेकर...हिम्मतवर रहा होगा, ऐसे अज्ञात आदमी के साथ, ऐसी अज्ञात यात्रा पर निकल पड़ा! प्रश्न भी न उठाया, जिज्ञासा भी न की कि कौन हो? कहां ले जाते हो? चल पड़ा।

ऐसा ही पागलपन हो, ऐसा ही प्रेम हो, और ऐसी ही दुस्साहस की क्षमता हो, तो कोई वस्तुतः संन्यासी हो पाता है। भगोड़ों का काम नहीं है संन्यासी होना। भगोड़े तो भयभीत लोग हैं। जो संसार से भयभीत हैं, वे क्या खाक परमात्मा को पाएंगे! जो संसार तक से भयभीत हैं, परमात्मा को देख कर तो उनके प्राण निकल जाएंगे। जो उसकी कृति को भी न देख सके, कृतिकार के सामने तो राख हो जाएंगे।

गांव के बाहर पहुंचे ही थे कि एक आदमी भागा हुआ आया और उसने उस मछुए को कहा : पागल! तू कहां जा रहा है? तेरे पिता बीमार थे, वे मर गए। घर चलो।

उस युवक ने जीसस से कहा कि मैं जाऊं? तीन दिन में अंत्येष्टि क्रिया करके वापस लौट आऊंगा।

लेकिन जीसस ने कहा : गांव में काफी मुर्दे हैं, वे मुर्दे को दफना देंगे। तू मेरे साथ आ।

और वह युवक अपने पिता का अंतिम संस्कार करने भी गांव न गया। और जीसस का वचन सुनते हो—गांव में काफी मुर्दे हैं, वे मुर्दे को दफना देंगे! तू मेरे साथ आ।

तुम्हारे पंडित-पुरोहितों ने, तुम्हारे साधु-संन्यासियों ने जमीन को मुर्दों से भर दिया है। यहां कभी एकाध कोई जीसस, कोई मोहम्मद, कोई नानक, कोई कबीर थोड़ी सी जिंदगी की खबर ले आता है, थोड़ी धुन छेड़ता है परमात्मा की। मगर पंडितों-पुरोहितों का बड़ा जाल है। नानक की धुन को दबा देते हैं। कबीर की धुन को दबा देते हैं। जीसस जो कहते हैं उस पर व्याख्याओं के इतने-इतने आवरण डाल देते हैं कि सत्य उन व्याख्याओं में कहीं खो जाता है, उसका पता लगाना मुश्किल हो जाता है।

मेरी हस्ती को तेरी इक नजर आगोश में ले ले

हमेशा के लिए इस दाम में महफूज हो जाऊं
जिया-ए-हुस्न से जुल्माते-दुनिया में न फिर आऊं

अपने प्रकाश में मुझे उठा ले, ताकि वापस अंधेरे में मुझे न गिरना पड़े, अंधेरे की दुनियाओं में न गिरना पड़े।

इस दुनिया से ऊपर दुनियाएं हैं, उनकी आकांक्षा करो, अभीप्सा करो। मगर इस दुनिया को अस्वीकार मत करना। इसी दुनिया के माध्यम से उन ऊपर की दुनियाओं को पाने का उपाय है। और जिस दिन तुम उन ऊपर की दुनियाओं को पा लोगे, उस दिन तुम इस नीचे की दुनिया को भी धन्यवाद दोगे, याद रखना। अनुग्रह स्वीकार करोगे—कि न होती नीचे की दुनिया, हम ऊपर की दुनिया तक कभी न पहुंच पाते। सीढ़ियों से चढ़ कर जब तुम ऊपर पहुंच जाते हो तो क्या सीढ़ियों को धन्यवाद नहीं देते? और नाव से जब तुम उस पार पहुंच जाते हो और नाव से उतरते हो तो क्या धन्यवाद नहीं देते?

यह संसार नाव है। समझदार इसे परमात्मा के किनारे पर लगा देता है। नासमझ नाव से कूद पड़ता है।

मैं तुमसे कहता हूं: नाव से कूदना मत। इसको ठीक दिशा दो। जरूर दिशा दो! इसको सम्यक गति दो। पतवार सम्हालो। यह नाव व्यर्थ नहीं है, असार नहीं है। यह उस किनारे तक ले जा सकती है। इसी देह की नाव में तो चलना होगा उस किनारे तक! इन्हीं इंद्रियों की तो पतवारें बनानी होंगी। यह मिट्टी अपने भीतर अमृत को छिपाए है, इसी मिट्टी में तलाशोगे तो अमृत भी मिल जाएगा।

गुजश्ता हसरतों के दाग मेरे दिल से धुल जाएं
मैं आने वाले गम की फिक्र से आजाद हो जाऊं
मेरे माजी-ओ-मुस्तकबिल सरासर महव हो जाएं
मुझे वह इक नजर, इक जाविदानी सी नजर दे दे

अतीत भी मिट जाए, भविष्य भी मिट जाए।

मेरे माजी-ओ-मुस्तकबिल सरासर महव हो जाएं

दोनों एक हो जाएं, न कोई अतीत रहे, न कोई भविष्य रहे। बस वर्तमान का क्षण रह जाए। यह वर्तमान का शुद्ध क्षण प्रार्थना है। यह वर्तमान का शुद्ध क्षण ध्यान है, समाधि है।

मुझे वह इक नजर, इक जाविदानी सी नजर दे दे

बस नजर चाहिए, दृष्टि चाहिए, बोध चाहिए; नहीं कहीं भागना है, नहीं कुछ छोड़ना है। क्योंकि सब उसका है, छोड़ोगे क्या? तुम्हारा है क्या जिसे तुम छोड़ोगे?

लेकिन तुम्हारे साधु-संन्यासी निश्चित तुम्हें समझाते रहे हैं इसी तरह की बातें। और उनसे तुम मुक्त न हो जाओ तो तुम परमात्मा की छवि का कभी भी अनुभव न कर पाओगे। मैं तुमसे कहता हूं: संसार असार नहीं है; तुम्हारे तथाकथित पंडित-पुरोहित बकवास हैं, असार हैं। अगर छोड़ना हो तो उनको छोड़ देना। फूलों के संसार को मत छोड़ना, चांद-तारों के संसार को मत छोड़ना। यही संसार द्वार है।

और रजत, तुमने पूछा—कि इधर आपने खूब फंसाया मुझे, अब आफत में पड़ा। क्योंकि अब जब घर लौटूंगा तो वही बासा घिसा-पिटा जीवन उपलब्ध होगा।

नहीं होगा। जीवन तो जो यहां है वही वहां है, आंख चाहिए—इक जाविदानी सी नजर दे दे। तुम्हारी आंख बदलनी चाहिए, तो फिर तुम जहां भी रहोगे वहीं तुम इसी पुलक का अनुभव करोगे। और आंख ही तुम्हें दे रहा हूं। संन्यास कुछ और नहीं है, तुम्हारी तत्परता है एक नई आंख स्वीकार करने की, एक नई दृष्टि अंगीकार करने की। और तुम तत्पर हो लेने को तो मैं देने को राजी हूं। तुम झोली फैलाओ तो मैं तुम्हारी झोली भर दूं। फिर तुम जहां भी रहोगे, यही तो चांद वहां होगा, यही तो तारे वहां होंगे, यही तो सूरज उगेगा, यही तो हवाएं वहां होंगी, यही तो लोग वहां होंगे। यह सारा जगत एक है। तुम्हारी नजर बासी नहीं होनी चाहिए, नहीं तो लोग बासे हो जाते हैं। और तुम लोगों को दोष देते हो कि लोग घिसे-पिटे, लोग बासे, जीवन घिसा-पिटा, जीवन बासा। जीवन न बासा होता कभी, न घिसा-पिटा होता। तुमने कभी ओस की कोई बूंद देखी जो घिसी-पिटी हो, कि बासी हो? नहीं। तुमने कोई नदी देखी जो बासी हो, घिसी-पिटी हो? और सदियों से बह रही है, फिर भी बासी नहीं है, घिसी-पिटी नहीं है। सूरज रोज तो उगता है, लेकिन कभी बासा और घिसा-पिटा होता है? इस जगत में कुछ भी बासा, घिसा-पिटा नहीं है। सिर्फ तुम्हारी आंख! तुम्हारी आंख पर धूल जम जाए तो सारा संसार घिसा-पिटा मालूम होता है।

मैंने सुना, एक बूढ़ी स्त्री अपनी खिड़की पर खड़े होकर खिड़की के कांच के पीछे से आकाश के चांद-तारों को देखती थी, सूरज को उगते देखती थी, और जिंदगी बड़ी घिसी-पिटी मालूम होती थी। एक दिन एक मेहमान उसके घर में रुका। उस मेहमान ने उठ कर उसकी कांच की खिड़की को साफ कर दिया। उस पर खूब धूल जमी थी। खिड़की साफ हो गई, चांद-तारे साफ झलकने लगे। सूरज उगा—और ही उगा! नये ही ढंग से उगा! वह बूढ़ी तो बहुत चकित हुई। उसने सोचा: तो मैं तो समझती थी कि संसार ही घिसा-पिटा हो गया। मैं रह भी चुकी हूं कोई नब्बे साल दुनिया में, तो वही का वही! तुमने यह क्या जादू कर दिया? आज चांद ताजा है।

चांद वही का वही है, सिर्फ कांच पर जमी थोड़ी सी धूल हट गई है। चांद पर कोई धूल न थी। तुम्हारी आंख पर धूल है तो संसार घिसा-पिटा है। जरा आंख की धूल झड़ जाने दो। पक्षपात, विचारों का व्यर्थ समूह हटा दो। एक छोटे बालक की भांति आश्चर्यचकित हो जाओ, यही मेरी देशना है। इस जगत को आश्चर्य भरी हुई नजरों से देखो। फिर से देखो। फिर-फिर देखो। और तुम इसे रोज-रोज नया-नया पाओगे। तुम पाओगे कि जितनी तुम्हारी आंख ताजी होती जाती है, उतना जगत ताजा होता जाता है। फिर तुम कहीं भी रहो, फिर तुम्हें नरक भेजा ही नहीं जा सकता, क्योंकि तुम जहां भी रहोगे वहीं स्वर्ग होगा।

लोग कहते हैं कि संतों को स्वर्ग भेजा जाता है और पापियों को नरक। यह बात बिलकुल गलत है। संतों को स्वर्ग नहीं भेजा जाता—संत तो जहां होते हैं वहां स्वर्ग होता है। और पापियों को नरक नहीं भेजा जाता—पापी जहां होते हैं वहीं नरक होता है। भेजने की जरूरत ही नहीं पड़ती। वे खुद ही अपना नरक और अपना स्वर्ग बना लेते हैं।

तो रजत! चिंता न करो। इस जाल में अगर सच में ही फंसे हो तो बहुत जालों से मुक्त हो जाओगे। और यह जाल गुलामी का जाल नहीं है। मैं तुम्हें मुक्त करता हूं। मैं तुम्हें मुक्त करता हूं ज्ञान से, मैं तुम्हें मुक्त करता हूं तुम्हारे थोथे चरित्र से, मैं तुम्हें मुक्त करता हूं तुम्हारी

थोथी शुभ-अशुभ की धारणाओं से। मैं तुम्हें सिर्फ मुक्त करता हूं। मैं तो सिर्फ इतना ही चाहता हूं कि तुम वर्तमान क्षण में, अतीत को, भविष्य को भूल कर जीने की कला सीख लो। फिर कभी कुछ बासा नहीं होता। फिर प्रतिपल परमात्मा आता है और प्रतिपल उसकी पगध्वनि सुनी जाती है। प्रतिपल उसका संगीत बरसता है—और ऐसा बरसता है कि तुम अपनी झोली में उसे भर न पाओगे; इतना बरसता है कि तुम्हारे हाथ छोटे पड़ जाएंगे, तुम्हारी झोली छोटी पड़ जाएगी। बाढ़ की तरह आता है परमात्मा जब आता है। और परमात्मा प्रतिपल आने को आतुर है—द्वार दो, राह दो, अपने को खाली करो।

दूसरा प्रश्नः आश्चर्य है कि भारत की राजधानी से निकलने वाली एक पोर्नो पत्रिका ने, जो अश्लीलता का धंधा करती है, लिखा है कि आपको फांसी दे दी जाए। इसका राज क्या है?

आनंद मैत्रेय! राज जरा भी नहीं है। बात बिलकुल सीधी-साफ है। अश्लील पत्रिकाएं बिकती हैं तुम्हारे साधु-संन्यासियों के कारण! अगर मेरी चले तो अश्लील पत्रिकाएं दुनिया में बिक ही न सकेंगी। अगर मेरी चले तो अश्लील पत्रिका कौन खरीदेगा? किसलिए खरीदेगा?

अश्लील पत्रिका खरीदते कौन लोग हैं?

वे वे ही लोग हैं, जिन्होंने कामवासना का दमन किया है। वे वे ही लोग हैं, जिन्होंने अपनी कामवासना का सत्कार नहीं किया, स्वागत नहीं किया। वे वे ही लोग हैं, जो पंडित-पुजारियों, साधु-संन्यासियों के हाथ के शिकार हुए हैं। वे ही लोग अश्लील पत्रिकाएं पढ़ते हैं। यद्यपि गीता में छिपा कर पढ़ते हैं, कोई कुरान में छिपा कर पढ़ते हैं, कोई बाइबिल की जिल्द में छिपा कर पढ़ते हैं, मगर ये वे ही लोग हैं।

यह सारी दुनिया तो धार्मिक लोगों से भरी है, इसमें अश्लील पत्रिकाएं पढ़ता कौन है? जो किताबें पढ़ते हैं कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है, वे ही अश्लील पत्रिकाएं पढ़ते हैं। ये दोनों अलग-अलग पाठक नहीं हैं। एक तरफ पढ़ते हैं कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है और फिर अपने पर जबर्दस्ती ब्रह्मचर्य थोपने की कोशिश करते हैं। नहीं थोप पाते और भीतर चित्त उद्विग्न होने लगता है। और जो रोक लिया है, वह नये-नये रास्ते खोज कर निकलने लगता है। वे ही अश्लील पत्रिकाएं पढ़ते हैं, अश्लील फिल्में देखते हैं। उनके लिए ही अश्लील फिल्में लिखी जाती हैं, बनाई जाती हैं, अश्लील कहानियां लिखी जाती हैं, गीत रचे जाते हैं। भद्दी तस्वीरें, बेहूदी तस्वीरें उन्हीं के लिए तैयार की जाती हैं।

तुम जान कर चकित होओगे कि राज इसमें बिलकुल नहीं, गणित बहुत सीधा-साफ है। तुम्हारे साधु, तुम्हारे मुनि, तुम्हारे संन्यासी न हों, वेश्या समाप्त हो जाएगी। वेश्या तुम्हारे मुनि महाराजों का दूसरा अंग है। ये दोनों एक ही दुकान में साझीदार हैं। इधर मुनि, संन्यासी, त्यागी निंदा करता है वासना की। उस निंदा से तुम्हारे भीतर वासना का दमन शुरू होता है। और वासना जब इतनी इकट्ठी हो जाती है कि तुम उससे उबलने लगते हो, तो कोई निकास खोजना होगा। फिर वेश्या पैदा होती है। फिर हजार तरह की अश्लीलताएं पैदा होती हैं।

मैं जो कुछ भी कह रहा हूं, खतरनाक है। खतरनाक इसलिए है कि अगर मेरी बात चले, तो जिस अश्लील पत्रिका की तुमने बात की, मैंने भी उसे देखा, सारी तस्वीरें नंगी हैं और बेहूदी हैं, कुरूप हैं, बेढंगी हैं, फूहड़ हैं। सौंदर्य का कोई लक्षण नहीं है उसमें। किसी को भी हैरानी होगी कि ऐसी अश्लील पत्रिका को मुझसे क्या अड़चन हो सकती है? उसके संपादक सरकार से प्रार्थना करें कि मुझे छोटा-मोटा दंड नहीं, बिलकुल फांसी की सजा होनी चाहिए! मृत्युदंड दिया जाना चाहिए!

मगर इसमें गणित है। मैं चाहता हूं लोग वासना का दमन न करें। अगर वासना का दमन न होगा, तो अश्लील तसवीरें कौन खरीदेगा? अश्लील पत्रिकाएं कौन खरीदेगा? यह तो दमित चित्त के कारण होता है। तुम जाओ जरा आदिवासियों को, जो नग्न रहते हैं, उनको तुम अश्लील पत्रिका बेचो। वे बहुत हंसेंगे। वे कहेंगे : तुम पागल हो गए हो! इसमें मामला ही क्या है? उन्होंने नग्न स्त्रियां देखी हैं, नग्न पुरुष देखे हैं—बचपन से ही देखे हैं।

तुम्हीं सोचो न, कोई आए और कहे तुम्हें कि यह नंगी गाय की तस्वीर है, खरीद लो। तो तुम कहोगे, मैं कोई पागल हो गया हूं! नंगी गाय की तस्वीर मैं करूंगा क्या? लेकिन जरा सोचो, एक ऐसी दुनिया है जहां गायों को कपड़े पहना दिए गए हैं और जहां नंगी गाय दिखाई ही नहीं पड़ती। वहां लोग सोचने लगेंगे कि मामला क्या है? वहां नंगी गाय की तस्वीर बिकेगी। अगर कोई कहेगा, नंगी गाय की तस्वीर; तुम कहोगे, लाओ। तुम दुगने, चार गुने पैसे देने को तैयार हो जाओगे; एक बार देखने की उत्सुकता जगेगी, कि बात क्या है? जरा गायों को तुम पहना तो दो कपड़े—सुंदर-सुंदर साड़ियां, चोलियां, घूंघट डाल दो और निकालो जरा गाय को बाजार में। लोग झांक-झांक कर देखने लगेंगे कि मामला क्या है! लोग घूंघट उठा कर देखना चाहेंगे, कि कुछ राज होना ही चाहिए।

जिन चीजों को छिपाया जाता है उनको देखने की उत्सुकता जगती है—यह सीधा गणित है। जरा अपने दरवाजे पर एक तख्ती लगा दो कि यहां झांकना मना है। और फिर तुम देख लेना, कोई माई का लाल निकल नहीं सकेगा बिना झांके! और कोई अगर निकल गया लाज-संकोच में—कि चार आदमी देख रहे हैं, कोई क्या कहेगा—अकड़ कर गर्दन को कड़ी करके निकल गया, तो मन लौट-लौट कर झांकना चाहेगा। आएगा वह आदमी, किसी और बहाने आएगा। कोई अच्छा बहाना खोज कर आएगा, लेकिन आएगा। और अगर कमजोर हुआ, बहुत ही कायर दिल हुआ और हिम्मत न जुटा पाया, तो सपने में उस दरवाजे को देखेगा, और सपने में झांक कर देखेगा!

जिन चीजों का इनकार किया जाता है, उन चीजों में रस पैदा हो जाता है। निषेध में निमंत्रण है। ये अश्लील पत्रिकाएं...ऊपर से तो ऐसा लगता है कि साधु-संन्यासी इनके बड़े विरोध में हैं। हैं विरोध में। आचार्य तुलसी ने आंदोलन चलाया था अश्लील पत्रिकाओं के विरोध में। जब उनके एक शिष्य मुनि मुझसे मिलने आए और कहा कि मेरा भी समर्थन? मैंने कहा : मैं समर्थन नहीं करूंगा। अश्लील पत्रिकाओं के विरोध में आंदोलन चलाने का मतलब तो और रस पैदा करवाना है!

मैंने उनसे पूछा कि आचार्य तुलसी को अश्लील पत्रिकाओं से क्या तकलीफ है? देखते हैं अश्लील पत्रिकाएं? नहीं देखते तो उनको पता कैसे चलता है? अश्लील पत्रिकाओं से

उनका विरोध क्या है? विरोध होगा कैसे? विरोध के लिए भी तो कम से कम देखना जरूरी होगा। उन्हें अड़चन क्या है?

और यह विरोध नया तो नहीं है, यह विरोध सदियों से चल रहा है। इस विरोध से अश्लील पत्रिकाएं समाप्त नहीं हुईं, अश्लील किताबें समाप्त नहीं हुईं, अश्लील फिल्में समाप्त नहीं हुईं। इतना ही हो जाता है कि सभी चीजें धीरे-धीरे छिप कर बहने लगती हैं। जमीन के ऊपर नहीं चलतीं, अंडरग्राउंड हो जाती हैं, भूमिगत हो जाती हैं। अगर तुम किताबों की दुकान पर जाओगे, सब किताबें—गीता, कुरान इत्यादि ऊपर बिकती हैं, काउंटर के नीचे छिपी रहती हैं असली चीजें। असली चीजें काउंटर के नीचे छिपी रहती हैं!

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने किताब के दुकानदार को तार किया, कि शेक्सपियर का पूरा सेट भेज दो, और कालिदास की भी सब किताबें, और भवभूति की भी, और साथ में कुछ पढ़ने योग्य सामग्री भी भेज देना!

पढ़ने योग्य सामग्री और क्या होगी? शेक्सपियर को कोई पढ़ता है? कालिदास को कोई पढ़ता है? इनको तो लोग सजा कर रख लेते हैं बैठकखाने में। ये किताबें पढ़ी जाने वाली किताबें नहीं हैं। मैंने बहुत बैठकखानों में ये किताबें सजी देखी हैं। और जब मैंने किताबें निकालीं, तो देखा कि उनके पन्ने भी अभी काटे नहीं गए हैं, कोई पन्ना जुड़ा है तो जुड़ा ही है। किसी ने कभी किताब खोल कर देखी ही नहीं है। पढ़ा कुछ और जाता है। वह अलग ही बिकता है। वह नीचे-नीचे बहता है।

मैं कह रहा हूं कि मनुष्य की कामवासना का विरोध अवैज्ञानिक है। मनुष्य की कामवासना में ही मनुष्य के ब्रह्मचर्य की ऊर्जा छिपी है। लेकिन ब्रह्मचर्य वासना का विपरीत नहीं है, वासना का अंतिम खिलाव है। जैसे वासना की भूमि में ही ब्रह्मचर्य का फूल खिलता है! मैं यह कह रहा हूं कि वासना की ऊर्जा और ब्रह्मचर्य का प्रागट्य एक ही घटना के दो पहलू हैं। इसलिए वासना से लड़ना मत, अन्यथा ब्रह्मचर्य कभी उपलब्ध न होगा। व्यभिचार उपलब्ध होगा, ब्रह्मचर्य नहीं। जितना वासना को दबाओगे, उतने व्यभिचारी हो जाओगे। अगर बाहर से भी न हुए, तो चित्त व्यभिचारी हो जाएगा।

वासना को जीओ, समझो—ध्यानपूर्वक, प्रेमपूर्वक। वासना परमात्मा की भेंट है; उसमें ही छिपा है कहीं कुछ राज! उसे खोजो। जैसे-जैसे समझ बढ़ेगी, तुम अचानक पाओगे कि वासना तिरोहित होने लगी। और यह तिरोहित होना अपूर्व सौंदर्य को लिए होता है, क्योंकि इसमें कहीं कोई दमन नहीं है। कहीं चित्त में कोई घाव नहीं छूट जाते।

और एक दिन जब ब्रह्मचर्य आता है सहज स्वस्फूर्त—आरोपित नहीं, जबर्दस्ती थोपा गया नहीं, चेष्टा से लाया गया नहीं—स्वस्फूर्त, समझ के फल की तरह आता है, तब उस ब्रह्मचर्य में जरूर अदभुत रस है! मैं ब्रह्मचर्य का पक्षपाती हूं; लेकिन वासना के विपरीत में जो ब्रह्मचर्य है, वह तो झूठा है। वह ब्रह्मचर्य नहीं है। वह व्यभिचार है भीतर, ऊपर ब्रह्मचर्य का लेबल लगा है। मैं उस ब्रह्मचर्य के पक्ष में हूं, जो वासना की गली में से गुजर कर, समझपूर्वक, वासना को समझ कर, वासना को जान कर, देख कर, पहचान कर फलित होता है; जो वासना की प्रक्रिया का ही अंतिम निष्कर्ष है। और जब खिलता है कमल ब्रह्मचर्य का ऐसे, तब जीवन अपूर्व सुगंध से भर जाता है, आलोक से भर जाता है!

अगर मेरी बात मानी जाए तो इसके दो परिणाम होंगे। एक परिणाम तो यह होगा कि लोग सहज हो जाएंगे। और सहज व्यक्ति अश्लील पत्रिकाओं, अश्लील फिल्मों को देखने नहीं जाएगा; जरूरत ही न रही। सहज व्यक्ति धीरे-धीरे इस मूढ़ता को छोड़ ही देगा, कि शरीर को हमेशा छिपाए रखना है। शरीर को हमेशा छिपाए रखना घातक है। वही अश्लील पत्रिकाओं को बिकवा रहा है। अपने बच्चों के साथ मां-बाप को कभी नग्न होकर स्नान करना चाहिए, ताकि बच्चे बचपन से ही समझें कि देह में है क्या, देह जैसी देह है। जिन अंगों को तुम नहीं छिपाते, उनको कोई नहीं देखना चाहता। हाथ को तुमने नहीं छिपाया है, तो हाथ के लिए कोई दीवानगी नहीं है।

मध्य युग में, विक्टोरिया के जमाने में हालतें ऐसी थीं कि इंग्लैंड में स्त्रियों के पैर भी छिपा दिए जाते थे। ऐसा घाघरा पहनाते थे कि वह जमीन को छूता हुआ, सरकता हुआ चले, ताकि पैर न दिखाई पड़ें। तो पैरों की भी तस्वीरें बिकती थीं। अब नहीं बिकतीं। अब क्या बिकेंगी पैरों की तस्वीरें! कम से कम पश्चिम में तो कोई पैर की तस्वीर नहीं बिक सकती, क्योंकि स्त्रियां इतनी छोटी-छोटी फ्राक पहने हुए हैं कि पूरे पैर ही दिखाई पड़ रहे हैं, पैर की तस्वीर कौन खरीदेगा?

तुम जान कर हैरान होओगे कि ऐसी मूढ़ स्त्रियां और ऐसे मूढ़ पुरुष भी थे इंग्लैंड में जो कि कुर्सियों के पैर भी ढांक कर रखते थे, क्योंकि उनको पैर कहा जाता है! तो कुर्सियों के पैर पर कपड़े का आवरण चढ़ा देते थे। तब यह भी हो सकता है, कि जब तुम्हारी मेजबान महिला भीतर गई हो, तुम जल्दी से उसकी कुर्सी के पैर का जरा सा कपड़ा उघाड़ कर देख लो। यह भी हो सकता है, यह बिलकुल स्वाभाविक है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने मुझे कहा कि मेरे पिता ने मुझसे कहा कि एक गंदी फिल्म बस्ती में लगी है, वहां मत जाना देखने, क्योंकि उसमें तुम ऐसी चीजें देखोगे जो न देखते तो अच्छा था। मुल्ला को पता भी नहीं था कि कोई ऐसी फिल्म लगी है। अब जब बाप ऐसा कहे, तो जाना ही पड़ा। तो मुल्ला से मैंने पूछा कि फिर तुम्हें ऐसी चीजें दिखाई पड़ीं उसमें, जो अच्छा होता कि तुम न देखते? उसने कहा कि हां, क्योंकि मेरे पिताजी भी वहां थे। वे मुझे दिखाई पड़े। उन्होंने मुझे देख लिया, मैंने उन्हें देख लिया; बात साफ हो गई कि ऐसी चीजें दिखाई पड़ीं, मुझको भी और उनको भी, जो दिखाई नहीं पड़नी थीं। उस दिन से न तो उन्होंने कुछ कहा है, न मैंने कुछ कहा है। अब हम चुप्पी साधे हुए हैं।

यह अश्लील साहित्य मनुष्य के रुग्ण चित्त का लक्षण है। उस पत्रिका की नाराजगी बिलकुल तार्किक है। अगर मेरी बात चले, तो ये पत्रिकाओं के प्राण निकल जाएंगे। इसलिए मुझे फांसी होनी ही चाहिए, नहीं तो ये पत्रिकाएं नहीं चलेंगी! मेरे संन्यासी तो ऐसी पत्रिकाएं नहीं खरीद सकते। कोई कारण नहीं है। अगर तुमने जीवित मनुष्यों को नग्न देखा है, तो तुम क्यों तस्वीरों में रस लोगे? और अगर तुमने जीवित स्त्री-पुरुषों को प्रेम किया है और तुमने प्रेम का रस जाना है, प्रेम के फूल जाने हैं और प्रेम के कांटे भी जाने हैं, और प्रेम का सुख जाना है और प्रेम का दुख भी जाना है—तो तुम वेश्याओं के यहां जाओगे? यह असंभव है।

मैं जिस मनुष्य की बात कर रहा हूं, अगर वह मनुष्य पृथ्वी पर आया, तो वेश्याएं अपने आप तिरोहित हो जाएंगी। तुम जान कर हैरान होओगे कि पश्चिम में अब वेश्याएं ही नहीं

होतीं, वैश्य भी होते हैं। क्योंकि स्त्रियों ने कहा कि सिर्फ पुरुष ही वेश्याओं को भोगते रहें, यह तो असमानता है। इसलिए पश्चिम के प्रमुख नगरों में, लंदन, न्यूयार्क, वाशिंगटन जैसे नगरों में पुरुष वेश्याएं हैं। उनको मैं वैश्य कहता हूं। तुम नाराज मत होना; कोई वैश्य यहां आया हो, तो मेरा मतलब तुम्हारे ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र वाले वैश्य से नहीं है। क्योंकि वेश्या तो स्त्री का नाम है, अब पुरुष को क्या कहो अगर वह अपना शरीर बेचता हो? तो उसका नाम वैश्य। मुझ पर मुकदमा मत चला देना कि मैंने वैश्यों के खिलाफ कुछ कह दिया! अब मैं भी क्या करूं, भाषा में कोई शब्द है नहीं। क्योंकि वेश्याएं सदा से रहीं, वैश्य कभी रहे नहीं। अंग्रेजी में तो सुविधा है, वे कहते हैं: मेल प्रॉस्टिटयूट। अब हिंदी में कहो—पुरुष वेश्या, जंचता नहीं। क्योंकि वेश्या का मतलब ही स्त्री होता है।

यह हालत वैसी है, जैसे कि हिंदुस्तान में कोई पुरुष नर्सों का काम नहीं करते अभी, सभी स्त्रियां नर्सों का काम करती हैं। अब कोई पुरुष नर्स का काम करे, उसको क्या कहोगे? नर्सा? पश्चिम में पुरुष भी शुरू कर दिए हैं काम। मेरे कई संन्यासी हैं जो नर्स का काम करते हैं। उनका...वे मेल नर्स।

कुछ न कुछ हमें खोजना पड़ेगा, आज नहीं कल। वैश्य जंचता है। वैश्य का मतलब होता है—बेचने वाला। उसी से तो वेश्या बना है। वह अपने तन को बेचती है। पुरुष भी अपने तन को बेचने लगे हैं।

यह तन का बेचना अशोभन है। लेकिन इस तन के बेचने के पीछे जिनका हाथ है, वे तुम्हारे बड़े-बड़े संत-महंत, उनका हाथ है। उन्होंने तुम्हारे जीवन को तृप्त नहीं होने दिया सहजता से। तो तुमने पीछे के दरवाजे खोज लिए हैं। मुझ पर साधु-संत भी नाराज हैं, अश्लील किताबें बेचने वाले भी नाराज हैं। यह बड़ी हैरानी की बात है!

तो आनंद मैत्रेय का प्रश्न महत्वपूर्ण है, कि इसका राज क्या?

इसका राज साफ है। उन दोनों की साझेदारी है। चाहे उन्हें पता हो या न हो। वे दोनों एक साथ जुड़े हुए हैं। मैं दोनों की जड़ काट दूंगा। वे दोनों एक ही वृक्ष की शाखाएं हैं। और मैं जड़ काटना चाहता हूं। मैं चाहता हूं: मनुष्य वासना को स्वीकार कर ले—सरलता से, अहोभाव से। वासना का दमन बंद कर दे। और लोग कम से कम विश्राम के क्षणों में तो नग्न हों। नदी पर स्नान करते हुए लोग अगर नग्न हों, समुद्र में स्नान करते हुए लोग अगर नग्न हों, घर के बगीचे में धूप लेते हुए अगर लोग नग्न हों—तो धीरे-धीरे नग्नता की जो हमारे मन में पागल चाह पैदा हो गई है देखने की, वह समाप्त हो जाएगी। उसके प्राण निकल जाएंगे। वह बच कैसे सकती है? इसे मैं जड़ का काटना कहता हूं। और तब एक ज्यादा स्वस्थ मनुष्य और एक ज्यादा स्वस्थ मनुष्यता का जन्म हो सकता है।

निश्चित ही, मैं बहुत से न्यस्त स्वार्थों के विपरीत बोल रहा हूं। इसलिए मुझ पर हजार तरह की झंझटें आनी निश्चित हैं, स्वाभाविक हैं। न आएं तो चमत्कार होगा!

तीसरा प्रश्न: मैं हृदय की वेदना व्यक्त करना चाहता हूं, जो कि मैंने आज तक किसी से व्यक्त नहीं की।

मेरे मन की हालत खंड-खंड हो गई है। एक तरफ सत्संग का प्रेम और परमात्मा से मिलन की चाहत और दूसरी तरफ भौतिक कामवासना की तरफ हर पल का झुकाव। आज प्रौढ़ावस्था तक उससे छुटकारा नहीं पा सका हूं। समझ आती है तो अधूरी रहती है। और स्त्री-शरीर के अनेक अनुभवों के बावजूद भी और ज्यादा वृत्ति तंग करती है। सब अच्छी कही हुई बातें और सिखावनें बाहर ही रह जाती हैं। मैं वही का वही! सब भूल कर लोलुप हो जाता हूं। वासना मन को घेरे रहती है। स्वप्न में भी वही चलता है।

किस क्रिया से मैं छुटकारा या समता पा सकूं, वह रास्ता दिखाएं। कृपा करें।

राधारमण! अभी मैंने जो कहा उस पर विचार करना। क्यों छुटकारा चाहते हो? किसने तुमसे कहा कि छुटकारा चाहो? छुटकारा चाहने की चेष्टा में ही उपद्रव हो रहा है।

वासना को अंगीकार करो। प्रकृति से मिली है, तुमने कुछ बनाई नहीं है। अगर कोई कसूरवार होगा कभी तो परमात्मा कसूरवार होगा, तुम कसूरवार नहीं। इतना मैं तुम्हें आश्वासन देता हूं कि परमात्मा तुमसे यह नहीं पूछेगा कि तुम कामवासना में क्यों जीए? और पूछे तो उसका कालर पकड़ कर हिला देना और कहना कि दी थी तुमने, मेरा क्या कसूर था? न बनाते! नहीं, परमात्मा ने कभी किसी से पूछा नहीं है। कैसे पूछेगा?

तुम अपनी तस्वीर में लाल रंग भरो और फिर तस्वीर पर नाराज हो जाओ कि इसमें लाल रंग क्यों है, तो लोग तुम्हें पागल कहेंगे। तुम्हीं ने लाल रंग भरा।

अगर कोई कसूरवार है तो परमात्मा कसूरवार होगा, तुम तो कसूरवार नहीं हो। मैं तुम्हें मुक्त करता हूं तुम्हारे कसूर से। तुम यह पाप का भाव छोड़ो।

और मजा यह है और विरोधाभास भी: अगर पाप का तुम भाव छोड़ दो वासना के प्रति तो कभी के मुक्त हो गए होते, प्रौढ़ावस्था तक रुकना न पड़ता। मेरे देखे, वैज्ञानिक हिसाब से चौदह वर्ष की उम्र में कामवासना शुरू होती है, पकती है; और बयालीस वर्ष की उम्र में अपने आप समाप्त हो जाए, अगर व्यक्ति स्वीकार करके शांति से आनंदपूर्वक जीए। अपने आप समाप्त हो जाए!

हर सात वर्ष में परिवर्तन होते हैं। पहले सात वर्ष में वासना बिलकुल ही छिपी होती है। सात वर्ष से चौदह वर्ष की उम्र में हलकी-हलकी झलकें आनी शुरू होती हैं। समझ में नहीं पड़ता बच्चे की कि यह क्या हो रहा है। लेकिन हलकी-हलकी झलकें आनी शुरू होती हैं। उसमें उत्सुकता जगने लगती है। चौदह वर्ष में, चौदह वर्ष की उम्र तक वासना पक जाती है, प्रकट होने को तैयार हो जाती है।

मगर हमने जो व्यवस्था बनाई है वह बड़ी बेहूदी है, अवैज्ञानिक है। जब बच्चा कामवासना से तैयार हो जाता है चौदह साल का, तब हम उसे दमन शुरू करवाते हैं। विवाह तो होगा चौबीस साल में, कि पच्चीस साल में, कि तीस साल में। चौदह साल से लेकर और चौबीस साल तक दस साल के फासले में वासना का क्या होगा? दबाएगा बच्चा। और दबाने से रुग्ण होगा। तो वासना स्वप्न में प्रविष्ट हो जाएगी। या कोई विकृत प्रक्रिया पकड़ लेगा वासना को प्रकट करने की।

यह तुम्हें जान लेना चाहिए कि अठारह वर्ष की उम्र में वासना सबसे प्रबल वेग लेती है। साढ़े सत्रह वर्ष की उम्र में ठीक...क्योंकि चौदह वर्ष से इक्कीस वर्ष के ठीक मध्य में वासना सर्वाधिक प्रबल होती है। उतनी प्रबल फिर कभी नहीं होगी। और उसी वक्त हम दमन करवा रहे हैं। उसी वक्त हम कह रहे हैं कि अभी पढ़ाई में मन लगाओ। उसी वक्त हम कह रहे हैं कि अभी तो रामभजन करो। उसी वक्त हम दबाने का सारा-सारा उपाय कर रहे हैं। फिर तुम्हारे बच्चे अगर विकृत हो जाते हैं...और एक दफे विकृति पकड़ ले तो आसानी से नहीं छूटती।

ध्यान रखना, जो प्राकृतिक है, आसानी से उसके पार जाया जा सकता है। जो अप्राकृतिक है, उसके पार जाना कठिन हो जाता है। अप्राकृतिक जटिल हो जाता है। और अप्रकृति पैदा हो जानी स्वाभाविक है। हजार तरह की विकृतियां संभव हैं। और सारी मनुष्य-जाति विकृति से भर गई है। चौबीस या पच्चीस साल या छब्बीस साल या जैसे-जैसे सभ्यता आगे जा रही है, उम्र बढ़ती जा रही है विवाह की, क्योंकि इतनी शिक्षा पूरी होगी तब विवाह। पच्चीस साल और तीस साल के बीच में कभी विवाह होगा।

अब मजा यह है कि वासना उतार पर हो गई, तब विवाह होगा। जब वासना अपने उद्दाम वेग में थी तब विवाह न हुआ। अब वासना का वेग क्षीण होने लगा। साढ़े सत्रह वर्ष में सबसे ऊंचा शिखर छूती है वासना। यह मैं वैज्ञानिक शोध की बात कर रहा हूं। और फिर उसके बाद उतार शुरू हो जाता है। पांच-सात साल में जब उतार हो गया, फिर विवाह होगा। अब विवाह में संभोग तो होगा, लेकिन संभोग से तृप्ति नहीं होगी। वह तृप्ति हो सकती थी साढ़े सत्रह साल की उम्र में, अब नहीं हो सकती। अब वेग ही नहीं है इतना कि तृप्ति हो सके। अब भूख ही इतनी गहरी नहीं है कि तृप्ति हो सके। अब तुम्हारी वासना फुसफुसी हो गई। अब यह फुसफुसी वासना जिंदगी भर पीछा करेगी। तृप्त हो गई होती तो कभी के तुम इससे छूट गए होते, कभी के छूट गए होते। मगर तृप्त नहीं हो पाएगी। और हर बार जब वासना में उतरोगे, आनंद तो कोई भी अनुभव नहीं होगा, और विषाद अनुभव होगा पीछे कि शक्ति भी खोई, कुछ पाया भी नहीं, यह कैसी पशुता में मैं उतरता हूं! तो निंदा और घनी होती जाएगी। जितनी निंदा घनी होगी, उतने ही तुम उतरोगे तो जरूर, और अपने को चाहोगे कि न उतरता तो अच्छा था। तुम्हारे भीतर विरोध खड़ा हो जाएगा, द्वंद्व खड़ा हो जाएगा। एक हिस्सा जाएगा और एक हिस्सा खींचेगा।

यह ऐसा हुआ जैसे बैलगाड़ी में दोनों तरफ बैल जोत दिए और लगे फटकारने बैलों को दोनों तरफ। बैलगाड़ी के अस्थिपंजर उखड़ जाएंगे। वही तुम्हारी दशा हो गई है। वही सारी मनुष्यता की दशा हो गई है।

तृप्ति से मुक्ति संभव है, अतृप्ति से कभी कोई मुक्त नहीं होता।

अब रोज-रोज तुम्हारी वासना क्षीण होती जाएगी और रोज-रोज तुम्हारा विषाद घना होता जाएगा। अब बयालीस वर्ष में तो क्या, बयासी वर्ष में भी छुटकारा संभव नहीं है। अब तो तुम मरते दम तक वासना में ही दबे-दबे मरोगे। और तब तुम्हें पंडितों-पुरोहितों, साधु-संतों की बातें बिलकुल ठीक मालूम होंगी। यह समझने की कोशिश करो। क्योंकि वे कहते हैं कि वासना सिर्फ दुख है। और तुम्हारा अनुभव भी कहेगा कि हां, दुख है। अब यह

बड़ा अदभुत तर्क हो गया। उन्हीं ने ऐसा जाल रचा कि वासना दुख हो जाए और तुम्हारा भी अनुभव अब यही कहेगा कि वासना दुख है, तो संत ठीक ही कहते हैं।

इसलिए मेरे जैसे लोगों की बात तुम्हारी समझ में न पड़ेगी। क्योंकि तुम्हारा अनुभव मेरे विपरीत है। मैं कहता हूं: वासना परम आनंद है। मगर तुम राजी नहीं हो सकते। तुम कहोगे: किससे कह रहे हैं आप? और लोग समझते हैं कि उन्होंने बच्चे पैदा कर लिए, इसलिए उन्होंने वासना को जाना है। बच्चे पैदा करने के लिए वासना जानने की कोई जरूरत नहीं है। बच्चे पैदा करना तो इतना सरल काम है, गधे-घोड़े भी कर रहे हैं! इसके लिए कोई जानकारी या होश की जरूरत नहीं है। बच्चे पैदा करना तो इतना सरल काम है जैसे बटन दबा कर बिजली जला देना। लेकिन क्या तुम समझते हो कि बटन दबा कर बिजली जला ली तो तुम समझ गए कि बिजली क्या है?

बिजली क्या है, यह तुम नहीं समझ जाओगे बटन दबाने से। बिजली को जानना तो एक बड़ी गहन यात्रा है। बड़ी लंबी यात्रा है। अभी भी वैज्ञानिक रहस्य को खोल नहीं पाए हैं कि बिजली क्या है? उपयोग सीख गए हैं। बिजली से हजार काम लेने लगे हैं। लेकिन, बिजली क्या है, इसका उत्तर अभी विज्ञान के पास नहीं है।

और कामवासना जीवंत बिजली है, जीवंत विद्युत है। वह विद्युत का और भी ऊपरी, और भी आगे का कदम है, आगे का पड़ाव है। अभी तो भौतिक विद्युत का भी रहस्य नहीं खुल पाया है, तो जैविक विद्युत का, बायोलाजिकल इलेक्ट्रिसिटी का रहस्य तो अभी बहुत दूर है। अभी तो उस पर काम भी शुरू नहीं हुआ है। लेकिन कोई बच्चे पैदा कर लेता है... बच्चे तो तुम दर्जनों पैदा कर लेते हो। जितना नासमझ आदमी हो उतने बच्चे पैदा कर लेता है। बच्चे पैदा करने में क्या है? लेकिन बच्चे पैदा करने वाला सोचने लगता है कि मैं वासना को जानता हूं—और छुटकारा नहीं हुआ अभी तक।

वासना को तुम नहीं जानते। वासना को जानने का शास्त्र है। वासना को जानने की कला है। उसी कला का नाम तंत्र है। उसके बड़े सूक्ष्म उपाय हैं, विधियां हैं। मैं चाहता हूं कि लोग तंत्र की विधियां समझें, सीखें। मगर जिनको मैं समझाना चाहता हूं, जिनको मैं सिखाना चाहता हूं, जो सीख कर वासना से मुक्त हो सकते हैं—वे ही प्रस्तावना करते हैं कि मुझे फांसी की सजा दे दी जाए। और उनको भी मैं कसूर नहीं दे सकता, उनका अनुभव उनसे यही कहता है कि वासना में क्या सुख है? वासना तो नरक है! हालांकि नरक कह-कह कर वे मुक्त नहीं हुए हैं।

राधारमण! तुम्हारी अवस्था तुम्हारी ही नहीं है, करीब-करीब निन्यानबे प्रतिशत मनुष्यता की है। और जैसे तुम कहते हो—कि मैं हृदय की वेदना व्यक्त करना चाहता हूं, जो कि मैंने आज तक किसी से व्यक्त नहीं की—ऐसे ही और भी लोग हैं जो किसी से व्यक्त नहीं कर रहे हैं। करें भी क्या! अपना रोना क्या रोना! और अपना रोना रोएंगे तो लोग हंसेंगे। मजा यह है! अगर तुम किसी से कहोगे कि मैं प्रौढ़ हो गया और वासना से मुक्त नहीं हुआ, तो वह कहेगा: अरे, अभी तक वासना से मुक्त नहीं हुए? वह ऐसा दिखाएगा जैसे वह तो मुक्त हो गया है। वह यह मौका नहीं छोड़ सकता कि अपने को तुमसे ऊपर रख ले। और तुम्हें ऐसा दीन कर देगा, ऐसा हीन कर देगा, कि कहने से सार क्या है?

तुम जाकर किसी साधु-संन्यासी को कहोगे कि मैं अभी वासना से मुक्त नहीं हुआ, तो वह कहेगा : पशु हो तुम! नारकीय हो तुम! कीड़े हो तुम! वह तुम्हें गालियां देगा। तो कहने में सार क्या है? छुपाए रहो अपने दर्द को! छुपाए-छुपाए मर जाओ!

तुम तो ईमानदार आदमी हो कि तुमने यह निवेदन कर दिया, लेकिन निन्यानबे प्रतिशत आदमियों की यही अवस्था है। कहते नहीं किसी से। कहना क्या है? कौन समझेगा? लोग हंसेंगे उलटे। लोग उलटे अपमान करेंगे। तुम्हारी प्रतिष्ठा होगी कुछ तो वह भी गिर जाएगी। यहां तो प्रतिष्ठा उनकी है जो दावेदार हैं। दावा झूठा हो कि सच, इससे कुछ सवाल नहीं है। दावा ऐसा हो कि कोई उसमें भूल-चूक न पकड़ पाए, बस। वासना है भीतर तो रहने दो, बाहर तो ज्ञान की चर्चा करो, वेद की ऋचाएं उद्धृत करो। बाहर तो ब्रह्मचर्य की चर्चा करो।

मैं तुम्हारे साधु-संन्यासियों को जानता हूं, क्योंकि वे भी जब मेरे पास आते हैं तो उनकी भी पीड़ा यही है। तुम यह मत सोचना कि तुम गृहस्थ हो, इसलिए तुम्हारी पीड़ा नहीं मिटी। तुम्हारे साधु-संन्यासियों की पीड़ा तुमसे भी ज्यादा है। क्योंकि तुम्हें तो कुछ सुविधा थी, मिट भी जाती; उन्हें तो वह भी सुविधा नहीं है। वे तो बिलकुल जले जा रहे हैं, आग से भरे हैं। अगर तुम्हारे साधु-संन्यासियों की खोपड़ी खोली जाए, छोटी-छोटी खिड़की बनाई जाएं खोपड़ी में और उनकी जांच की जाए, तो तुम चकित होओगे कि तुम जितना नारकीय दृश्य वहां देखोगे, तुम्हें कहीं भी दिखाई न पड़ेगा।

तुम खुद भी प्रयोग करके देख सकते हो। रोज तुम भोजन कर लेते हो, फिर तुम भोजन के सपने तो नहीं देखते। एक दिन उपवास करो, उस रात भोजन का सपना देखोगे। दो-चार दिन का उपवास करो, भोजन ही भोजन की सोचोगे। और सब सोच-विचार खो जाएगा, मैं तुमसे कहता हूं, राधारमण! कामवासना का विचार भी खो जाएगा, एक पांच-सात दिन उपवास करो, भोजन ही भोजन दिखाई पड़ने लगेगा। रास्ते पर निकलोगे तो स्त्रियां दिखाई नहीं पड़ेंगी, होटलें दिखाई पड़ेंगी। होटलों के अक्षर बिलकुल साफ-साफ दिखाई पड़ेंगे, बोर्ड बिलकुल पढ़ोगे, बार-बार पढ़ोगे। रास्ते पर निकलोगे तो और कुछ नहीं, यह भजिये की गंध, यह पकौड़ों की गंध, राह तुम्हें एकदम गंधों से भरी मालूम होगी—भोजन की एक से एक गंध! इसी रास्ते से जिंदगी भर गुजरे थे, ये गंधें तुम्हें कभी मालूम न पड़ी थीं, क्योंकि पेट भरा था, तृप्त थे तुम।

अभी तुम रास्ते से गुजरते हो, स्त्रियां ही स्त्रियां दिखाई पड़ती हैं। तुम्हारे भीतर वासना दबी पड़ी है। तुमने अच्छा किया कि कहा, निवेदन किया। रास्ता बन सकता है। लेकिन रास्ते को बनाने के लिए कुछ बड़ी महत्वपूर्ण बातें समझनी होंगी।

तुमने कहा : 'मेरे मन की हालत खंड-खंड हो गई है।'

तुमने की है हालत खंड-खंड, हो नहीं गई है! तुम जिम्मेवार हो। दोष किसी और पर डाला नहीं जा सकता। अंततः तो जिम्मेवारी अपनी है। पंडित-पुरोहितों पर भी दोष डालने से कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि उनकी तुमने मानी, यह तो जिम्मेवारी तुम्हारी है। न मानते। मैंने नहीं मानी। मेरे पास अनंत संन्यासी इकट्ठे हो रहे हैं, इन्होंने नहीं मानी। तुम भी न मानते। लेकिन अभी भी तुम उनकी ही मान रहे हो। यह प्रश्न भी उनकी ही मान्यता से पैदा हुआ है। यह अड़चन भी उन्होंने दी, यह प्रश्न भी उसी से पैदा हुआ है।

तुम कह रहे हो: 'एक तरफ सत्संग का प्रेम और परमात्मा से मिलन की चाहत और दूसरी तरफ भौतिक कामवासना की तरफ हर पल का झुकाव।'

ये दोनों अलग बातें नहीं हैं। जिन्होंने तुमसे कहा अलग हैं, उन्होंने तुम्हें गलत समझाया। ये दोनों बिलकुल एक सी बातें हैं। जिस चाहत से तुमने किसी स्त्री को चाहा है, वही चाहत तो नये पंख लगा कर परमात्मा को चाहेगी; विपरीत नहीं है। जिस वासना के कारण तुम्हें किसी स्त्री के चेहरे में सौंदर्य दिखाई पड़ा था, उसी के कारण तो तुम्हें किसी कमल में सौंदर्य दिखाई पड़ेगा; चाहत तो वही है। उसी के कारण तो तुम्हें सूर्यास्त में सौंदर्य दिखाई पड़ेगा, रात तारों में सौंदर्य दिखाई पड़ेगा; वही चाहत है। और उसी चाहत से एक दिन तुम्हें यह सारा जगत सौंदर्य से भरपूर मालूम पड़ेगा। तब परमात्मा का अनुभव शुरू होगा।

लेकिन तुम कह रहे हो: 'एक तरफ परमात्मा की चाहत और दूसरी तरफ कामवासना की तरफ झुकाव।'

तुमने इनको विपरीत मान रखा है, वहीं तुम्हारी भूल हो रही है, वहीं मूल भूल हो रही है। और जब मूल भूल हो जाए तो फिर तुम जो भी करोगे वह गलत हो जाएगा। पहला कदम ही गलत पड़ गया। ये दोनों बातें विपरीत नहीं हैं। ये दोनों बातें अलग-अलग दिशाओं में नहीं हैं। ये एक ही रास्ते के पड़ाव हैं। काम पहला पड़ाव है, प्रेम दूसरा पड़ाव है, प्रार्थना तीसरा पड़ाव है—एक ही रास्ते पर! यही मेरी मौलिक देन है तुम्हारे लिए। ये एक ही रास्ते के पड़ाव हैं। इसलिए जरा भी चिंता न लो।

खंड-खंड तुम अपने आप हुए जा रहे हो, अपनी व्याख्या के कारण। मेरी व्याख्या समझो, खंड समाप्त हो गए, इसी क्षण समाप्त हो गए। खंडों को जोड़ना नहीं पड़ेगा, सिर्फ तोड़ना बंद हो गया। वही तो सौंदर्य को चाहता है जो परमात्मा को चाहेगा। वही चाहत, वही प्रेम।

माना कि स्त्री में बड़ा स्थूल सौंदर्य है, पुरुष में बड़ा स्थूल सौंदर्य है और परमात्मा में एक सूक्ष्म सौंदर्य है—सूक्ष्मातिसूक्ष्म! लेकिन सौंदर्य तो सौंदर्य है। हीरा जब पहली दफा खोदा जाता है खदान से तो पत्थर जैसा लगता है, सिर्फ जौहरी देख पाते हैं। और मैं तुमसे कहता हूं कि जिसे तुम कामवासना कह रहे हो, वह हीरा है। मैं जौहरी की तरह तुमसे कह रहा हूं कि वह हीरा है। उसे काटना होगा, निखारना होगा; उसे साफ-सुथरा करना होगा; तब कहीं तुम पहचान पाओगे कि यह हीरा है।

तुम्हें पता है, जब पहली दफा कोहिनूर हीरा मिला तो जिस आदमी को मिला उसके घर महीनों बच्चे उससे खेलते रहे, क्योंकि समझा कि पत्थर है। कोहिनूर हीरा! और कोहिनूर हीरे के साथ बड़ी प्यारी कहानी जुड़ी है। गोलकुंडा में मिला था। जिस आदमी को मिला था, वह एक गरीब किसान था। छोटा सा एक खेत था और खेत में से बहता हुआ एक छोटा सा झरना था। उस झरने की रेत में ही उसे एक दिन यह पत्थर चमकता हुआ मिल गया। सोचा, उठा लिया, कि बच्चे खेलेंगे। आकर बच्चों को दे दिया। बच्चे उससे खेलते भी रहे, वह घर में कभी इस कोने, कभी उस कोने पड़ा रहा। कोहिनूर हीरा—जो अब इंग्लैंड की रानी एलिजाबेथ के मुकुट में लगा है और जो इस समय दुनिया का सबसे बहुमूल्य हीरा है! जिस कोहिनूर के पीछे न मालूम कितने लोगों की जानें गईं, उससे बच्चे खेलते रहे। किसी को पता ही न था।

और कहानी अदभुत है कि उस किसान के घर एक रात एक यात्री फकीर मेहमान हुआ। उस फकीर ने जमानों की बातें कीं, दूर-दर की, क्योंकि वह सारी दुनिया घूमा हुआ था। और उसने उस किसान से कहा कि तू भी यहां क्यों समय खराब कर रहा है? मिट्टी में क्यों सिर फोड़ रहा है? ऐसी जगह हैं जहां सोने की खदानें हैं, हीरों की खदानें हैं। मैं तुझे पता दे देता हूं, तू जा। इतनी मेहनत से तो तू अरबपति हो जाएगा।

तो उसने अपना खेत बेच दिया। जिस खेत में कोहिनूर मिला था, उसने बेच दिया। और उसी खेत में फिर खदान मिली सबसे बड़ी गोलकुंडा की, जिससे दुनिया के सबसे कीमती हीरे निकले। वह उसने ऐसा दो कौड़ी में बेच दिया, खेत की कीमत में बेच दिया। और खेत को बेच कर निकल पड़ा तलाश में। अपने पत्नी-बच्चों को कहा कि तुम रुको, मैं जाता हूं धन की तलाश में। कोई चार-पांच साल बाद भिखमंगे की हालत में वापस लौटा। वे जो पैसे थे सब खर्च हो गए। न कहीं कोई हीरे की खदानें मिलीं, न कोई धनी हो पाया। भटक कर अपने घर वापस आ गया। लेकिन जिस दिन घर वापस आ गया, उसी दिन उसकी आंख खुली। वह हीरा जो बच्चों को खेलने दे गया था, इस चार-पांच साल की यात्रा में खदानें तो नहीं मिलीं, लेकिन हीरों की परख आ गई। हीरे-हीरे की धुन सवार रही। जौहरियों के पास बैठा, दुकानदारों के पास बैठा। हीरे देखे, हीरों की परख आ गई। हीरे तो नहीं मिले, मगर परख आ गई। और परख आ गई तो हीरे मिल गए, क्योंकि परख ही असली सवाल है। विश्वास ही न कर सका अपनी आंखों पर कि हीरा मेरे घर में है और मैं सारी दुनिया में खोजता रहा! फिर लाख उपाय किए कि खेत वापस मिल जाए, लेकिन अब खेत कैसे वापस मिले? खबर उड़ गई! उस खेत में सबसे बड़ी खदान है गोलकुंडे की।

निजाम, हैदराबाद के सम्राट के पास जितने हीरे थे, वे सब उसी खदान के हीरे थे। काफी हीरे थे। अभी भी हैं। जब निजाम हैदराबाद अपनी पूरी शान में थे तो उनके पास इतने हीरे थे कि हर वर्ष उन हीरों को धूप देने के लिए सात छतों पर फैलाना पड़ता था, सिर्फ धूप देने के लिए। फावड़ों से निकालना पड़ता था और फावड़ों से ही वापस कमरों में बंद करना पड़ता था। जैसे हीरे न हों, कंकड़-पत्थर हों। ये उसी गरीब किसान के खेत में सारे हीरे मिले।

तुम्हारी दशा भी उसी गरीब किसान जैसी है। वह जो तुम्हारे खेत में छोटा सा झरना बहता है कामवासना का, वहीं हीरों की खदानें हैं। परख चाहिए।

पहली बात स्मरण रखो: कामवासना परमात्मा की ही तलाश है। और इसीलिए कामवासना में तुम सदा पाओगे—कुछ कमी रह गई, कुछ कमी रह गई। क्योंकि तलाश परमात्मा की है, देह से कैसे राजी होओगे? अदेही प्रेम चाहिए। अदेही सौंदर्य चाहिए। मगर देह की सीढ़ी बनानी होगी।

तुम कहते हो: 'एक तरफ सत्संग का प्रेम और परमात्मा से मिलन की चाहत और दूसरी तरफ भौतिक कामवासना की तरफ हर पल का झुकाव।'

इनको दो तरफ मत रखो, इन्हें एक साथ रखो। ये एक ही यात्रा के पड़ाव हैं।

'आज प्रौढ़ावस्था तक उससे छुटकारा नहीं पा सका हूं।'

इसी गलत विवेचन के कारण छुटकारा नहीं मिला। जरा सा गलत विवेचन हो जाए, इंच भर की गलत भूल हो जाए कि हजारों मील का फासला हो जाता है सत्य से।

लेकिन तुम सोच रहे होओगे कि छुटकारा इसलिए नहीं मिला कि मैंने पूरी कोशिश नहीं की। छुटकारा इसीलिए नहीं मिला कि तुमने पूरी कोशिश की। तुमने खूब लड़ाई की अपने से। मगर लड़ाई से छुटकारा नहीं मिलता। बोध से, ध्यान से छुटकारा मिलता है।

और छुटकारा शब्द ठीक शब्द नहीं है, क्योंकि छुटकारे में यह भाव है ही कहीं कि गलत है। छुटकारा न कहो, अतिक्रमण कहो, पार जाना कहो।

'समझ आती है तो अधूरी रहती है।'

वह समझ नहीं है। शास्त्रीय समझ है, अनुभवगत नहीं है।

'और स्त्री के शरीर के अनेक अनुभवों के बावजूद भी वृत्ति और ज्यादा तंग करती है।'

स्त्रियों के शरीर के अनुभव से पुरुष मुक्त होता है, पुरुष के शरीर के अनुभव से स्त्री मुक्त होती है। सभी अनुभव मुक्तिदायी हैं। मगर अनुभव पूरा नहीं हो पाता, क्योंकि तुम भीतर लड़ रहे हो। तुम जब स्त्री को आलिंगन भी कर रहे हो, तब भी तुम सोच रहे हो कि अरे पापी, यह क्या कर रहा है! अरे नारकीय, यह क्या कर रहा है! सड़ेगा नरक में! वे तुम्हारे संत भीतर से उपदेश दे रहे हैं। वे बीच में खड़े हैं। वे डंडा लिए बीच में ही खड़े रहते हैं। वे तुम्हें मिलने नहीं देते। तुम भीतर निंदा कर रहे हो, कोस रहे हो अपने को। ऐसे कहीं समझ पैदा होगी? अधूरी-अधूरी होगी। और अधूरी समझ समझ नहीं है। समझ या तो पूरी होती है या नहीं होती। या तो नासमझ या समझ, इन दोनों के बीच में कोई पड़ाव नहीं है। तुम समझ को बांट नहीं सकते। तुम यह नहीं कह सकते कि अभी आधी समझ है। आधी समझ का क्या मतलब होगा? समझ काटी नहीं जा सकती खंडों में। समझ अखंड है।

लेकिन मैं जानता हूं तुम्हारी अड़चन क्या है। क्योंकि वही तो अड़चन सारी मनुष्यता की है। जब स्त्री के पास होते हो, तब तुम्हारे सारे संत-महंत भीतर स्त्री के विपरीत बोलने लगते हैं कि स्त्री नरक का द्वार है। ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी! बोलने लगे तुम्हारे सारे संत-महंत। और जब स्त्री से दूर होते हो, तब तड़फती है तुम्हारी वासना। तुम्हारी दुविधा मैं जानता हूं—न घर के, न घाट के। घाट पर होते हो, तब घर की याद आती है; जब घर होते हो, तब घाट की याद आती है। धोबी के गधे जैसी तुम्हारी अवस्था हो गई है।

और यह ऐसा है। जो चीज मिल जाती है उसमें पूरा रस नहीं ले पाते और जो नहीं मिलती वह मिलनी चाहिए, इसकी वासना सताती है। जब अभाव रहता है, तब मांग; और जब मिलती है कोई चीज, तब उसे पूरा जी नहीं पाते। इसलिए सब बंटा-बंटा रह गया है।

'सब अच्छी कही हुई बातें और सिखावनें बाहर ही रह जाती हैं।'

रह ही जाएंगी। क्योंकि अच्छी बातें अगर बाहर से आती हैं तो बाहर ही रह जाएंगी। सिखावनें अगर औरों की हैं तो उधार हैं, बाहर ही रह जाएंगी। असली बात तो भीतर से आती है, जन्मती है भीतर। तुम्हारी बातें अच्छी, तुम्हारी नहीं हैं, किन्हीं औरों की हैं। तुमने उनको गोद ले लिया है। जैसे गोद ले लेते हैं न लोग। अब किसी ने किसी का बच्चा गोद ले लिया, गोद लेकर वह मां हो गई, गोद लेकर तुम पिता हो गए।

मगर क्या तुम समझते हो कि गोद लिया बच्चा सच में किसी को मां बना सकता है? क्योंकि मां बनने की अनिवार्य प्रक्रिया तो हुई ही नहीं। वह नौ महीने का गर्भ, वह नौ महीने की तकलीफें, वह नौ महीने का बोझ, वह उलटियां, भोजन का पचना नहीं, रात नींद का न

आना, वह नौ महीने की पीड़ा कौन झेलेगा? मां बनना कोई मुफ्त में तो नहीं होता। उसके लिए कीमत चुकानी होती है। और जिस दिन बच्चा पैदा होता है उस दिन की पीड़ा असह पीड़ा है। गोद लेकर तो तुमने बड़ी होशियारी कर ली, सब झंझट से ही बच गए।

लेकिन ध्यान रखना, जिस दिन बच्चा पैदा होता है, उसके पैदा होने में ही दूसरी तरफ मां पैदा होती है। बच्चा अकेला ही पैदा नहीं होता। जब तक बच्चा नहीं था, तब तक वह स्त्री स्त्री थी, मां नहीं थी। जिस दिन बच्चा पैदा हुआ, उस दिन स्त्री में कुछ नया अंग जुड़ा, मां बनी। तो दो पैदा हुए उस दिन। एक तरफ बच्चा पैदा हुआ, एक तरफ मां पैदा हुई। फिर बच्चे का पालना, फिर बच्चे की सारी तकलीफें, फिर रात-रात जागना, फिर रात में दस बार जागना, फिर बच्चे को दूध देना, अपने प्राणों से बच्चे को जोड़े रखना, फिर बच्चे की सब तरह तीमार, सब तरह फिकर, वह सारा दान, वह सारा प्रेम, वह सारी करुणा—उस सबसे मिल कर मां बनती है। तुमने होशियारी की, तुमने गणित का काम किया, तुम सारी झंझट से बच गए। तुमने परखनली का शिशु ले लिया, कि तुम गए और किसी और का बच्चा उधार ले लिया।

ठीक ऐसी ही घटना ज्ञान के संबंध में भी घटती है। असली ज्ञान के लिए तो तुम्हें भीतर बहुत सी पीड़ाएं झेलनी पड़ती हैं, बहुत सी तपश्चर्याएं झेलनी पड़ती हैं, बहुत से अनुभवों से गुजरना पड़ता है, निखरना पड़ता है, बहुत सी आग झेलनी पड़ती है। ज्ञान भीतर पैदा होता है। जैसे गर्भ, ऐसे ज्ञान भीतर पैदा होता है। ऐसा ज्ञान मुक्त करता है। ऐसे ज्ञान से तुम सच में ज्ञानी होते हो। एक तरफ ज्ञान जन्मता है, दूसरी तरफ ज्ञानी जन्मता है।

लेकिन तुमने उधार ले लिया है ज्ञान। अच्छी सिखावनें कहां से लाए हो? किताबों में पढ़ ली हैं। और हो सकता है जिन्होंने किताबों में लिखी हैं, उन्होंने और किताबों में पढ़ ली होंगी। उधारी पर उधारी चल रही है। धर्म नगद होता है। उधार धर्म धर्म नहीं होता।

इसलिए तुम्हारी अड़चन है, राधारमण। तुम कहते हो: 'सब अच्छी कही बातें और सिखावनें बाहर ही रह जाती हैं।'

रह ही जाएंगी। बाहर की हैं, बाहर ही रह जाएंगी। भीतर जा भी कैसे सकती हैं? गोद लिया बच्चा गर्भ में जाएगा कैसे? गर्भ से आया हुआ बच्चा एक बात है। लेकिन अब तुम गोद लिए बच्चे को गर्भ में कैसे ले जाओगे? वह तो बाहर ही रहेगा। और बच्चे को चाहे पता चले न चले, तुम्हें तो सदा पता रहेगा कि अपना नहीं है। तुम्हें तो कैसे भूलेगी यह बात कि अपना नहीं है। इसे भुलाने का कोई उपाय नहीं है। तुम्हारे बीच और बच्चे के बीच एक फासला बना ही रहेगा। संबंध औपचारिक रहेगा। संबंध आत्मिक नहीं हो सकता।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं: ज्ञान की चिंता न करो, ध्यान की चिंता करो। ध्यान के गर्भ में ज्ञान का बच्चा जन्मता है। वह तुम्हारे भीतर जन्मेगा। और जब भीतर जन्मेगा तभी भीतर हो सकता है।

कहते हो: 'बाहर की सारी सिखावनें बाहर रह जाती हैं और मैं वही का वही।'

वही के वही रहोगे। मगर ईमानदार आदमी हो। सच्ची बात कह रहे हो। लोग कहते ही नहीं हैं यह बात। और सच्ची बात कही है तो रास्ता खुल जाएगा। अब कुछ हो सकता है। बाहर की बातें बाहर ही रहेंगी। तुम वही के वही रहोगे। तुम्हारे भीतर क्रांति तो तब पैदा होगी जब भीतर का दीया जलेगा।

मैं तुमसे कहता हूं : भीतर का दीया जल सकता है। कोई कारण नहीं है। बुद्ध का जला, महावीर का जला, यारी का जला, तुम्हारा जल सकता है। हरेक व्यक्ति भीतर के दीये को लेकर पैदा हुआ है। लेकिन जलाने की प्रक्रियाएं सीखनी होंगी। सत्संग करना होगा। साहस करना होगा किसी जीवंत बुद्ध के साथ चलने का। संन्यस्त होना होगा। शिष्य बनना होगा।

और ध्यान रखना, असली गुरु ज्ञान नहीं सिखाता, असली गुरु ध्यान सिखाता है। और ज्ञान तुम्हारे भीतर पैदा होता है। नकली गुरु ज्ञान सिखाता है। और तब सब बातें बाहर की बाहर रह जाती हैं।

'मैं वही का वही'—तुम कहते हो—'सब भूल कर लोलुप हो जाता हूं। वासना मन को घेरे रहती है। स्वप्न में भी वही चलता है। किस क्रिया से छुटकारा या समता पा सकूं?'

छुटकारा तो नहीं। छुटकारे की तो भाषा छोड़ दो। अतिक्रमण! समता भी नहीं। अतिक्रमण! क्योंकि समता भी मुर्दा-मुर्दा होगी। किसी भांति शांत हो जाए यह आग वासना की। मगर यह आग बड़ी कीमती है, शांत इसे करना नहीं है। इसी आग के सहारे तो परमात्मा की अग्नि जलानी है। इसी चिंगारी से तो पूरे जंगल में आग लगेगी। इसे दबा नहीं देना है। इसे राख नहीं कर देना है। इसी चिंगारी में तो तुम्हारा भविष्य है, आशा है।

इसलिए छुटकारा नहीं, समता नहीं—अतिक्रमण। और अतिक्रमण का उपाय है : वासना में ध्यानपूर्वक जाओ, समग्ररूपेण जाओ। और अभी भी देर नहीं हो गई है। ऐसे तो देर हो गई है, मगर अब जो हुआ हुआ। अभी भी देर नहीं हो गई है। और सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहलाता। अगर मरते-मरते क्षण तक भी वासना का अतिक्रमण हो गया तो समझना कि घर आ गए।

यह हो सकता है। भूले-भटके तुम ठीक जगह आ गए हो, जहां यह हो सकता है। लेकिन साहस तो करना होगा। सस्ते में नहीं होगा। तुम चाहो कि मेरी बातें सुन कर हो जाए, तो नहीं होगा। मैं जो कहता हूं, वह करोगे, तो हो सकता है।

चौथा प्रश्न : प्रेम को अंधा कहा गया है, और आप प्रेम सिखाते हैं। प्रेम को पागलपन कहा है, और आप प्रेम सिखाते हैं। प्रेम को स्वप्न कहा गया है, और आप प्रेम सिखाते हैं। क्यों?

इसलिए कि न तो प्रेम अंधा है, और न प्रेम पागलपन है, और न प्रेम स्वप्न है; या प्रेम ऐसा अंधापन है जिसमें आंखें हैं, और प्रेम ऐसा पागलपन है जिसमें प्रज्ञा है, और प्रेम ऐसा स्वप्न है जिसमें सत्य छिपा है।

प्रेम इस जगत में सबसे महती घटना है। जो प्रेम से चूक गया वह सत्य से चूक जाएगा। प्रेम परमात्मा है। इसलिए प्रेम सिखाता हूं।

> जहां तुझको बिठा कर पूजते हैं पूजने वाले
> वो मंदिर और होते हैं, शिवाले और होते हैं

दहाने-जख्म से कहते हैं जिनको मरहबा बिस्मिल
वो खंजर और होते हैं, वो भाले और होते हैं
जिन्हें महरूमि-ए-तामीर ही अस्ले-तमन्ना हैं
वो आहें और होती हैं, वो नाले और होते हैं
जिन्हें हासिल हैं तेरा कुर्ब, खुशकिस्मत सही, लेकिन
तेरी हसरत लिए मर जाने वाले और होते हैं
जो ठोकर ही नहीं खाते, वो सब कुछ हैं, मगर वाइज
वो जिनको दस्ते-रहमत खुद सम्हाले, और होते हैं
तलाशे-शमअ से पैदा हैं सोजे-नातमाम 'अख्तर'
खुद अपनी आग में जल जाने वाले और होते हैं

एक तो प्रार्थना है, पूजा है, जो प्रेमरहित है। वही चल रही है मंदिरों-मस्जिदों में, गुरुद्वारों में। एक और प्रार्थना है जो प्रेम से परिपूर्ण है, औपचारिक नहीं है; वही मैं तुम्हें सिखा रहा हूं।

जहां तुझको बिठा कर पूजते हैं पूजने वाले
वो मंदिर और होते हैं, शिवाले और होते हैं

यह वैसा मंदिर नहीं है, यह वैसा शिवालय नहीं है—जहां मंदिरों में पत्थर की मूर्तियां रख कर बिठा दी गई हैं और पूजा चल रही है; जहां परमात्मा मुर्दा है और जहां पूजा औपचारिक है।

जहां तुझको बिठा कर पूजते हैं पूजने वाले
वो मंदिर और होते हैं, शिवाले और होते हैं
दहाने-जख्म से कहते हैं जिनको मरहबा बिस्मिल
वो खंजर और होते हैं, वो भाले और होते हैं
जिन्हें महरूमि-ए-तामीर ही अस्ले-तमन्ना हैं
वो आहें और होती हैं, वो नाले और होते हैं

हाथ में औपचारिकता की थाली लेकर तुम जो अर्चना उतारते हो, पूजा करते हो, आरती उतारते हो—वे आवाजें परमात्मा तक नहीं पहुंचतीं। दीये जलाते हो घी के, हृदय के दीये कब जलाओगे? धूप जलाते हो बाजार से खरीद कर लाई गई, प्राणों की धूप कब जगमगाओगे?

जिन्हें महरूमि-ए-तामीर ही अस्ले-तमन्ना हैं

जिनको केवल एक ही आकांक्षा है कि परमात्मा मिल जाए!

वो आहें और होती हैं, वो नाले और होते हैं

कुछ ऐसी आह भरो! कुछ ऐसी आवाज उठाओ! कुछ ऐसी सदा दो! कुछ इस तरह पुकारो कि रोआं-रोआं सम्मिलित हो, कि कण-कण सम्मिलित हो, कि आवाज सिर्फ ओंठों की न हो, कि कंठ से ही न निकली हो, प्राणों के प्राण से आई हो। फिर पहुंचती है। फिर जरूर पहुंचती है। मगर वैसी आवाज तो प्रेम की ही आवाज होगी।

इसलिए मैं प्रेम सिखाता हूं, क्योंकि प्रेम ही तुम्हारी औपचारिकता में प्राण डाले। प्रेम ही तुम्हारे शिष्टाचार से तुम्हें छुटकारा दिलाए। परमात्मा से कोई शिष्टाचार का नाता नहीं है। लेकिन तुमने वहां भी शिष्टाचार का नाता बना लिया है। मंदिर में चले जाते हो और बड़ा शिष्ट व्यवहार करते हो। हंसोगे कब उसके साथ? गाओगे कब उसके साथ? नाचोगे कब उसके साथ? हाथ में हाथ उसका कब लोगे? चरण उसके कब गहोगे? ऐसे तो सिर तुमने बहुत पटका है, मगर भीतर तुम कहीं और थे। सिर पत्थर पर पड़ा है और भीतर तुम कहीं और थे। तुम अपने को कब चढ़ाओगे?

जिन्हें हासिल हैं तेरा कुर्ब, खुशकिस्मत सही, लेकिन
तेरी हसरत लिए मर जाने वाले और होते हैं

हां, प्रेम पागलपन है, क्योंकि मर जाने की हिम्मत देता है, मिट जाने की हिम्मत देता है। प्रेम परवाना बनाता है। और सिर्फ परवाने ही शमा को उपलब्ध हो पाते हैं। परमात्मा शमा है। मैं तुम्हें परवाना बनाता हूं। तुम्हें साहस देता हूं कि जाओ, जल मरो। क्योंकि उसी मिटने में तुम्हारा नया जन्म होगा।

जो ठोकर ही नहीं खाते, वो सब कुछ हैं, मगर वाइज

यह प्यारा वचन समझना! जो जीवन में भूल करते ही नहीं, वे ठीक हैं, अच्छे हैं, हे उपदेशक!

जो ठोकर ही नहीं खाते, वो सब कुछ हैं, मगर वाइज
वो जिनको दस्ते-रहमत खुद सम्हाले, और होते हैं

लेकिन मैं उन लोगों की बात कर रहा हूं जो गिरें तो परमात्मा का हाथ खुद उन्हें सम्हाले।

जो ठोकर ही नहीं खाते, वो सब कुछ हैं, मगर वाइज

अच्छे लोग हैं, ठोकर नहीं खाते, भूल नहीं करते, चूक नहीं करते, पाप नहीं करते, चोरी नहीं करते—लेकिन असली बात वहां नहीं है। असली बात तो वहां है कि अगर तुम ठोकर खाओ तो परमात्मा का हाथ तुम्हें सम्हाले। जब तक उसका हाथ सम्हालने को न आए, तब तक समझना तुम्हारी आवाज उस तक नहीं पहुंची। तुम्हीं अपने को सम्हाले रखो, यह अच्छी बात है, ठीक है, लेकिन कामचलाऊ है। तुम सज्जन हो जाओगे, संत नहीं हो पाओगे। सज्जन वह है जो खुद को सम्हाले रखता है। संत वह है जो परमात्मा पर सब छोड़ देता है और परमात्मा जिसे सम्हालता है।

जो ठोकर ही नहीं खाते, वो सब कुछ हैं, मगर वाइज
वो जिनको दस्ते-रहमत खुद सम्हाले, और होते हैं
तलाशे-शमअ से पैदा हैं सोजे-नातमाम 'अख्तर'
खुद अपनी आग में जल जाने वाले और होते हैं

तो तुम ठीक ही कहते हो, मैं प्रेम सिखाता हूं। प्रेम एक अर्थ में अंधा है, क्योंकि दुनिया की भाषा नहीं बोलता प्रेम। प्रेम अंधा है, क्योंकि गणित नहीं जानता प्रेम। प्रेम अंधा है, क्योंकि प्रेम जुआरी है, दुकानदार नहीं है। और प्रेम पागलपन भी है। लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं: उससे बड़ी और कोई प्रज्ञा नहीं है। उससे बड़ी कोई और समझदारी नहीं है।

क्योंकि जिन्होंने प्रेम किया उन्होंने परमात्मा पाया और जिन्होंने समझदारी रखी उन्होंने धन पाया, पद पाया। लेकिन धन और पद सब पड़े रह जाते हैं।

साज बे-मुतरिब-ओ-मिजराब नजर आते हैं
फिर भी नग्मे हैं कि बेताब नजर आते हैं
वही महफिल हैं, वही रौनके-महफिल, लेकिन
कितने बदले हुए आदाब नजर आते हैं

दुनिया कैसी बदल गई! अब यहां परवाने नहीं हैं। शमा तो वही है। शमा जली जाती है, परवानों का कोई पता ही नहीं है। लोगों ने हिम्मत खो दी। प्रेम में अंधे नहीं हो सकते, प्रेम में पागल नहीं हो सकते, प्रेम का स्वप्न भी नहीं देख सकते।

साज बे-मुतरिब...

इसलिए वीणा पड़ी है और उससे कोई संगीत नहीं उठता। संगीतज्ञ का ही कोई पता नहीं है, ऐसा बेहोश है संगीतज्ञ।

साज बे-मुतरिब-ओ-मिजराब नजर आते हैं

साजिंदा और वाद्य, सब खाली पड़े हैं।

फिर भी नग्मे हैं कि बेताब नजर आते हैं

लेकिन कुछ है जो प्रकट होना चाहता है।

परमात्मा अब भी गीत गाना चाहता है, मगर तुम वीणा को नहीं सम्हालते। परमात्मा अब भी तुम्हारे हृदय में गुनगुनाना चाहता है, मगर तुम हृदय नहीं खोलते। तुम बड़े समझदार हो गए हो। तुम बड़े भयभीत हो गए हो। तुम अपनी सुरक्षा में लगे हो। तुम समर्पण नहीं करते।

वही महफिल हैं, वही रौनके-महफिल, लेकिन
कितने बदले हुए आदाब नजर आते हैं

इसी महफिल में मीरा, इसी महफिल में यारी, इसी महफिल में सहजो, इसी में आ गए लोग, नाच गए लोग, पा गए लोग—और इसी महफिल में तुम कचरा इकट्ठा करते रहोगे!

वही महफिल हैं, वही रौनके-महफिल, लेकिन
कितने बदले हुए आदाब नजर आते हैं
क्या तमाशा हैं कि गुंचे तो हैं पजमुर्दा-ओ-जर्द
खार आसूदा-ओ-शादाब नजर आते हैं

कैसा तमाशा हो गया है! फूल तो मुरझाए हुए हैं, पत्ते तो पीले पड़ गए हैं, और कांटे खूब हरे हैं, खूब भरे हैं।

काफिला आज यह किस मोड़ पर आ पहुंचा हैं
अब कदम और भी बेताब नजर आते हैं
कल करेंगे यही तुगियाने-गुलेतर पैदा
आज जो आग के सैलाब नजर आते हैं
कल यही ख्वाब हकीकत में बदल जाएंगे
आज जो ख्वाब फकत ख्वाब नजर आते हैं

हां, प्रेम स्वप्न है, मगर ऐसा स्वप्न जो सत्य बन जाता है। बस प्रेम ही एकमात्र ऐसा स्वप्न है, जो सत्य बन जाता है।

कल यही ख्वाब हकीकत में बदल जाएंगे
आज जो ख्वाब फकत ख्वाब नजर आते हैं
कौन सा मेहरे-दरख्शां है उभरने वाला
आईने दिल के शफकताब नजर आते हैं
मुस्कुराते हुए पर्दा के उफुक पर 'अख्तर'
एक क्या सैंकड़ों महताब नजर आते हैं

उग रहे हैं बहुत सूरज! तैयार हो जाओ। क्षितिज पर कुछ घटने को है।

मुस्कुराते हुए पर्दा के उफुक पर 'अख्तर'
एक क्या सैंकड़ों महताब नजर आते हैं

हर पच्चीस सौ वर्ष पूरे होने पर मनुष्य-जाति के जीवन में एक बड़े संक्रमण का क्षण आता है, क्रांति का क्षण आता है—हर पच्चीस सौ वर्ष बाद! कृष्ण के पच्चीस सौ वर्ष बाद बुद्ध। बुद्ध को फिर पच्चीस सौ वर्ष पूरे हो गए। और पता है, बुद्ध के समय में एक सैलाब आया था, एक बाढ़ आई थी सतपुरुषों की, बुद्धों की। ईरान में जरथुस्त्र, और यूनान में हेराक्लतु, पाइथागोरस, साक्रेटीज, और चीन में कनफ्यूशियस, लाओत्सु, च्वांगत्सु, लीहत्सु, मेनशियस, और भारत में बुद्ध, महावीर, संजय बेलट्ठीपुत्त, अजित केशकंबली, मक्खली गोशाल—अदभुत लोग हुए। जैसे सागर ने ऐसी ऊंचाई कभी न ली थी!

संसार का वर्तुल पच्चीस सौ वर्ष में एक चक्कर पूरा करता है। पच्चीस सौ वर्ष पूरे हो गए। इस सदी के ये अंतिम बीस-पच्चीस वर्ष अपूर्व हैं। तुम सौभाग्यशाली हो कि इस घड़ी में हो। अगर उपयोग कर लिया, तिर जाओगे। कभी-कभी ऐसा होता है, जब हवाएं ठीक दिशा में बहती हैं तो पतवार नहीं चलानी होती; सिर्फ पाल खोल दिए नाव के और हवाएं ले चलती हैं। हां, हवाएं अगर अनुकूल न हों तो फिर पतवार चलानी पड़ती है, फिर बड़ा श्रम करना पड़ता है। हवाएं बहुत प्रतिकूल होने के दिन हैं तो निश्चित ही बहुत श्रम करना होगा; और हवाएं अनुकूल हैं तो बिना श्रम के, सिर्फ समर्पण से घटना घट जाती है।

महफिल तो वही है, जहां अदभुत फूल खिलें! तुम भी फूल बन सकते हो। और समय बहुत अनुकूल करीब आ रहा है, रोज-रोज करीब आ रहा है। तैयारी करो!

साज बे-मुतरिब-ओ-मिजराब नजर आते हैं
फिर भी नग्मे हैं कि बेताब नजर आते हैं
वही महफिल है, वही रौनके-महफिल, लेकिन
कितने बदले हुए आदाब नजर आते हैं
क्या तमाशा है कि गुंचे तो हैं पजमुर्दा-ओ-जर्द
ख्वार आसूदा-ओ-शादाब नजर आते हैं
काफिला आज यह किस मोड़ पर आ पहुंचा है
अब कदम और भी बेताब नजर आते हैं

कल करेंगे यही तुगियाने-गुलेतर पैदा
आज जो आग के सैलाब नजर आते हैं
कल यही ख्वाब हकीकत में बदल जाएंगे
आज जो ख्वाब फकत ख्वाब नजर आते हैं
कौन सा मेहरे-दरख्शां है उभरने वाला
आईने दिल के शफकताब नजर आते हैं
मुस्कुराते हुए फर्दा के उफुक पर 'अख्तर'
एक क्या सैकड़ों महताब नजर आते हैं

एक अपूर्व घड़ी, एक सौभाग्य की घड़ी है—जागो। इस घड़ी का उपयोग कर लो! और उपयोग सिर्फ प्रेमी ही कर पाएंगे, इसलिए प्रेम सिखाता हूं।

तुम भी ठीक कहते हो कि प्रेम है अंधा, और आप प्रेम सिखाते हैं; प्रेम है पागलपन, और आप प्रेम सिखाते हैं; प्रेम है स्वप्न, और आप प्रेम सिखाते हैं! तुम भी ठीक कहते हो एक अर्थ में। तुम्हारे तथाकथित समझदार प्रेम को अंधा ही कहते हैं। सिर तो सदा प्रेम को अंधा कहता है, क्योंकि प्रेम हृदय का होता है, सिर का नहीं होता। खोपड़ी तो सदा प्रेम के विपरीत है, क्योंकि जब प्रेम आ जाता है, मालिक आ जाता है, तो खोपड़ी को नौकरी बजानी पड़ती है। जब तक मालिक घर में नहीं होता, नौकर मालिक होते हैं; जब मालिक घर में आ जाता है, नौकरों को तत्क्षण जी-हुजूर करना पड़ता है।

सिर तभी तक मालिक है, जब तक तुम्हारा हृदय सोया हुआ है। इसलिए सिर तो खिलाफत करेगा, सिर तो कहेगा : क्या पागलपन! क्या प्रेम, क्या प्रार्थना, क्या भक्ति? नहीं कोई परमात्मा है। कहां कोई प्रमाण है? किन व्यर्थ की बातों में पड़े जाते हो? सिर तो विरोध करेगा ही। उसकी तो सारी की सारी शक्ति निकल जाएगी। जैसे ही हृदय खिला, सिर शक्तिशाली नहीं रह जाता। जैसे ही प्रेम जगा, तर्क दो कौड़ी का हो जाता है।

लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं : मस्तिष्क मालिक की तरह बहुत खतरनाक है, सेवक की तरह बहुत बहुमूल्य है। मस्तिष्क को सेवक बनाओ, हृदय को मालिक बनने दो। और तब तुम्हारी जिंदगी ठीक दिशा में चलने लगेगी। दिशा तो हृदय दे, इशारा मंजिल का हृदय से मिले। और चलने की व्यवस्था मस्तिष्क करे। चलने के वाहन और चलने की विधियां मस्तिष्क खोजे। और हृदय निर्णय करे : कहां जाना है, किस दिशा में जाना है, क्या पाना है।

मस्तिष्क मूल्य नहीं दे सकता जीवन को; केवल यंत्र दे सकता है, तकनीक दे सकता है। जीवन के मूल्य तो हृदय से आते हैं।

इसलिए मैं प्रेम सिखाता हूं, यद्यपि तुम्हारा मस्तिष्क उसे अंधा कहेगा। मगर तुम मस्तिष्क की मत सुनना। क्योंकि मस्तिष्क की जिन्होंने सुनी उन्होंने जीवन को ऐसे ही गंवा दिया।

और निश्चित ही प्रेम पागलपन है, क्योंकि यहां जिनको तुम समझदार कहते हो उनकी समझदारी क्या है? कोई धन इकट्ठा करता है, कोई पद, कोई प्रतिष्ठा, और फिर मौत आती है और सब पड़ा रह जाता है। यह कौन सी समझदारी हुई? अगर यह समझदारी है तो प्रेम पागलपन है।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूं: प्रेम ही समझदारी है, क्योंकि प्रेम ऐसी संपदा कमाता है जिसको मौत छीन नहीं पाती। प्रार्थना में तुम ऐसे साम्राज्य के मालिक हो जाते हो जिस पर आंच ही न पड़ेगी। चिता पर जल जाएगी तुम्हारी देह और पड़ा रह जाएगा देह से तुमने जो कमाया था। लेकिन देह के भीतर जो है, देह के पार जो है, अदेही जो है, प्रेम उसे जान लेता है, पहचान लेता है। और उससे पहचान हो जाए तो तुम्हारा अमृत से संबंध जुड़ गया। और माना कि प्रेम स्वप्न है—अभी तो स्वप्न ही है, क्योंकि अभी तो तुम व्यर्थ की चीजों को यथार्थ समझ कर उनके पीछे दीवाने हो, इसलिए प्रेम स्वप्न है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं: ऐसा स्वप्न, जो सत्य बन सकता है; ऐसा स्वप्न, जो तुम्हें सत्य के द्वार तक ले आए।

प्रेम करो। जितना कर सको उतना करो। बेझिझक, बेशर्त प्रेम करो। मनुष्यों से करो, पशुओं से करो, पक्षियों से करो, पौधों से करो, पत्थरों से करो। जितना कर सको करो। प्रेम को जितना लुटाओगे उतना ही परमात्मा को अपने निकट पाओगे। प्रेम सेतु है।

आज इतना ही।

तत्त्वमसि

प्रवचन 5

आंधरे को हाथी हरि, हाथ जाको जैसो आयो।
बूझो जिन जैसो, तिन तैसोई बतायो है।।
टकाटोरी दिन रैन, हिये हू के फूटे नैन।
आंधरे को आरसी में कहां दरसायो है।।
मूल की खबरि नाहिं, जासो यह भयो मुलक।
वाको बिसारि भोंदू डारेन अरुझायो है।।
आपनो सरूप रूप, आपू माहिं देखै नाहिं।
कहै यारी आंधरे ने हाथी कैसो पायो है।।

लब पे आ जाते संगीत सहारे साकी
वलवले दिल के अगर गम से संवरना सीखें
वो जबां—जो हैं शफक, फूल, सितारे साकी
हम भी पा लेते हैं गर जिंदगी करना सीखें

बात बन जाती हैं तरकीब सुरों की साकी
हर तास्सुर से नये रूप में ढल जाती हैं
फिर कोई बात नहीं रहती हैं बाकी साकी
और हर बात पे तरकीब बदल जाती हैं

ऐसे जज्बों की उठानें भी यहीं हैं साकी
लफ्ज-ओ-मानी के तिलिस्मात से जो हैं आगे
उन खयालों की उड़ानें भी यहीं हैं साकी
यूं, कही अनकही हर बात से जो हैं आगे

नाजुक एहसास की रंजूरियां सारी साकी
और तन्नाज तमन्ना के तकाजों की चुभन
नये अरमानों की वो लाग हठीली साकी

और वो सांझ-सवेरे की दुआओं का चलन

रोज-ओ-शब रोते हुए दिल की पुकारें साकी
रुत के गहवारों में पलते हुए लाखों फितने
और ये सजती संवरती हुई नारें साकी
जिनकी सरमस्ति-ओ-रानाई के पहलू इतने

ये सुरें रखती हैं ऐसे कई आलम साकी
वो भी हैं जो किसी तखलीक की हद में भी नहीं
हैं वो पहनाई लचकती हुई सरगम साकी
वुसअतें जिसकी अजल क्या हैं अबद में भी नहीं

इस अस्तित्व में सब है। एक छोटे से कण में भी सब है। पानी की बूंद में भी सागर समाया हुआ है। बस देखने वाली आंखें चाहिए। एक छोटी से सरगम में सारा ओंकार समाया हुआ है।

तार को छेड़ते हो वीणा पर। उस थोड़े से स्वर में, स्वरों के जो पार है, वह भी समाया हुआ है। शब्दों में निःशब्द की झलक है। और आवाजों में भी शून्य की आत्मा है। बस देखने वाली आंखें चाहिए।

मिट्टी की देह में अमृत का वास है। क्षण में शाश्वत की झलक है। बस देखने वाली आंखें चाहिए। और ऐसा भी नहीं है कि आंखें न हों; आंखें भी हैं, और बंद किए बैठे हो।

लब पे आ जाते संगीत सहारे साकी
वलवले दिल के अगर गम से संवरना सीखें

ओंठों पर तुम्हारे ऐसा संगीत जन्म सकता है—ऐसा संगीत, जो किसी वीणा पर नहीं उठ सकता। लेकिन कुछ कला सीखनी होगी।

लब पे आ जाते संगीत सहारे साकी
वलवले दिल के अगर गम से संवरना सीखें

अगर तुमने दुख को दुख न माना होता; अगर तुमने दुख को भी जीवन को परिवर्तित करने वाला सौभाग्य जाना होता; अगर तुमने दुख से अपने को निखारा होता, मांजा होता; दुख में डूब न गए होते; दुख के कारण जागे होते; दुख में खो गए न होते; दुख के कारण आंखों को आंसुओं से न भर लिया होता; दुख को बनाया होता निखार; दुख को बनाया होता ऐसी अग्नि, जिसमें पड़ कर सोना कुंदन बनता है—तो तुम्हारे ओंठों पर ऐसा संगीत उतरता, जैसा बुद्धों के ओंठों से उतरा है।

लब पे आ जाते संगीत सहारे साकी
वलवले दिल के अगर गम से संवरना सीखें
वो जबां—जो हैं शफक, फूल, सितारे साकी
हम भी पा लेते हैं गर जिंदगी करना सीखें

जरा जिंदगी करना सीखना होता है। जरा जीना सीखना होता है। तो वैसी वाणी तुम्हें भी मिल जाए, जिसमें फूलों की लाली हो—और वह भी, जो फूलों की लाली में भी प्रकट नहीं हो पाता।

वो जबां—जो है शफक, फूल, सितारे साकी
हम भी पा लेते हैं गर जिंदगी करना सीखें

जिंदगी जन्म से नहीं मिलती। जन्म से तो केवल जिंदगी का कोरा अवसर मिलता है। फिर जिंदगी बनानी होती है, संवारनी होती है। जिंदगी एक कला है। और सबसे बड़ी कला है, कलाओं की कला है।

लोग संगीत सीखते हैं, तो घंटों रियाज करते हैं, वर्षों रियाज करते हैं, तब कहीं तार को छूने की कला हाथ आती है; तब कहीं तबले पर तान उठती है, ताल उठती है; और तब कहीं कंठ में माधुर्य प्रकट होता है, वर्षों-वर्षों की साधना से! और तुमने जिंदगी की सितार तो पा ली, लेकिन बजाना न सीखा। और अगर तुम्हारी जिंदगी से सिर्फ धुआं उठ रहा है, अंधेरा धुआं—कहीं कोई ज्योति नहीं, कहीं कोई प्रकाश नहीं—तो कसूर किसका है?

वो जबां—जो है शफक, फूल, सितारे साकी

तुम्हारे ओंठों पर ऐसी वाणी खिल सकती हैं—ऐसे वाणी के कमल, कि जिनमें फूलों का सौंदर्य हो, सितारों की रोशनी हो!

हम भी पा लेते हैं गर जिंदगी करना सीखें

मगर बहुत कम सौभाग्यशाली हैं जो जिंदगी करना सीखते हैं। लोग तो मान लेते हैं कि जन्म मिल गया तो सब मिल गया, अब क्या करना है! सांस लेना आ गया तो सब आ गया! भोजन कर लिया, दुकान चला ली, रात सो गए—सब हो गया!

कुछ भी नहीं हुआ। अवसर को गंवाया, कमाया कुछ भी नहीं। और इतना भरा है यहां! और तुम कूड़ा-कर्कट बटोर रहे हो और यहां हीरों की खदानें हैं! और यह सारा साम्राज्य तुम्हारा है, जिसका कहीं कोई अंत नहीं और कहीं कोई प्रारंभ नहीं! और तुम छोटे-छोटे टुकड़ों पर लड़े-मरे जा रहे हो!

बात बन जाती है तरकीब सुरों की साकी
हर तारसुर से नये रूप में ढल जाती है
फिर कोई बात नहीं रहती है बाकी साकी
और हर बात पे तरकीब बदल जाती है

ऐसे भी राज हैं जीने के, जहां बात बन जाती है। ऐसे भी राज हैं जीने के, कि फिर कोई और बात बाकी नहीं रह जाती। और उन सारे रहस्यों का रहस्य एक छोटी सी बात में छिपा है। आंख खोलो! आंख है, सूरज निकला है। पक्षी गीत गा रहे हैं। फूल खिले हैं। आकाश लाली से भरा है। बदलियां तैर रही हैं नीले गगन की छाती पर। बड़ा सौंदर्य प्रकट हुआ है। मगर तुम आंख बंद किए बैठे हो और अंधेरे में हो। और रो रहे हो, क्योंकि अंधेरे में हो। और अंधेरा केवल तुम्हारी आंख बंद करने के कारण है, अन्यथा कहीं भी अंधेरा नहीं है। यह सारा जगत ज्योतिर्मय है। यारी कहते हैं: जगमग प्रकाश...! यह सारा जगत ज्योतिस्वरूप है। इस जगत का कण-कण रोशनी से भरा है। मगर तुम हो कि अंधेरे में भटक रहे हो, कि

अंधेरे गली-कूचों में टकरा रहे हो। इधर गिरे, उधर गिरे। घुटने तुम्हारे लहूलुहान हैं। तुम्हारी दशा बड़ी दीन है। और जिम्मेवार कोई और नहीं। व्यंग्यों का व्यंग्य तो यह है कि जिम्मेवार तुम स्वयं हो। परमात्मा ने आंख दी है, मगर पलक खोलो या न खोलो, इसकी स्वतंत्रता भी तुम्हें दी है। तुम्हीं मालिक हो।

ऐसे जज्बों की उठानें भी यहीं हैं साकी
लफ्ज-ओ-मानी के तिलिस्मात से जो हैं आगे

ऐसी भावनाओं की तरंगें यहां उठती हैं, लहरें यहां उठती हैं, उत्तुंग लहरें यहां उठती हैं—जो शब्द और अर्थ के जादू से बहुत आगे हैं!

ऐसे जज्बों की उठानें भी यहीं हैं साकी
लफ्ज-ओ-मानी के तिलिस्मात से जो हैं आगे
उन खयालों की उड़ानें भी यहीं हैं साकी
यूं, कही अनकही हर बात से जो हैं आगे

जिन्हें कहा जा सकता है, उनसे तो आगे हैं; जिन्हें नहीं कहा जा सकता, उनसे भी आगे हैं—ऐसे अनुभवों के खजाने यहां हैं!

उन खयालों की उड़ानें भी यहीं हैं साकी

ऐसे उड़ सकते हो। ऐसा आकाश—ऐसा अनंत आकाश तुम्हारी चेतना का! ऐसा अपूर्व जीवन का अवसर!

उन खयालों की उड़ानें भी यहीं हैं साकी
यूं, कही अनकही हर बात से जो हैं आगे

मगर तुम कौड़ियां बटोरते हो, तुम कचरा बटोरते हो। तुम कचरे के ढेर पर अकड़ते हो। रोओगे, पछताओगे। जिस दिन मौत द्वार पर दस्तक देगी, उस दिन बहुत जार-जार रोओगे। लेकिन फिर किए कुछ हो भी न सकेगा। फिर बहुत देर हो गई। फिर याद आएगी—

ऐसे जज्बों की उठानें भी यहीं हैं साकी
लफ्ज-ओ-मानी के तिलिस्मात से जो हैं आगे
उन खयालों की उड़ानें भी यहीं हैं साकी
यूं, कही अनकही हर बात से जो हैं आगे
नाजुक एहसास की रंजूरियां सारी साकी
और तन्नाज तमन्ना के तकाजों की चुभन
नये अरमानों की वो लाग हठीली साकी
और वो सांझ-सवेरे की दुआओं का चलन

देखा है सुबह को प्रार्थना करते? देखा है सांझ को दुआ में झुके? देखा है चांद-तारों को आरती सजाए? नहीं देखा। नहीं देखी सुबह की प्रार्थना। नहीं देखी सांझ की दुआ। नहीं देखी चांद-तारों की उतरती आरतियां। फिर तुम कर क्या रहे हो? यहां तुम कर क्या रहे हो? यहां तुम्हारी उपलब्धि क्या है?

फूलों से उठती हुई पूजा देखी है? फूलों की सुगंध और क्या है—परमात्मा के चरणों में चढ़ी पूजा! पक्षियों के कंठों से उठते हुए गीत सुने हैं? वे गीत क्या हैं? वेदों का उच्चार!

वृक्षों से गुजरती हुई हवाओं की धुन सुनी है? वह धुन क्या है? कुरान की आयतें! लेकिन तुम आदमियों की लिखी किताबों में उलझे हो! तुम परमात्मा की किताब कब पढ़ोगे? और उसे पढ़ने की सारी क्षमता लेकर तुम आए हो।

ये सुरें रखती हैं ऐसे कई आलम साकी

यहां एक-एक स्वर में न मालूम कितनी दुनियाएं छिपी हैं।

ये सुरें रखती हैं ऐसे कई आलम साकी
वो भी हैं जो किसी तखलीक की हद में भी नहीं

ऐसे जगत भी इन स्वरों में छिपे हैं, जो अभी सृजन भी नहीं हुए हैं। ऐसे जगत भी इन सुरों में छिपे हैं, जो अभी पैदा होने को हैं, जो अभी बने भी नहीं हैं।

वो भी हैं जो किसी तखलीक की हद में भी नहीं

जो किसी सृष्टि की सीमा में नहीं है, उस असीम का अवतरण भी यहां हो रहा है, प्रतिपल हो रहा है—सूरज की किरणों में, हवाओं की धुनों में, झरनों की आवाजों में।

हैं वो पहनाई लचकती हुई सरगम साकी
वुसअतें जिसकी अजल क्या हैं अबद में भी नहीं

एक-एक छोटा स्वर जीवन का, ओंकार का नाद है। और उसमें ऐसे राज और ऐसी गहराइयां हैं, कि न तो अनादि काल में कभी थीं, न कभी होंगी। न तो पीछे कभी थीं और न आगे कभी होंगी। न आदि में, न अंत में! सारी सीमाओं का अतिक्रमण कर जाएं, ऐसे रहस्य तुम्हारे द्वार पर प्रतिपल दस्तक दे रहे हैं। मगर तुम जागो तब। तुम आंख खोलो तब।

और ध्यान रखना, अंधे तुम नहीं हो। परमात्मा ने अंधा किसी को भी पैदा नहीं किया है। चाहे शरीर की आंखें न भी हों, तो भी तुम अंधे नहीं हो। आध्यात्मिक अर्थों में अंधा आदमी होता ही नहीं। सिर्फ आंख बंद किए आदमी होते हैं। वे जो आंख बंद किए होते हैं, उन्हीं को अंधा कहा जाता है।

आंधरे को हाथीं हरि, हाथ जाको जैसो आयो।
बूझो जिन जैसो, तिन तैसोई बतायो है।।

बड़े प्यारे वचन हैं आज के। यारी कहते हैं: भगवान क्या है? हरि क्या है?

आंधरे को हाथीं!

कहानी तो तुमने सुनी है पंचतंत्र की, कि पांच अंधे हाथी को देखने गए। हाथी कभी देखा न था, सुना था। हाथी के संबंध में खूब सुना था। और जब गांव में हाथी आया, तो अंधे अपने को न रोक सके। ऐसे ही तुमने परमात्मा के संबंध में सुना है और परमात्मा गांव में आया हुआ है। लेकिन उन अंधों ने तो कम से कम इतनी भी कोशिश की थी कि गए थे और परमात्मा को टटोला था। तुमने उतना भी नहीं किया है। और परमात्मा सदा गांव में आया हुआ है। उसी का गांव है! यहीं वह बसा है। यह उसी की बस्ती है। कहीं और जाने का उसे उपाय भी नहीं है। यहीं है, अभी है!

वे अंधे तुमसे बेहतर थे! वे पंचतंत्र के अंधे तुमसे कम अंधे थे। उनकी बाहर की ही फूटी थीं, तुम्हारी भीतर की भी बंद हैं। गांव में हाथी आया था। सुनी थी बहुत बातें हाथी के संबंध में। आज आया था तो पांचों अंधे देखने गए। मित्र थे; अंधे ही अंधों के मित्र होते हैं।

अंधे आंख वालों से दोस्ती करते भी नहीं। अंधे तो आंख वालों से बचते हैं। अंधे तो यह मानना ही नहीं चाहते कि कोई आंख वाला भी है। क्योंकि आंख वाले को मानने का दूसरा अर्थ होता है कि मैं अंधा हूं। और यह चित्त को चोट पहुंचाता है। इससे अहंकार को बड़ी पीड़ा होती है। कौन मानना चाहता है कि मैं अंधा हूं! इसलिए अंधे को भी हम अंधा नहीं कहते, कहते हैं—सूरदास जी। क्योंकि अंधे को भी अंधा कहो तो नाराज हो जाएगा। शिष्टाचार की किताबें कहती हैं कि अंधे को भी अंधा मत कहना। माना कि अंधा है, मगर अंधा मत कहना। क्योंकि अंधा कहा तो नाराज हो जाएगा। तो देखते हो, अंधे के लिए हमने प्यारा शब्द खोज लिया है—सूरदास!

अंधे राजी नहीं होते आंख वालों के साथ उठने-बैठने को। और जो अंधा राजी हो जाता है, अंधा नहीं रह जाता। खुली आंखों के साथ जुड़ जाना, आंख के खुल जाने के लिए पहला कदम है।

तो पांचों अंधे दोस्त थे। अंधे ही अंधों के दोस्त होते हैं। अंधे ही अंधों को चला रहे हैं। अंधे ही अंधों के नेता हैं, अंधे ही अंधों के गुरु हैं, पंडित हैं, पुरोहित हैं। नानक ने कहा है: अंधा अंधा ठेलिया! बस, अंधे अंधों को ठेल रहे हैं! अंधे अंधों से बिलकुल राजी हैं, क्योंकि एक जैसे हैं। अहंकार को चोट नहीं लगती। जीसस को फांसी पर लटका देते हैं। सुकरात को जहर पिला देते हैं। मंसूर के हाथ-पैर काट देते हैं। अंधे आंख वालों को बर्दाश्त नहीं करते। महावीर के कानों में सलाखें ठोक दीं। बुद्ध को मार डालने की बहुत चेष्टाएं कीं। अंधे आंख वालों को बर्दाश्त नहीं करते। अंधों को बड़ी पीड़ा होती है कि कोई आंख वाला है। यह मानने में पीड़ा होती है कि कोई आंख वाला है। क्योंकि आंख वाला है, तो मैं अंधा हूं। अगर आंख वाला कोई भी नहीं, तो फिर अंधे होने का सवाल ही नहीं उठता।

वे पांचों अंधे दोस्त थे। अंधों की भीड़ें हैं। अंधे अकेले नहीं होते। अंधे हमेशा भीड़ में होते हैं। अंधे अकेले खड़े ही नहीं हो सकते, क्योंकि अकेले में उन्हें डर लगता है। अकेला तो आंख वाला खड़ा हो सकता है। आंख वाले को सहारे की जरूरत भी नहीं है। आंख वाले को किसी भीड़ का हिस्सा बनने का कोई कारण भी नहीं है। आंख वाला न तो हिंदू होता है, न मुसलमान होता है, न ईसाई होता है। आंख वाला तो बस सिर्फ आंख वाला होता है। आंख के कहीं कोई धर्म होते हैं? कोई विशेषण होते हैं?

दुनिया में दो ही जातियां हैं: अंधों की और आंख वालों की। तीसरी कोई जाति नहीं है। और बाकी सब जातियां झूठी हैं। अंधे का लक्षण है: वह हमेशा भीड़ में होता है। हाथी भी आया था तो पांचों अंधे अलग-अलग नहीं गए। पांचों अंधों ने एक-दूसरे का हाथ पकड़ लिया, एक-दूसरे की लाठी पकड़ ली होगी—अंधा अंधा ठेलिया—चले! चले देखने हाथी को! गांव वाले हंसे भी होंगे। हाथी को कैसे देखोगे? देखने के लिए आंख चाहिए। हाथी का होना थोड़े ही काफी है।

मुझसे लोग आकर पूछते हैं, ईश्वर कहां है? कोई आकर नहीं पूछता कि मैं अंधा हूं, मुझे आंखें कैसे मिलें? पूछते हैं, ईश्वर कहां है? जैसे कि ईश्वर हो तो तुम देख ही लोगे! बुनियादी प्रश्न नहीं पूछते। और बुनियादी प्रश्न जो पूछता है, उसे कहीं ईश्वर को देखने नहीं जाना पड़ता। वह जहां है, वहीं आंख खोलते ही ईश्वर का साक्षात्कार होता है। क्योंकि ईश्वर

ने तुम्हें चारों तरफ से घेरा है। जैसे मछली को सागर ने चारों तरफ से घेरा है, ऐसे ईश्वर ने तुम्हें घेरा है। तुम मछली हो ईश्वर के सागर की।

सुनते हो न कबीर ने कहा है, कि मुझे बहुत हंसी आती है यह सुन कर कि मछली सागर में प्यासी है! कबीर कहते हैं, तुम्हें दुखी देख कर मुझे बहुत हंसी आती है। दया नहीं आती, हंसी आती है—मछली सागर में प्यासी है! आनंद के सागर में हो और दुखी हो! रोशनी के सागर में हो और अंधेरे में जी रहे हो! चारों तरफ परमात्मा बरस रहा है और तुम खाली के खाली हो! तुमने अपना घड़ा उलटा रख छोड़ा है।

अंधे हाथी को देखने गए, यह सवाल उन्होंने न उठाया कि हमारे पास आंख भी है या नहीं—जो कि बुनियादी सवाल था। हाथी का क्या करोगे? अगर आंख न होगी तो हाथी का क्या करोगे? मगर यही सभी अंधों की हालत है। वह पंचतंत्र की कथा सिर्फ बच्चों के लिए नहीं है, खयाल रखना। बच्चे पढ़ते हैं, बूढ़ों को समझनी चाहिए। स्कूलों में पढ़ाई जाती है; पहली, दूसरी, तीसरी कक्षा में वह कहानी पढ़ाई जाती है। वह कहानी पढ़ाई जानी चाहिए जब कोई विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण होने लगे, दीक्षांत के क्षण में। क्योंकि उस कहानी में बड़ा राज है। उस कहानी में तो सारे धर्मों का सार छिपा है।

पांचों अंधे देखने चले हाथी को। बड़े प्रसन्न थे। बड़ी उमंग में थे। जिंदगी भर की आशा, अपेक्षा पूरी होने के करीब थी। मगर एक बात सोचना ही भूल गए कि हम अंधे हैं, देखेंगे कैसे? पहुंच भी गए। हाथी को टटोला।

टटोलने और देखने में बड़ा फर्क है। क्योंकि कुछ चीजें तो टटोली ही नहीं जा सकतीं, सिर्फ देखी ही जा सकती हैं। अब जैसे तुम्हें रोशनी देखनी हो तो टटोल नहीं सकते। टटोलोगे तो क्या रोशनी हाथ लगेगी? टटोलने से पत्थर शायद हाथ लग जाए, मगर प्रकाश हाथ नहीं लगेगा। प्रकाश सूक्ष्म है, सूक्ष्मातिसूक्ष्म है।

तो हाथी तो बड़ा स्थूल था, हाथ लग गया। मगर परमात्मा तो प्रकाश है, हाथ भी न लगेगा। परमात्मा को टटोलोगे, कुछ का कुछ हाथ लग जाएगा। परमात्मा को छोड़ कर और कुछ भी हाथ आ जाएगा। परमात्मा तुम्हारी मुट्ठी में नहीं आ सकता। परमात्मा कोई वस्तु नहीं है, जिसे तुम पकड़ लो। फिर परमात्मा तो दूर, हाथी के साथ भी भूलें हो गईं! किसी ने सूंड़ पकड़ी। किसी ने पूंछ पकड़ी। किसी ने कान पकड़े। किसी ने पैर पकड़ा।

अंधे पूरे को नहीं देख सकते। टटोलने में अंश हाथ आता है। इस बात को समझ लो; यह बड़ा वैज्ञानिक सूत्र है। टटोलने में अंश हाथ आता है, देखने में पूर्ण हाथ आता है। अगर तुम परमात्मा को टटोलोगे तो अंश हाथ आएगा। जैसे वैज्ञानिक कहता है: सिर्फ पदार्थ है, और कुछ भी नहीं। यह अंश हाथ में आ गया। पदार्थ परमात्मा का अंश है। लेकिन पदार्थ परमात्मा नहीं है। जैसे मेरा पैर तुम्हारे हाथ में आ जाए। तो मेरा पैर मेरा पैर है, मगर मेरा पैर मैं नहीं हूं। मैं पैर से बड़ा हूं, ज्यादा हूं। परमात्मा में तो पदार्थ है, लेकिन परमात्मा बहुत बड़ा है, पदार्थ ही नहीं है। तुम परमात्मा और पदार्थ का तादात्म्य नहीं कर सकते।

लेकिन वैज्ञानिक अंधा है। उसके पास ध्यान की आंख नहीं है। उसके पास अंतसचक्षु नहीं है। टटोल रहा है। उस टटोलने को वह प्रयोग कहता है; प्रयोग से टटोलना ही होगा। योग से आंख खुलती है। प्रयोग बाहर की तरफ जाता है, योग भीतर की तरफ जाता है।

प्रयोग बहिर्यात्रा है, योग अंतर्यात्रा है। प्रयोग पदार्थ से जोड़ देगा, स्वयं से तोड़ देगा। योग स्वयं से जोड़ देता है। और जिसने स्वयं को जान लिया, उसने सब जान लिया। क्योंकि स्वयं को जानने में खुलती है आंख और आंख खुलती है तो पूर्ण प्रकट हो जाता है।

काश, उन अंधों में से किसी की आंख खुल जाती तो पूर्ण प्रकट हो जाता या नहीं! भला अंधा पूंछ पकड़े होता, अगर आंख खुल जाती तो तत्क्षण पूरा हाथी प्रकट हो जाता। जो अंधा कान पकड़े था, और कह रहा था कि हाथी सूप की तरह होता है। जिसमें स्त्रियां अनाज साफ करती हैं, ऐसे सूप की भांति। अब हाथी का कान सूप जैसा लगा! और जो अंधा पैर पकड़े था, उसने कहा, मंदिरों के जैसे स्तंभ होते हैं, ऐसा हाथी है। लेकिन काश, पैर को पकड़े हुए आदमी की आंख खुल जाती, तो तत्क्षण, पकड़े तो पैर होता, लेकिन पूरा हाथी दिखाई पड़ जाता! वही आंख की कला है।

आंख के सामने पूर्ण प्रकट हो जाता है। हाथ की सीमा है, आंख की सीमा नहीं है। कान की सीमा है, आंख की सीमा नहीं है। आंख असीम को भी आत्मसात कर लेती है। इसलिए हमने जानने वालों को आंख वाला कहा, द्रष्टा कहा। और जानने की कला को दर्शन कहा। और जानने की विधि को अंतर्दृष्टि कहा। ये सब शब्द आंख से बने हैं। और ऐसा नहीं है कि भारत में ही ऐसा है; दुनिया में जितने भी शब्द बनाए गए हैं जानने वाले के लिए, वे आंख से बने हैं। जैसे अंग्रेजी में जानने वाले को कहते हैं—सीअर, द्रष्टा। श्रोता नहीं कहते हैं। कान से नहीं बनाया शब्द। श्रोता नहीं कह सकते। कान की सीमा है। आंख में सारी इंद्रियां समाहित हैं। कान की सीमा है।

इसलिए कहते हैं: आंख की देखी बात मानना, कान की सुनी मत मानना। सुनी तो सुनी है, देखी देखी है। कबीर ने कहा है: देखा-देखी बात! जो देख ली हो, बस वही बात के योग्य बात है, तत्व की बात है। लिखा-पढ़ी की है नहीं, देखा-देखी बात! जो लिखने-पढ़ने में ही खो गए, वे खो गए। बस उनके हाथ में लगेगा अंश। और अंश के हाथ में लगते ही बड़ा खतरा पैदा होता है। क्योंकि जब अंश हाथ लग जाता है तो अहंकार दावे करता है पूर्ण के।

उन पांचों अंधों में विवाद छिड़ गया। और पांचों सच कहते थे, और फिर भी पांचों झूठ थे। यह कहानी बड़ी प्यारी है। यह कहानी तो सारे दर्शनशास्त्र, सारे धर्मशास्त्र का निचोड़ है। पांचों ठीक कहते थे, और फिर भी गलत थे। जो कह रहा था कि हाथी मंदिर के स्तंभ की भांति है, गलत नहीं कह रहा था। उसका अनुभव आंशिक था। लेकिन अहंकार आंशिक अनुभव को पूर्ण बना लेता है। जरा सी बात उसके हाथ में आ जाए, तो फिर बाकी अनुमान कर लेता है। और अनुमान भ्रांत होते हैं।

उनमें विवाद छिड़ गया। और अहंकार सदा विवादी है। वे पांचों लड़ने लगे। लड़ाई अहंकार में इस बात की नहीं होती कि सत्य क्या है? लड़ाई इस बात की होती है—किसकी बात सत्य है?

और उन अंधों को क्षमा करना होगा, क्योंकि आखिर अंधे थे। जितना अनुभव किया था, उतना ही तो बेचारे कह सकते थे। सबकी अपनी-अपनी दृष्टि थी। जितनी दृष्टि थी, उतना ही सत्य था उनका। अगर कोई भूल थी तो इतनी ही थी कि उस सत्य को वे पूर्ण सत्य होने का दावा कर रहे थे।

महावीर से कोई पूछता था : ईश्वर है? तो वे जो उत्तर देते थे, बहुत चौंकाने वाला होता था; वह आंख वाले आदमी का उत्तर था, चौंकाने वाला उत्तर था। तुम भी बहुत चौंक जाते, अगर महावीर से पूछते—ईश्वर है? तो महावीर कहते : हां है; नहीं है; है भी, नहीं भी है; है भी, नहीं भी है और अवक्तव्य है। ऐसे वे सात वक्तव्य देते एकदम। तुम तो घबड़ा ही गए होते। क्योंकि तुम सोचते हो या तो ईश्वर है या नहीं है। बस, बात खत्म हो गई, दो में उत्तर हो जाना चाहिए। लेकिन महावीर कहते : पहली बात—स्यात है; दूसरी बात—स्यात नहीं है; तीसरी बात—स्यात है भी और नहीं भी है; चौथी बात—स्यात है, स्यात नहीं है और अवक्तव्य है, कहा नहीं जा सकता। इस तरह सात भंगों में उत्तर देते। क्यों?

महावीर आंख वाले हैं। उन्होंने सत्य देखा है। उसके सब पहलू देखे हैं। कान भी छुआ है, सूंड़ भी छुई है, पैर भी छुए हैं, पूंछ भी छुई है और सारे हाथी को देखा है, पूरे हाथी को देखा है। अगर आंख वाले के सामने इन पांचों अंधों ने निवेदन किया होता तो आंख वाला कहता : तुम भी ठीक, तुम भी ठीक, तुम भी ठीक; और तुम भी ठीक नहीं, तुम भी ठीक नहीं, तुम भी ठीक नहीं। तुम सब ठीक हो, और कोई भी ठीक नहीं है। तुम ठीक भी हो, और फिर भी हाथी के संबंध में तुम्हारा वक्तव्य हो नहीं पाया, अवक्तव्य है। तुमने आंशिक को पूर्ण समझ लिया, बस यही तुम्हारी भूल हो गई है।

जैसा उन पांचों अंधों में गहन विवाद छिड़ गया, वैसे ही तुम्हारे तथाकथित दार्शनिकों में सदियों-सदियों से विवाद छिड़ा है। कोई निर्णय नहीं होता। निर्णय हो भी नहीं सकता। पांचों अंधे अगर विवाद करेंगे, क्या तुम सोचते हो, कभी भी ऐसी घड़ी आएगी निर्णायक, जब निर्णय हो जाएगा? पांचों अंधे कभी ऐसी स्थिति में आ जाएंगे क्या कि तय हो जाए कि हाथी क्या है? अनंत-अनंत काल में भी यह नहीं हो सकता। हां, एक ही उपाय है तय करने का कि एकाध अंधा दुष्ट हो, तलवार पा जाए और चारों अंधों को डरा दे कि गर्दन काट दूंगा! या तो मेरी मानो या गर्दन खो दो! तो शायद बाकी चार अंधे कहें कि ठीक है भाई, तू जो कहता है वही ठीक है। हमें भी दीक्षित कर ले अपने सत्य में।

यही तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरु कर रहे हैं। जो बात तर्क से तय नहीं हो पाती, उसको तलवार से तय कर रहे हैं! हिंदू मुसलमानों को काट देते हैं, मुसलमान हिंदुओं को काट देते हैं। यह कोई बात हुई? सिर फोड़ कर कहीं कोई तर्क होते हैं? सिर काट कर कहीं कोई तर्क होते हैं? ये कोई बुद्धिमानों के लक्षण हुए? अगर ये बुद्धिमानों के लक्षण हैं, तो किनको बुद्धू कहोगे?

जहां तर्क हार जाता है, वहां लोग लट्ठ उठा लेते हैं। जहां तर्क हार जाता है, जहां तर्क से कुछ रास्ता नहीं निकलता, वहां एक-दूसरे की गर्दन काटने लगते हैं। मनुष्य-जाति के नाम पर जो बड़े से बड़े कलंक लगे हैं, उनमें यह सबसे बड़ा कलंक है, कि हमने अपने सत्यों को न तो देखा है, न जाना है, मगर हम दावेदार हो गए हैं। और हम खतरनाक दावेदार हैं, क्योंकि हमारे हाथ में तलवारें हैं। फिर जिसकी बड़ी तलवार...जिसकी लाठी उसकी भैंस! अगर चार मुसलमान हिंदू को पकड़ लें, तो हो गया उसका खतना! और अगर चार हिंदू मुसलमान को पकड़ लें, तो पहना दिया जनेऊ! मगर यह कोई बात हुई? यह तो अति अमानवीय बात हुई।

मगर अंधों की दुनिया में यही होगा। आंख वालों की दुनिया में विवाद नहीं होगा। आंख वालों की दुनिया में विमर्ष तो हो सकता है, विवाद नहीं हो सकता। विचार तो हो सकता है, विवाद नहीं हो सकता। संवाद हो सकता है, विवाद नहीं हो सकता। आंख वालों की दुनिया में तलवारें न चलेंगी, लकड़ियां न उठेंगी, सिर न काटे जाएंगे। निवेदन होगा। सत्य का आग्रह नहीं होता, सिर्फ निवेदन होता है। ऐसा मैंने जाना; कह दिया, बात खत्म हो गई। किसी को रुचे, ठीक; न रुचे, ठीक। न कोई झगड़ा है, न कोई विवाद है।

बुद्धू सिर काट रहे हैं। और जिनको तुम बुद्धिमान कहते हो, वे भी सूक्ष्म अर्थों में बस माथापच्ची करते हैं। खूब ऊहापोह चलता है शास्त्रों में, किताबों में, विवाद चलता है। ऐसी किताबें पढ़नी हों तो हैं, जैसे दयानंद का सत्यार्थ प्रकाश। तो तुम्हें मिल जाएगी खूब बकवास, खूब व्यर्थ के तर्क-वितर्क, जिनका दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है! लेकिन अंधों की दुनिया में इस तरह की किताबें पूजी जाती हैं। क्योंकि एक-दूसरे का खंडन-मंडन चित्त को बड़ा सुख देता है—कि देखो, यह मारा मुसलमान को, चारों खाने चित्त कर दिया! यह मारा ईसाई को, चारों खाने चित्त कर दिया! यह मारा जैन को, चारों खाने चित्त कर दिया।

तुम सत्य को जानने की चेष्टा में कम संलग्न हो, लोगों को चित्त करने में ज्यादा संलग्न हो। अपने चित्त को जगाने की तो चिंता नहीं है, किस-किस को चित्त किया, इसकी चिंता में पड़े हो! यह दुनिया अंधों से भरी है।

आंधरे को हाथी हरि...

तुमने भगवान को अंधों का हाथी बना लिया। इससे ज्यादा और भगवान का क्या अपमान हो सकता था!

आंधरे को हाथी हरि, हाथ जाको जैसो आयो।
बूझो जिन जैसो, तिन तैसोई बतायो है।।

जो भी हाथ लग गया जिसके। नहीं भूत लगा तो भागते भूत की लंगोटी ही भली! जो हाथ लग गया जिसको, उसी को पकड़ लिया जोर से, उसी की पूजा शुरू हो गई! और आग्रह है कि यही सत्य है। केवल मात्र यही सत्य है, और सब शेष असत्य है। मार्ग मिलेगा तो इससे, द्वार मिलेगा तो इससे। बाकी सब भटकेंगे, नरक में सड़ेंगे। प्रत्येक मस्त होकर सोच रहा है कि अपना मंदिर द्वार है, बाकी सब मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे द्वार नहीं हैं। और हरेक यही सोच रहा है, और चित्त में बड़ा प्रसन्न हो रहा है।

अगर द्वार है, तो सारे मंदिर, और सारी मस्जिदें, और सारे गुरुद्वारे उसके द्वार हैं। क्योंकि सभी के हाथ में अंश लगा है, लेकिन अंश भी पूर्ण की तरफ द्वार बन सकता है। अंश द्वार बन सकता है। अंश के सहारे धीरे-धीरे सरकते-सरकते तुम पूर्ण को उपलब्ध हो सकते हो। सूरज की एक किरण हाथ लग जाए तो उसी किरण के सहारे आदमी सूरज तक पहुंच सकता है। और पानी की एक बूंद का स्वाद लग जाए तो सागर की खोज हो जाएगी, आज नहीं कल, कल नहीं परसों, देर-अबेर, मगर हो जाएगी। पर लोग सागर की खोज में तो जाते नहीं; मेरी बूंद सागर है, तुम्हारी बूंद सागर नहीं, इस विवाद में ही समय व्यतीत हो जाता है।

बूझो जिन जैसो, तिन तैसोई बतायो है।

बूझने की बात नहीं है परमात्मा। यह कोई लाल बुझक्कड़ों का काम नहीं है। तुमने लाल

बुझक्कड़ की कहानियां तो सुनी ही होंगी। मगर वे सारी कहानियां तुम्हारे पंडितों-पुरोहितों, तुम्हारे तत्वज्ञों के संबंध में हैं। क्योंकि तुम्हारे पंडित-पुरोहितों से ज्यादा लाल बुझक्कड़ और कोई भी नहीं। देखा तो है ही नहीं, मगर बूझने चले!

ऐसा हुआ कि लाल बुझक्कड़ के गांव में चोरी हो गई। पुलिस इंस्पेक्टर आया, पुलिस के लोग आए। गांव में छान-बीन की, हरेक से पूछा। कोई सुराग न मिला। चोर कोई चिह्न छोड़ ही न गया था। न तो हाथ के चिह्न थे, न पैर के चिह्न थे। न कोई चीज छोड़ गया था। कोई उपाय ही न छोड़ गया था। बड़ी मुश्किल थी, कैसे पता लगे? गांव के लोगों ने कहा, अब तो एक ही उपाय है। हमारे गांव में, आपको पता है, लाल बुझक्कड़ हैं।

उन्होंने पूछा, लाल बुझक्कड़ यानी क्या?

उन्होंने कहा : जो हर चीज बूझ देते हैं। ऐसी कोई चीज ही नहीं है, जिसको वे बूझें न। चाहे उन्हें पता हो या न पता हो, मगर बूझ देते हैं।

एक बार ऐसा हुआ कि गांव से हाथी निकल गया था, लोगों ने कहा। लाल बुझक्कड़ ने हाथी नहीं देखा था। लोगों ने पूछा, ये किसके पैर हैं? सुबह पता चला लोगों को, जब सुबह लोग जगे, इतने बड़े पैरों के चिह्न किसी ने देखे नहीं थे। तो लाल बुझक्कड़ ने सिर में हाथ लगाया, थोड़ी देर ध्यानमग्न रहे और कहा कि ऐसा लगता है कि कोई हरिण पैर में चक्की बांध कर कूदा है। बूझ दिया! उन्हीं से मिलें आप, लोगों ने कहा।

कोई और उपाय नहीं था। जंचा तो नहीं इंस्पेक्टर को कि यह लाल बुझक्कड़ किसी काम आएगा। मगर अब कोई और रास्ता मिलता नहीं; सोचा कि मिल लो, शायद कोई उपाय बन जाए। लाल बुझक्कड़ को पूछा। लाल बुझक्कड़ ने कहा कि बताऊंगा, लेकिन बिलकुल एकांत में। और बताऊंगा इस शर्त के साथ कि जब चोर पकड़ा जाए, तो मेरा नाम न बताया जाए। इंस्पेक्टर को आशा बंधी कि यह आदमी तो बिलकुल ठीक ही सवाल उठा रहा है। उसने आश्वासन दिया कि नहीं, तुम्हारा कोई नाम बताया नहीं जाएगा, तुम्हें कोई हानि नहीं होगी। पुलिस तुम्हारी रक्षा करेगी।

लाल बुझक्कड़ ले गया इंस्पेक्टर को एकांत में, दूर-दूर नदी के किनारे। काफी चलाया। उसने बार-बार कहा कि अब यहां कोई भी नहीं है, पशु-पक्षी तक नहीं हैं, अब तो तुम बता दो! कि जरा और, एक गुफा में ले गया अंधेरे में। वहां जाकर कान में धीरे से फुसफुसाया, कि तुम पक्की मानो, किसी चोर ने चोरी की है।

सिर ठोंक लिया होगा इंस्पेक्टर ने, यह कौन नहीं कह सकता था—किसी चोर ने चोरी की है! इसमें क्या बूझना है? यह तो साफ ही है।

मगर सब बूझना इसी तरह का है—किसी चोर ने चोरी की है! परमात्मा के संबंध में लोग बूझ रहे हैं। क्या बूझोगे? अंधा अगर प्रकाश के संबंध में बूझेगा तो क्या बूझेगा?

रामकृष्ण कहते थे : एक अंधे आदमी को निमंत्रण दिया मित्रों ने, खीर बनाई। ऐसी खीर उस अंधे ने कभी खाई न थी। था विचारशील। अंधे अब करें भी क्या बैठे-बैठे! कुछ दिखाई तो पड़ता नहीं, तो बूझते हैं। देखने की जो कमी रह गई है, वे बूझने से पूरी करते हैं। अंधे ने पूछा कि भई, बड़ी स्वादिष्ट चीज है, क्या है यह? मुझे कोई बताओ, समझाओ। मुझे कुछ दिखाई तो पड़ता नहीं।

पास में एक पंडित थे गांव के। उन्होंने अपने पांडित्य को दिखाया, उन्होंने कहा कि खीर है।

अंधे ने कहाः खीर से क्या हल होगा? इस शब्द से मुझे कुछ समझ में नहीं आता। कुछ वर्णन करो जो मेरी पकड़ में आए।

तो पंडित ने कहा कि सफेद है, बिलकुल सफेद है।

अंधे ने कहा कि तुम और मुश्किलें खड़ी कर रहे हो। पहले तो खीर क्या? अब सफेदी क्या?

पंडित भी हारने वाले नहीं थे। पंडित हारते ही नहीं। पंडित ने कहा कि बिलकुल बगुले जैसी सफेद है। बगुला देखा है?

वह तो कहानी पुरानी है, नहीं तो वे कहते कि बिलकुल नेता जी के वस्त्र देखे हैं? शुद्ध खादी! कहानी पुरानी है। अभी लिखी जाए तो इतना फर्क करना पड़ेगा। बगुले की कौन जगह रही! शुद्ध खादी के वस्त्र देखे हैं? और बगुलों में और नेताजीओं में तालमेल भी बहुत है। एक ही जैसे हैं! बगुला ऊपर-ऊपर सफेद है, भीतर-भीतर बहुत काला है। और ऊपर-ऊपर तो कैसा ध्यानमग्न खड़ा हो जाता है और भीतर-भीतर मछलियों की आकांक्षा है, और मछलियों की राह देखता है! बगुले जैसा योगी खोजना मुश्किल है, बिलकुल एक टांग पर खड़ा हो जाता है! हिलता ही डुलता नहीं। हिले-डुले तो चूक ही जाए मछली। क्योंकि हिले-डुले तो मछली को शक हो जाए, पानी में तरंग उठ जाए। ऐसा खड़ा रहता है कि पानी में तरंग ही नहीं उठती। मछली को पता चलता है कोई है ही नहीं।

तो उसने कहाः बगुला देखा है कभी?

अंधे ने कहा कि अब मैं तुमसे कितनी बार कहूं कि मैं अंधा हूं! तुम पहेली सुलझा नहीं रहे हो, उलझा रहे हो। अब यह बगुला क्या है?

अब जरा पंडित को होश आया कि मैं यह क्या कर रहा हूं! जब खीर नहीं दिखाई पड़ती, सामने रखी खीर। चख रहा है अंधा और दिखाई नहीं पड़ती। मैं सफेदी की बात किया, फिर सफेदी नहीं बता सका तो बगुले का उदाहरण लाया। कुछ ऐसा करना पड़ेगा, जो अंधे को यहीं प्रत्यक्ष प्रमाण हो सके।

तो उस पंडित ने अपने हाथ को अंधे आदमी के सामने किया, और कहा कि मेरे हाथ पर हाथ फेरो। और हाथ को ऐसे मोड़ा जैसे बगुले की गर्दन मुड़ी हो। अंधे ने हाथ फेरा और कहा कि इससे क्या समझें? तो कहा कि यह बगुले की गर्दन ऐसी होती है। अंधे आदमी ने कहाः अब बूझ गई बात, अब मैं समझ गया कि खीर मुड़े हुए हाथ की भांति होती है।

मगर बूझने का यही नतीजा होगा। बूझना तो अंधेरे में टटोलना है। अंधा प्रकाश के संबंध में क्या बूझेगा? बहरा स्वरों के संबंध में क्या बूझेगा? जिसने प्रेम नहीं जाना, वह प्रेम के संबंध में क्या बूझेगा? और जिसने परमात्मा नहीं जाना, वह परमात्मा के संबंध में क्या बूझेगा? जानना होता है, बूझना नहीं होता। बूझने के सब उपाय व्यर्थ हैं, सब तर्क-सरणियां व्यर्थ हैं। देखना होता है।

बुद्ध इसलिए कहते हैं कि मैं कोई दार्शनिक नहीं हूं, मैं वैद्य हूं, चिकित्सक हूं। मैं तुम्हें प्रकाश के संबंध में न बताऊंगा, मैं तुम्हारी आंख खोलने की औषधि देता हूं।

नानक ने भी कहा है कि मैं वैद्य हूं। ठीक कहा है। सार्थक बात कही है। सदगुरु वैद्य होता है। वह सिर्फ तुम्हारी आंख खोलने के उपाय बता देता है; या आंख पर जाली जम गई हो तो जाली काटने की औषधि दे देता है। योग, ध्यान, पूजा, प्रार्थना, सब औषधियां हैं—आंख पर लगी जाली कट जाए। तुम्हें झकझोर देता है कि तुम आंख खोल दो।

आंख है; बोझिल है। आंख पर तुमने ज्ञान की पर्तें जमा रखी हैं। सदगुरु ज्ञान छीन लेता है, ताकि आंखें हलकी हो जाएं; ताकि पलकों पर कोई बोझ न रह जाए; ताकि पलकें निर्बोझ होकर खुल जाएं।

सदगुरु तुमसे सब छीन लेता है जो बोझ है, ताकि निर्भार दशा में तुम अपने आप आंख खोल दो। फिर परमात्मा ही परमात्मा है। फिर उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

हलाके-वहमे-फिराक क्यों हैं, तुझे कुछ अपनी खबर नहीं है
तलाश जिसकी है, कब वो दिल में बरंगे-मौजे-गुहर नहीं है

यह वियोग की भ्रांति...सच, वियोग सिर्फ एक भ्रांति है। हम परमात्मा से कभी टूटे नहीं हैं। टूट सकते नहीं हैं। टूट जाएं तो जी सकते नहीं हैं। वियोग भ्रांति है। हम अभी भी जुड़े हैं। हम अब भी परमात्मा में हैं। मछली को सागर का पता हो या न हो, मछली सागर में है और सागर में ही हो सकती है। मछली सागर का ही अंग है। सागर में ही जन्मती है, सागर में ही जीती है, सागर में ही विदा हो जाती है, लीन हो जाती है।

हलाके-वहमे-फिराक क्यों हैं, तुझे कुछ अपनी खबर नहीं है

किसे खोजने चले हो? अपनी तुम्हें खबर नहीं है, और परमात्मा को खोजने चले हो! अपनी आंख खुली नहीं है, और प्रकाश को देखने चले हो!

हलाके-वहमे-फिराक क्यों हैं, तुझे कुछ अपनी खबर नहीं है
तलाश जिसकी है, कब वो दिल में बरंगे-मौजे-गुहर नहीं है

तू किस मोती की खोज में चला है? जिस मोती की खोज हो रही है, वह तुम्हारे भीतर पड़ा है। वह है तुम्हारी अंतर्दृष्टि का जागरण। वह है तुम्हारी अंतस चेतना का खुल जाना। वह है तुम्हारा अपने प्रति बोध से भर जाना।

हलाके-वहमे-फिराक क्यों हैं, तुझे कुछ अपनी खबर नहीं है
तलाश जिसकी है, कब वो दिल में बरंगे-मौजे-गुहर नहीं है
सहर की रानाइयों में गुम हो, शफक की रंगीनियों में खो जा
कलमरवे-होश से गुजर जा, वो जलवा मिन्नत-नजर नहीं है
बिना-ए-आशोबे-हश्र होकर, जिगर से मस्तानावार निकले
वो नाला है नंगे-दर्दमंदी, जो सर-ब-जैबि-असर नहीं है
उठी जो मीना से मौजे-सहबा, दिलों में डूबी सुरूर होकर
नजर में उभरी तो नूर होकर, नजर को लेकिन खबर नहीं है
वरक जमाने का ऐसा उलटा कि पुरतकल्लुफ थे जिनके बिस्तर
हुए हैं यूं खाक से बराबर कि खिश्त भी जेरे-सर नहीं है
जिया-ए-खुरशीदे-जर्रापरवर से गोशा-गोशा हुआ मुनव्वर
बस एक हम हैं वो तीरा-अख्तर कि जिनकी शब की सहर नहीं है

नाहक, अकारण तुमने अपनी ऐसी हालत बना ली है कि जिनकी सुबह होती ही नहीं कभी, रात ही रात चल रही है जन्मों-जन्मों से!

जिया-ए-खुरशीदे-जर्रापरवर...

वह तो कणों-कणों में मौजूद है। उसकी रोशनी तो कण-कण में छिपी हुई है। कण-कण उसका सूर्य है।

जिया-ए-खुरशीदे-जर्रापरवर से गोशा-गोशा हुआ मुनव्वर
बस एक हम हैं वो तीरा-अख्तर कि जिनकी शब की सहर नहीं है

एक हम हैं ऐसे अंधकारपूर्ण कि जिनकी रात की सुबह नहीं होती। मगर कौन जिम्मेवार है? अगर कोई और जिम्मेवार है, तब तो तुम कुछ भी न कर सकोगे। अगर कोई और जिम्मेवार है, तब तो धर्म व्यर्थ है, तब तो योग व्यर्थ है। क्योंकि तुम क्या कर सकोगे? धर्म और योग की सार्थकता है, क्योंकि तुम ही जिम्मेवार हो। सहर हो ही गई है, सुबह हो ही गई है। सुबह ही है। रात है ही नहीं। सिर्फ तुम्हारी बंद आंखों के कारण रात मालूम होती है।

उठी जो मीना से मौजे-सहबा, दिलों में डूबी सुरूर होकर
नजर में उभरी तो नूर होकर, नजर को लेकिन खबर नहीं है

तुम्हारी आंख में जो छिपा है, वह तुम्हारी आंख को नहीं दिखाई पड़ सकता है। उसकी कला सीखनी होगी। उसके लिए दर्पण बनाना होगा। अगर तुम्हें अपनी आंख देखनी हो तो दर्पण बनाना होगा, तो आंख देख सकोगे। हालांकि आंख और सब कुछ देख लेती है, यह मजा! यह विडंबना! आंख सब देख लेती है, सिर्फ अपने को छोड़ कर।

तुम सब देख लेते हो, सिर्फ अपने को छोड़ कर। तुम्हें आईना बनाना होगा। तुम्हें ध्यान का दर्पण बनाना होगा। उसमें तुम्हें अपनी आंख दिखाई पड़ेगी, अपने भीतर छिपे हुए आकाश का पहली दफा प्रतिबिंब मिलेगा। और बस, उसी क्षण से तुम अंधे नहीं हो। अंधे तुम कभी भी न थे। मगर उस क्षण तुम्हें पहचान होगी कि मैं न अंधा था, न अंधा हूं, न अंधा हो सकता हूं। बस आंख बंद किए बैठा था!

आंधरे को हाथी हरि, हाथ जाको जैसो आयो।
बूझो जिन जैसो, तिन तैसोई बतायो है।।

फिर लोगों को जैसा बूझा, उन्होंने वैसा बता दिया। कितनी परमात्मा की प्रतिमाएं बनीं—और परमात्मा एक है! और कितने शास्त्र, और कितने वर्णन उसके—और परमात्मा एक है! और कोई उसे अल्लाह कहे, और कोई उसे राम कहे, और कोई उसे कोई और नाम दे—और परमात्मा एक है! जिन्हें जैसा बूझा, उन्होंने वैसा कहा।

आंख वालों ने कहा नहीं है। चौंकोगे तुम! आंख वालों ने परमात्मा के संबंध में कुछ नहीं कहा है। फिर आंख वालों ने क्या कहा है? आंख वालों ने कहा है—आंख कैसे खोलो। इसकी विधि दी है। आंख वालों ने प्रकाश के संबंध में कुछ नहीं कहा। कहा नहीं जा सकता। शब्दों के अतीत है। अनिर्वचनीय है। अवर्णनीय है। लेकिन आंख कैसे खोली जा सकती है, इसकी विधि कही जा सकती है। पतंजलि ने इतना अदभुत शास्त्र लिखा, योगसूत्र, लेकिन परमात्मा का कोई वर्णन नहीं है। सारे सूत्र, आंख खोलने की व्यवस्था हैं। जानोगे तो तुम...और जब जानोगे तभी जानोगे। कोई दूसरा तुम्हें जना न सकेगा।

सत्य दिए नहीं जा सकते। उनका कोई हस्तांतरण नहीं होता है। सत्य तो तुम्हें ही जानना होगा। निज अनुभव होगा। लेकिन जिन्होंने जाना है, वे यह कह सकते हैं कि कैसे उन्होंने जाना। क्या जाना, नहीं कह सकते। मगर कैसे जाना, जरूर कह सकते हैं। किन रास्तों से चल कर जाना, जरूर कह सकते हैं, मगर मंजिल की कोई बात नहीं कही जा सकती। सब बातें रास्तों की हैं।

धर्म का अर्थ होता है: मार्ग। बुद्ध ने कहा है: बुद्धपुरुष मार्ग बता देते हैं। चलना तुम्हारी मर्जी है। चलोगे तो एक दिन पहुंच जाओगे। और जब पहुंच जाओगे तो जान लोगे।

मैं खिड़की पर खड़ा हूं, मुझे सूरज दिखाई पड़ रहा है। सुबह हो गई है। तुम आंख बंद किए बिस्तर में पड़े हो। ज्यादा दूर खिड़की से तुम भी नहीं। तुम पूछते हो कि वहीं से आप कुछ कहें। कुछ कह दें सूरज के संबंध में, मुझे क्यों उठाते हैं? अब आप तो देख ही रहे हैं। आपने देख लिया तो मैंने देख लिया। वहीं से कुछ कह दें। मैं पड़ा-पड़ा बिस्तर में सुन लूंगा और समझ लूंगा।

मगर क्या कहा जा सकता है सूरज के संबंध में? और शब्द सूरज की रोशनी से रोशन न होंगे। और शब्दों में पक्षियों की चहचहाहट भी न होगी। और शब्दों में सुबह-सुबह खिले फूलों के रंग और सुवास भी न होगी। और शब्दों में पत्तों से सरकती, ढरकती ओस की ताजगी भी न होगी। और शब्दों में आकाश का नीला विस्तार भी न होगा। और शब्दों में आकाश में डोलते शुभ्र बादलों की छाया भी न पड़ेगी। क्या कहें? कह देंगे सूर्यास्त या सूर्योदय, पर इससे क्या हल होगा?

नहीं, सूर्य के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लेकिन तुम्हें चेताया जा सकता है कि उठ आओ, सुबह हो गई। जागो! निकल आओ बिस्तर के बाहर। बहुत दिन ओढ़े रहे यह कंबल अंधेरे का। आ जाओ खिड़की के पास, तुम भी देखो। तुम भी देखोगे तो ही जानोगे।

खाना-ए-दिल में दाग जल न सका
इसमें यह भी चराग जल न सका
बर्क था इज्तिराबे-दिल लेकिन
आरजूओं का बाग जल न सका
न हुए वो शरीके-सोजे-निहां
दिल से दिल का चराग जल न सका
सोजे-उल्फत में होश की बातें
जल गया दिल, दिमाग जल न सका
दिले-मायूस में उम्मीद कहां
बुझके फिर यह चराग जल न सका
सोज पाइंदा, गम भी पाइंदा
जलके भी दिल का दाग जल न सका
सर्द मेहरी भी उनकी रहमत थी
सीना-ए-दाग-दाग जल न सका

'अर्श' क्या तुझसे फैज महफिल को
तू मिसाले-चराग जल न सका

जब तक तुम भी एक दीये की तरह न जल उठो, जब तक तुम भी एक दीया न बन जाओ—तब तक तुम रोशनी से संबंध न जोड़ सकोगे। रोशनी ही रोशनी से संबंध जोड़ सकती है। अंधेरे और रोशनी को तुमने कहीं मिलते देखा है? अंधेरे और रोशनी का कोई मिलन नहीं होता। अंधेरे और रोशनी का कोई सह-अस्तित्व नहीं होता। अंधेरा है तो रोशनी नहीं, रोशनी है तो अंधेरा नहीं। रोशनी से रोशनी का मिलन होता है।

तुम अगर जाग जाओ, तो जागे हुए परमात्मा से संबंध हो जाए। वह सदा जागा है। वह कभी सोता नहीं। कृष्ण ने कहा है कि योगी, जब सारे भोगी सोते हैं, तब भी जागता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि योगी खड़ा रहता है रात भर। इसका इतना ही अर्थ है कि शरीर तो सोता है, मगर योगी भीतर नहीं सोता। भीतर निद्रा होती ही नहीं। भीतर आंख खुली है सो खुली रहती है। बाहर की आंखें बंद हो जाती हैं, खुल जाती हैं; भीतर की आंख खुली है तो खुली रहती है। उस भीतर की खुली आंख से ही परमात्मा का संबंध हो पाता है।

भीतर की आंख खुले तो समझना कि अब तुम अंधे न रहे। अब तुम्हारा संबंध परमात्मा से—आंधरे को हाथी हरि—ऐसा न रहा। अब तुम जो जान रहे हो, वह उधार नहीं है। किन्हीं ने बूझा है, किन्हीं लाल बुझक्कड़ों ने बूझा है, उनकी बुझान तुम नहीं ढो रहे हो। तुम्हारा अपना अनुभव है।

मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, जिन्होंने परमात्मा के संबंध में बड़ी-बड़ी किताबें लिखी हैं। और जब मैंने उनसे पूछा कि तुमने जाना है? तो वे कंप गए। इधर-उधर झांकने लगे, बगलें झांकने लगे। कहने लगे कि जाना तो नहीं है, मगर शास्त्रों का अध्ययन किया है। सरल है, शास्त्रों का अध्ययन करके और एक शास्त्र निर्मित कर देना कठिन नहीं है, कोई भी कर सकता है। लेकिन शिक्षित हो जाना ज्ञानी हो जाना नहीं है। और विद्वान हो जाना बुद्धिमान हो जाना नहीं है। शास्त्रज्ञ हो जाना द्रष्टा हो जाना नहीं है। फिर इन किताबों को लोग पढ़ते हैं—उनकी किताबें जिन्होंने खुद भी नहीं जाना है। अंधा अंधा ठेलिया, दोऊ कूप पड़ंत! फिर इन किताबों को लोग पढ़ते हैं। और इन किताबों के अनुसार लोग चलना भी शुरू कर देते हैं।

एक युवक को मेरे पास लाया गया श्रीलंका से। उसकी नींद खो गई थी। सब उपाय किए गए, नींद नहीं आती थी। सब दवाएं दी गईं, नींद नहीं आती थी। तीन वर्ष से नींद का कोई पता नहीं था। उसकी हालत तुम समझ सकते हो, कैसी विक्षिप्त! कैसी टूटी-फूटी! इतना उदास, इतना मलिन मैंने कोई व्यक्ति नहीं देखा! इतना हारा, इतना थका, इतना टूटा, इतना मुर्दा! तीन साल से जिसको सोने का विश्राम नहीं मिला। क्षण भर को जिसे सुषुप्ति की छाया नहीं मिली। जो क्षण भर को भी सुषुप्ति के स्रोत में नहीं डूबा और परमात्मा से नहीं जुड़ा। बेहोश ही सही, नींद की बेहोशी में भी जब तुम सुषुप्त हो जाते हो, स्वप्न खो जाते हैं, तो तुम परमात्मा से क्षण भर को जुड़ जाते हो। उसी जोड़ के कारण सुबह तुम अपने को ताजा पाते हो, नया पाते हो। पुनरुज्जीवित हो उठते हो। नवजीवन पाते हो। और जिस रात नींद न आए, एक रात नींद न आए, तो दूसरे दिन हारे-थके! तीन साल लंबा समय है!

मैंने उससे पूछा कि तू बौद्ध भिक्षु है, कहीं विपस्सना ध्यान तो नहीं कर रहा है?

उसने कहा: कर रहा हूं।

किसने तुझे सिखाया?

उसने कहा कि जिसने सिखाया है, विपस्सना ध्यान पर बड़ी किताबें लिखी हैं उन्होंने।

मैंने कहा: यह सवाल नहीं है, उन्होंने विपस्सना ध्यान कभी किया है?

उसने कहा: यह तो मैंने पूछा नहीं।

मैंने कहा: मैं तुझे कहता हूं कि उन्होंने विपस्सना ध्यान कभी नहीं किया होगा। क्योंकि जिस ढंग से तुझे करने को बताया है, वह तो खतरनाक है। उसमें नींद तो समाप्त हो ही जाएगी।

जिस व्यक्ति से विपस्सना ध्यान सीखा इस बौद्ध भिक्षु ने, उन्होंने इसे यह कहा ही नहीं कि रात में विपस्सना ध्यान मत करना, सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच ही ठीक है। अगर सूर्योदय और सूर्यास्त के अतिरिक्त विपस्सना ध्यान किया, रात में अगर विपस्सना ध्यान किया, तो कुछ लोगों की नींद सदा के लिए खो जाएगी, क्योंकि विपस्सना ध्यान जागरण की प्रक्रिया है। और जिससे उस व्यक्ति ने सीखा था विपस्सना ध्यान, उसने कहा था कि जितना बन सके, करो; जितना ज्यादा कर सको, करो; लाभ ही लाभ है।

लोभ में पड़ गया। जिसने यह कहा, उसे भी पता नहीं कि वह क्या कह रहा है! शास्त्रज्ञ होगा, स्वानुभव नहीं है। अब नींद आ नहीं सकती।

कोई दवा की जरूरत न पड़ी! मैंने कहा कि तीन महीने तक विपस्सना ध्यान बिलकुल बंद कर दो। फिर जब नींद पूरी तरह आने लगे तो विपस्सना ध्यान शुरू करना, लेकिन सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच। और कभी भी तीन-चार घंटे से ज्यादा न हो पाए। बस इतना पर्याप्त है। पर्याप्त से ज्यादा है।

सुस्वादु पौष्टिक भोजन भी अति में नहीं करना चाहिए। बुद्ध ने कहा है: अति पाप है; मध्य मार्ग है। ध्यान की भी अति नहीं होनी चाहिए। लेकिन यह तो कोई ध्यानी ही कहेगा। नहीं तो पता ही नहीं है कि अति के क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं।

दीया तुम्हारा जल सकता है—किसी सदगुरु से! और सदगुरु से अर्थ है—उसने जिसने जाना हो। ज्ञान का संग्रह नहीं, ज्ञान का स्त्रोत हो जो। सूचना मात्र न हो जिसके पास। शास्त्रों का उद्धरण ही न हो जिसके पास। जो स्वयं गवाह हो। जो साक्षी हो। जो कह सके अधिकार से कि जो मैं कह रहा हूं, मेरा अपना जाना है। उसका संग-साथ पकड़ लेना। उसके रंग में रंग जाना। तो जल्दी ही तुम्हारा हरि आंधरे का हाथी न रह जाएगा। तुम्हें अपना अनुभव आना शुरू हो जाएगा। और अनुभव मुक्तिदायी है।

टकाटोरीं दिन रैन, हिये हू के फूटे नैन।
आंधरे को आरसीं में कहां दरसायो है।।
टकाटोरीं दिन रैन...

बस लोग दिन-रात टटोल रहे हैं। जितना श्रम टटोलने में लगा रहे हैं, उससे बहुत कम श्रम से आंख खुल सकती है। मगर टटोलने की आदत हो गई है, टटोल रहे हैं! आंख खुल जाए तो टटोलना बंद हो जाता है।

एक अंधा आदमी जीसस के पास आया। कहानी प्रीतिकर है। ऐतिहासिक नहीं हैं ये कहानियां। ये प्रबोध कथाएं हैं। इतिहास से ज्यादा इनका मूल्य है। ये पुराण कथाएं हैं। इनमें सार है सदियों का। अनुभोक्ताओं के अमृत की छाप है।

एक अंधा आदमी जीसस के पास आया लकड़ी टेकते हुए। जीसस ने उसकी आंखों पर हाथ रखा—और उसकी आंखें ठीक हो गईं! उसने धन्यवाद दिया जीसस को और लकड़ी टेकता वापस जाने लगा। जीसस ने कहा : लकड़ी तो छोड़ जा भाई! अब लकड़ी किसलिए?

आंख नहीं थी तो लकड़ी की जरूरत थी, टटोलता था। लकड़ी काम की थी। लकड़ी ही अंधे की आंख है। उसी को खटखटा कर चलता है, तो दूसरों को भी पता रहता है कि अंधा आ रहा है, सम्हल कर चलो। उसी से टटोल कर देख लेता है कि आसपास दीवाल तो नहीं। उसी से राह खोजता है कि द्वार आ गया कि नहीं। उसी से सीढ़ी खोजता है। लकड़ी उसकी आंख है। अब अंधा जीवन भर लकड़ी से टटोल-टटोल कर चला। आंख भी ठीक हो गई आज उसकी तो भी पुरानी आदत! चला लकड़ी से टटोलते। जीसस ने कहा : भाई मेरे, लकड़ी तो छोड़ जा। अब लकड़ी किसलिए?

उस अंधे ने कहा : बिना लकड़ी के मैं कैसे जीऊंगा?

पुरानी आदत, जीवन भर का पुराना अनुभव। आंख तो अभी-अभी मिली है। अभी आंख का तो कोई अनुभव हुआ नहीं है। लकड़ी से पुराना संग-साथ है।

ऐसी ही दशा शिष्य की होती है। जब गुरु का हाथ शिष्य के सिर पर या आंख पर पड़ता है और आंख खुलती है, तो भी शिष्य अपनी किताबें, अपने शास्त्र, अपना धर्म, अपना मंदिर, अपनी पूजा-पत्री पकड़े रखता है, वह लकड़ी है! वह कहता है, अभी भी गणेश जी की पूजा करूंगा, अभी भी मंदिर जाऊंगा। अभी भी रोज सुबह बाइबिल पढ़ूंगा। अभी भी गायत्री का पाठ जारी रखूंगा। और क्षमा-योग्य है, क्योंकि अब तक उसने यही किया है। आज उसे आंख मिल गई है, इसका भी उसे पता नहीं है।

टकाटोरी दिन रैन...

जन्मों-जन्मों से दिन-रात हम टटोल रहे हैं। टटोलते रहे हैं। टटोलना हमारी आदत हो गई है, हमारा स्वभाव हो गया है।

...हिये हू के फूटे नैन।

और हमारे हृदय की आंखें फूट गई हैं। यह टकाटोरी ही चल रही है, टटोलना ही चल रहा है। हृदय की आंख ही नहीं खुली। हम तो हृदय से बच कर निकल गए हैं।

आदमी खोपड़ी में जी रहे हैं। हृदय का तो कुछ पता ही नहीं है। हृदय को तो लोग समझते हैं कि बस ठीक है, फेफड़ा है, फुफ्फस है, खून को शुद्ध करने का यंत्र है, और क्या है? हृदय उससे बहुत ज्यादा है। इस शारीरिक हृदय के पीछे ही तुम्हारा आत्मिक हृदय छिपा है। और जैसे विचार बिना मस्तिष्क के नहीं हो सकता, वैसे ही प्रेम बिना हृदय के नहीं हो सकता। हृदय की आंख का दूसरा नाम प्रेम है। जिसके भीतर प्रेम उमग आया, उसकी हृदय की खुल गई, उसकी हिये की खुल गई, उसकी हिये की आंख खुल गई।

और प्रेम ने ही परमात्मा को जाना है, और किसी ने नहीं। प्रेम की आंख से परमात्मा प्रकट होता है।

टकाटोरी दिन रैन...

टकाटोरी कहां चल रही है? खोपड़ी में! मस्तिष्क में विचार चल रहा है। लाल बुझक्कड़ बने लोग बैठे हैं, सोच रहे हैं—ईश्वर है या नहीं है? कुछ लाल बुझक्कड़ कहते हैं कि है, और कुछ लाल बुझक्कड़ कहते हैं कि नहीं है। मगर दोनों लाल बुझक्कड़ हैं। दोनों से सावधान! जो कह रहा है कि है, वह भी अनुमान लगा रहा है। अंधे को बड़ी दूर की सूझी! हैं अंधे, मगर बड़ी दूर की सूझ रही है उनको। परमात्मा है, इसके प्रमाण दे रहे हैं। कोई कह रहा है कि परमात्मा नहीं है, और प्रमाण दे रहा है उसके न होने के। तुम समझते हो ये दोनों विपरीत हैं एक-दूसरे के? ये दोनों बिलकुल विपरीत नहीं हैं। ये दोनों बिलकुल एक जैसे हैं। ये दोनों लाल बुझक्कड़ हैं। दोनों बूझ रहे हैं। न तो आस्तिक को पता है उसके होने का, न नास्तिक को पता है उसके न होने का।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं: न तो आस्तिकता में उलझना, न नास्तिकता में उलझना। दोनों अंधों की लकड़ियां हैं। दोनों के ढंग अलग-अलग होंगे, रंग अलग-अलग होंगे, मगर दोनों टटोल रहे हैं। तुम तो ज्ञाता बनना; न आस्तिक, न नास्तिक। तुम तो धार्मिक बनना; न आस्तिक, न नास्तिक। तुम मानना मत, जानना। तुम विश्वास में मत पड़ना, तुम श्रद्धा को उपलब्ध होना।

और ध्यान रखना, विश्वास होता है अंधे का, श्रद्धा होती है आंख वाले की। जिन्होंने जाना है, उनकी श्रद्धा होती है। और जिन्होंने सिर्फ माना है, उनके मानने में क्या रखा है! दो कौड़ी का, नपुंसक उनका मानना होता है! उनके मानने के पीछे ही संदेहों का जाल लगा रहता है, कतार बंधी रहती है।

तुम अपने भीतर देख लेना। तुमने अगर ईश्वर को मान लिया है, क्योंकि पिता मानते, माता मानती, परिवार मानता, पड़ोस के लोग मानते, तुम जिस घर में पैदा हुए, उस घर के लोग मानते, संस्कार है, तो तुमने भी मान लिया। फिर जरा देखना पीछे अपने, प्रश्नों की कतारें लगी हैं। संदेह खड़े हैं। दबाए रखो उनको, मगर दबाओगे कहां? जहां दबाओगे, वे और भी तुम्हारे गहरे अंतस में उतर जाएंगे दबाने से। तो ऊपर-ऊपर होगा विश्वास, भीतर-भीतर होगा संदेह। और भीतर असली चीज है। ऊपर-ऊपर संदेह हो तो चलेगा। भीतर होनी चाहिए श्रद्धा। मगर भीतर हो कैसे श्रद्धा? जबर्दस्ती कोई आरोपित तो नहीं कर सकता। अनुभव आए, तो ही श्रद्धा का जन्म होता है।

तुम न आस्तिक बनना, न नास्तिक। तुम तो अपनी हिये की आंख खोलो। तुम तो प्रेमी बनो। जो प्रेमी बन गया, वह आज नहीं कल धर्मी बन जाएगा। प्रेम का रूपांतरण ही धर्म है। और जिसने प्रेम सीखा, वह आज नहीं कल प्रार्थना में तल्लीन हो जाएगा। क्योंकि प्रेम के फूल की ही सुवास प्रार्थना है।

टकाटोरी दिन रैन, हिये हू के फूटे नैन।

हृदय की तो आंखें फूटी हैं और खोपड़ी में टकाटोरी चल रही है! सारी आस्तिकता-नास्तिकता तुम्हारे मस्तिष्क में है, विचारों में है।

धर्म का जन्म हृदय में होता है, मस्तिष्क में नहीं। धर्म का जन्म तुम्हारी गहराई में होता है। मस्तिष्क तो बिलकुल उथला है, सतही है।

करवटें वक्त की बेकार हुई जाती हैं
और भी दरप-ए-आजार हुई जाती हैं
किसके अन्फास में पिन्हां हैं बहारों के हुजूम
कोंपलें फूट के गुलजार हुई जाती हैं
गुत्थियां वलवले-शौक की सुलझें क्यों कर
जितनी खुलती हैं, पुरअसरार हुई जाती हैं
नित नया दौर, नई आस, नया बहलावा
गर्दिशें मेरी खरीदार हुई जाती हैं
हर तकाजे पे नया जाब्ता रहता है सवार
रूहें लफ्जों में गिरफ्तार हुई जाती हैं
शायद अब इश्क है नौमीदि-ए-जावेद का नाम
आंखें रोने की गुनहगार हुई जाती हैं
शायद अब अब्र के छंटने का गुमां बातिल है
सुब्हें हमरंगे-शबे-तार हुई जाती हैं

एक बात से सावधान रहना!

हर तकाजे पे नया जाब्ता रहता है सवार
रूहें लफ्जों में गिरफ्तार हुई जाती हैं

आत्माएं तुम्हारी किन्हीं लोहे के सींखचों में बंद नहीं हैं—लफ्जों में बंद हैं, शब्दों में बंद हैं। तुम्हारे पैरों में जंजीरें लोहे की नहीं हैं, शब्दों की हैं। तुम जिन पिंजड़ों में बंद हो, वे शास्त्रों के पिंजड़े हैं, सिद्धांतों के, तथाकथित विश्वासों के। और ऐसा भी नहीं है कि पिंजड़े सुंदर नहीं हैं। पिंजड़े सोने के भी हैं, हीरे-जवाहरात जड़े हैं, और बड़े सुंदर हैं! लफ्ज बड़े प्यारे भी होते हैं। सिद्धांत बड़े रोचक भी होते हैं। बड़ी सांत्वना भी देते हैं। मगर सांत्वनाओं से कोई सत्य तक नहीं पहुंचता।

हां, जो सत्य तक पहुंच जाता है, उसे परम सांत्वना मिलती है। संतोष से कोई सत्य तक नहीं पहुंचता, लेकिन जो सत्य तक पहुंच जाता है, उसके जीवन में संतोष ही संतोष की बरखा हो जाती है।

हर तकाजे पे नया जाब्ता रहता है सवार
रूहें लफ्जों में गिरफ्तार हुई जाती हैं
शायद अब इश्क है नौमीदि-ए-जावेद का नाम
आंखें रोने की गुनहगार हुई जाती हैं

और जो शब्दों में बंद हो गया, उसके लिए प्रेम एक निराशा हो जाती है।

शायद अब इश्क है नौमीदि-ए-जावेद का नाम

शायद प्रेम एक अनंत निराशा है, और कुछ भी नहीं। जो शब्दों में बंद हो गया, उसको ऐसा ही प्रतीत होगा कि प्रेम एक भुलावा है, एक वंचना है, एक भ्रम है।

शायद अब अब्र के छंटने का गुमां बातिल है

और तब लगने लगता है कि अब यह रात कटेगी, यह आशा रखनी व्यर्थ है। ये बादल छंटेंगे, यह आशा रखनी व्यर्थ है।

शायद अब अब्र के छंटने का गुमां बातिल हैं
सुब्हें हमरंगे-शबे-तार हुई जाती हैं

अब तो सुबह भी रात के जैसी अंधेरी हुई जाती है। जो शब्दों में बंद है, उसकी सुबह भी रात है; और जो शब्दों से मुक्त है, उसकी रात भी सुबह है। शब्दों के बोझ से तुम्हारी आंखें नहीं खुल पा रही हैं।

हटाओ शब्दों के जाल! निःशब्द को सीखो। क्योंकि निःशब्द को सीखा, शून्य को सीखा, कि तुम उतरे हृदय में। निःशब्द हृदय में ले जाने का सेतु है। शब्द मस्तिष्क में ले जाने का सेतु है। जितने शब्द सीख लोगे, उतने मस्तिष्क में अटक जाओगे। और जितने निःशब्द हो जाओगे, उतने हृदय में उतर जाओगे। और जो हृदय में पहुंचा, हिये की आंख खुल जाती है। प्रेम का फूल खिल जाता है। और उसी प्रेम के फूल में प्रार्थना है। और उसी प्रेम के फूल की अंतिम उड़ान परमात्मा है।

टकाटोरी दिन रैन, हिये हू के फूटे नैन।
आंधरे को आरसी में कहां दरसायो है।।

और अगर अंधे के सामने आईना भी कर दो तो क्या होगा, जब तक उसकी आंख न खुले! अंधे के सामने शास्त्र रखना, अंधे के सामने आईना रखना है। थोड़ा समझना, बात बड़ी बारीक है। बड़े सरल शब्दों में यारी ने कही है। ये सीधे-सादे लोग हैं। इनके शब्द बहुत सीधे-सादे हैं। पढ़ जाओ तो ऐसा लगे कि कुछ है ही नहीं, और कह दी हैं बातें ऐसी कि जो कहने में न आएं। ऐसी कठिन बातें ऐसी सरलता से कह दी हैं!

आंधरे को आरसी में कहां दरसायो है।

अंधे के सामने शास्त्र रख दो, कुरान रख दो, बाइबिल रख दो, गीता रख दो—आईना हैं ये—मगर अंधे को क्या दिखाई पड़ेगा? और अंधे ही लिए बैठे हैं गीता, कुरान, बाइबिल। रट रहे हैं। घोंट-घोंट कर पीए जा रहे हैं! कंठस्थ हो गए हैं शास्त्र उन्हें।

शास्त्र गलत नहीं हैं, खयाल रखना। जो मैं तुमसे कहता हूं बार-बार कि छोड़ दो शास्त्रों को, तो यह मत समझ लेना कि मैं शास्त्रों के विपरीत हूं। शास्त्रों के पक्ष में हूं, इसलिए कहता हूं कि छोड़ दो शास्त्रों को। मेरी बात को समझने की कोशिश करना। आईने को मत पकड़ो, आंख खोलो। आंख खुलते ही आईने तो बहुत मिल जाएंगे। आईनों से सारा जगत भरा है। आईना न भी मिला आंख वाले को, तो झील में झांक लेगा और अपनी शक्ल देख लेगा। आईना न मिला, किसी और की आंख में झांक लेगा और अपनी शक्ल देख लेगा। आईने ही आईने हैं; आंख है तो आईने ही आईने हैं! आंख नहीं तो आईनों का क्या होगा? घर भर लो आईनों से और आंख नहीं तो क्या होगा?

शास्त्र बहुमूल्य है, आंख हो तो। आंख वाले को शास्त्र में वह दिखाई पड़ता है जो है। और अंधे को तो केवल लफ्ज, सिद्धांत पकड़ में आते हैं, शब्द पकड़ में आते हैं। आंख वाला जब गीता में देखता है तो उसे वह दिखाई पड़ता है जो कृष्ण को दिखाई पड़ता था। और आंख वाला जब कुरान में देखता है तो उसे वह दिखाई पड़ता है जो मोहम्मद ने देखा

था। अंधा जब देखता है, तो कृष्ण का कहां पता? मोहम्मद का कहां पता? अंधा जब शब्दों को पकड़ता है तो उसके शब्दों के अर्थ भी अपने ही होते हैं।

आंधरे को हाथीं हरि, हाथ जाको जैसो आयो।
बूझो जिन जैसो, तिन तैसोई बतायो है ।।

वह शब्दों के अर्थ भी तो अपने ही करेगा!

बुद्ध से एक भिक्षु ने पूछा एक दिनः आप तो बोलते हैं, एक ही बात बोलते हैं; फिर सुनने वाले अलग-अलग कैसे समझ लेते हैं?

तो बुद्ध ने कहाः मैं तुझे कल की याद दिलाऊं। कल रात ऐसा हुआ, तू भी था। कल रात मुझे सुनने एक वेश्या भी आई थी, और एक चोर भी आया था।

बुद्ध रोज, रात्रि की अंतिम देशना के बाद अपने भिक्षुओं को कहते थे, कि अब जाओ, असली कार्य में लगो अब। असली कार्य था—ध्यान। अब रोज-रोज क्या कहना कि ध्यान में लगो। तो यह प्रतीक हो गया था बुद्ध का, कि बोलने के बाद वे कहते कि बस इतना काफी, अब जाओ असली कार्य में लगो। ऐसे भी रात बहुत हो गई।

तो बुद्ध ने कहाः कल भी मैंने यही कहा कि जाओ, बहुत रात हो गई ऐसे भी, अब अपने असली कार्य में लगो। तब तुम्हें पता है, और सारे भिक्षु ध्यान करने चले गए; चोर ने जब सुना मुझे कि जाओ, रात ऐसे भी बहुत हो गई, अब असली कार्य में लगो—तो वह बहुत चौंका! उसने कहा कि बुद्ध को कैसे पता चला कि मैं चोर हूं? यह तो खूब रही! मगर खूब चेताया, रात तो हो गई काफी! जाऊं, अपने काम में लगूं, असली काम में लगूं! सुन लिया शास्त्र, सुन लिया धर्म। आखिर रोटी-रोजी भी तो कमानी है।

धन्यवाद देकर बुद्ध को वह गया। बाहर के लोगों ने तो यही देखा होगा कि धन्यवाद दे रहा है, तो शायद ध्यान करने जा रहा है। यह तो बुद्ध ने देखा कि वह चोरी करने जा रहा है।

वेश्या ने सुना, तो उसने कहा कि अरे ठीक। मगर हद्द हो गई! इतने भिक्षुओं में, दस हजार भिक्षुओं में बुद्ध मेरी भी स्मृति रखते हैं—कि अब रात बहुत हो गई, असली काम में लगो। उठी वह भी, उसने धन्यवाद दिया बुद्ध को और कहा कि आप भी खूब हैं कि मेरा भी विस्मरण न किया! अब जाऊं, रात तो बहुत हो गई, असली काम में लगूं।

तो बुद्ध ने कहाः मैंने तो एक ही शब्द कहा था, एक से ही शब्द कहे थे। कोई ध्यान को गया, कोई चोरी को चला गया, कोई शरीर बेचने में लग गया। मेरा शब्द तो वही था, लेकिन अर्थ भिन्न-भिन्न हो गए।

अर्थ शब्दों में नहीं होते, अर्थ तो सुनने वाले शब्दों में डालते हैं। तुम गीता पढ़ोगे, तुम्हीं पढ़ोगे न! तुम गीता पढ़ोगे तो तुम अपने को ही पढ़ोगे न गीता में, और क्या पढ़ोगे? कृष्ण का अर्थ तो कैसे तुम्हें प्रकट होगा? वह तो अर्जुन को भी प्रकट नहीं हो रहा था, तुम्हें क्या खाक प्रकट होगा! वह तो अर्जुन को भी बड़ी देर लगी, बहुत देर लगी। बहुत माथापच्ची कृष्ण को करनी पड़ी, तब कहीं अंत में उसने कहा कि ठीक, कि मेरी शंकाओं का समाधान हुआ, कि मेरे भ्रम मिटे। अर्जुन को कुछ और सुनाई पड़ रहा होगा, कृष्ण कुछ और कह रहे थे। तो तुम...और अर्जुन तो सखा था, बचपन का सखा था। साथ-साथ खेले थे। एक-दूसरे से गहरी मैत्री थी। वह भी नहीं समझ पाया। तो तुम्हारा तो कृष्ण से क्या

नाता है? पांच हजार साल का फासला बीच में है। न तो अब वे शब्द रहे, न अब वे लोग रहे, न वह दुनिया रही। सब कुछ बदल गया। शब्दों के अर्थ बदल गए। शब्दों के प्रयोजन बदल गए। आदमी बदल गया। आदमी का मन बदल गया। आदमी के देखने-सोचने के ढंग बदल गए। अब तुम जब गीता पढ़ोगे, तो क्या तुम सोचते हो, तुम पढ़ लोगे वह जो कृष्ण ने कहा है? कृष्ण हुए बिना नहीं पढ़ सकोगे।

तुम्हारे हाथ में आईना है, मगर तुम अंधे हो। हां, आंख वाले होओगे तो आईने में देख लोगे अपने स्वरूप को। तो फिर गीता हो कि कुरान, कि बाइबिल हो कि धम्मपद, सब में तुम्हें अपना ही स्वरूप मिल जाएगा।

क्या तुम सोचते हो, आईने अलग-अलग ढंग के होते हैं तो चेहरे बदल जाते हैं? कोई आईना गोल है, कोई अंडाकार है, कोई चौखटा है; कोई भारत में बना है, कोई बेल्जियम में बना है, कोई कहीं बना है; किसी पर एक ढंग की फ्रेम जड़ी है, किसी पर दूसरे ढंग की फ्रेम जड़ी है। कितने तो भेद हैं! मगर चेहरा जब तुम देखोगे तो तुम्हारा ही है। जिसने जाना है, जो जागा है, जिसकी आंख खुली है, उसने सदा अपने को हर आईने में देख लिया है।

मैं तुमसे यह कहता हूं कि मैंने कुरान में भी अपने को पाया, और बाइबिल में भी अपने को पाया, और कृष्ण में भी, और जरथुस्त्र में भी, और महावीर में भी, और बुद्ध में भी, कबीर और नानक में, और अभी यारी में। यारी का आईना सामने रखा हूं, मगर पा तो अपने को ही रहा हूं, कह तो अपने को ही रहा हूं।

अंधे के हाथ में आईने का कोई मूल्य नहीं है, आंख वाले के हाथ में मूल्य है।

झूठी ही तसल्ली हो, कुछ दिल तो बहल जाए
धुंधली ही सही लेकिन इक शमअ तो जल जाए
उस मौज की टक्कर से साहिल भी लरजता है
कुछ रोज जो तूफां की आगोश में पल जाए
मजबूरि-ए-साकी भी ऐ तश्नालबो समझो
वाइज का यह मंशा है मैख्वारों में चल जाए
ऐ जलवा-ए-जानाना फिर ऐसी झलक दिखला
हसरत भी रहे बाकी, अरमां भी निकल जाए
इस वास्ते छेड़ा है परवानों का अफसाना
शायद तेरे कानों तक पैगामे-अमल जाए
मैखाना-ए-हस्ती में मैकश वही मैकश है
सम्हले तो बहक जाए, बहके तो सम्हल जाए
हमने तो 'फना' इतना मफ्हूमे-गजल समझा
खुद जिंदगी-ए-शाइर अशआर में ढल जाए

कवि तब तक कवि नहीं होता, जब तक उसकी जिंदगी कविता न हो जाए।

हमने तो 'फना' इतना मफ्हूमे-गजल समझा

खुद जिंदगी-ए-शाइर अशआर में ढल जाए

जब जिंदगी स्वयं एक काव्य होती है, तभी कोई कवि होता है। और जब जिंदगी स्वयं आंख होती है, तभी कोई दार्शनिक होता है। और जब जिंदगी एक अनुभव होती है, तभी और केवल तभी, तुम्हारे हाथ में शास्त्रों के अर्थ खुलने शुरू होते हैं। फिर शास्त्र तुम्हारी गवाही हो जाते हैं और तुम शास्त्रों की गवाही हो जाते हो। फिर है मजा, फिर खूब मजा है। फिर ऐसा मजा है कि जिस पर आज तुम्हें भरोसा भी न आ सके।

मैंखाना-ए-हस्ती में मैंकश वही मैंकश हैं
सम्हले तो बहक जाए, बहके तो सम्हल जाए

फिर बड़ा मजा है। एक तरफ मस्ती छाने लगती है और एक तरफ होश जगने लगता है। फिर शास्त्रों को पढ़ कर डोलने लगती है तबीयत, मौज से भर जाती है, नाच उठ आता है। और साथ-साथ एक आत्म-स्मरण, एक स्वस्फूर्त स्मरण। एक ही साथ विरोधाभास घटता है। एक तरफ ऐसी मदमस्ती है कि दुनिया भूल जाती है और एक तरफ ऐसी याद उठती है परमात्मा की कि बस उसकी याद ही याद बिखर जाती है। मगर आंख तुम्हारी खुले, तब कहीं यह घटना घटे। फिर मंदिर मंदिर नहीं रहते, मधुशालाएं हो जाते हैं। फिर शास्त्र शास्त्र नहीं रहते, शराब हो जाते हैं—असली शराब, जो कृष्णों ने ढाली, बुद्धों ने ढाली। असली शराब—जो अंगूरों से नहीं ढलती, आत्माओं से ढलती है। मगर पहली शर्त है : तुम्हारी आंख खुले। छोटी सी भी शमा हो तो भी काम हो जाए।

झूठी ही तसल्ली हो, कुछ दिल तो बहल जाए
धुंधली ही सही लेकिन इक शमअ तो जल जाए

अपनी हो, धुंधली ही सही। छोटी सी लपट हो तो भी चल जाएगा। जरा सी आंख खुले तो भी दर्शन शुरू हो जाएंगे। जरा सी पलक खुले, नीमबाज आंख हो, आधी खुली आंख हो, तो भी काम हो जाएगा। मगर आंख खुलनी चाहिए।

मूल की खबरि नाहिं, जासो यह भयो मुलक।
वाको बिसारि भोंदू डारेन अरुझायो है।।

कहते हैं यारी : मूल की खबरि नाहिं! अपने स्रोत का पता नहीं है। अपने स्वभाव का पता नहीं है। मैं कौन हूं, इस छोटे से प्रश्न का भी उत्तर नहीं खोज पाए हो। और शास्त्रों में चले गए! और बड़े सिद्धांतवादी हो गए!

मूल की खबरि नाहिं, जासो यह भयो मुलक।

इसलिए यह इतना फैलाव कर लिया है फिजूल का। संसार से अर्थ मत समझना यह संसार जो चारों तरफ फैला है—वृक्षों का, चांद-तारों का, यह जो आकाश है, इसका अर्थ नहीं है संसार से। संसार से अर्थ है तुम्हारी कामनाओं का, वासनाओं का, तृष्णाओं का, जो सपनों का तुमने अपना जाल फैला रखा है, वह। और कैसी नासमझी हो गई है, वही नासमझी जो बुद्ध ने कही—वेश्या कुछ समझी, चोर कुछ समझे, साधु कुछ समझे। संसार छोड़ने की बात ज्ञानियों ने कही है, उसका अर्थ है—सपने छोड़ो, तृष्णाएं छोड़ो, वासनाएं छोड़ो। मगर लोग संसार छोड़ कर भाग गए। बैठ गए हिमालय पर जाकर। सोचने लगे कि हिमालय संसार के बाहर है।

पागल हो गए हो? हिमालय उतना ही संसार का हिस्सा है, जितनी यह जमीन, उतनी कोई और जमीन। जितना यह घर, उतना कोई और घर। जितनी तुम्हारी पत्नी संसार है, तुम्हारे पुत्र संसार हैं, तुम्हारे मित्र संसार हैं—उतना ही कोई आश्रम भी संसार का हिस्सा है। गुफा में भी बैठ जाओगे, तो गुफा भी संसार का हिस्सा है। तुम भाग कर जाओगे कहां? इस संसार से भागने का उपाय नहीं। मगर इस संसार से भागने को ज्ञानियों ने कहा भी नहीं। तुम्हारी समझ। तुमने समझ लिया कि संसार छोड़ कर भागने का अर्थ है—दुकान छोड़ो, बाजार छोड़ो, चले जाओ जंगल में।

संसार छोड़ने का अर्थ है—तृष्णा का फैलाव छोड़ो—कल ऐसा करूंगा, परसों ऐसा पाऊंगा...। संसार छोड़ने का अर्थ है—सपने भविष्य के छोड़ कर वर्तमान में जीओ। बस, वर्तमान हिमालय की गुफा है। इस क्षण के पार न जाओ। जो है, उसके पार न जाओ।

तुमने उस आदमी की बात तो सुनी न, जो बाजार जा रहा था, दूध की मटकी सिर पर लिए बेचने। फिर मुलक का पसारा किया उसने। सोचने लगा राह में—दूध आज बिक जाए तो एक दिन उपवास कर लेंगे। मगर आज पैसे जो हाथ लगेंगे, बचाना शुरू करेंगे। फिर जल्दी ही एक मुर्गी खरीद लेंगे। फिर मुर्गी के अंडे होंगे। रोज-रोज अंडे बेचेंगे। फिर जल्दी ही एक गाय खरीद लेंगे, फिर भैंस खरीद लेंगे। सोचता चला।...काफी धन इकट्ठा हो जाएगा तो फिर शादी कर लेंगे। फिर बाल-बच्चे भी हो गए। कल्पना में ही! फिर बच्चों के भी बच्चे हो गए। और जब बच्चों के बच्चे हुए, तब तक स्वभावतः कल्पना में ही वह बूढ़ा भी हो चुका है। अब बच्चों के बच्चे उसकी गोदी में खेल रहे हैं। एक बच्चे ने उसकी दाढ़ी पकड़ ली और झटका दिया। तो उसने कहा: अरे, यह क्या करता है? और ऐसा कहने में उसका हाथ मटकी से छूट गया। मटकी गिरी जमीन पर। मटकी के साथ सारा संसार गिर गया, सारा पसारा गिर गया। न थी कहीं गाय, न थी कहीं भैंस। न थी कहीं कोई पत्नी, न थे कोई बाल-बच्चे, न बाल-बच्चों के बाल-बच्चे। सच तो यह है, हाथ फेरा तो दाढ़ी भी नहीं थी। अभी बूढ़ा ही नहीं हुआ था।

इस संसार की बात ज्ञानियों ने कही है—यह जो तुम कल्पना के जाल बुनते हो!

मूल की खबरि नाहिं, जासो यह भयो मुलक।

तुम्हें अपने अनंत आनंद का पता नहीं है, अजस्र आनंद का पता नहीं है। इसलिए दुखी चित्त, तुम भिखमंगे की भांति, कल्पनाओं के जाल को बुनते हो। आज तो तुम्हारा दुखपूर्ण है, इसलिए कल का स्वर्णिम सपना देखते हो। यह जिंदगी तो तुम्हारी नरक है, इसलिए स्वर्ग मिलेगा मरने के बाद, इसकी तुम आशा रखते हो। उस आशा में गंगा हो आते हो, हज कर आते हो। उस आशा में कुछ दान भी कर देते हो।

इस जिंदगी में तो कुछ पाया नहीं। और जो तुमने यहां नहीं पाया है, याद रखना, कहीं भी न पाओगे। क्योंकि जो यहां नहीं है, कहीं भी नहीं है। और जो कहीं और है, वह यहां भी है। एक का ही विस्तार है। सिर्फ जरा अपनी कल्पनाओं के जाल से जागो! ये सपने मत गूंथो।

मूल की खबरि नाहिं, जासो यह भयो मुलक।

अपने स्वभाव का तुम्हें पता नहीं है, इसलिए तुमने यह पर-भाव का संसार फैला रखा है।

वाको बिसारि भोंदू डारेन अरुझायो है।

जड़ की तो चिंता छोड़ दी है और शाखाओं में उलझ गए! ठीक शब्द कहा—भोंदू! इससे ज्यादा और कोई बुद्धिहीनता नहीं हो सकती। जो है उससे चूक रहे हो और जो नहीं है उसके पीछे दौड़ रहे हो! और क्या भोंदूपन होगा?

वाको बिसारि भोंदू डारेन अरुझायो है।

उस मूल को थोड़ा तलाशो। और तुम्हारे भीतर है मूल। इस सारे जीवन का सार-सूत्र तुम्हारे भीतर है। जरा खोजो, और तुम चकित हो जाओगे कि तुम नाहक भिक्षापात्र फैला कर भीख मांग रहे थे! तुम सम्राट हो! तुम सम्राटों के सम्राट हो! शंहशाहों के शहंशाह! अमृतस्य पुत्रः!

जादा-ए-इश्क में इक वो भी मुकाम आता है
राहरों के लिए मंजिल का सलाम आता है
आज जिस दिल से है बर्बादि-ए-पैहम का गिला
यही कमबख्त बुरे वक्त में काम आता है
देख कर मुझको मचल जाती है साकी की नजर
जिक्र सुनते ही मेरा वज्द में जाम आता है
वज्हे-आशोबे-जहां पूछ रही है दुनिया
लब पे क्या जानिए क्यों आपका नाम आता है
रूह आंखों में सिमटती नजर आती है मुझे
क्या किसी भूलने वाले का पयाम आता है

एक बार तुम जरा भीतर झांक कर देखो, और तुम चकित हो जाओगे कि जिस मंजिल की तरफ तुम दौड़े जाते थे, वह मंजिल खुद तुम्हें सलाम करने आ गई!

जादा-ए-इश्क में इक वो भी मुकाम आता है

प्रेम-पथ पर एक ऐसा पड़ाव भी आता है।

जादा-ए-इश्क में इक वो भी मुकाम आता है
राहरों के लिए मंजिल का सलाम आता है

यात्री के लिए मंजिल का सलाम आता है। भक्त को भगवान तक जाना नहीं पड़ता; भगवान ही भक्त तक आता है। सदा भगवान ही भक्त तक आता है। सिर्फ भक्त अपने भीतर शांत हो जाए, मौन हो जाए, लवलीन हो जाए, तल्लीन हो जाए। फिर तुम्हें देख कर साकी की नजर खुद ही मचल जाएगी।

देख कर मुझको मचल जाती है साकी की नजर
जिक्र सुनते ही मेरा वज्द में जाम आता है

और जैसे ही मेरा जिक्र होता है, तत्क्षण शराब से भरा जाम मेरी तरफ बढ़ा दिया जाता है। तत्क्षण! देर नहीं लगती! अमृत बरसता है। बरस ही रहा है; सिर्फ हम हैं भोंदू कि पात्र को उलटा रखे बैठे हैं। अमृत बरस जाता है, बह जाता है; हम खाली के खाली रह जाते हैं।

एक ही काम करने जैसा है। एक ही काम है समझदारों के लिए, समझदारी का—और वह है: इस सत्य में उतर जाना कि मैं कौन हूं? यह मेरा स्रोत कहां है? यह मेरी चेतना कहां से आती है? यह कौन है जो मेरे भीतर गवाह है, साक्षी है—जो दुख देखता, सुख देखता, सफलता-विफलता देखता, स्वास्थ्य-बीमारी देखता, मान-अपमान देखता—यह कौन है द्रष्टा मेरे भीतर? बस इसको जिसने खोज लिया, उसने मूल पा लिया।

मगर हम पत्तों-पत्तों पर खोज रहे हैं। हम डाल-डाल, पात-पात खोज रहे हैं। और हमें कुछ मिलता नहीं। क्योंकि जड़ें नीचे छिपी हैं अंधेरे में, अंतर्गर्भ में। तुम्हारे भीतर जड़ें हैं और तुम्हारे भीतर शाखाएं नहीं हैं, बाहर शाखाएं हैं। जब तक तुम बाहर देखते रहोगे, शाखाओं में उलझे रहोगे।

आपनो सरूप रूप, आपू माहिं देखै नाहिं।
कहै यारी आंधरे ने हाथीं कैसो पायो है।।
आपनो सरूप रूप, आपू माहिं देखै नाहिं।

सबसे सरल जो बात होनी चाहिए थी, हमने नाहक कठिन कर रखी है। अपने सरूप को अपने भीतर नहीं देखते हैं। पहले अपने को देख लो, फिर कुछ और देखने निकलना। क्योंकि तुम अपने सबसे निकट हो, अगर वहीं देखना नहीं हो पा रहा है, और क्या देख पाओगे? जो स्वयं को नहीं जान पा रहा है, और क्या जान पाएगा? जानने की घटना पहले तुम्हारे अंतरतम में घटनी चाहिए। वहां लौ प्रकट होनी चाहिए।

आपनो सरूप रूप, आपू माहिं देखै नाहिं।

कैसा आदमी उलटा है! कैसी उलटी खोपड़ी है कि अपने भीतर अपने सरूप को नहीं देखता, और भागा फिरता है, दौड़ा फिरता है सारे संसार में! न मालूम कितने द्वार-दरवाजे खटखटाता है! कहां-कहां भीख मांगता है! कहां-कहां ठोकरें खाता है दर-दर की! कहां-कहां बढ़ाया जाता है कि आगे बढ़ो! आगे बढ़ो! हर जगह अपमान सहता है, असम्मान सहता है। और महिमा का स्रोत भीतर है, गरिमा का स्रोत भीतर है।

आपनो सरूप रूप, आपू माहिं देखै नाहिं।
कहै यारी आंधरे ने हाथीं कैसो पायो है।।

कैसे तुम अंधे हो, हाथी तुम्हारे भीतर है! मिला ही हुआ है। जिसे तुम तलाश रहे हो, वह मिला ही हुआ है। जिसे तुम तलाश रहे हो, उसे क्षण को भी नहीं खोया है। जिसे तुम तलाश रहे हो, तुम हो। वही तुम हो! तत्त्वमसि! खोजने वाला और जिसकी खोज चल रही है, दो नहीं हैं। खोजने वाला ही खोज का अंतिम लक्ष्य है।

किसी से मेरी मंजिल का पता पाया नहीं जाता
जहां मैं हूं फरिश्तों का वहां साया नहीं जाता
मोहब्बत की नहीं जाती, मोहब्बत हो ही जाती है
यह शोला खुद भड़क उठता है, भड़काया नहीं जाता
फकीरी में भी मुझको मांगने में शर्म आती है
सवाली होके मुझसे हाथ फैलाया नहीं जाता

चमन तुम से इबारत हैं, बहारें तुम से जिंदा हैं
तुम्हारे सामने फूलों से मुर्झाया नहीं जाता
हर इक दागे-तमन्ना को कलेजे से लगाता हूं
कि घर आई हुई दौलत को ठुकराया नहीं जाता
मोहब्बत के लिए कुछ खास दिल मखसूस होते हैं
यह वो नग्मा हैं जो हर साज पर गाया नहीं जाता
मोहब्बत अस्ल में 'मखमूर' वो राजे-हकीकत हैं
समझ में आ गया हैं, फिर भी समझाया नहीं जाता

जिस दिन तुम समझ लोगे अपने भीतर के सत्य को, यह मत समझना कि उस दिन समझा पाओगे। कोई नहीं समझा पाया है।

मोहब्बत अस्ल में 'मखमूर' वो राजे-हकीकत हैं

वह रहस्य है यथार्थ का, सत्य का वैसा रहस्य है।

समझ में आ गया हैं, फिर भी समझाया नहीं जाता

फिर सदगुरु क्या करते हैं? समझाते नहीं, चेताते हैं। समझाते नहीं, जगाते हैं। समझाते नहीं, प्यास को उभारते हैं, उकसाते हैं। याद दिलाते हैं तुम्हें: जाओ भीतर! पुकारते हैं तुम्हें: जाओ भीतर! कोई जबर्दस्ती तुम्हें तुम्हारे भीतर पहुंचा भी नहीं सकता। फुसलाते हैं तुम्हें। प्यार से फुसलाते हैं कि जाओ भीतर! बड़ी मीठी कहानियां सुनाते हैं कि जाओ भीतर! बड़े गीत गाते हैं कि जाओ भीतर! क्योंकि एक बार जो भीतर गया, एक बार जिसने अपनी झलक पा ली, फिर दूसरा ही जन्म हो जाता है उसका। वह द्विज हो जाता है। तत्त्वमसि!

आज इतना ही।

प्रवचन 6

प्रार्थना के पंख

हम आपसे जो सवाल पूछ रहे हैं, वे तो सब मूर्च्छा से पूछे गए हैं। और आपका जवाब तो पूर्ण चैतन्य से आ रहा है। तो इन दोनों का मिलन ही कैसे संभव हो? और मिलन नहीं होता है, तब तो सवाल पूछना ही गलत है। तब आप हमें जो सवाल पूछने के लिए कहते हैं, उसका मतलब क्या?

आपने कहा, दर्शनों के अध्ययन से ईश्वर नहीं मिलता है। मैं पूछना चाहता हूं कि फिर ईश्वर कैसे मिलता है?

आप हर रोज इतनी पिलाते हो, फिर भी तृप्त होने की बजाय प्यास दिन ब दिन बढ़ती ही जाती है। ऐसा क्यों?

न जाने किस पुण्य के प्रताप से, न जाने कौन से जन्म-जन्मांतर की नेह-डोर से बंध कर आपकी अनुकंपा, आपके यह सान्निध्य का सुअवसर प्राप्त हुआ, कि आपके पवित्र कर-कमलों से संन्यास प्राप्त कर धन्य हो गया। हमारा सारा देश कर्जदार है आपका। विश्व के कोने-कोने से अनवरत प्रतिदिन लोग चले आ रहे हैं यहां—प्रेम के सागर में डूबे जा रहे हैं। आकंठ पी रहे हैं—बरसते अमृत की रसधार को।
बनी रहे अंगूर लता यह, जिससे बनती है हाला।
बनी रहे यह माटी, जिससे बनता है मदिरा प्याला।
बने रहें ये पीने वाले, बनी रहे यह मधुशाला।

प्रार्थनाएं परिणाम न लाएं तो क्या करें?

पहला प्रश्न : हम आपसे जो सवाल पूछ रहे हैं, वे तो सब मूर्च्छा से पूछे गए हैं। और आपका जवाब तो पूर्ण चैतन्य से आ रहा है। तो इन दोनों का मिलन ही कैसे संभव हो? और मिलन नहीं होता है, तब तो सवाल पूछना ही गलत है। तब आप हमें जो सवाल पूछने के लिए कहते हैं, उसका मतलब क्या?

शिवानंद! मन में सवाल वैसे ही लगते हैं जैसे वृक्षों में पत्ते। मन में सवाल वैसे ही उठते हैं जैसे झील में लहरें। मन है तो सवाल हैं। जब तक मन है, तब तक सवाल हैं। और जब तक मन है, तब तक उत्तर नहीं मिलेगा। मन उत्तर के मिलने में बाधा है। मन प्रश्नों को खड़ा करने में कुशल है, उत्तर को खोजने में असमर्थ है। जहां मन नहीं, वहां उत्तर है। और समझ लेना, सवाल बहुत हैं, जवाब एक है। प्रश्न अनंत हैं, लेकिन समाधान एक है।

तुमने ठीक ही पूछा। तुम्हारे प्रश्न मूर्च्छा से उठते हैं। मूर्च्छा से ही प्रश्न उठ सकते हैं। जागे हुए चित्त में प्रश्नों की कोई संभावना ही नहीं। जागा हुआ चित्त जगत को एक समस्या की भांति देखता ही नहीं। जागे हुए चित्त में जगत एक रहस्य है, समस्या नहीं। समस्या हो तो समाधान खोजना पड़ता है। रहस्य हो तो रस-विमुग्ध हो नाचना पड़ता है।

रहस्य का अर्थ है : जो कभी खोले से न खुलेगा; सुलझाने से न सुलझेगा। सुलझना संभव ही नहीं है। रहस्य का अर्थ है : जो रहस्य ही रहेगा। रहस्य अज्ञात नहीं है कि ज्ञात बनाया जा सके। रहस्य अज्ञेय है, कभी ज्ञेय नहीं बनेगा। रहस्य रहस्य ही रहेगा।

जागा हुआ व्यक्ति इस रहस्य को जीना शुरू करता है। उस जीने में ही काव्य है। उस जीने में ही संगीत है। उस जीवन का नाम ही प्रसाद है। वहां फिर कोई तरंगें नहीं उठती हैं। झील हो गई सदा के लिए शांत। वहां कोई प्रश्नों के पत्ते नहीं लगते हैं। प्रश्न जन्मते ही नहीं।

तो तुम ठीक ही कहते हो, तुम्हारे प्रश्न और मेरे उत्तर कहीं भी मिलेंगे नहीं। मिलें, ऐसा प्रयोजन भी नहीं है। मिलने चाहिए, ऐसी आकांक्षा भी नहीं है। मेरे उत्तर तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर भी नहीं हैं। उत्तर तुम्हें देना भी नहीं चाहता हूं। सिर्फ तुम्हारे प्रश्न छीन लेना चाहता हूं।

इस भेद को समझ लेना।

पंडित तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर देता है; ज्ञानी तुम्हारे प्रश्नों को छीन लेता है, तुम्हें निष्प्रश्न कर देता है। ये जो मैं उत्तर दे रहा हूं, उत्तर नहीं हैं। ये केवल जाल हैं, जो फेंके गए तुम्हारी प्रश्न की मछलियों को पकड़ लेने को।

जैसे-जैसे तुम मेरे निकट आओगे, वैसे-वैसे तुम पाओगे : प्रश्न छिनते जाते हैं, खोते जाते हैं। उत्तर हाथ नहीं आता, प्रश्न छिनते जाते हैं। और एक ऐसी घड़ी आती है जब तुम निष्प्रश्न हो जाओगे, कोई प्रश्न न बचेगा। बस, उस निष्प्रश्नता में ही समाधान है, समाधि है।

और वह समाधान एक है। और समस्याएं अनेक थीं। और बीमारियां बहुत थीं, औषधि एक है। स्वास्थ्य एक है, बीमारियां ही अनेक होती हैं। स्वास्थ्य बहुत तरह के नहीं होते; उसका स्वाद एक है। जब तुम स्वस्थ हो जाओगे...स्वस्थ शब्द पर ध्यान रखना। बड़ा प्यारा शब्द है। उसका अर्थ है : जब तुम स्व-स्थित हो जाओगे। जब तुम अपने में रम जाओगे, अपने में लीन हो जाओगे। तब सारे प्रश्न तिरोहित हो गए। दीया जला भीतर, अंधेरा मिटा बाहर। फिर रहस्य ही रहस्य है—रहस्यों के पार रहस्य। एक शिखर चढ़ोगे रहस्य का और पाओगे कि दूसरा शिखर चुनौती दे रहा है। एक द्वार खोलोगे रहस्य का और दस नये द्वार सामने आ जाएंगे।

और तब जीवन एक अदभुत आनंद है, क्योंकि तब जीवन में ऊब नहीं है। तब जीवन में प्रतिपल अन-अपेक्षित से मिलन होता है, अजनबी से मिलन होता है। तब प्रतिपल आश्चर्यचकित, विस्मय-विमुग्ध, तुम एक अभियान पर निकलते हो।

मेरे उत्तरों का प्रयोजन उत्तर देना नहीं है। मेरे उत्तरों का प्रयोजन तुम्हारे प्रश्नों की हत्या कर देना है। इस भेद को खूब ठीक से समझ लोगे, तो यह भी समझ में आ जाएगा, क्यों तुमसे कहता हूं कि पूछो, पूछो जितना पूछना हो। क्योंकि जितना तुम पूछोगे उतना ही तुम्हारा पूछना समाप्त होगा। दबाए बैठे रहे भीतर, प्रश्न तो उठते रहे भीतर, संकोचवश न पूछे, शिष्टाचारवश न पूछे, प्रश्न तो जगते रहे भीतर और तुम दबाए चले गए—तो कभी मिट न सकेंगे। तुम्हारी मछलियों को आ जाने दो सतह पर, ताकि जाल में फंस जाना सुनिश्चित हो जाए।

उत्तर जो देते हैं तुम्हें, उनसे सावधान! प्रश्न जो छीन लेते हैं तुम्हारे, उनके पीछे लग जाना। क्योंकि उत्तर तुम्हें जो देते हैं, वे ही तुम्हें हिंदू बना देंगे, मुसलमान बना देंगे, ईसाई बना देंगे। यह उत्तरों का ही परिणाम है। तुमने एक उत्तर पकड़ा तो मुसलमान हो गए, दूसरा उत्तर पकड़ा तो जैन हो गए, तीसरा उत्तर पकड़ा तो सिक्ख हो गए। यह उत्तरों की पकड़ है। उत्तर का अर्थ होता है : सिद्धांत, शास्त्र, धारणाएं।

मैं तो धारणा छीनता हूं, शास्त्र छीनता हूं, उत्तर छीनता हूं। तुम्हें, जो-जो तुम्हारे चित्त में बैठ गया है फन मार कर, उस सबसे मुक्त करना है। उस सब कूड़े-कर्कट से तुम्हें रिक्त करना है, शून्य करना है। तुम्हारा अंतःगृह जब परिपूर्ण शून्य होगा, तो स्वच्छ होगा, क्वांरा होगा। उस क्वांरे मन में ही, उस क्वांरे चित्त में ही परमात्मा का आगमन होता है। तुम हिंदू रहे तो चूकोगे, मुसलमान रहे तो चूकोगे, ईसाई रहे तो चूकोगे। हां, धार्मिक बने तो पार लग जाओगे।

धार्मिक बनने का अर्थ है: प्रश्नों को छोड़ना। सब प्रश्न व्यर्थ हैं। मगर मेरे कहने से अगर तुमने मान लिया कि सब प्रश्न व्यर्थ हैं तो छूटेंगे नहीं; दब जाएंगे, पड़े रह जाएंगे, अचेतन में उतर जाएंगे। तुम्हारी चेतना के तलघरे में छिप कर बैठ जाएंगे, अंधेरे कोनों में दुबक जाएंगे, मिटेंगे नहीं।

पूछो, जी भर कर पूछो, ताकि तुम्हारे एक-एक प्रश्न की मैं गर्दन काटता चलूं। कितना पूछ सकोगे? आज नहीं कल, कल नहीं परसों, देर-अबेर, एक दिन जाग कर पाओगे कि सब प्रश्न व्यर्थ हैं—और सब उत्तर भी। जब प्रश्न ही व्यर्थ हैं तो उत्तर कैसे सार्थक हो सकते हैं?

फिर, मैं तुम्हें उत्तर नहीं देता। उत्तर वे देते हैं जो तुम्हारे आचरण के मालिक बनना चाहते हैं। उत्तर वे देते हैं, जो तुम्हें किसी आध्यात्मिक गुलामी में बांध लेना चाहते हैं। उत्तर वे देते हैं, जो चाहते हैं कि तुम उनके अनुसार चलो; जो तुम्हारे मालिक होना चाहते हैं।

मैं तुम्हें उत्तर नहीं देता, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि मैं तुम्हारे आचरण का नियंता बनूं। मैं तुम्हें मुक्ति देता हूं, स्वातंत्र्य देता हूं। तुम्हारा आचरण तुम्हारे भीतर से उमगे। जैसे फूल खिलते हैं वृक्षों में, ऐसा तुम्हारा आचरण खिले! तुम अपने मालिक बनो!

यही संन्यास का अर्थ है कि तुम अपने मालिक बनो। इसलिए संन्यासी को स्वामी कहते हैं—अपना मालिक। तुम्हारे तथाकथित पुराने ढब के संन्यासी अपने मालिक नहीं हैं, गुलाम हैं। किन्हीं बड़ी सूक्ष्म गुलामियों में बंधे हैं। मैं तुम्हारे मालिक होने की घोषणा कर रहा हूं। तुम्हें मेरी बात मान कर नहीं जीना है। मैं कौन हूं जो तुम मेरी बात मानो!

मेरी बातें तो तुम्हारी बातें काट देने का उपाय हैं। जैसे एक कांटे से दूसरा कांटा निकाल लेते हैं, फिर दोनों कांटे फेंक देते हैं न! ऐसे ही मेरी बातों के कांटों से तुम्हारे चित्त की बातों के कांटे निकल आएं, फिर दोनों को फेंक देना है। और जब तुम कांटों से मुक्त हो जाओगे, तो तुम्हारे भीतर एक सुवास उठेगी, एक संगीत उठेगा, एक नाद उठेगा। मैं उसी नाद को जगाना चाहता हूं, जो तुम्हारे भीतर सोया पड़ा है। तुम्हें मैं कुछ देना नहीं चाहता; तुम्हारे पास जो है, उसी के प्रति तुम्हें जगाना चाहता हूं। तुम्हें प्रत्यभिज्ञा हो जाए, पहचान हो जाए।

झनकारें ले लो, तार न लो!
भर दो प्रकाश में ही झिलमिल,
कर दो यह नयन-ज्योति धूमिल,
पथ की देदीप्त शिखाओं की
आभा ले लो, आकार न लो!
झनकारें ले लो, तार न लो!

हो शुष्क न पाए सजल सिंधु,
बन जाए चाहे एक बिंदु,
मेरे अंतर की चाहों की
सीमा ले लो, संसार न लो!
झनकारें ले लो, तार न लो!

तिनके हो जाएं राख सही,
पर टूटे जर्जर शाख नहीं,
मन का प्रासाद बसाने की
आशा ले लो, आधार न लो!
झनकारें ले लो, तार न लो!

मैं तुम्हें उत्तर नहीं देना चाहता, सिर्फ झनकार देना चाहता हूं; शब्द नहीं देना चाहता, सिर्फ निःशब्द की चोट देना चाहता हूं। मैं तुम्हें ज्ञान नहीं देना चाहता, तुम्हारे भीतर ध्यान को पुकारना चाहता हूं, जो सोया पड़ा है, जो पुकार सुन ले तो जग जाए। और जग जाए तो सब हो जाए। सब उत्तरों का उत्तर आ जाए। समाधानों का समाधान समाधि है।

झनकारें ले लो, तार न लो।

झनकार और तार में क्या भेद है? तार स्थूल है, झनकार सूक्ष्म है। तार पकड़ में आता है, झनकार पकड़ में नहीं आती। तार ऊपर का ऊपर रह जाएगा। तार को पकड़ा तो तार से बंध जाओगे, तार जंजीर बन जाएगी। झनकार प्राणों में समा जाती है। और झनकार तुम्हारे भीतर सोई झनकार को आंदोलित कर देती है। झनकार मुक्ति है।

तार मत लो मेरे, शब्द मत लो मेरे। मैं जो कहता हूं, उसकी फिक्र मत करो। मैं जो हूं, उसमें रसलीन होओ।

आभा ले लो, आकार न लो!

आकार लिया कि बंधे। आकार लिया कि कारागृह में प्रवेश हुआ। आभा ले लो!

दीये के पास जो आभा का मंडल होता है, उसको न तो मुट्ठी में बांध सकते हो, न तिजोड़ी में बंद कर सकते हो। उसे तो अगर देखोगे आंख भर कर तो तुम्हारी आंखें चमक उठेंगी। उस आभा को पी लोगे तो तुम भी आभावान हो जाओगे, तुम भी ज्योतिर्मय हो जाओगे।

आशा ले लो, आधार न लो।

मैं सिर्फ तुम्हारे भीतर एक आशा जगाना चाहता हूं। तुम बहुत निराश हो गए हो। जैसा जीवन तुमने पाया है, जैसा जीवन तुम जीए हो, उसमें निराशा ही निराशा हाथ लगी है। तुमने अपने ऊपर श्रद्धा खो दी है। तुम्हें अपने भर भरोसा नहीं रहा है। रहे भी कैसे? सफलता मिली नहीं। आनंद पाया नहीं। गीत मुखरित न हुए। संगीत जगा नहीं। प्रेम का शब्द तो सुना, स्वाद मिला नहीं। मंदिरों में घंटे बजते रहे, मस्जिदों में अजानें होती रहीं; तुम्हारे भीतर तो प्रार्थना का कोई स्वर गूंजा नहीं। तुमने तो परमात्मा को धन्यवाद दिया नहीं। देते भी कैसे? धन्यवाद देने योग्य कुछ पाया, ऐसा तुम्हें लगा नहीं।

तुम्हारा जीवन एक शुष्क धार है—रूखी-रूखी, मरुस्थल की नदी है! जल तो बिलकुल नहीं, बस सूखी। इसमें थोड़ी जलधार देना चाहता हूं, थोड़ी आशा जगाना चाहता हूं। कहना चाहता हूं तुमसे कि तुम जो हो, तुम्हारी अभी उससे पहचान नहीं हुई। सम्राट हो, भिखारी बने हो! सब तुम्हारा है, और भिक्षापात्र लिए चल पड़े हो! किससे मांग रहे हो? मालिकों का मालिक किससे मांग रहा है? क्या मांग रहा है? छोटी-छोटी वासनाओं के पीछे दौड़ रहे हो—और विराट तुम्हारा है! क्षणभंगुर के लिए आंसू बहा रहे हो—और शाश्वत तुम्हारा है, सनातन तुम्हारा है! एस धम्मो सनंतनो! तुम्हारा जो स्वभाव है, तुम्हारा जो धर्म है, वह सनातन है। न उसका कोई आदि है, न कोई अंत है। प्रभु का राज्य तुम्हारे भीतर है!

आशा ले लो, आधार न लो।
आभा ले लो, आकार न लो।
झनकारें ले लो, तार न लो।

मेरा संगीत तुम्हारे भीतर सोए संगीत को भी छेड़ दे। इसलिए कहता हूं: पूछो, जी भर कर पूछो। उत्तर न तो हैं, न मैं देना चाहता हूं, न दे सकता हूं। लेकिन तुम्हारे प्रश्नों की हत्या तो कर सकता हूं। वही कर रहा हूं। सुबह-सांझ बस तुम्हारे प्रश्नों को झाड़ने-बुहारने में लगा हूं। यह कचरा हट जाए तो तुम्हारे भीतर का सोना प्रकट हो। किसी भी क्षण हो सकता है। जिस क्षण तुम तैयार हो जाओगे ज्ञान के कचरे को छोड़ने को, उसी क्षण ध्यान की ज्योति प्रकट हो जाती है।

दूसरा प्रश्न: आपने कहा, दर्शनों के अध्ययन से ईश्वर नहीं मिलता है। मैं पूछना चाहता हूं कि फिर ईश्वर कैसे मिलता है?

दर्शनशास्त्र और दर्शन का अनुभव, इस भेद को स्मरण रखना। दर्शनशास्त्र से ईश्वर नहीं मिलता है। दर्शनशास्त्र से सुंदर शब्द मिलेंगे, परिभाषाएं मिलेंगी, सिद्धांत मिलेंगे, ज्ञान मिलेगा—बोध नहीं। जैसे अंधा सुन ले प्रकाश के संबंध में और बहरा समझ ले संगीत के संबंध में। पर संगीत का अनुभव और बात है। प्रकाश का बोध और बात है।

दर्शनशास्त्र से ईश्वर नहीं मिलता है, क्योंकि ईश्वर एक अनुभव है, अनुमान नहीं। और दर्शनशास्त्र केवल अनुमान है। अंधेरे में चलाए गए तीर हैं। लग गए तो तीर, नहीं लगे तो तुक्का। मगर अंधेरे में चलाया गया तीर लग भी जाए तो तुम तीरंदाज नहीं हो जाते। संयोगवशात लग जाए, बात और। कभी-कभी लग जाता है। दार्शनिकों का भी तीर कभी-कभी लग जाता है—संयोगवशात। अब जैसे कोई चलाता ही रहे अंधेरे में तीर, सब दिशाओं में फेंकता रहे तीर, तो एकाध तीर तो लग ही जाएगा। और फिर जो होशियार हैं उनका तो कहना क्या! वे तो बड़े हिसाब से चलते हैं।

मैंने सुना, एक सम्राट एक गांव से गुजरता था। बड़ा धनुर्विद था। उसने अपना रथ रुकवा दिया। क्योंकि उसने जगह-जगह वृक्षों पर तीर चुभे देखे, तीरों के निशान देखे। और हर तीर वृक्ष पर बनाए गए सफेद खड़िया के वर्तुल के ठीक मध्य में था। मकानों की दीवालों

पर भी ऐसा था, खलिहानों के आसपास लगी बागुड़ में भी ऐसा था, वृक्षों पर भी ऐसा था। चकित हो गया। इतना बड़ा तीरंदाज उसने कभी देखा नहीं, जिसके सब तीर ठीक लक्ष्य को मध्य में भेद देते थे। रत्ती-रत्ती शुद्ध! उसने अपने लोगों को कहाः पता लगाओ। मैं भी जीवन भर से तीर चला रहा हूं, लेकिन कभी न कभी कोई तीर चूक जाता है। निन्यानबे प्रतिशत मैं कुशल हो गया हूं। मगर इस गांव में कोई तीरंदाज है जो सौ प्रतिशत कुशल है। उसके मैं दर्शन करना चाहता हूं। उसके चरण छूना चाहता हूं। उसे सिर झुकाना चाहता हूं। मैंने बड़े तीरंदाज देखे हैं, मगर यह गांव में हीरा कहां छुपा रहा! किसी को इसका पता भी नहीं है। यह किस गुदड़ी में छिपा है हीरा! इसका पता लगाओ।

आदमी दौड़े। गांव में लोगों से पूछा। लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा कि छोड़ो, सम्राट को कहो कि आगे बढ़े, फिजूल की बातों में न पड़े। वह तो गांव का एक पागल है। सम्राट ने कहाः पागल, और इतना शुद्ध तीरंदाज! तब तो और भी सम्मान-योग्य है। वे लोग कहने लगेः आप समझे नहीं। वह तीर पहले मारता है और बाद में चिह्न बनाता है।

अब अगर कोई तीर पहले मारे और फिर जाकर चिह्न बना दे, तब तो तीर ठीक मध्य में लगेगा ही। अनुमान कभी-कभी ठीक लग जाते हैं। मगर अनुमान अनुमान हैं। अनुमानों से सावधान रहना।

अनुमान हैं!
संसार के हर कोर तक,
जग के प्रलय के छोर तक,
मानव सदा ही प्रेम का व्यापार करता जाएगा!
अनुमान हैं!

जब तक मिटेगी कल्पना,
परिभूत होगी साधना,
संपूर्ण तब तक विश्व का संगीत भी हो जाएगा!
अनुमान हैं!

कुछ खोज दिखलाई नई,
बढ़ और जिज्ञासा गई,
अज्ञानता का विश्व में विस्तार होता जाएगा!
अनुमान हैं!

अनुमानों से शायद हमारी चित्त की खुजलाहट मिट जाती हो, कुछ और नहीं होता। दर्शनशास्त्र खुजली को खुजलाने जैसा है। थोड़ा रस आता होगा खुजलाने में, पर खुजली समाप्त नहीं होगी, बढ़ जाएगी!

इसलिए दार्शनिक पूछता ही चला जाता है; एक प्रश्न में से दस प्रश्न निकल आते हैं। प्रश्नों में से प्रश्न निकलते चले जाते हैं। अंत कभी आता नहीं।

अध्ययन तो कर सकते हो दर्शनशास्त्र का। अध्ययन ही करना हो तो दर्शनशास्त्र ही अध्ययन करने योग्य है। बाकी तो फिर ठीक ही है। शास्त्रों का शास्त्र है दर्शनशास्त्र। अध्ययन का ही मजा लेना हो, शब्दों की बारीकियों में जाना हो, सिद्धांतों के तर्क देखने हों, वाद-विवाद की कुशलता उपलब्ध करनी हो, बाल की खाल निकालने की योग्यता लानी हो—तो दर्शनशास्त्र ही है अध्ययन करने योग्य। लेकिन ईश्वर इससे नहीं मिलता। ईश्वर बुद्धि की त्वरा, तीक्ष्णता से नहीं मिलता। ईश्वर मिलता है हृदय की उत्फुल्लता से। ईश्वर आता है तुम्हारे भीतर हृदय के द्वार से, प्रेम के द्वार से। ईश्वर अनुभव है, परम अनुभव है।

यही धर्म और दर्शनशास्त्र का भेद है। धर्म दर्शन देता है अनुभव की भांति; दर्शनशास्त्र अनुमान देता है सत्य के संबंध में—सत्य ऐसा होना चाहिए, सत्य वैसा होना चाहिए। अंधेरे में टटोलते-टटोलते परिभाषाएं बना ली जाती हैं।

तुम पूछते हो : 'आपने कहा, दर्शनों के अध्ययन से ईश्वर नहीं मिलता।'

ईश्वर शास्त्रों में है नहीं, सिद्धांतों में है नहीं। ईश्वर मौजूद है अस्तित्व की तरह। वृक्षों से मिल जाए, चांद-तारों से मिल जाए, पहाड़ों से, पर्वतों से मिल जाए, झरनों से मिल जाए, पशु-पक्षियों से मिल जाए—शास्त्रों से नहीं मिलेगा। परमात्मा छिपा है अपनी प्रकृति में। यह प्रकृति उसका घूंघट है। इस घूंघट को उठाओ। ये चांद-तारे जो झिलमिल हो रहे हैं, उसके घूंघट पर जड़े हैं। ये सलमे-सितारे हैं उसके घूंघट के। जरा घूंघट उठाओ—और मिल जाए!

मगर तुम अगर सोचते हो कि हम शब्दों के ऊहापोह में पड़े-पड़े एक दिन परमात्मा को पा लेंगे, तो तुम असंभव चेष्टा कर रहे हो, बहुत पछताओगे।

फलसफी को बहस के अंदर खुदा मिलता नहीं
डोर को सुलझा रहा है और सिरा मिलता नहीं
मारिफत खालिक की आलम में बहुत दुश्वार है
शहरे-तन में जब कि खुद अपना पता मिलता नहीं
किश्ति-ए-दिल की इलाही बहरे-हस्ती में हो खैर
नाखुदा मिलते हैं लेकिन बाखुदा मिलता नहीं
जिंदगानी का मजा मिलता था जिनकी बज्म में
उनकी कब्रों का भी अब मुझको पता मिलता नहीं
सर्फे-जाहिर हो गया सरमाया-ए-जेबो-सफा
क्या तअज्जुब है जो बातिन बासफा मिलता नहीं
पुख्ता-तब्ओ पर हवादिस का नहीं होता असर
कोहसारों में निशाने-नक्शे-पा मिलता नहीं
शैख साहब बरहमन से लाख बरतें दोस्ती
बे भजन गाए तो मंदिर से टका मिलता नहीं
फलसफी को बहस के अंदर खुदा मिलता नहीं
डोर को सुलझा रहा है और सिरा मिलता नहीं

दर्शनशास्त्र गुत्थियां बनाने का शास्त्र है, सुलझाने का नहीं। सुलझाने का शास्त्र योग है। उसकी विधि विचार नहीं, ध्यान है। सुलझाने की यात्रा धर्म है। उसकी विधि संदेह नहीं, श्रद्धा है। और पाना हो ईश्वर को तो एक अपूर्व घटना के लिए तैयार होना होता है : मिटने के लिए तैयार होना होता है। ईश्वर मिलता नहीं बिना मिटे। अहंकार जब तक न जाए, ईश्वर नहीं मिलता।

और दर्शनशास्त्रों से अहंकार खूब परिपुष्ट होता है। पांडित्य अहंकार पर खूब आभूषण की तरह हो जाता है। ज्ञानी, तथाकथित ज्ञानी जितने अहंकार से भर जाता है, उतना कोई और नहीं। त्यागी, तथाकथित त्यागी जिस तरह के सूक्ष्म अहंकार की धार रख लेता है, उस तरह की धार और किसी के अहंकार में न मिलेगी। औरों के अहंकार बोथले हैं; त्यागियों-पंडितों के अहंकार बड़े धार वाले हैं।

मिटने से मिलता है खुदा। खुदी मिटती है तो मिलता है खुदा।

हंगामा है क्यों बरपा, थोड़ी सी जो पी ली है
डाका तो नहीं मारा, चोरी तो नहीं की है
नातजुर्बाकारी से वाइज की ये बातें हैं
इस रंग को क्या जाने, पूछो तो कभी पी है
उस मय से नहीं मतलब, दिल जिससे है बेगाना
मक्सूद है इस मय से, दिल ही में जो खिंचती है
ऐ शौक वही मय पी, ऐ होश जरा सो जा
मेहमाने-नजर इस दम इक बर्के-तजल्ली है
वां दिल में कि सदमे दो, यां जी में कि सब सह लो
उनका भी अजब दिल है, मेरा भी अजब जी है
हर जर्रा चमकता है अनवारे-इलाही से
हर सांस यह कहती है, हम हैं तो खुदा भी है
सूरज में लगे धब्बा, फितरत के करिश्मे हैं
बुत हमको कहें काफिर, अल्लाह की मर्जी है

पीने से मिलता है खुदा। ऐसा मधु पीना है, जो भीतर ढलता है; जो अंगूरों से नहीं, आत्माओं से निचुड़ता है।

हंगामा है क्यों बरपा, थोड़ी सी जो पी ली है

और जब भी कभी कोई ऐसा पियक्कड़ इस जगत में होता है, बड़ा हंगामा बरपा हो जाता है। क्योंकि पंडित-पुरोहित बड़े कष्ट में हो जाते हैं।

हंगामा है क्यों बरपा, थोड़ी सी जो पी ली है
डाका तो नहीं मारा, चोरी तो नहीं की है

यह पीना तो अपने भीतर ही घटता है।

नातजुर्बाकारी से वाइज की ये बातें हैं

ये जो उपदेशक हैं, इन्हें कुछ अनुभव नहीं है, इसलिए इस तरह की बातें कर रहे हैं।

इस रंग को क्या जाने, पूछो तो कभी पी है

यह जो रंग है परमात्मा का, यह तो पियक्कड़ों का रंग है। यह तो जो पी लेते हैं...और पीने की शर्त चुकानी पड़ती है! पीने की शर्त है: अपने को मिटाना। यह मय ऐसी नहीं है कि सस्ती मिल जाए। यह मधुशाला ऐसी नहीं है कि मुफ्त में प्रवेश हो जाए। गंवाना पड़ता है अपने को। जो अपने को मिटाते हैं, वही प्रवेश पाते हैं।

उस मय से नहीं मतलब, दिल जिससे है बेगाना
मक्सूद है इस मय से, दिल ही में जो खिंचती है

एक तो शराब है जो तुम बाहर से पी लेते हो; जो जाकर भीतर तुम्हारे हृदय को नष्ट करती है, विकृत करती है। और एक शराब है, जो तुम्हारे हृदय में ही निचुड़ती है, और तुम्हारे बाहर आभामंडल हो जाती है, और तुम्हारे बाहर एक सौंदर्य का निखार हो जाती है, एक प्रसाद का जन्म हो जाती है।

तुम मिटो तो तुम पाओगे कि परमात्मा कोई और नहीं, तुम्हारे ही भीतर छिपा तुम्हारा ही राज है।

शास्त्रों में न खोजो। शास्त्रों में खोजना मरुस्थलों में खोजना है। आत्मा की बगिया में खोजो। अपने भीतर उतरो। इस अंतर के कुएं में ही डुबकी मारो। वहीं तुम्हें अमृत के स्रोत उपलब्ध होंगे। वहीं हुए हैं उपलब्ध, जब भी कभी उपलब्ध हुए हैं।

तीसरा प्रश्न: आप हर रोज इतनी पिलाते हो, फिर भी तृप्त होने की बजाय प्यास दिन ब दिन बढ़ती ही जाती है। ऐसा क्यों?

हितेन सत्यार्थी! मैं कितना ही पिलाऊं, उससे प्यास बढ़ेगी, घटेगी नहीं। मेरी चेष्टा ही यही है कि प्यास ऐसी प्रज्वलित हो जाए कि बाहर की कोई चीज तुम्हें तृप्त ही न कर सके। तभी तो विभ्रम टूटेगा। तभी तो जागोगे। तभी तो यह सपना टूटेगा। प्यास इतनी प्रगाढ़ हो जाए कि आग की लपट की भांति जल उठे, भभक उठो तुम। तभी तो जागोगे। उससे कम में तुम न जागोगे। कुनकुने तुम रहे, कुनकुने रहे तो नहीं। उबलोगे जब, तभी जागोगे।

तुमने एक बात देखी, अगर मधुर स्वप्न चलता हो तो नींद नहीं टूटती, दुख-स्वप्न में टूट जाती है। अगर तुम गिर पड़े हो पहाड़ से सपने में, और गिरते ही जा रहे हो, गिरते ही जा रहे हो, तो एक घड़ी आएगी जब घबड़ा कर आंख खुल जाएगी। कि किसी ने तुम्हारी छाती पर चट्टान रख दी है, और तुम दबते ही जा रहे हो, दबते ही जा रहे हो, दबते ही जा रहे हो...एक घड़ी आएगी कि आंख खुल जाएगी।

प्यास की पीड़ा ही सपनों को तोड़ती है, और कोई चीज नहीं तोड़ सकती। इसलिए सदगुरु वही है जो तुम्हारे भीतर प्यास की पीड़ा को उमगाए, जगाए, प्रज्वलित करे, ईंधन दे। और डालता जाए ईंधन तुम में कि तुम्हारी लपट बुझे नहीं, कि तुम लपट ही हो जाओ, कि लपट में आत्मसात हो जाओ।

यहीं भेद है सच्चे गुरु का और मिथ्या गुरु का। मिथ्या गुरु देता है सांत्वना, संतोष; लीपापोती करता है। कहता है: घबड़ाओ मत, सब ठीक है; कि भरोसा रखो, सब ठीक हो जाएगा; कि चुप रहो, रोओ मत, सब परमात्मा जानता है। वह रहीम है, रहमान है, महाकरुणावान है। उसकी दया होगी। देर होगी, मगर अंधेर नहीं है।

ये मिथ्या गुरुओं के वचन हैं—देर होगी, अंधेर नहीं है! मिथ्या गुरु सत्य नहीं देता, सांत्वना देता है। और इसलिए मिथ्या गुरुओं के पास बड़ी भीड़ इकट्ठी होगी। क्योंकि सभी सांत्वना के लिए आतुर हैं। कोई मलहम-पट्टी कर दे, कोई घाव को ढांक दे, कोई पीड़ा को पोंछ दें, विस्मरण कर दे, कोई ऐसा कर दे कि चलो थोड़ी देर को ही सही कि भजन-कीर्तन में डूब जाएं और भूल जाएं सारी चिंताओं का जाल। घाव रिस रहे हैं, दुख रहे हैं; कोई फूल रख दे, गुलाब के फूल रख दे घावों पर कि दिखाई पड़ने बंद हो जाएं। कोई तुम्हें धोखा दे दे ऐसा कि तुम धोखे में आ जाओ। यह तुम्हारी मांग है, यह तुम्हारी चाह है।

इसलिए सदगुरु के पास तो केवल साहसी, कहना चाहिए दुस्साहसी ही इकट्ठे होते हैं। क्योंकि तुम्हारे घाव पर रखे फूल को वह हटा देगा। सांत्वना देना तो दूर, जो सांत्वना तुम्हारी थी, वह भी छीन लेगा। संतुष्टि देना तो दूर, असंतुष्टि को भड़काएगा। क्योंकि जब तक प्यास ऐसी प्रज्वलित न हो जाए कि प्यास ही प्यास बचे, तुम्हें यह भी पता न रहे कि मैं हूं, कि प्यासा भी कोई है—प्यास ही प्यास बचे!...जब तुम्हारी धुन में एक प्यास ही रह जाती है परमात्मा की, बस उसी क्षण घटना घट जाती है।

तुम पूछते हो, हितेन: 'आप रोज इतनी पिलाते हो, फिर भी तृप्त होने की बजाय प्यास दिन ब दिन बढ़ती जाती है।'

वही प्रयोजन है। तुम भला तृप्त करने आए होओ प्यास, मैं यहां भड़काने को बैठा हूं। मैं तुम्हारे भीतर की आग बुझाना नहीं चाहता। तुम्हारी आग बुझ गई तो तुम मुर्दा हो जाओगे। तुम्हारी आग ही तो तुम्हारा जीवन है। और तुम्हारी आग ही तो तुम्हारी परमात्मा को पाने की संभावना है। मैं चाहता हूं कि और बढ़ो, और बढ़ो। धुआं तो मिट जाए, शुद्ध लपट रह जाए—निर्धूम लपट! बस उसी क्षण मिलन हो जाएगा। तब है तृप्ति।

तृप्ति तो भीतर घटेगी, मैं नहीं दे सकता। अतृप्ति मैं दे सकता हूं। अतृप्ति मैं बढ़ा सकता हूं। और उसी अतृप्ति की पूर्णता पर तृप्ति घटित होती है।

कुछ बातें हैं जो मांगे से नहीं मिलतीं, क्योंकि वे तुम्हारे भीतर मौजूद ही हैं। मांगने का अर्थ है: बाहर। बाहर नजर लगाए हो। मुझ पर नजर मत लगाओ। मुझसे इशारे ले लो और नजर भीतर लगाओ। सरोवर तुम्हारे भीतर है, मधुकलश तुम्हारे भीतर है।

हमें तो स्नेह के दो बूंद मांगे भी नहीं मिलते।

पड़े हैं स्वप्न जैसे रात के वीरान साए हों,
पड़े अरमान जैसे अब हमेशा को पराए हों,
अंधेरा इस कदर छाया कि भय के मेघ छाए हों,
किसी के स्नेह के दो बूंद मांगे भी नहीं मिलते।

न पूरा गीत होता है, न मन का मीत मिलता है,
जकड़ ले प्राण प्राणों से, न वह मनजीत मिलता है,
विकल है बूंद स्वाति की, न कोई सीप मिलता है,
हमें तो स्नेह के दो बोल मांगे भी नहीं मिलते।

घिरी आती चतुर्दिक अधबुझी तृष्णा बुझे मन की,
सिसकती, गूंजती, कुचली गई जो प्यास जीवन की,
सदा को छा गई हर सांस में आवाज बिछुड़न की,
हमें तो स्नेह के दो बूंद मांगे भी नहीं मिलते।

मांगने से कभी कुछ मिला ही नहीं है। बिन मांगे मोती मिले, मांगे मिले न चून। मांगोगे तो कुछ न पाओगे, मांगने के कारण ही तो गंवाते गए हो। मुझसे भी मत मांगना। किसी से मत मांगना। जागना है भीतर। क्योंकि जिसे तुम मांग रहे हो, तुम्हारे भीतर मौजूद है। मधुकलश हो तुम!

न पूरा गीत होता है, न मन का मीत मिलता है,
जकड़ ले प्राण प्राणों से, न वह मनजीत मिलता है,
विकल है बूंद स्वाति की, न कोई सीप मिलता है,
हमें तो स्नेह के दो बोल मांगे भी नहीं मिलते।

किसको मिले हैं? कब मिले हैं? मांगने से कुछ मिलता नहीं। मांगना राह नहीं है पाने की। मगर लोग मांगते ही रहे हैं, मांगते ही चले जाते हैं। संसार से मांगते हो। फिर संसार से छूटते हो तो परमात्मा से मांगने लगते हो, मगर मांग जारी रहती है।

मैं चाहता हूं: मांग छोड़ो, भिखमंगापन छोड़ो। वासना प्रार्थना का रूप न ले ले।

एक कण दे दो न मुझको!
तृप्ति की मधु मोहिनी का एक कण दे दो न मुझको।
एक कण दे दो न मुझको!

तुम गगन-भेदी शिखर हो, मैं मरुस्थल का कगारा,
फूट पाई पर नहीं मुझमें अभी तक प्राण-धारा,
जलवती होती दिशा में पा तुम्हारा ही इशारा,
फूट कर रसदान देते सब तुम्हारा पा सहारा।
गूंजती जीवन-रसा का एक तृण दे दो न मुझको!
एक कण दे दो न मुझको!

जो नहीं तुमने दिया अब तक मुझे मैंने सहा सब,
प्यास की तपती शिलाओं में जला, पर कुछ कहा कब?

तृप्ति में आकंठ उमड़ी डूबती थी मृगशिरा जब,
आग छाती में दबाए भी रहा मैं देवता तब,
तुम पिपासा की बुझन का एक क्षण दे दो न मुझको।
एक कण दे दो न मुझको!

तुम मुझे देखो न देखो, प्रेम की तो बात ही क्या,
सांझ की बदली न जब मुझको मिलन की रात ही क्या,
दान के तुम सिंधु मुझको हो भला यह ज्ञात ही क्या,
दाह में बोले न जो उसका तुम्हें प्रणिपात ही क्या,
छांह की ममता भरी श्यामल शरण दे दो न मुझको।
एक कण दे दो न मुझको!

मांगते ही रहोगे? जन्मों-जन्मों मांगते ही रहे हो। छोड़ो अब मांगना! अब प्यास को बाहर से बुझाना नहीं है। बाहर से बुझाना ही तो भूल थी। अब प्यास को तो भीतर ही भीतर सम्हालना है। अब प्यास से भर जाओ, मांगो मत। चुप्पी साध लो मांगने की दिशा में। और प्यास का सरोवर सघन होने दो। प्यास की ऊर्जा इकट्ठी होने दो। ऐसा कि बस प्यास ही प्यास रह जाए। नख से शिख तक बस प्यास ही प्यास रह जाए। जिस क्षण तुम्हारा कण-कण प्यासा होगा, जिस क्षण तुम्हारा समग्र प्राण प्यासा होगा—उसी क्षण घटना घटती है, क्रांति घटती है। एक क्षण में घट जाती है। खो जाता है एक जगत—वासनाओं का, मृगतृष्णाओं का! और एक दूसरे जगत का प्रादुर्भाव होता है—महातृप्ति का जगत, सच्चिदानंद का लोक! उसे मोक्ष कहो, निर्वाण कहो, जो भी कहना चाहो!

हितेन! मैं तो तुम्हें पिलाता ही इसलिए हूं ताकि तुम्हारी प्यास जगे। यह प्यास बुझाने का प्रयास नहीं चल रहा है; प्यास को भड़काने की चेष्टा हो रही है। इसलिए जो सांत्वना के लिए आ गए हैं, वे गलत जगह आ गए हैं। जो सत्य की खोज में आए हैं, वे ही मुझ तक पहुंच पाएंगे। जो सांत्वना की तलाश में आए हैं, देर-अबेर बिछुड़ जाएंगे। उनसे मेरा संबंध न जुड़ सकेगा। सांत्वना दो कौड़ी की है। मिले तो सत्य। पाने योग्य है कुछ तो सत्य।

और सत्य के मिलने से एक संतोष मिलता है। वह बात ही और है। एक संतोष है दीन-हीन का। दीन-हीन का जो संतोष है, उसका सिद्धांत है—संतोषी सदा सुखी! यह दुखी आदमी की चेष्टा है। संतोष बांध-बांध कर सुखी होने की आशा बांध रहा है।

एक संतोष है दीन-हीन का; एक संतोष है तृप्त का, परितृप्त का। उसकी परिभाषा है—सुखी सदा संतोषी। वहां सुख पहले है, संतोष छाया है। दीन-हीन में संतोष पहले है, सुख छाया है। संतोष थोपा हुआ है, आरोपित है; दुख को भुलाने का उपाय है।

भुला सकते हो दुख को, मगर भुलाए दुख लौट-लौट आते हैं। इतना आसान जीवन का रूपांतरण नहीं है।

मैं तुम्हें दुख भुलाने को नहीं कहता। मैं तो कहता हूं: दुख के प्रति जागो। यही दुख का प्रयोजन है। यह जो कांटा चुभ रहा है जीवन में, इसके प्रति जागो। इस चुभन को मिटाओ

मत। शामक दवाएं लेकर इस चुभन को भुलाओ मत। और तुम्हारे भजन-कीर्तन जो तुम्हें सिखाए गए हैं अब तक, वे केवल शामक दवाएं हैं, ट्रैंक्वेलाइजर्स हैं। उनसे थोड़ी देर को राहत मिल जाती है, फिर सब दुख की दुनिया वैसी की वैसी शुरू हो जाती है। ऐसी राहत तो बहुत बार पा ली, हाथ क्या लगता है? सिर्फ समय गंवाया जा रहा है।

नहीं, मैं तुम्हें संतुष्ट नहीं करना चाहता, न सांत्वना देना चाहता हूं। मेरा प्रयोजन है कि तुम्हें संक्रांति दूं, संतोष नहीं। सत्य दूं, सांत्वना नहीं। और सत्य देना नहीं होता; सिर्फ प्यास पूरी हो जाए तो सत्य भीतर ही आविष्कृत होता है।

चौथा प्रश्नः न जाने किस पुण्य के प्रताप से, न जाने कौन से जन्म-जन्मांतर की नेह-डोर से बंध कर आपकी अनुकंपा, आपके यह सान्निध्य का सुअवसर प्राप्त हुआ, कि आपके पवित्र कर-कमलों से संन्यास प्राप्त कर धन्य हो गया। हमारा सारा देश कर्जदार है आपका। विश्व के कोने-कोने से अनवरत प्रतिदिन लोग चले आ रहे हैं यहां—प्रेम के सागर में डूबे जा रहे हैं। आकंठ पी रहे हैं—बरसते अमृत की रसधार को।

बनी रहे अंगूर लता यह, जिससे बनती है हाला।
बनी रहे यह माटी, जिससे बनता है मदिरा प्याला।
बने रहें ये पीने वाले, बनी रहे यह मधुशाला।

स्वामी चिन्मय योगी! निश्चय ही, मेरे पास जो आ गए हैं, अकारण नहीं आ गए हैं, अनायास नहीं आ गए हैं। लंबी खोज है पीछे, लंबी तलाश है पीछे।

मुझसे संबंध ही उनका बन सकता है, जो जन्मों-जन्मों से खोज रहे हैं। मुझसे संबंध तथाकथित धार्मिकों का नहीं बन सकता, जिनका धर्म केवल एक औपचारिकता है; जिनका धर्म एक तरह की सामाजिकता है; जिनका धर्म एक तरह का दिखावा है; जिनका धर्म जन्मगत है। किसी घर में पैदा हुए हैं—संयोग है कि हिंदू हैं, कि जैन हैं, कि बौद्ध हैं। संयोग है, तो मंदिर भी जाते हैं, क्योंकि बचपन से ले जाए गए हैं। एक प्रोग्रेम मन में डाल दिया गया है मंदिर जाने का। एक टेप संस्कारों की भीतर भर दी गई है। तो राम-राम भी दोहरा लेते हैं। कष्ट आता है तो प्रभु का स्मरण भी कर लेते हैं, प्रार्थना भी कर लेते हैं। मगर न प्रार्थना छूती है हृदय को, न प्रभु-स्मरण छूता है हृदय को। मंदिर में झुक भी आते हैं और जरा भी नहीं झुकते। अहंकार कड़ा का कड़ा, अकड़ा का अकड़ा रहता है। कभी-कभी सत्यनारायण की कथा भी करवा लेते हैं। गांव में प्रतिष्ठा बढ़ती है, लोग धार्मिक समझने लगते हैं।

और जितना तुम्हें लोग धार्मिक समझें, उतना ही बेईमानी करने की सुविधा मिल जाती है, पाखंड की सुविधा मिल जाती है। जितना लोग तुम्हें भला समझें, उतना ही तुम पर संदेह नहीं करते। और संदेह न करते हों तो उनकी जेबें आसानी से काटी जा सकती हैं, उन्हें आसानी से लूटा जा सकता है।

तो धर्म तुम्हारी दुकान का हिस्सा है। तुमने धर्म को भी अपने व्यवसाय का अंग बना लिया है। ऐसे लोगों का मुझसे कोई संबंध नहीं हो सकता। मुझसे तो संबंध उनका हो सकता है जिनका धर्म एक सांयोगिक घटना नहीं है; जिनका धर्म एक लंबी यात्रा है, एक लंबी खोज; जो टटोलते रहे हैं; गिरते हैं, उठते हैं; जन्मों-जन्मों से खोजते रहे हैं।

तुम ठीक कहते हो, चिन्मय योगी: 'न जाने किस पुण्य के प्रताप से, न जाने कौन से जन्म-जन्मांतर की नेह-डोर से बंध कर...'

निश्चय ही, किसी नेह-डोर से बंधे हुए ही तुम्हारा आना हुआ है। जो इस संन्यास की गंगा में डुबकी ले रहे हैं, उनसे संबंध मेरा नया नहीं है। इसीलिए तो इतना साहस जुटा पाते हैं। कोई पहचान है जनम-जनम की, इसीलिए इतनी श्रद्धा कर पाते हैं। नहीं तो मुझ जैसे आदमी पर श्रद्धा करना अत्यंत कठिन बात है। मैं तो हर तरह से कठिन किए दे रहा हूं कि मुझ पर श्रद्धा करना कठिन से कठिन हो जाए। मैं तो तुम्हारी कोई अपेक्षा पूरी नहीं कर रहा हूं कि तुम मुझ पर श्रद्धा आसानी से कर सको। मेरी तरफ से तो पूरा उपाय यही है कि श्रद्धा करनी करीब-करीब असंभव हो जाए। फिर भी जो श्रद्धा कर सकेगा, स्वभावतः वह ऐसे ही नहीं आ गया है, अनायास। फिर भी जो मुझे देख पाएगा, फिर भी जो धोखा नहीं खाएगा, फिर भी जो कहेगा कि मैं तुम्हें पहचानता ही हूं; तुम कितने ही उपाय करो, तुम मेरी पहचान को न डगमगा पाओगे, कि मैं तुम्हें जानता ही हूं, कि तुम किसी भी आवरण में खड़े हो जाओ तो भी मैं तुम्हें पहचान लूंगा—उन थोड़े से लोगों से ही मैं संबंध जोड़ना चाहता हूं।

यह एक महत प्रयोग हो रहा है, यह भीड़-भाड़ के लिए नहीं है। इसलिए भीड़-भाड़ से बचने के तो मैंने बहुत उपाय कर लिए हैं। इतनी अफवाहें हैं मेरे बाबत कि भीड़-भाड़ वाला आदमी तो यहां आ ही नहीं सकता, द्वार से नहीं झांक सकता। यहां तो जिसकी खोज ऐसी अनंत है, ऐसी दुर्धर्ष है कि सब कुछ गंवाने को तैयार हो—लोक-लाज, मान-मर्यादा—वही आ सकेगा।

तुम आ गए हो यहां—कोई आह्वान सुन कर, कोई चुनौती सुन कर! अब तक भी तुम खोजते ही रहे हो। ठीक न पड़े होंगे कदम, इसलिए मंजिल न मिली। मगर गलत कदम भी पड़ते रहें ठीक मंजिल की आशा में, तो मंजिल को आज नहीं कल मिलना ही होता है।

इसे स्मरण रखना, गलत कदम भी अगर ठीक मंजिल की आशा में पड़ते हैं तो ठीक हैं। और ठीक कदम भी अगर गलत मंजिल की आशा में पड़ते हैं तो गलत हैं। ठीक रास्तों की खोज में कोई भटक भी जाए तो भटकता नहीं। और भटकता हुआ कोई ठीक रास्तों पर भी चलता रहे तो पहुंचता नहीं। यह सवाल अभिप्राय का है।

उलझता गया मैं, सुलझता गया मैं,
न जाने किधर से किधर आ गया मैं!

चला किंतु मैंने नहीं राह जानी,
सुनी बस डगर की किसी से कहानी,
अभी तक न मंजिल दिखाई मुझे दी,

नहीं राह की ही मिली कुछ निशानी।
भटकता गया मैं, अटकता गया मैं,
न जाने किधर से किधर आ गया मैं!

जहां भी रुका मैं, नहीं था किनारा,
जहां भी झुका मैं, नहीं था सहारा,
न था स्नेह का स्वर, न लौं नेह की थी,
जहां भी पुकारा, जहां भी निहारा।
हरखता गया मैं, परखता गया मैं,
न जाने किधर से किधर आ गया मैं!

विचारा कहूं कुछ, अधर थरथराए,
विचारा गहूं कुछ, कि कर थरथराए,
हुआ दौड़ने को, लगा लड़खड़ाने,
सिहर कर हृदय के स्वर थरथराए।
झिझकता गया मैं, ठिठकता गया मैं,
न जाने किधर से किधर आ गया मैं!

मुझे बंद होकर सुहाता न जीना,
घिरा हेम से जो, जड़ा मैं न मीना,
रहा चूर होकर कणों के कणों में,
चमकता अधिक जो, वही मैं नगीना।
बिखरता गया मैं, निखरता गया मैं,
न जाने किधर से किधर आ गया मैं!
उलझता गया मैं, सुलझता गया मैं,
न जाने किधर से किधर आ गया मैं!

जो न मालूम कितने-कितने रास्तों पर भटकते हुए, न मालूम कितने-कितने कांटों से उलझते हुए एक दिन अचानक मेरे पास आ जाते हैं, उन्हें भरोसा भी नहीं आता कि मंदिर मिल गया! वे अवाक ही रह जाते हैं, थोड़ी देर को कुछ सूझता नहीं है। थोड़ी देर को तो सिर्फ आश्चर्यचकित, जैसे श्वासें अवरुद्ध हो जाती हैं।

मगर वही पहचान है कि मिल गया घर, कि जिसकी तलाश थी, कि अब कुछ हो सकेगा। तैयार ही आए हो। क्योंकि जितनी ठोकरें खाई हैं, उतने ही तैयार हो गए हो। तैयार ही आए हो, इसलिए मेरा आमंत्रण स्वीकार कर सके हो। यह आमंत्रण कायरों के लिए तो नहीं है। यह आमंत्रण तथाकथित समझदारों के लिए, चालाकों के लिए तो नहीं है। यह आमंत्रण तो साहसियों के लिए है। यह आमंत्रण तो दीवानों के लिए है।

उस पार बुलाया अंबर ने पथ छोड़! मुझे जाना होगा

जब एक भयानक अस्थिरता हो चंचल प्राण किए देती
निःसंग अमावस की रजनी हो दीपों की बलि सी लेती
जब मौन विपथगा की ज्वाला में जलते हों मेरे साथी
जब गायक, नायक, अभिशापी, सबकी हो नींद गई लूटी
तुम चलने का सुख क्या जानो—पल भर की आंच सहे तुम तो
उस पार बुलाया अंबर ने पथ छोड़! मुझे जाना होगा

खोई झंझा की याद लिए उतरी संध्या सागर तट पर
प्यासे प्राणों की तृष्णा से कब कोई भी सपना बढ़ कर
उफनाते जीवन की वहशत फिर आज प्रलय सा भरती हैं
फिर एकाकी उन्माद लिए मैं जाता सागर को सत्वर
हैं वक्त कहां—सुधि भी कर लूं मिट्टी में कितने चमन मिले
उस पार बुलाया अंबर ने पथ छोड़! मुझे जाना होगा

आजीवन अमरित से न बुझे वह प्यास बड़ी दुर्लभ मरु सी
ममता की मारी बस्ती में अपनी तो रूह रही प्यासी
भंवरों में याद किया किसने—झूठे लगते तट के बंधन
खोलो! वातायन खोलो! मैं भर आया लपटों का वासी
निःसंग निशा जगते बीती—सुख-दुख की छूट चली छाया
उस पार बुलाया अंबर ने पथ छोड़! मुझे जाना होगा

चलते रहे हो तुम किन्हीं रास्तों पर अब तक। मेरी पुकार सुनी, मेरा आह्वान सुना, तो अब तुम्हें सब पथ छोड़ देने हैं। अब तुम्हें पथों से मुक्त हो जाना है। चौंकोगे तुम, जब मैं यह कहूं तुमसे कि पथ छोड़ दो तो मंजिल अभी मिल जाए! यह पथहीन-पथ है सत्य का। मार्गों से नहीं मिलती मंजिल। मार्ग ही भटका देते हैं। सारे मार्ग छोड़ कर जो बैठ जाता है, चलना ही छोड़ कर जो बैठ जाता है, वही पहुंचता है।

मैं तुम्हें बैठना सिखाता हूं। मैं तुम्हें एक ही कला सिखाता हूं कि दौड़ना कैसे छूट जाए। न शरीर दौड़े, न मन दौड़े—बस उसी घड़ी ध्यान है। शरीर भी थिर है, मन भी थिर है। न कंपन देह में, न कंपन चित्त में। उस अकंप दशा में ही बस तालमेल बैठ जाता है, मंजिल उपलब्ध हो जाती है। पता चलता है कि मंजिल उपलब्ध ही थी; मैं दौड़ता रहा, सो चूकता रहा।

लाओत्सु ने कहा है: खोजो, और खोते रहोगे। खोज छोड़ दो, और पा लो।

तुमने सुनी आवाज, आ गए। अब समझने की फिक्र करना। क्योंकि तुम्हारे जीवन का अब सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षण शुरू होता है। संन्यास तुमने लिया, यह कोई ऊपर-ऊपर की

बात नहीं है। जो नहीं जानते, जिन्होंने कभी पी ही नहीं है, जिन्होंने कभी स्वाद नहीं लिया है, वे तो समझते हैं कि ऊपर-ऊपर की बात है—कपड़े रंग लिए, कि माला पहन ली, कि नाम बदल लिया। यह ऊपर-ऊपर की बात नहीं है, भीतर-भीतर की बात है। यह ऊपर-ऊपर तो केवल घोषणा है जगत के लिए। घोषणा है, क्योंकि घोषणा भी सहयोगी होती है। क्योंकि घोषणा संघर्ष को जन्मा देती है। क्योंकि घोषणा तुम्हें अड़चन में डाल देगी। क्योंकि घोषणा करते ही बाहर से हजार तरह के उपद्रव शुरू हो जाएंगे। उन सारे उपद्रवों को ही मैं तपश्चर्या कहता हूं। वही असली तपश्चर्या है। और उन सारे उपद्रवों के बीच जो शांत होकर बैठ सकता है, वही पहुंच सकता है।

तुमसे नहीं कहता कि संसार छोड़ो। कहता हूं कि ठीक बाजार में ही परमात्मा से मिलन होगा। तुमसे नहीं कहता कि भगोड़े बनो, क्योंकि मानता हूं मैं कि संसार चुनौती है परमात्मा को पाने की। संसार के साथ ही संघर्षरत जो शांत हो सकता है, उसकी शांति ही सच्ची है। और संसार में होकर जो संन्यस्त है, उसका संन्यास ही सच्चा है।

संसार छोड़ कर भाग गया संन्यासी तो वैसा है, जैसा एक अखबार ने, जो अपनी सौवीं वर्षगांठ मना रहा था, सारे देश में इश्तहार बांटे, विज्ञापन किया, कि जो भी देश का सबसे ज्यादा चरित्रवान व्यक्ति हो...सब लोग अपने-अपने चरित्र के संबंध में लिखें, जो सर्वाधिक चरित्रवान माना जाएगा उसे ही हम पुरस्कृत करेंगे, सम्मानित करेंगे। ये सौ वर्ष पूरे हुए हैं, इन सौ वर्षों की पूर्ति में हम इस देश के सर्वाधिक चरित्रवान व्यक्ति को सम्मानित करना चाहते हैं। क्योंकि वह समाचार-पत्र जो था, बड़ी नैतिक धारणाओं वाला समाचार-पत्र था, इसलिए उन्होंने यह विधि खोजी थी अपनी सौवीं वर्षगांठ मनाने की।

हजारों-लाखों पत्र आए। एक पत्र चुना गया। उस पत्र के लेखक ने लिखा था कि मैं न शराब पीता हूं, न धूम्रपान करता हूं, न पान खाता हूं, न मांसाहार, न अंडे। रूखी-सूखी रोटी, दाल-सब्जी, जैसी मिल जाए। कंकड़ भी पड़े हों तो एतराज नहीं। जितनी मिल जाए, उतनी बहुत। चोरी नहीं करता। बेईमानी नहीं करता। लूट-खसोट नहीं करता। किसी से दुर्व्यवहार नहीं करता। किसी को गाली नहीं देता। सिनेमा नहीं देखता, होटलों में नहीं जाता, जुआघरों में नहीं जाता। ऐसी फेहरिस्त थी बढ़ती, लंबी होती जाती। और अंत में उसने कहा था कि बस अब कुछ दिन की बात और है; जरा यहां से बाहर हो जाऊं, तब देखना। वह जेलखाने से लिख रहा था—कि जरा यहां से बाहर हो जाऊं, फिर देखना।

अब जेलखाने में सच्चरित्रता पैदा हो जाए तो आश्चर्य क्या! लेकिन जेलखानों की सच्चरित्रता का क्या मूल्य है? और तुम जिनको संन्यासी, साधु-संत कहते रहे हो, वे एक सूक्ष्म कारागृह में कैद हैं—अपने ही द्वारा निर्मित। तुम्हारी अपेक्षाओं और उनके अहंकारों, दोनों के द्वारा निर्मित एक सूक्ष्म कारागृह में कैद हैं।

अब जैन मुनि जुआ नहीं खेल सकता; खेलेगा तो कहां खेलेगा? श्रावक पीछे लगे रहते हैं, चौबीस घंटे नजर रखते हैं कि मुनि महाराज कहां हैं? बैठे ही रहते हैं अड्डा जमाए। मुझसे मिलने आना चाहते हैं जैन मुनि, मुझे खबर पहुंचाते हैं कि मिलना चाहते हैं, मगर आ नहीं सकते, क्योंकि श्रावक! अगर उनको पता चल जाए कि वहां गए तो हमारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जाए। कभी-कभी कोई आया भी है मिलने तो चोरी से आया है। जैन मुनि को चोरी से

मिलने आना पड़े! श्रावकों का ऐसा डर! और डर स्वाभाविक है, क्योंकि उनकी अपेक्षाएं टूटें तो तत्क्षण वे सम्मान समाप्त कर देते हैं। सम्मान की जगह अपमान आ जाता है।

एक जैन साध्वी मुझे मिलने आती थी। जैन साध्वियों के मुंह से बास आती है, क्योंकि दातौन नहीं करना। जैन साधुओं के मुंह से बास आती है, शरीर से बास आती है, क्योंकि स्नान नहीं करना। उसके मुंह से बास नहीं आई, वह मेरे बिलकुल पास बैठ कर बात कर रही थी। तो मैंने कहा कि और सब बातें पीछे होंगी, पहले तू मुझे यह बता कि तेरे मुंह से बास क्यों नहीं आ रही? उसने कहा: आपसे क्या छिपाना! उसने जल्दी से अपनी झोली में से, जो जैन साध्वियां रखती हैं, टुथपेस्ट निकाल कर मुझे बताया। छिपाए हुए थी, शास्त्र इत्यादि के नीचे दबाया हुआ था।

टुथपेस्ट भी चोरी से करना पड़ता है! क्योंकि अगर पता चल जाए श्रावकों को, बस भ्रष्ट हो गया साधु! जुआ खेलना तो दूर, शराब पीना तो दूर, कोकाकोला भी जैन मुनि छिपा कर रखते हैं। मैं जानता हूं, इसलिए कह रहा हूं। यह कोई चरित्र हुआ! इसका क्या मूल्य है? इसका दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है! स्नान नहीं कर सकते तो चोरी से गीला कपड़ा भिगो कर पूरे शरीर को रगड़ डालते हैं। उसकी भी मनाही है। मगर स्नान करेंगे तो दिखाई पड़ जाएगा। बाल गीले होंगे तो कोई कहेगा कि क्या हुआ! तो बस एक रूमाल को गीला करके शरीर को रगड़ लिया—स्पंज स्नान! मगर वह भी शास्त्रों के विपरीत है, वह भी चोरी से करना पड़ता है!

इस तरह के चरित्र को सम्हालने का मतलब यह है, तुम लोगों की अपेक्षाएं पूरी कर रहे हो! अंधों की अपेक्षाएं वे लोग पूरी कर रहे हैं, जिनको तुम समझते हो आंख वाले हैं! अंधों की अपेक्षाएं आंख वाले पूरी करते हों तो आंख वाले अंधों से भी ज्यादा बड़े अंधे हैं। कोई जागा हुआ व्यक्ति तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी नहीं कर सकता। हां, तुम्हारी अपेक्षाएं तोड़ेगा, हर तरह से तोड़ेगा। फिर भी जो सत्य के खोजी हैं, शायद इसीलिए कि कोई एक व्यक्ति है जो तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी नहीं करता, शायद इसीलिए खिंचे चले आएंगे। मगर सत्य के खोजी ही खिंचे चले आएंगे। दूसरे, जो अपनी अपेक्षाओं को पूरा करने का रस लेना चाहते हैं, जो दूसरों के चरित्रों के मालिक होना चाहते हैं...दिखाने को शिष्य मालूम पड़ते हैं, लेकिन वे गुरु के गुरु हैं, क्योंकि गुरु उनको देख कर चलता है कि शिष्य कहीं नाराज न हो जाए, कि शिष्य कहीं छोड़ कर न चला जाए, कि शिष्य कहीं कहने न लगे कि गुरु भ्रष्ट हो गए, कि इन्होंने दातौन कर ली, कि हमने अपनी आंख से दातौन करते देखा, कि इन्होंने स्नान कर लिया, कि इन्होंने दो बार भोजन ले लिया।

यह जो शिष्य की मान कर गुरु चल रहा है, यह दो कौड़ी का गुरु है! समाज की मान कर जो संत चल रहा हो, वह संत ही नहीं है। संतों के पास तो बस थोड़े से वे लोग इकट्ठे हो पाते हैं जो सब दांव पर लगाने को राजी हैं—जो जुआरी हैं।

तुम आ गए हो यहां, निश्चित ही किसी पुण्य के प्रताप से! और अब संन्यस्त भी हो गए हो तो अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करना, क्योंकि संन्यास यानी स्वतंत्रता। अब अपने व्यक्तित्व को अनुकरण मत बनाना। अब अपने व्यक्तित्व को निखारना। तुम जैसे हो, वैसे ही निखारना। किसी और की अपेक्षाएं पूरी करने को तुम पैदा नहीं हुए हो। तुम अपनी आत्मा

को संपूर्ण करने को पैदा हुए हो, किसी की अपेक्षाएं पूरी करने को पैदा नहीं हुए हो। फिर मान मिले कि अपमान, सत्कार मिले कि असत्कार, चिंता न करना।

एक ही जगत में उपाय है सत्य को पाने काः सम्मान-अपमान को बराबर समझना। चले जाना अपनी धुन में। उठना अपनी धुन में, बैठना अपनी धुन में। दुनिया क्या कहती है, क्या नहीं कहती है, इसकी फिक्र ही मत लेना। बस भीतर एक स्मरण रहे कि जो भी मैं करूं वह जागरूकता से करूं; मेरी जागरूकता जिस चीज में गवाही दे, वही करूं; और जिसमें मेरी जागरूकता गवाही न दे, वह न करूं। चाहे शास्त्र कहते हों कि करो, मगर मेरी जागरूकता कहती हो कि नहीं, तो शास्त्र गलत। चाहे शास्त्र कहते हों कि मत करो, लेकिन मेरी जागरूकता कहती हो कि करो, तो शास्त्र गलत। शास्त्र जहां मेरी जागरूकता से मेल खाते हों, बस वहीं सही हैं; और जहां मेरी जागरूकता के विपरीत जाते हों, वहां दो कौड़ी के हैं, उनका कोई मूल्य नहीं है।

जागरूकता शास्त्र है संन्यासी का। वही उसकी कसौटी है। वह तुम्हारे भीतर है। संन्यासी होने का निर्णय जागरूक होकर जीने का निर्णय है।

और तुम ठीक ही कहते होः

बनी रहे अंगूर लता यह, जिससे बनती है हाला।
बनी रहे यह माटी, जिससे बनता है मदिरा प्याला।
बने रहें ये पीने वाले, बनी रहे यह मधुशाला।

मधुशाला बनी ही रहती है; लोग बदलते जाते हैं। पीने वाले बदल जाते हैं, पिलाने वाले बदल जाते हैं; लेकिन मधुशाला कहीं न कहीं, पृथ्वी के किसी न किसी कोने में बनी ही रहती है। इसीलिए तो मनुष्य जी पा रहा है। इसीलिए तो मनुष्य के जीवन में थोड़ी सी सुगंध है। इतने युद्धों, इतनी हिंसाओं, इतनी राजनीतियों, इतनी जालसाजियों के बाद भी मनुष्य की आंखों में थोड़ी चमक है, थोड़ी गरिमा है। किसके कारण? कहीं कोई मधुशालाएं पृथ्वी पर चलती रहती हैं, जहां परमात्मा उतरता रहता है, जहां आकाश से अमृत झरता रहता है। कभी कोई बुद्ध, कभी कोई मोहम्मद, कभी कोई जीसस, कभी कोई जरथुस्त्र, कहीं न कहीं, किसी न किसी कोने में कुछ दीवाने इकट्ठे होते रहते हैं और पुकारते हैं परमात्मा को। परमात्मा बरसता है! बरसता रहा है! उन थोड़े से लोगों के कारण मनुष्य के जीवन में नमक है, नहीं तो तुम कभी के बेस्वाद हो गए होते। उन थोड़े से लोगों के कारण पृथ्वी हरी-भरी है, अन्यथा तुम कभी के पशुओं में वापस मिल गए होते। उन थोड़े से लोगों के कारण आदमी गौरवान्वित है और परमात्मा की तरफ पंख फैलाने की क्षमता शेष बनी है, मिट नहीं गई है।

मैं न रहूंगा, तुम न रहोगे; मधुशाला रहेगी। पीने वाले बदल जाएंगे, पिलाने वाले बदल जाएंगे, मधुशाला चलती रहती है। कभी इधर प्रकट होती है, कभी उधर प्रकट होती है; कभी इस रूप में, कभी उस रूप में; मगर मधुशाला नहीं मिटती।

रवींद्रनाथ ने कहा है कि जब भी मैं किसी बच्चे को पैदा होते देखता हूं तो झुक जाते हैं मेरे तन-प्राण परमात्मा के धन्यवाद में। और मेरे हृदय में यह बात गूंज उठती है कि हे प्रभु, तो तूने अभी भी आदमी पर भरोसा नहीं खोया! एक बच्चा फिर पैदा हुआ! तो अभी तुझे भरोसा है कि आदमी सम्हलेगा! अभी भी तूने आशा नहीं त्यागी!

आदमी को देखो तो आशा त्याग देनी थी परमात्मा को, कभी की त्याग देनी थी। अब हिटलर के बाद और देखने को क्या बचा था? और स्टैलिन के बाद देखने को और क्या बचा था? कभी की आशा छोड़ देनी थी—नादिरशाह और तैमूरलंग और चंगीजखान—कभी की आशा छोड़ देनी थी आदमी के बाबत।

रवींद्रनाथ ठीक कहते हैं : हर नया बच्चा जब पैदा होता है तो परमात्मा की खबर लाता है कि अभी परमात्मा फिर भी आशान्वित है। और यही एक बड़े अर्थों में भी घटता है—परमात्मा भेजता ही रहता है अपना मधु इस जगत में बंटने को। आशा नहीं छूटी है। आदमी जगेगा ही, यह भरोसा है। कब जगेगा, चाहे निश्चित न हो, लेकिन आदमी जगेगा ही। अगर कुछ आदमी जगे हैं तो सारे आदमी जग सकते हैं।

एक व्यक्ति बुद्ध हुआ तो सारे व्यक्तियों के बुद्ध होने की घोषणा हो गई! अब तुम सुन लोगे तो ठीक। अभी सुन लोगे तो ठीक। नहीं तो कल सुनोगे, परसों सुनोगे। इस बुद्ध से नहीं सुनोगे तो किसी और बुद्ध से सुनोगे। इस मधुशाला में नहीं पी पाए तो किसी और मधुशाला में पीओगे। मगर मधुशालाएं बनती रहती हैं, उतरती रहती हैं। स्थान बदल जाते हैं, लोग बदल जाते हैं; मगर इस जगत का संगीत वही है, एक ही है।

परमात्मा तुम्हें तलाश रहा है, तुम ही उसे नहीं तलाश रहे हो। यह आग एक तरफ से ही नहीं लगी है, दोनों तरफ से लगी है; तभी तो मजा है। तुम परमात्मा को तलाश रहे हो, परमात्मा तुम्हें तलाश रहा है। जब दोनों तरफ से आग बराबर जलती है तो मिलन हो जाता है। और जहां मिलन हो जाता है वहीं मधुशाला पैदा हो जाती है। जहां परमात्मा का किसी भी खोजी से मिलन हो ज़ाता है, जहां कोई भक्त भगवान में लीन हो जाता है और जहां किसी भक्त में भगवान लीन हो जाता है, वहीं मधुशाला खुल जाती है।

मधुशाला शब्द प्यारा है! जब भी कोई मंदिर जिंदा होता है तो मधुशाला होता है। जब कोई मधुशाला मर जाती है तो मंदिर हो जाती है। मरी हुई मधुशालाओं के नाम हैं—मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, सिनागॉग...। ये मरी हुई मधुशालाएं हैं। कभी इनमें भी रसधार बही। जब महावीर थे तो मधुशाला थी। जब महावीर गए तो जैन-मंदिर बचा; यह लाश है!

जब जीसस थे तो मधुशाला थी; नृत्य था, महोत्सव था। पीने वाले थे, पिलाने वाले थे। खूब ढाली जा रही थी। जब जीसस चले गए तो चर्च बचा। चर्च मरी हुई मधुशाला है। वहां अब पीने वाले भी नहीं हैं, पिलाने वाले भी नहीं हैं; बस एक याद रह गई है, एक स्मृति रह गई है। उसी स्मृति को ढोए जा रहे हैं।

जब नानक थे तो मधुशाला थी। फिर नानक गए तो मधुशाला गई। अब गुरु तो नहीं है, गुरुद्वारा है। और गुरु के बिना क्या गुरुद्वारा! किसका द्वार? अकेला द्वार ही रह गया, भीतर कुछ भी नहीं है।

तुर्किस्तान में मुल्ला नसरुद्दीन की कब्र है। और मुल्ला जब मरा तो वसीयत कर गया कि मेरी कब्र इस तरह से बनाना। बड़ी अजीब वसीयत की गई। कब्र अभी भी है बुखारा नगर के बाहर। रास्ते से गुजरते लोग अभी भी कब्र को देखते हैं और चौंकते हैं। जो भी कब्र के पास जाता है, चौंकेगा ही, मुल्ला इंतजाम ऐसा कर गया है! मुल्ला वसीयत कर गया है कि मेरी कब्र पर एक दरवाजा खड़ा कर देना—सिर्फ दरवाजा! दरवाजे पर बड़ा ताला जड़

देना और चाबी मेरे साथ कब्र में दबा देना और दरवाजे पर लिख देनाः बिना आज्ञा भीतर आना मना है। और भीतर आने की कोई अड़चन ही नहीं हैं, क्योंकि सिर्फ दरवाजा है, न कोई दीवाल है, न कोई घेरा है। कब्र खुली है चारों तरफ से, जहां से चाहो चले जाओ; मगर दरवाजा...उस पर ताला लटका है। कोई भी चौंक जाता है जो भी गुजरता है। वह भी रुक जाता है क्षण भर को कि मामला क्या है! भीतर आने की सख्त मनाही है। बिना आज्ञा भीतर नहीं आ सकते। बड़ा ताला लटका है। और सिर्फ दरवाजा खड़ा है! न कोई दीवाल है, न कोई घेरा है।

मुल्ला ने खूब मजाक किया। वह उसका आखिरी मजाक है।

ऐसा ही गुरुद्वारा रह गया—सिर्फ दरवाजा! न कोई भीतर है! संपदा तो खो गई, संपदा तो उड़ गई। सुवास उड़ जाती है। तुम फूलों को दबा लो किताबों में, वे सूखे दबे रह जाते हैं। अक्सर लोग कर लेते हैं यह काम। बाइबिलों में लोग अक्सर गुलाब दबाए होते हैं—सूखे गुलाब! न सुगंध है, न रंग है, न प्राण है—कुछ भी नहीं बचा है। न कोई रसधार बची है, सूखा हुआ गुलाब बाइबिल में दबा है।

मैं एक ईसाई मित्र के घर मेहमान था। उनकी बाइबिल खोली तो यह सूखा गुलाब मिला। मैंने कहा कि यह खूब रही। वे पूछने लगेः आपने यह क्यों कहा कि यह खूब रही? मैंने कहाः मैंने इसलिए कहा कि खूब रही, जैसा यह गुलाब है ऐसे ही बाइबिल के वचन भी हैं—सूखा गुलाब! ये वचन जीसस के ओंठों पर तो बड़े जिंदा थे! बस जीसस के ओंठों पर ही जिंदा हो सकते थे। ये वचन ऐसे हैं कि जीसस जैसे ओंठ पर ही जिंदा हो सकते हैं, और किसी ओंठ पर जिंदा नहीं हो सकते। जीसस के ओंठ पर तो ये वचन ऐसे थे जैसे गुलाब झाड़ी पर लगा हो। झाड़ी की जड़ें जमीन में रस पी रही हैं, और झाड़ी के पत्ते सूरज से रोशनी पी रहे हैं, हवाएं गुजरती हैं और झाड़ी सांस ले रही है—और उस पर गुलाब खिला है। जीसस के ओंठों पर तो ये वचन ऐसे थे—सूरज की रोशनी इनमें थी, जमीन का रस इनमें था, हवाओं की श्वास इनमें थी। परमात्मा इनके भीतर धड़क रहा था। यह तुमने ठीक ही किया, मैंने उनसे कहा कि यह तुमने सूखा हुआ गुलाब इसमें रख छोड़ा है बाइबिल में। यह तुम्हारी पूरी बाइबिल का प्रतीक है।

जब दुबारा उनके घर गया, उन्होंने गुलाब फेंक दिया था। मैंने पूछाः वह गुलाब कहां गया? उन्होंने कहा कि जब से आपने कहा, बड़ी बेचैनी होने लगी; जब भी मैं बाइबिल खोलूं, वह गुलाब दिखाई पड़े। मुझे आपकी याद आए, आपके वचन याद आएं। वह मैंने गुलाब तो फेंक दिया। मैंने कहाः उससे क्या होगा? बाइबिल के वचन अब भी सूखे गुलाब हैं।

सब शास्त्र सूखे गुलाब हैं। जब कृष्ण के मुंह पर गीता होती है, तो वह नाद, तो वह अपूर्व संगीत, तो वे परमात्मा से झरते हुए शब्द! और जब मोहम्मद कुरान गुनगुनाते हैं, तो वह तरन्नुम, वह अंदाजे-बयां, वह मोहम्मद की मौजूदगी! और जब एक मौलवी दोहराता है, तब कहां वह बात!

मधुशालाएं जब मर जाती हैं तो मंदिर, मस्जिदें, चर्च, गुरुद्वारे रह जाते हैं। ये कब्रें हैं। इन पर जाने वाले लोग भी मुर्दा हैं! जिंदा आदमी कोई जिंदा मंदिर तलाशता है—किसी जीसस को खोजता है, किसी मोहम्मद को, किसी महावीर को, किसी कृष्ण को।

कदम रखना सम्हल कर महफिले-रिंदां में ऐ जाहिद
यहां पगड़ी उछलती है, इसे मयखाना कहते हैं

कहा है कि हे विरागी महानुभाव! हे उपदेशक! हे धर्मगुरु!

कदम रखना सम्हल कर महफिले-रिंदां में ऐ जाहिद

पियक्कड़ों की महफिल में जरा सम्हल कर आना। सोच-समझ कर, विचार करके आना।

कदम रखना सम्हल कर महफिले-रिंदां में ऐ जाहिद
यहां पगड़ी उछलती है, इसे मयखाना कहते हैं

यहां शास्त्र जला कर राख कर दिए जाते हैं। यहां बड़ी-बड़ी मान्यताएं खंडित हो जाती हैं।

यहां पगड़ी उछलती है, इसे मयखाना कहते हैं

लेकिन जिसमें भी थोड़ी जान है, जिसमें अभी श्वासें चल रही हैं, वह ऐसा अवसर नहीं चूकता।

पीते हुए झिझकते हो फस्ले-बहार में
तुम भी 'निसार' आदमी हो किस खयाल के

और जब वसंत आया हो तो छोड़ो कसमें जो तुमने खाई थीं, छोड़ो व्रत-नियम, उपवास। जब वसंत द्वार पर आ गया हो तो भूल कर मदमस्त हो लो! क्योंकि फिर कौन जाने वसंत कब आए! और फिर कौन जाने वसंत आए, तुम होओ न होओ!

अजां हो रही है, पिला जल्द साकी
इबादत करूं आज मखमूर होकर

प्रार्थना भी कहीं बिना पीए की जाती है! और जिसने बिना पीए प्रार्थना की, उसकी प्रार्थना में पंख नहीं होते। उड़ती नहीं है। वहीं तड़फड़ा कर मर जाती है।

अजां हो रही है, पिला जल्द साकी

वह मस्जिद से अजान आने लगी। पियक्कड़ कहता है : जल्दी पिलाओ!

अजां हो रही है, पिला जल्द साकी
इबादत करूं आज मखमूर होकर

आज प्रार्थना में डूब जाऊं पूरी तरह तल्लीन होकर।

फस्ले-बहार आई, पियो सूफियो शराब
बस हो चुकी नमाज, मुसल्ला उठाइए

कब तक नमाज करते रहोगे यह मुसल्ला बिछा कर? बैठ कर नमाज जब कोई करता है तो मुसल्ला बिछाता है। खास ढंग से कपड़े को बिछा कर, उस पर खास ढंग से झुक कर...एक व्यवस्था से, एक ढंग, एक विधि के अनुसरण से नमाज की जाती है। और...

फस्ले-बहार आई, पियो सूफियो शराब

यह कोई मौका है विधि-विधानों का, औपचारिकताओं का, क्रियाकांडों का!

फस्ले-बहार आई, पियो सूफियो शराब
बस हो चुकी नमाज, मुसल्ला उठाइए

और जब कोई जीसस मिल जाए, और कोई मोहम्मद मिल जाए, और कोई बहाऊद्दीन या कोई जलालुद्दीन रूमी या कोई मंसूर या कोई कबीर या कोई यारी, तो समझ लेना—

बस हो चुकी नमाज, मुसल्ला उठाइए

फेंको-फांको ये कपड़े-लत्ते, फेंको-फांको ये विधि-विधान। पकड़ो हाथ यारी का! बनो यार यारी के! ताकि वह परम यार मिल सके, वह परम प्रियतम मिल सके।

गुजर गया अब वो दौर साकी, कि छुपके पीते थे पीने वाले
बनेगा सारा जहां मयखाना, हर कोई बादाख्वार होगा

आशा तो बुद्धों को यही रही है कि आज नहीं कल, छुप-छुप कर पीने की कोई जरूरत न रह जाएगी, कि सारा संसार, कि पृथ्वी के सारे लोग बादाख्वार होंगे, पियक्कड़ होंगे। इसी आशा में तो बुद्ध बोलते रहे, बोलते रहे, बोलते रहते हैं, बोलते रहेंगे। इस सारी पृथ्वी को मधुशाला बनाना है। और जब कोई डूबता है रसविमुग्ध होकर परमात्मा में, तभी कुछ पता चलता है।

तेरी फिक्र ने, तेरे जिक्र ने, तेरी याद ने वो मजा दिया
कि जहां मिला कोई नक्शे-पा, वहीं हमने सर को झुका दिया

और मजा ऐसा है कि जिसने परमात्मा का स्वाद ले लिया, वह मंदिर में भी झुक जाएगा, मस्जिद में भी झुक जाएगा, गुरुद्वारे में भी झुक जाएगा। गुरुद्वारे, मस्जिद इत्यादि की तो बात छोड़ो, राह पर पड़ा कोई भी पद-चिह्न मिल जाएगा, वहीं झुक जाएगा, क्योंकि उसे अब सिवाय परमात्मा के और कोई भी दिखाई नहीं पड़ता है।

तो एक तरफ मैं तुमसे कहता हूं कि मंदिर-मस्जिद में मत उलझना और दूसरी तरफ तुमसे कहता हूं कि जिस दिन पी लोगे, उस दिन सब मंदिर-मस्जिद तुम्हारे हैं। एक तरफ तुमसे कहता हूं कि कुरान और बाइबिल में मत उलझना और दूसरी तरफ तुमसे यह भी कहता हूं कि जिस दिन तुम पीकर, मखमूर होकर, डूब कर जानोगे, उस दिन कुरान भी तुम्हारी है, बाइबिल भी तुम्हारी है, गीता भी तुम्हारी है। क्योंकि उस दिन तुम्हारे ओंठ कृष्ण के ओंठ हो जाएंगे; फिर तुम जो भी बांसुरी बजाओगे, वह कृष्ण की ही बांसुरी होगी। फिर तुम्हारे ओंठ कुरान गाने में समर्थ हो जाएंगे।

तुम्हारा ही बुतखाना, काबा तुम्हारा
हैं दोनों घरों में उजाला तुम्हारा

फिर तो एक ही बात हो जाती है।

तुम्हारा ही बुतखाना, काबा तुम्हारा
हैं दोनों घरों में उजाला तुम्हारा

फिर उजाले की फिक्र होती है, फिर कौन फिक्र करता है कि मंदिर है कि मस्जिद है! ज्योति के दर्शन हो गए तो कौन चिंता करता है कि लालटेन के भीतर जल रही है ज्योति, कि मिट्टी के दीये में जल रही है ज्योति, कि सोने के दीये में जल रही है ज्योति। फिर मिट्टी और सोने के दीयों से कुछ लेना-देना नहीं है। फिर किसने दीया बनाया है...ज्योति दिख गई तो सब तरफ उसकी ज्योति ही दिखाई पड़ेगी। इन वृक्षों में उसकी ही ज्योति हरी है, उसकी ही ज्योति गुलाब में लाल है। उसकी ही ज्योति चांद-तारों में है। वही तुम्हारी आंखों में छिपा बैठा है।

बातें खयाले-यार में करता हूं इस तरह
समझे कोई कि आठ पहर हूं नमाज में

और फिर तो चौबीस घंटे नमाज है। फिर कौन मुसल्ला बिछाए! फिर तो भीतर ही भीतर बात चलती रहती है, गुनगुन होती रहती है।

बातें ख़याले-यार में करता हूं इस तरह
समझे कोई कि आठ पहर हूं नमाज में

फिर तो गुफ्तगू चलती रहती है। फिर तो ओंठ कंपते रहते हैं, बांसुरी बजती रहती है। चौबीस घड़ी सोते-जागते एक अंतर्धारा बहने लगती है—प्रार्थना की, अर्चना की, आराधना की!

शौके-नजारा था जब तक आंख थी सूरतपरस्त
बंद जब रहने लगी, पाए हकीकत के मजे

फिर तो आंख खोल कर भी देखने की जरूरत नहीं पड़ती। क्योंकि आंख खोलो तो उसकी प्रकृति, आंख बंद करो तो या मालिक! वही मालिक। आंख खोलो तो सृष्टि, आंख बंद करो तो स्रष्टा। और आंख बंद करने का मजा आंख खोलने के मजे से बहुत ज्यादा है। क्योंकि चित्र को देखना एक बात, और चित्रकार को देख लेना बात ही और! संगीत को सुनना, और फिर संगीतज्ञ को देख लेना! नर्तक की आवाज, घुंघरुओं की आवाज, और फिर नर्तक को देख लेना!

सूफी फकीर स्त्री राबिया अपने घर के भीतर बैठी है। सुबह हो गई है। हसन फकीर उसके घर मेहमान था, वह बाहर आया। उसने कहा: राबिया! तू भीतर बैठी क्या करती है? बाहर आ! देख कितना प्यारा सूरज निकला है। और बदलियां भी बड़ी मीठी हैं। और सुबह की बड़ी ताजी हवा है। और पक्षियों के गीत बड़े मधुर हैं। तू बाहर आ, भीतर क्या करती है?

हसन ने तो सोचा भी न था कि उत्तर जो आएगा वह ऐसा होगा! राबिया खिलखिला कर हंसी और उसने कहा: पागल हसन! तू ही भीतर आ, बाहर क्या करता है? क्योंकि जिसने सूरज बनाया, सूरज खूब प्यारा है, मगर मैं बनाने वाले को देख रही हूं! मैं उन हाथों को देख रही हूं जिन्होंने सूरज बनाया। मैं उन आंखों को देख रही हूं जिनसे आकाश जन्मा। मैं उस मालिक को देख रही हूं। तू उसके राज्य को देख रहा है। तू उसके फैलाव को देख रहा है। तू उसकी आभा देख रहा है, मैं उसकी परम ज्योति देख रही हूं। हसन, पागल हसन! तू ही भीतर आ!

और कहते हैं यह आवाज राबिया की हसन की जिंदगी में क्रांति बन गई! एक क्षण को जैसे झकझोर गया कोई। चला गया भीतर, आंख बंद करके बैठ गया। पहले दिन समाधि का अनुभव हुआ, पहली बार समाधि का अनुभव हुआ। चोट खा गया। प्यास जग गई कि ठीक तो बात है। कितना ही प्यारा हो सूरज, और कितने ही प्यारे हों फूल, और कितने ही प्यारे हों पक्षी, आखिर यह सब उसका खेल है, उसका फैलाव, उसकी सृष्टि! बनाने वाला कैसा होगा? चुनौती स्वीकार कर ली।

तुम ठीक कहते हो कि बने रहें ये पीने वाले, बनी रहे यह मधुशाला।

बनी रही है, बनी रहेगी। हां, पीने वाले भी बदलेंगे, पिलाने वाले भी बदलेंगे, लेकिन यह उपक्रम जारी रहता है। धर्म इसीलिए शाश्वत है।

आखिरी प्रश्न : प्रार्थनाएं परिणाम न लाएं तो क्या करें?

पहली बात, परिणाम की जब तक आकांक्षा है, तब तक प्रार्थना पूरी न होगी। या यूं कहो : परिणाम की जब तक आकांक्षा है, परिणाम न आएगा। प्रार्थना तो शुद्ध होनी चाहिए, परिणाम से मुक्त होनी चाहिए, फलाकांक्षा से शून्य होनी चाहिए। कम से कम प्रार्थना तो फलाकांक्षा से शून्य करो।

कृष्ण तो कहते हैं कि दुकान भी फलाकांक्षा से शून्य होकर करो; युद्ध भी फलाकांक्षा से शून्य होकर लड़ो। तुम कम से कम इतना तो करो कि प्रार्थना फलाकांक्षा से मुक्त कर लो। कम से कम प्रार्थना को तो पवित्र रहने दो! उस पर तो पत्थर न रखो फलाकांक्षा के। फलाकांक्षा के पत्थर रख दोगे, प्रार्थना का पक्षी न उड़ पाएगा। तुमने शिला बांध दी पक्षी के गले में।

अब तुम पूछते हो : 'प्रार्थनाएं परिणाम न लाएं तो क्या करें?'

परिणाम लाएंगी ही नहीं प्रार्थनाएं, जब तक परिणाम की आकांक्षा है। प्रार्थनाएं जरूर परिणाम लाती हैं, मगर तभी लाती हैं जब परिणाम की कोई आकांक्षा नहीं होती। यह विरोधाभास तुम्हें समझना ही होगा। यह धर्म की अंतरंग घटना है। यह उसका राजों का राज है। जिसने मांगा, वह खाली रह गया; और जिसने नहीं मांगा, वह भर गया।

तुम्हारी तकलीफ समझता हूं, क्योंकि प्रार्थना हमें सिखाई ही गई है मांगने के लिए। जब मांगना होता है कुछ, तभी लोग प्रार्थना करते हैं, नहीं तो कौन प्रार्थना करता है? लोग दुख में याद करते हैं परमात्मा को, सुख में कौन याद करता है? और संतों ने कहा है : जो सुख में याद करे, उसे मिल जाए। मगर सुख में याद करने का मतलब ही यही होता है कि अब कोई आकांक्षा नहीं होगी। सुख तो है ही, अब मांगना क्या है?

जब सुख में कोई प्रार्थना करता है तो प्रार्थना केवल धन्यवाद होती है। जब दुख में कोई प्रार्थना करता है तो प्रार्थना में एक भिखमंगापन होता है। सम्राट से मिलने चले हो भिखारी होकर, दरवाजों से ही लौटा दिए जाओगे। पहरेदार ही भीतर प्रवेश न होने देंगे। सम्राट से मिलने चले हो, सम्राट की तरह चलो। जरा सम्राट की चाल चलो!

सम्राट की चाल क्या है? न कोई वासना है, न कोई आकांक्षा है; जीवन का आनंद है और आनंद के लिए धन्यवाद है। जो दिया है वह इतना है, और क्या मांगना है? बिना मांगे इतना दिया है! एक गहन कृतज्ञता का भाव—वही प्रार्थना है।

मगर तुम्हारी अड़चन मैं समझा। बहुतों की अड़चन यही है। अधिक की अड़चन यही है। प्रार्थना पूरी नहीं होती तो शक होने लगता है परमात्मा पर। कैसा मजा है! प्रार्थना पर शक नहीं होता—कि मेरी प्रार्थना में कोई गलती तो नहीं हो रही? परमात्मा पर शक होने लगता है।

मेरे पास लोग आकर कहते हैं कि प्रार्थना तो पूरी होती ही नहीं है हमारी, जनम-जनम हो गए! तो परमात्मा है भी या नहीं?

परमात्मा पर शक होता है। देखना मजा! अपने पर शक नहीं होता—कि मेरी प्रार्थना में कहीं कोई भूल तो नहीं? नाव ठीक नहीं चलती तो मेरी पतवारें गलत तो नहीं हैं? दूसरा किनारा है या नहीं, इस पर शक होने लगता है।

मगर ध्यान रखो, जिस नदी का एक किनारा है, दूसरा दिखाई पड़े या न दिखाई पड़े, होगा ही, है ही। कोई नदी एक किनारे की नहीं होती। उस दूसरे किनारे का नाम निर्वाण है, इस किनारे का नाम संसार है। संसार और निर्वाण के किनारों के बीच जीवन की यह अंतःसलिला, यह गंगा बह रही है। लेकिन, अगर तुम ठीक से नाव न चलाओ तो दूसरा किनारा कभी न आएगा।

फकीर हुआ बायजीद। उसके एक शिष्य ने पूछा कि मैं सब उपाय करता हूं, लेकिन अकारथ जाते हैं। परमात्मा है भी, यह मुझे संदेह होने लगा है। जानते हो बायजीद ने क्या किया? अपने शिष्य को साथ लिया, कहाः मेरे साथ आ, झील पर चल। रात प्यारी है, पूरा चांद है, झील पर थोड़ी नौका भी चलाएंगे और तेरे प्रश्न का उत्तर भी हो जाएगा।

बायजीद नाव में बैठा, पतवार उठाई। नाव चलानी हो तो दोनों पतवारें चलानी होती हैं; एक ही पतवार से चलाने लगा। नाव गोल-गोल चक्कर काटने लगी। अब एक ही पतवार से चलाओगे तो नाव गोल-गोल चक्कर काटेगी ही। नाव जा नहीं सकती उस किनारे। शिष्य हंसने लगा। उसने कहाः आप यह क्या कर रहे हैं? आप क्या मजाक कर रहे हैं? ऐसे तो हम उस किनारे कभी न पहुंचेंगे।

बायजीद ने कहाः तुझे उस किनारे पर शक आता है या नहीं?

उसने कहाः उस किनारे पर कैसे शक आए? किनारा तो है। जब यह किनारा है तो वह किनारा भी है! कोई नदी, कोई झील एक किनारे की होती है? दूसरा किनारा भी है। शक का सवाल ही नहीं है दूसरे किनारे पर। आप एक पतवार से नाव खेने की कोशिश कर रहे हैं, इसलिए नाव चक्कर काटती रहेगी, गोल चक्कर काटती रहेगी। नाव एक दुष्चक्र हो जाएगी!

बायजीद ने दूसरी पतवार भी उठा ली। अब नाव चलने लगी, अब तीर की तरह चलने लगी। बायजीद ने कहा कि मैं तुझे यह कहना चाहता हूं कि तू अभी परमात्मा की तरफ जाने की जो चेष्टा कर रहा है, वह आधी-आधी है। एक ही पतवार से चलाने की कोशिश हो रही है। आधा मन तेरा इस किनारे से उलझा है, आधा मन उस किनारे जाना चाहता है। तू आधा-आधा है। तू कुनकुना-कुनकुना है। इसी से अड़चन हो रही है। और हमें यही सिखाया गया है—कुनकुनी जिंदगी।

अब तुम प्रार्थना भी करने गए, उसमें भी वासना डाल दी, बस आधा-आधा हो गया। यह आधा-आधापन छोड़ो। वासना करनी हो तो पूरी वासना करो। तो पूरी वासना भी कल्याणदायी है, मंगलदायी है। प्रार्थना करनी हो तो पूरी प्रार्थना करो। तो पूरी प्रार्थना भी मंगलदायी है।

लज्जते-काम और तेज करो
तल्खि-ए-जाम और तेज करो
जेरे-दीवार आंच कम-कम है
शोला-ए-बाम और तेज करो
उस तपिश को जो खूं रुलाती है
सहर-ओ-शाम और तेज करो

पए-तक्मीले-पुख्ताकारि-ए-शौंक
हवसे-खाम औंर तेज करो
हम पे हो जाए खत्म नाकामी
सई-ए-नाकाम औंर तेज करो
जादा खुद भी हैं साजिशे-खमो-पेच
साजिशे-गाम औंर तेज करो
सुस्त-गामी हमें पसंद नहीं
रक्से-अय्याम औंर तेज करो
गर्दिशे-वक्त ले न डूबे कहीं
गर्दिशे-जाम औंर तेज करो
'अख्तर' अपने मजाके-शेरी में
रंगे-खय्याम औंर तेज करो

तेजी लाओ। समग्रता लाओ।

लज्जते-काम औंर तेज करो

इच्छा के स्वाद को और तेज करो, अगर इच्छा करनी है।

तल्खि-ए-जाम औंर तेज करो

अगर मदिरा ही पीने चले हो तो ढालो और। डरो मत अब मदिरा के तिक्त स्वाद से।

तल्खि-ए-जाम औंर तेज करो
पए-तक्मीले-पुख्ताकारि-ए-शौंक

उन्माद की परिपक्वता के लिए...पागलपन पूरा होना चाहिए। उसकी भी एक प्रौढ़ता होती है।

पए-तक्मीले-पुख्ताकारि-ए-शौंक
हवसे-खाम औंर तेज करो

यह कच्ची लोलुपता से नहीं चलेगा। अगर वासना करनी है तो पूरी; और प्रार्थना करनी है तो पूरी।

सुस्त-गामी हमें पसंद नहीं

ऐसे क्या धीरे-धीरे चलना? ऐसे क्या एक टांग इधर, एक टांग उधर! एक पंख इधर, एक पंख उधर!

सुस्त-गामी हमें पसंद नहीं
रक्से-अय्याम औंर तेज करो

समय के नृत्य को और तेज करो।

गर्दिशे-वक्त ले न डूबे कहीं
गर्दिशे-जाम औंर तेज करो

समय चूका जा रहा है, जल्दी करो! तेजी लाओ!

'अख्तर' अपने मजाके-शेरी में

रंगे-रव्याम और तेज करो

और एक अपूर्व घटना घटती है जब कोई भी चीज अपनी परिपूर्णता पर होती है, अपनी पूरी त्वरा पर। सौ डिग्री पर जब पानी उबलता है तो भाप बन जाता है। किसी भी चीज को तुम सौ डिग्री पर ले आओ, और तुम्हारा अहंकार तिरोहित होने लगेगा। और जहां अहंकार तिरोहित होता है, वहीं प्रार्थना है।

मयकदा था, चांदनी थी, मैं न था
इक मुजस्सम बेखुदी थी, मैं न था
इश्क जब दम तोड़ता था, तुम न थे
मौत जब सर धुन रही थी, मैं न था
तूर पर छेड़ा था जिसने आपको
वो मेरी दीवानगी थी, मैं न था
वो हसीं बैठा था जब मेरे करीब
लज्जते-हमसायगी थी, मैं न था
मयकदे के मोड़ पर रुकती हुई
मुद्दतों की तश्नगी थी, मैं न था

जब प्यास पूरी होती है, तुम नहीं होते फिर।

मयकदे के मोड़ पर रुकती हुई
मुद्दतों की तश्नगी थी, मैं न था

जन्मों-जन्मों की प्यास इकट्ठी करो। वही मुड़े, वही जाए मधुशाला में, तुम नहीं जाना!

मयकदा था, चांदनी थी, मैं न था

मधुशाला हो, चांद हो, चांदनी हो, लेकिन तुम नहीं—बस उसी घड़ी संक्रांति का क्षण आ गया।

वो हसीं बैठा था जब मेरे करीब
लज्जते-हमसायगी थी, मैं न था

तुम हो, उससे ही आकांक्षाएं उठती हैं, मांगें उठती हैं, अपेक्षाएं उठती हैं। और जहां अपेक्षा है, वहां प्रार्थना कभी पूरी नहीं होती।

तुम पूछते हो : 'प्रार्थनाएं परिणाम न लाएं तो क्या करें?'

अड़चन तुम्हारी साफ है। तुम्हारी अकेले की नहीं, करीब-करीब सारी दुनिया की अड़चन यही है। परिणाम की आकांक्षा जाने दो। सिर्फ प्रार्थना करो। प्रार्थना अपने में ही अपना लक्ष्य है। नहीं तो रोओगे। नहीं तो सदा पछताओगे। और धीरे-धीरे रोते-रोते ईश्वर पर संदेह पैदा होगा। आखिर आदमी की सामर्थ्य है झेलने की, धैर्य की!

काम आ सकें न अपनी वफाएं तो क्या करें
इक बेवफा को भूल न जाएं तो क्या करें

मुझको यह ऐतिराफ दुआओं में हैं असर
जाएं न अर्श पर जो दुआएं तो क्या करें
इक दिन की बात हो तो उसे भूल जाएं हम
नाजिल हों दिल पर रोज बलाएं तो क्या करें
जुल्मत-बदोश हैं मेरी दुनिया-ए-आशिकी
तारों की मशअलें न चुराएं तो क्या करें
शब भर तो उनकी याद में तारे गिना करें
तारे से दिन को भी नजर आएं तो क्या करें
अहदे-तरब की याद में रोया किए बहुत
अब मुस्कुरा के भूल न जाएं तो क्या करें
अब जी में हैं कि उनको भुला कर ही देख लें
वो बार-बार याद जो आएं तो क्या करें
वादे के ऐतिबार में तिस्कीने-दिल तो हैं
अब फिर वही फरेब न खाएं तो क्या करें
तर्के-वफा भी जुर्मे-मोहब्बत सही 'अख्तर'
मिलने लगें वफा की सजाएं तो क्या करें

अड़चन आएगी। मांगोगे तो अड़चन आएगी। तो सवाल उठेगा—

काम आ सकें न अपनी वफाएं तो क्या करें
इक बेवफा को भूल न जाएं तो क्या करें
मुझको यह ऐतिराफ दुआओं में हैं असर
जाएं न अर्श पर जो दुआएं तो क्या करें

अगर आकाश तक न पहुंचती हों तुम्हारी प्रार्थनाएं तो प्रश्न उठेगा। मगर जरा अपनी प्रार्थनाओं का गला देखो! उनमें तुमने बहुत बड़े-बड़े पत्थर बांध दिए हैं। आकाश तक उड़ने की क्षमता ही तुमने छीन ली है। पत्थर उड़ नहीं सकते।

मांगें वजनी हैं, क्योंकि मांगें सभी पार्थिव हैं। जो भी तुम मांगोगे, वही पार्थिव होगा, छोटा होगा, ओछा होगा। मांगोगे ही क्या? धन मांगोगे, पद मांगोगे, स्वास्थ्य मांगोगे, लंबी उम्र मांगोगे, सुंदर स्त्री मांगोगे, पुरुष मांगोगे, बेटे मांगोगे, धन मांगोगे—क्या मांगोगे? ये सब छोटी पार्थिव बातें हैं। ये सब चट्टानें हैं। गला घुट जाएगा प्रार्थना का। फिर नहीं आकाश तक तुम्हारी प्रार्थनाएं पहुंच पाएंगी।

मांग को जाने दो और फिर देखो मजा! मांग को छोड़ो और फिर देखो मजा! इधर प्रार्थना की नहीं कि उधर पहुंची नहीं। प्रार्थना करते-करते ही पूरी हो जाती है। प्रार्थना उठते-उठते ही ऐसा अमृत बरसा जाती है! उस क्षण में द्वार खुल जाते हैं रहस्यों के। तुम मिट जाते हो, परमात्मा ही होता है।

पूछते हो: 'क्या करें?'

फिर-फिर करो प्रार्थना, और-और करो प्रार्थना। अब परिणाम छोड़ कर करो।

किए आरजू से पैंमां, जो मआल तक न पहुंचे
शब-ओ-रोज-आशनाई, मह-ओ-साल तक न पहुंचे
वह नजर बहम न पहुंची कि मुहीते-हुस्न करते
तेरी दीद के वसीले खद-ओ-खाल तक न पहुंचे
वही चश्मा-ए-बका था, जिसे सब सराब समझे
वही ख्वाब मोतबर थे, जो खयाल तक न पहुंचे
तेरा लुत्फ वज्हे-तस्कीं, न करारे-शरहे-गम से
कि हैं दिल में वो गिले भी, जो मलाल तक न पहुंचे
कोई यार जां से गुजरा, कोई होश से न गुजरा
ये नदीमे-यक-दो-सागर, मेरे हाल तक न पहुंचे
चलो 'फैंज' दिल जलाएं, करें फिर से अर्जे-जानां
वह सुखन जो लब तक आए, पे सवाल तक न पहुंचे

क्या करें, पूछते हो!

चलो 'फैंज' दिल जलाएं, करें फिर से अर्जे-जानां

उस प्यारे को फिर पुकारें, फिर दिल जलाएं। फिर प्राणों की आरती बनाएं। उस प्रियतम से फिर प्रार्थना करें। मगर अब परिणाम नहीं। अब प्रार्थना अपने में लक्ष्य हो।

चलो 'फैंज' दिल जलाएं, करें फिर से अर्जे-जानां
वह सुखन जो लब तक आए, पे सवाल तक न पहुंचे

प्रार्थना शब्दों में नहीं होती। तुम्हारे आंतरिक शून्य का ही दूसरा नाम प्रार्थना है। प्रार्थना में झुक जाते हो तुम। कहने को क्या बचता है? कहने को क्या है? शब्द छोटे हैं, प्रार्थना समाएगी कैसे शब्दों में? न तो मांग होती है, न शब्द होते हैं—एक समर्पण का भाव होता है। एक अर्पित दशा होती है। एक झुकना होता है। उस झुकने में ही सब पाना हो जाता है।

चूकते रहोगे, जब तक मांगते रहोगे। अब मांग छोड़ो। अब जरा मांग छोड़ कर देखो। जरा इस प्रार्थना का भी स्वाद लो जो मैं तुमसे कह रहा हूं!

चलो 'फैंज' दिल जलाएं, करें फिर से अर्जे-जानां
वह सुखन जो लब तक आए, पे सवाल तक न पहुंचे

फिर से पुकारें। फिर प्रार्थना करें। नई तर्ज सीखें प्रार्थना की, नई शैली अपनाएं।

प्रार्थना प्रार्थना के निमित्त, बस फिर प्रार्थना में कोई रुकावट नहीं है। फिर प्रार्थना ही परमात्मा हो जाती है!

आज इतना ही।

प्रवचन

मरिके यारी जुग-जुग जीया

बिन बंदगी इस आलम में, खाना तुझे हराम है रे।
बंदा करै सोई बंदगी, खिदमत में आठों जाम है रे।
यारी मौला बिसारिके, तू क्या लागा बेकाम है रे।
कुछ जीते बंदगी कर ले, आखिर को गोर मुकाम है रे।

गुरु के चरन की रज लैके, दोउ नैन के बीच अंजन दीया।
तिमिर माहिं उजियार हुआ, निरंकार पिया को देखि लीया।।
कोटि सुरज तंह छपे घने, तीनि लोक धनी धन पाइ पीया।
सतगुरु ने जो करी किरपा, मरिके यारी जुग-जुग जीया।।

तब लग खोजे चला जावै, जब लग मुद्दा नहिं हाथ आवै।
जब खोज मरै तब घर करै, फिर खोज पकरि के बैठ जावै।।
आप में आप को आप देखै, और कहूं नहिं चित्त जावै।
यारी मुद्दा हासिल हुआ, आगे को चलना क्या भावै।।

ये हवाएं, यह सितारों का सुहाना साया
आह यह खुंकी, यह ठंडक, यह उदासी, यह गुदाज
तैरती फिरती हैं पिछले की रसीली आवाज
डालियां ओस की बूंदों से लदी जाती हैं
चांदनी कोह के माथे से उतर आई है
यह घनी रात, यह महकी हुई अफसुर्दा फजा
दूर तालाब के मंजर की सलोनी रंगत
फर्श पर लेटा हुआ नील गगन हो जैसे
यह शबे-माह दुआओं में मगन हो जैसे
सुरमई धुंध में लिपटा हुआ बोझल मंजर
गुल जमीनों की खामोशी में यह सुर, यह सरगम
ये चट्टानें, ये तराशीदा नगीं फितरत के
यह खुनक नर्म हवाओं की चटीली आवाज
तूले-हिज्रां वो मसीहा है कि जिसके हाथों
दिल के दुखने का भी अंदाज बदल जाता है
नुकरई गर्द में चुपचाप खड़े हैं अशजार
जुगनू उड़ते हैं कि सीले हुए शोलों की लपक
तारे जिस तरह घनी झाड़ियों की गोद भरें

फैलती जाती हैं सायों की मुकद्दस महकें
करवटें लेती हैं हरियाली की सोंधी लपटें
यह सिजल रैन, यह संगीत, यह तारों की फबन
कौन सुन पाएगा फितरत की जबाने-मासूम
जाने कब दीदा-ए-इन्सां में धनक उतरेगी
ऐ मेरी झूमती, इठलाती जमीं करवट ले
दिले-हर जर्रा धड़कता है कहीं आहट ले
दामने-कोह में अलगोजे का लहरा गूंजा
कोई चरवाहा दुखे दिल को लिए जागा है
कितने पुरदर्द हैं सुर, कितनी हाजीं है यह अलाप
जिस तरह चोटें रगे-जां की चमकती जाएं
चांद लचकाता किरनों के चमकते हुए तीर
किस सुयम्बर के रचाने का तमन्नाई है
रसमसे जंगलों की नींद में डूबी हुई लय
रगे-मंजर में फजा-ए-दिले-शब बोलती है
अधखिले गुंचों में शबनम की तरी डोलती है
यह फजा रसभरी कलियों की गिरह खोलती है
यह खुनक रात सितारों के गुहर रोलती है
सांवली चांदनी, मदमाती छलक पड़ती है
इन हवाओं में गुलाबी सी छलक पड़ती है
टिमटिमाती हैं कहीं दूर चरागों की लवें
रहगुजर नींद भरी आंखों से यूं तकती है
कि पशेमां न हो मेहमाने-सुबुकगाम कोई
वज्अ-ए-जादा पे न आए कहीं इलजाम कोई
यह सरे-चर्ख दमकता हुआ महताब नहीं
रात का नाग है काढ़े हुए मुकैश का फन
गीत पे सन्नाटे की बदमस्त हुआ जाता है
झूम-झूम उठती है लहराई हुई चंद्रकिरन
यह उदाहट, यह धुंधलका, यह कसक, यह महकार
कुंदनी पंख समेटे हुए तारों के बदन
अर्श के नील में पानी में घुले जाते हैं
ओस खाए हुए रुखसार सबा की रंगत
पौ का छलका हुआ शफ्फाक लहू है कि नहीं
महका-महका हुआ सोने का धुआं छाया है
किस्मते-शर्के-हसीं जाग रही है शायद
मेरी महबूब जमीं जाग रही है शायद

प्रकृति परमात्मा का प्रकट रूप है।
परमात्मा है आत्मा तो प्रकृति है शरीर।
परमात्मा है प्रेमी तो प्रकृति है प्रेयसी।
परमात्मा है गायक तो प्रकृति है गीत।
परमात्मा है वादक तो प्रकृति है उसका वादन।
और परमात्मा है नर्तक तो प्रकृति है उसका नृत्य।

जिसने प्रकृति को न पहचाना, उसे परमात्मा की कोई याद न कभी आई है, न कभी आएगी। जिसने प्रकृति को धुत्कारा, जिसने प्रकृति को इनकारा, वह परमात्मा से इतना दूर हो गया कि जुड़ना असंभव है। फूलों में अगर उसकी झलक न मिली, तो पत्थर की मूर्तियों में न मिलेगी। चांद-तारों में अगर उसकी रोशनी न दिखी, तो मंदिर में आदमी के हाथों से जलाई हुई आरतियां और दीये क्या खाक रोशनी दे सकेंगे! और हवाएं जब गुजरती हैं वृक्षों से, उनके गीत में अगर उसकी पगध्वनि न सुनाई पड़ी, तो तुम्हारे भजन और तुम्हारे कीर्तन, सब व्यर्थ हैं।

प्रकृति से पहला नाता बनता है भक्त का। प्रकृति से पहला नाता, फिर परमात्मा से जोड़ हो सकता है। प्रकृति उसका द्वार है, उसका मंदिर है।

तुम परमात्मा को तो चाहते रहे हो, लेकिन प्रकृति को इनकार करते रहे हो। इसलिए परमात्मा चाहा भी गया इतना सदियों-सदियों तक और पाया भी नहीं गया।

प्रार्थना तुम्हारी झूठी हो जाती है, क्योंकि तुम्हारी प्रार्थना में प्रेम की भनक नहीं होती, प्रेम की छनक नहीं होती, प्रेम की महक नहीं होती। तुम्हारी प्रार्थना झूठी हो जाती है, क्योंकि तुम्हारे ओंठों से तो उठती है, लेकिन तुम्हारे हृदय से नहीं आती। तुम कवि तो हो जाते हो, लेकिन ऋषि नहीं हो पाते। तुम बिठा लेते हो किसी तरह शब्दों के छंद, लेकिन तुम्हारे प्राण उन छंदों में गाते नहीं। तुम्हारे प्रेम और तुम्हारी प्रार्थना और तुम्हारे प्राणों का रस तुम्हारे छंदों में नहीं होता। तो तुम वीणा भी बजा लेते हो, लेकिन प्राण नहीं पड़ते। तुम आरती भी उतार लेते हो, और तुम जैसे थे वैसे के वैसे रह जाते हो। न तुम्हारी धूल झरती, न तुम्हारा स्नान होता, न तुम नये होते, न तुम ताजे होते। न तुम्हारी जिंदगी में कोई नई लौ, कोई नया जागरण आता है। कितनी बार तो तुम मंदिर और मस्जिद में प्रार्थना कर आए हो! कितना तो तुम सिर पटक चुके हो न मालूम कितने-कितने दरवाजों पर! फिर भी कुछ तो न हुआ, और जिंदगी हाथ से निकली जाती है!

और परमात्मा इतने करीब है कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि उसी की हवाओं ने तुम्हें घेरा है, कि तुम श्वास लेते हो तो वही है, कि तुम्हारा दिल धड़कता है तो वही है, कि तुम उठते हो तो उसमें, कि तुम बैठते हो तो उसमें, कि तुम जागते हो तो उसमें, कि तुम सोते हो तो उसमें, कि तुमने खाया भी उसे है, तुमने पीया भी उसे है, तुमने ओढ़ा भी उसे है—वही है!

मगर तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरुओं ने तुम्हें प्रकृति से दुश्मनी सिखा दी। और वहीं उन्होंने परमात्मा और तुम्हारे बीच एक ऐसा पहाड़ उतार दिया, एक ऐसी खाई खोद दी, कि जिसको पार करना असंभव है, कि जिस पर सेतु बांधना असंभव है। क्योंकि जिससे सेतु बनता था, उसका ही इनकार कर दिया गया। प्रकृति सेतु है।

तो जिसके हृदय में सुबह के उगते सूरज को देख कर नमस्कार नहीं उठता, उसकी नमाज झूठी है। और जिसके हृदय में रात तारों से भरे हुए आकाश को देख कर मस्ती नहीं छा जाती, उसकी प्रार्थना दो कौड़ी की है। सागर पर लहरें जब नाचती हैं और तुम भी अगर न नाच उठो, तो तुम कभी भी धर्म का अर्थ न समझ पाओगे। शास्त्रों को समझ लो, शब्दों को समझ लो, मगर अर्थ चूका का चूका रह जाएगा।

आज के ये वचन यारी के, प्रार्थना के संबंध में हैं। और प्रार्थना के संबंध में पहली बात मैं तुमसे कह दूं—प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता ही तुम्हें धीरे-धीरे, जो छिपा है, प्रच्छन्न है, अप्रकट है, उसके बोध से भरेगी।

उपनिषद के ऋषियों के वचन तुम कंठस्थ कर लो। प्यारे वचन हैं। कंठस्थ करोगे तो तुम्हें भी अच्छा लगेगा। मगर बस तोतों की रटंत होगी! पंडित हो जाओगे, प्रज्ञावान नहीं। कुछ बात, असली बात की कमी रह जाएगी। कुछ चूका-चूका होगा। शब्द तो सब वही होंगे जो उपनिषद में हैं, मगर प्राण कहां से लाओगे? आत्मा कहां से लाओगे? आंखें कहां से लाओगे?

काश, इतना आसान होता कि गुरुग्रंथ पढ़ते और तुम गुरु हो जाते! काश, इतना आसान होता कि तुम कुरान कंठस्थ कर लेते और परमात्मा का पैगाम तुम्हारे भीतर गूंज उठता! तो दुनिया कभी की धार्मिक हो गई होती! सारी पृथ्वी धर्म से भर गई होती! इतना आसान नहीं। इतना उधार नहीं है परमात्मा।

धर्म जीवित होता है तो नगद होता है। और नगद का अर्थ है—तुम्हारे हृदय से उठना चाहिए। तुम्हारे प्राणों के प्राण से आवाज आनी चाहिए। ऊपर से मत थोपो प्रार्थनाएं, भीतर जगाओ। यही भेद है सदगुरु का और मिथ्यागुरु का। मिथ्यागुरु थोप देता है प्रार्थना तुम्हारे ऊपर—एक क्रियाकांड तुम्हें दे देता है। सदगुरु तुम्हारे प्राणों को जगाता है, छेड़ता है। तुम्हारे भीतर पड़ी तानों को जन्माता है। सदगुरु, तुम्हारे भीतर जो है, उसी को उभारता है, निखारता है। तुम्हें जिसका पता नहीं है और जो तुम्हारे भीतर है, उससे ही तुम्हारी पहचान करवाता है।

कोशिशे-नामा-ओ-पैगाम बजा है लेकिन
फुर्सते-नामा-ओ-पैगाम कहां से लाऊं
दौरे-पैमाना-ए-इशरत है बहुत खूब मगर
बदले-गर्दिशे-अय्याम कहां से लाऊं
इन्किलाबाते-शबो-रोज के गमखाने में
जुल्फो-रुख की सहरो-शाम कहां से लाऊं
सारी दुनिया मुझे बेताब नजर आती है
मैं तेरे वास्ते आराम कहां से लाऊं
जिस तरफ देखिए वीरानी सी वीरानी है
शौके-तज्ईने-दरो-बाम कहां से लाऊं
तू ही कह दे कि तेरी नजरे-मोहब्बत के लिए
आशिकी की हवसे-खाम कहां से लाऊं

शाइरी खुद मेरी फितरत का तकाजा है मगर
मस्तिए-हाफिज-ओ-खय्याम कहां से लाऊं

गीत भी तुम बना लो, तुकबंदी होगी।

मस्तिए-हाफिज-ओ-खय्याम कहां से लाऊं

हाफिज और उमरखय्याम की मस्ती तुम कहां से लाओगे? उमरखय्याम की रुबाइयात भी रच लो, मगर फिर भी खाली बोतल होगी, उसमें शराब न होगी। और बोतल कितनी ही कीमती हो, सोने जड़ी हो, हीरे जड़ी हो, अगर उसके भीतर शराब न हो तो दो कौड़ी की है। ऐसी ही तुम्हारी प्रार्थनाएं हैं—सुंदर, प्यारी, चमकती, दमकती, सजी-संवरी—मगर भीतर कुछ भी नहीं है।

शाइरी खुद मेरी फितरत का तकाजा है मगर
मस्तिए-हाफिज-ओ-खय्याम कहां से लाऊं

हाफिज और खय्याम की मस्ती भी आ सकती है, लेकिन बाहर से न आएगी। तुम्हारे भीतर ही एक झरना है। उसी झरने से तो तुम जी रहे हो। वही झरना तो तुम्हारी चेतना है। उसी झरने को प्रकट करना है। कोई सोया है तुम्हारे भीतर, उसे आवाज देनी है। उसे ललकार देनी है। उसे चुनौती देनी है। और वह उठ आए तो बंदा पैदा होता है, तो बंदगी पैदा होती है।

बिन बंदगी इस आलम में, खाना तुझे हराम है रे।

यारी कहते हैं कि अगर प्रार्थना पैदा न हो, तो जीना बिलकुल व्यर्थ है।

बिन बंदगी इस आलम में, खाना तुझे हराम है रे।

फिर एक श्वास लेनी भी बोझ है। भोजन करना भी हराम है। क्योंकि बंदगी नहीं है तो जिंदगी कहां? बंदगी ही जिंदगी है। जिन्होंने जाना है, सभी ने यही कहा है। सभी जानने वाले इस संबंध में एकमत हैं। सबै सयाने एकमत! और उनका एकमत क्या है? कि जहां बंदगी है, वहां जिंदगी है। बंदगी नहीं तो तुम एक लाश ढो रहे हो! तुम मुर्दा हो! चल लेते हो, उठ लेते हो, खा लेते हो, सो लेते हो, इससे मत समझ लेना कि तुम जीवित हो। जन्म मिला है तुम्हें, अभी जीवन नहीं। और जन्म मिला है तो मृत्यु भी मिल जाएगी। मगर जन्म और मृत्यु के बीच में जीवन हो, यह कोई अनिवार्य नहीं है। जीवन जगाना होता है। जन्म तो अवसर है। मृत्यु है अवसर का छिन जाना।

मगर अवसर को बहुत ही कम लोग उपयोग कर पाते हैं। जमीन ही पड़ी रहती है, गुलाब कभी लगते नहीं। गुलाब बोओ तो लगें। श्रम लो तो धरती सुवास से भरे, सुगंध छूटे। श्रम लो तो धरती रंगीन हो, दुल्हन बने, हरी साड़ियां ओढ़े। लाल फूल झलमलाएं। सुवास उड़े हवाओं में। मौज हो, मस्ती हो, उत्सव हो।

पर जमीन ऐसी भी पड़ी रह जा सकती है। और यह भी हो सकता है: फूलों के बीज भी तुम्हारे पास थे, जमीन भी तुम्हारे पास थी, जल की भी कोई कमी न थी; फिर भी सब उदास रह गया, व्यर्थ रह गया। तुमने कभी बीज जमीन में न डाले। तुमने कभी बीजों को पानी से न सींचा। तुमने कभी कोई इस बात का स्मरण ही न लिया कि जीवन मिलता नहीं है, निर्मित करना होता है; सृजन है।

शब्द तो सभी के पास हैं, लेकिन सभी कवि नहीं हैं। और पैर भी सभी के पास हैं, लेकिन सभी नर्तक नहीं हैं। और अंगुलियां भी सभी के पास हैं, इससे वीणा न छिड़ जाएगी। और वीणा भी सभी के पास है, मैं तुमसे कहता हूं; मगर तुम्हारी जिंदगी में कहीं कोई संगीत नहीं है, कोई रस तुम्हारे जीवन में बहता नहीं है। तुमने जन्म को ही सब समझ लिया।

जन्म मूल्यवान है, लेकिन उसका मूल्य इसी में है कि जीवन बन जाए। जीवन बनाना होता है। जीवन एक कला है! जीवन ऐसे ही नहीं मिलता। जीवन साधना है, श्रम है। और उस साधना के बिना तुम जी भी लोगे, और तुम्हें भ्रांति भी रहेगी कि जीए, लेकिन तुम धोखा खा गए! असली जन्म तो तब होता है जब तुम्हें अपने भीतर छिपे परमात्मा का अनुभव होता है। और उस अनुभव की यात्रा ही बंदगी है। उस अनुभव की यात्रा का नाम ही प्रार्थना है।

बिन बंदगी इस आलम में, खाना तुझे हराम है रे।

सीधी-सीधी बात कह देते हैं यारी, एक ही चीज मूल्यवान है: प्रार्थना। और प्रार्थना क्या है?

छनती हुई नजरों से जज्बात की दुनियाएं
बेख्वाबियां, अफसाने, महताब, तमन्नाएं
कुछ उलझी हुई बातें, कुछ बहके हुए नग्मे
कुछ अश्क जो आंखों से बेवजह छलक जाएं

और प्रार्थना क्या है? कुछ आंसू, जो बेवजह, बिना किसी कारण के, किसी अहोभाव में आंखों से छलक जाएं!

कुछ अश्क जो आंखों से बेवजह छलक जाएं
कुछ उलझी हुई बातें, कुछ बहके हुए नग्मे

प्रार्थना गणित नहीं है, प्रेम है; हिसाब नहीं है, तर्क नहीं है। और तुमने प्रार्थना के भी हिसाब बना लिए हैं। तुमने हवन और यज्ञ के हिसाब बना लिए हैं, क्रियाकांड बना लिए हैं।

कुछ उलझी हुई बातें...

जब तुम अस्तित्व के साथ कुछ बात करने में लीन हो जाते हो, जब तुम वृक्षों से बोलते हो, चांद-तारों से गुफ्तगू करते हो, कि सूरज को सुबह-सुबह नमस्कार करते हो...

कुछ उलझी हुई बातें...

ये बातें उलझी हुई ही होंगी। समझदार चांद-तारों से बातें नहीं करते। समझदार रुपये गिनते हैं, सिक्के जमा करते हैं। समझदार पद की यात्रा करते हैं; महत्वाकांक्षा, सफलता, यश, ये उनकी असली मंजिलें हैं। नासमझ चांद-तारों से बातें करते हैं। नासमझ, पंख नहीं हैं, तो भी आकाश में उड़ते हैं।

प्रार्थना गुफ्तगू है, संवाद है। यह जो सूरज छन-छन कर पड़ रहा है हरे वृक्षों से, इससे कभी बात करने का मन नहीं होता? कभी किसी वृक्ष को गले लगने का मन नहीं होता? कभी किसी फूल को खिले देख कर उसके पास नाचने का मन नहीं होता? तो फिर तुम चूक जाओगे। तो फिर तुम्हारी जिंदगी हराम है। फिर तुम्हारी जिंदगी में राम नहीं है, इसलिए जिंदगी हराम है।

छनती हुई नजरों से जज्बात की दुनियाएं

एक भावना का लोक है!

छनती हुई नजरों से जज्बात की दुनियाएं
बेख्वाबियां, अफसाने, महताब, तमन्नाएं
कुछ उलझी हुई बातें, कुछ बहके हुए नग्मे
कुछ अश्क जो आंखों से बेवजह छलक जाएं

कभी अकारण आंख से आंसू गिरे हैं? अकारण! कि एक पक्षी आकाश में उड़ गया और आनंद-विभोर तुम्हारी आंखें गीली हो आईं, कि धन्यभागी हूं कि यह सौभाग्य का क्षण कि मैंने पक्षी को आकाश में उड़ते देखा!

रामकृष्ण को पहली समाधि जो लगी थी, वह लगी थी, एक काली बदली पृष्ठभूमि में थी, झील के पास से गुजरते थे रामकृष्ण। होगी कोई तेरह-चौदह साल की उम्र। बगुलों की एक कतार—सफेद बगुले, काली पृष्ठभूमि, घनी काली बदरिया! झील का सन्नाटा! चुपचाप प्रार्थना में लीन खड़े हुए वृक्ष! रामकृष्ण अकेले! पगडंडी से गुजरते थे। उनके आने से, उनके पैरों की आहट से ही बगुले जो झील के किनारे बैठे थे—पंख फैला दिए उन्होंने! काली बदली में सफेद बगुले ऐसे तीर की तरह निकल गए। और कुछ हो गया। रामकृष्ण वहीं गिर पड़े! घर बेहोशी में लाए गए—बेहोशी हमारी तरफ से। उनकी तरफ से तो पहली दफा होश आया, तब तक बेहोश थे। दुनिया ने समझा बेहोश हो गए। वे मस्ती में थे!

यह बंदगी है! यह प्रार्थना का क्षण है! इतना सुंदर था वह दृश्य, ऐसी चोट की उस दृश्य ने कि सारा जीवन बदल गया रामकृष्ण का। यह उनका परमात्मा का पहला अनुभव था। यह पहली पहचान! यह पहला प्रेम! और फिर यह प्रेम गहरा होता चला गया।

मैं तुमसे यही कहना चाहता हूं कि तुम प्रार्थना सीखने मंदिरों में मत जाना; वहां झूठी प्रार्थनाएं सदियों से चल रही हैं। किसी झील पर जाना। बगुलों की उड़ती हुई पंक्ति देखना। आकाश में तैरते हुए सफेद बादल देखना। वृक्षों के सन्नाटे को सुनना। और कुछ होगा। किसी दिन तुम्हारी आंखें गीली हो उठेंगी। शब्दों की बात नहीं है, आंखों की बात है। विचार की बात नहीं है, भाव की बात है। और जिस दिन भाव जगेगा, उस दिन फिर परमात्मा के लिए प्रमाण नहीं पूछे जाते—वही भाव प्रमाण हो जाता है।

बिन बंदगी इस आलम में, खाना तुझे हराम है रे।

क्यों? क्योंकि जिसकी जिंदगी में बंदगी नहीं, उसकी सितार बिन छेड़ी पड़ी है। उसकी बांसुरी से गीत नहीं जन्मा है।

मनुष्य संभावना है प्रार्थना की, बीज है प्रार्थना का। अगर बीज वृक्ष न हो तो व्यर्थ; बीज वृक्ष हो तो सार्थक। अर्थ का अर्थ ही क्या होता है? जीवन में फल और फूल लगें तो सार्थकता; नहीं तो आदमी बांझ रह जाता है। प्रार्थना मनुष्य का परम परिष्कार है। उसके ऊपर कुछ भी नहीं है, उसके पार कुछ भी नहीं है। तो प्रार्थना घटनी ही चाहिए। प्रार्थना के घटने पर ही तुम द्विज बनोगे; तुम्हारा दूसरा जन्म होगा; तुम ब्राह्मण बनोगे।

सभी शूद्र की तरह पैदा होते हैं, कोई ब्राह्मण की तरह पैदा नहीं होता। सब शूद्र की तरह पैदा होते हैं और बहुत कम लोग हैं जो ब्राह्मण बन कर मरते हैं। शूद्र की तरह पैदा होना, शूद्र की तरह मर जाना, इसे अधिक लोगों ने अपनी नियति समझ लिया है। और खयाल रखना,

जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। जब तक ब्रह्म का ज्ञान नहीं, तब तक कैसे ब्राह्मण? बुद्ध ने कहा है : जो ब्रह्म को जाने सो ब्राह्मण।

और ब्रह्म को क्या जानोगे? अभी तो आंख भी नहीं उठाई उसकी तरफ। अभी तो प्रार्थना भी नहीं जन्मी, परमात्मा को कैसे जानोगे?

तो एक तुम्हें स्मरण दिलाना चाहता हूं : तुम्हारे बाहर चारों तरफ फैली हुई प्रकृति है, यह परमात्मा का प्रकट रूप है। और दूसरा तुम्हें स्मरण दिलाना चाहता हूं : तुम्हारे भीतर प्रेम का झरना सुगबुगा रहा है, फूटने को तत्पर है। प्रकृति का बोध और प्रेम का झरना फूट पड़े, जहां प्रकृति और प्रेम के झरने में मिलन हो जाता है, वहीं प्रार्थना पैदा हो जाती है।

सब कुछ ले लो, किंतु किसी पर मिटने का अधिकार न छीनो।
मुझसे मेरा प्यार न छीनो।

और हमसे प्यार छिन गया है। हम प्यार जानते ही नहीं। और जिसको हम प्यार कहते हैं, वह प्यार का केवल आभास है। क्योंकि प्रेम का लक्षण और कसौटी यही है कि मिटने की तैयारी हो। जो आदमी मिटने को तैयार नहीं है, उसने प्रेम नहीं जाना। तुम्हारा प्रेम तो एक शोषण है, जिसमें तुम दूसरे को मिटाने में लगे हो।

मुझसे मेरा प्यार न छीनो।
सब कुछ ले लो, किंतु किसी पर मिटने का अधिकार न छीनो।
सपनों का आधार न छीनो।

क्रूर-कठिन तप की ज्वाला में
जलती तन-मन की अभिलाषा
तृप्ति मगर प्राणों की मेरे
दूर किसी के मुख की आशा
इस जीवनव्यापी ममता के अपनेपन का तार न छीनो।

दुनिया के शोषण ने मेरे
विश्वासों का खून पिया है
पर मैंने संघर्षों में भी
उस छवि पर अभिमान किया है
आदर्शों की मूर्तिमती पावनता की मनुहार न छीनो।

रुद्ध विभा के सिंहद्वार को
जिनको सुधि आ खोला करती
कुहर-भरे सूने मानस में
जिनकी पगध्वनि डोला करती
उन अयास फैली बांहों की तृष्णा का संसार न छीनो।

जिन सांसों का स्वर अब भी
कानों से सट कर गूंज रहा है
जिन आंखों की सिक्त नीलिमा
को अब तक मन पूज रहा है
उस चितवन की लहराती सी ज्वाला भरी पुकार न छीनो।

थक जाते हैं प्राण कभी
जब जीवन की बलि देते-देते
थक जाती हैं पतवारें जब
दुर्दिन की नौका खेते-खेते
प्यासी गति में तब बल भरने वाला किरण-उभार न छीनो।

मैं जिसकी करुणा का ऋण
साकार बना इतराता फिरता
जिसकी अवसादी अपूर्ति का
स्वर बन नभ में घन सा फिरता
उस विह्वलता-दानिन की नतमुखी सजल अनुहार न छीनो।
मुझसे मेरा प्यार न छीनो।
सब कुछ ले लो, किंतु किसी पर मिटने का अधिकार न छीनो।

भीतर हो प्रेम...उलटी लगेगी यह बात कि जो मिटने को तैयार है वही जीवन को पाने का हकदार है। और जो मिटता है, वही परम जीवन को पाता है। बीज मिटता है तो वृक्ष होता है; और सरिता मिटती है तो सागर होती है।

प्रेम है मिटने की कला। प्रेम है अपने को पोंछ देने की कला। प्रेम है निर-अहंकार होने का शास्त्र, विधि, विज्ञान।

प्रकृति की संवेदना हो, प्रकृति का बोध हो और आंखें गीली हो जाएं, और भीतर प्रेम की तत्परता हो, मिटने की तत्परता हो, खोने की तत्परता हो—बस बंदगी पैदा हो जाएगी, प्रार्थना पैदा हो जाएगी!

बिन बंदगी इस आलम में, खाना तुझे हराम है रे।
बंदा करै सोई बंदगी, खिदमत में आठों जाम है रे।

और एक बड़ी अदभुत बात यारी कहते हैं, खूब गांठ बांध कर हृदय में रख लेना!

बंदा करै सोई बंदगी...

बंदगी करने से कोई बंदा नहीं होता। बंदा जो करता है वही बंदगी! यह सवाल नहीं है कि प्रार्थना कैसे की जाए। 'कैसा' सवाल तुमने उठाया—कैसे—कि बस तुम क्रियाकांड में पड़े।

बंदा करै सोई बंदगी...

कबीर ने कहा है: उठूं बैठूं सो परिक्रमा, खाऊं पिऊं सो सेवा।

कबीर से किसी ने पूछा है कि आप प्रार्थना कब करते हो? भगवान की सेवा कब करते हो? मंदिर की परिक्रमा को कब जाते हो?

तो कबीर ने कहा: उठूं बैठूं सो परिक्रमा, खाऊं पिऊं सो सेवा। मैं उठता हूं, बैठता हूं, यह उसकी परिक्रमा चल रही है। मैं खाता-पीता हूं, वही खा-पी रहा है। यह उसकी सेवा चल रही है। और किसको प्रसाद लगाऊं? और किसके सामने थाल सजाऊं?

जीवन को आनंदमग्न भाव से जीना। जीवन को समर्पित भाव से जीना। इस बोध से जीना कि हम परमात्मा के सूरज की छोटी-छोटी किरणें हैं, कि हम उसके गीत के छोटे-छोटे शब्द हैं, छोटी-छोटी पंक्तियां हैं, कि हम उसकी विराट दीपावली के छोटे-छोटे दीये हैं, कि हम उसके सागर की बूंदें हैं। जिसको यह खयाल आ गया, वह बंदा हो गया। खुदा यानी सागर, बंदा यानी बूंद। और फिर बंदा जो करे, वही बंदगी है। इसलिए जरूरी नहीं है कि वह माला लेकर बैठे। और जरूरी नहीं है कि गायत्री पढ़े। और जरूरी नहीं है कि नमोकार का स्मरण करे। और जरूरी नहीं है कि जपुजी दोहराए। बंदा जो करे, वही बंदगी। असली सवाल बंदे का जन्म है।

बंदा करै सोई बंदगी, खिदमत में आठों जाम है रे।

और फिर ऐसा नहीं है कि कर ली घड़ी भर को प्रार्थना और हो गया समाप्त मामला। चले गए मंदिर, पटक लिया सिर, चढ़ा दिए दो पैसे, कि दो फूल, और भागे बाजार। बंदा तो चौबीस घंटे उसकी बंदगी में होता है। श्वास भीतर आती है तो उसका स्मरण है, श्वास बाहर जाती है तो उसका स्मरण है। उसका स्मरण खोता ही नहीं।

तो किसी जीवन के खंड को प्रार्थनापूर्ण करने से कुछ भी नहीं होता। अखंड प्रार्थना होती है, तभी कुछ होता है। जब सतत उसकी धारा बहती है, अविराम तुम्हारे भीतर राम का स्मरण चलता है। 'राम' शब्द का नहीं, स्मरण रखना। शब्दों से क्या लेना-देना है? एक बोध बना रहता है। एक भीतर मीठी-मीठी कसक बनी रहती है। एक मधुर पीड़ा हृदय को घेरे रहती है। चलते हो तो लगता है उसकी पृथ्वी पर चल रहा हूं—पवित्र भूमि! आकाश को देखते हो तो लगता है उसी का विस्तार देख रहा हूं—पवित्र आकाश! लोगों से मिलते हो तो भीतर यह बोध बना ही रहता है, खड़ा ही रहता है पृष्ठभूमि में कि उसी से मिल रहा हूं।

राबिया, एक सूफी फकीर स्त्री अपने द्वार पर बैठी थी। हसन नाम का एक फकीर भी उसके पास बैठा सत्संग कर रहा था। तभी एक तगड़ा जवान भिखमंगा भीख मांगने आ गया। राबिया ने ब्रह्मवार्ता तो वहीं बंद कर दी, उठ कर भीतर गई, भोजन लाई, भिखमंगे को भोजन दिया। हसन विचारशील आदमी था। भिखारी के चले जाने पर उसने कहा कि राबिया, इस मस्त तगड़े आदमी को भोजन देना, भिक्षा देनी क्या उचित है?

राबिया हंसने लगी, उसने कहा: अब वह जिस रूप में भी आए, उसी में स्वीकार है! किस भिखमंगे की बात कर रहे हो? कभी वह दीन-दुर्बल की तरह भी आता है, कभी मस्त, तड़ंग, शक्तिशाली की तरह भी आता है। लेकिन वही आता है! मैंने भिक्षा भिखारी को नहीं दी है। यह भिक्षा नहीं थी, सेवा थी। यह उसको ही चढ़ा दिया है। उसका ही था, उसको ही दे दिया है।

जिस व्यक्ति को इस बात की प्रतीति होनी शुरू हो जाती है कि हम उसी के सागर की मछलियां हैं, उसे फिर हर घड़ी, हर रंग, हर रूप में उसकी छवि झलकने लगती है। फिर भिखमंगा है तो वही और सम्राट है तो वही। वही है! उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है।

बंदा करै सोई बंदगी, खिदमत में आठों जाम है रे।

बंदे से भूल हो ही नहीं सकती। और जिससे अभी भूल हो सकती है, वह बंदा नहीं है। तुम्हें सिखाए गए हैं चरित्र के मार्ग—यह करो, यह न करो; यह करना शुभ है, यह करना अशुभ है। तुम्हें नीति सिखाई गई है, धर्म नहीं। धर्म जानता ही नहीं कि क्या शुभ है, क्या अशुभ है। धर्म तो कहता है—तुम्हारा होना अशुभ है, तुम्हारा न होना शुभ है। तुम मिट जाओ, फिर परमात्मा हो जाता है। फिर परमात्मा जो भी करे वह शुभ ही है। तुम अगर हो, तो शुभ भी करोगे तो अशुभ होगा। तुम दान भी दोगे तो अहंकार मजबूत होगा। तुम मंदिर भी बनाओगे तो उस पर पत्थर लगाने की आकांक्षा से बनाओगे, कि नाम का पत्थर लगा दूं, कि रह जाएगी याद सदा को, कि छोड़ जाऊं जमीन पर कुछ चिह्न, कि मैं भी था, कि मैं भी कुछ था! कि बहुत आए और गए, लेकिन ऐसा मंदिर कोई भी नहीं बना गया!

तुम मंदिर भी बनाओगे, और तुम हो, तो भूल हो गई। तुम पूजा भी करोगे तो तुम्हारी नजरें देखती रहेंगी कि लोग प्रभावित हो रहे हैं कि नहीं।

तुम जरा जाकर मंदिर में देखो। जिस दिन कोई नहीं होता, पुजारी जल्दी से पूजा खत्म कर देता है। उस दिन कुछ मस्ती नहीं आती। अगर देखने वाले लोग इकट्ठे हों, तो उस दिन बड़ी देर होती है पूजा, खूब चलती है; नाचता है, गाता है। नजर में देखने वाले लोग हैं।

इंग्लैंड के एक चर्च में इंग्लैंड की महारानी आने को थी। तो न मालूम कितने फोन चर्च के पादरी को आए। ऐसा तो कभी न हुआ था, हजारों फोन आए! सभी यह पूछ रहे थे कि क्या कल महारानी चर्च में आ रही हैं? क्या उनका आना बिलकुल पक्का है? क्या सब सुनिश्चित हो गया है? उस पादरी ने सभी को फोन पर यह कहा कि महारानी का तो कुछ पक्का नहीं है, पक्का हो भी नहीं सकता, कल का भरोसा किसको है! आज जिंदगी है, कल न हो! आज महारानी हैं, कल न हों! आज मैं हूं, कल न होऊं! आज तुम हो, कल न होओ! महारानी का कुछ पक्का नहीं है। इसलिए गैर-पक्की बात का मैं कुछ कह नहीं सकता। इतना तुमसे कहता हूं: परमात्मा कल भी चर्च में रहेगा।

मगर परमात्मा में किसको उत्सुकता है? लोगों ने बार-बार पूछा कि वह तो हमें पता है कि परमात्मा रहेगा; हम पूछते हैं कि महारानी कल आ रही हैं कि नहीं? लोगों को उत्सुकता महारानी को दिखाने में है कि हम भी चर्च आते हैं। बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई। ऐसा कभी हुआ ही न था। महारानी भी बहुत प्रभावित हुई। उसने पादरी को पूछा कि इतने लोग चर्च में आते हैं!

पादरी ने कहा: इनमें से कोई भी चर्च नहीं आया है। ये सब तमाशबीन हैं। ये आपके लिए आए हैं। यह चर्च तो कल भी था और परसों भी था, लेकिन यहां कोई दिखाई नहीं पड़ता था। और आज ऐसे भक्ति-भाव से बैठे हैं अपनी-अपनी बाइबिल लिए!

तुम अपने पर खयाल करना। अगर चार लोग देखते हों तो तुम्हारी प्रार्थना रंग लेने लगती है। और अगर कोई देखने वाला न हो, फिर कौन फिक्र करता है! अगर परमात्मा ही अकेला हो देखने वाला तो कौन फिक्र करता है!

असली प्रार्थना लोगों को देख कर नहीं की जाती; वह कोई मान-प्रतिष्ठा की बात नहीं है। वह तो हृदय का उदगार है। शायद असली प्रार्थना, भीड़-भाड़ हो, तो की ही न जा सके। एकांत का ही निवेदन है। वह एकांत का गीत है, एकांत संगीत है।

सूफी कहते हैं: रात के एकांत में, जब तुम्हारी पत्नी को भी पता न चले, तब चुपचाप उठ कर, उससे दो बात कर लेना। वे बातें सुनी जाएंगी। अगर जरा भी कहीं रस रहा कि सुनाई पड़ जाए दूसरे को कि देखो, मैं कैसी तपश्चर्या कर रहा हूं! कितने उपवास कर रहा हूं! कितनी प्रार्थना कर रहा हूं...!

लोग हिसाब रखते हैं कि कितनी मालाएं फेरनी है। माला फेरने में भी हिसाब! तुम कभी किसी से बिना हिसाब के भी जुड़ोगे कि नहीं? कभी किसी से भाव से जुड़ोगे कि नहीं? कि गणित ही बिठाते रहोगे? कोई आदमी सौ माला फेरता है तो बस...एक सौ एक नहीं फेरता। वहां भी कंजूसी चल रही है। परमात्मा के साथ भी लेन-देन का हिसाब है!

नहीं, यह कोई ढंग नहीं है। बंदा इस तरह की बातें नहीं करता। बंदा कोई गणित नहीं बिठाता।

इन प्यालों में पड़ करके तो विष भी अमृत बन जाता है!

और बंदे के प्याले में विष भी पड़ जाए तो अमृत हो जाता है। और जो बंदा नहीं है, उसके प्याले में अमृत भी पड़ जाए तो विष हो जाता है।

इन प्यालों में पड़ करके तो विष भी अमृत बन जाता है!
वसुधा की सारी मस्ती का
सार भरे नयनों के प्याले,
गागर से सागर छलका कर
कर देते जग को मतवाले।
पत्थर मन भी सहज पिघल कर इनके रंग में सन जाता है!
इन प्यालों में पड़ करके तो विष भी अमृत बन जाता है!

सार भरे संपूर्ण मधुरता का
जग की, अधरों के प्याले,
ओंठों पर लाते पल भर को
बह जाते हैं मधु के नाले।
मिट जाती कटुता युग-युग की ऐसा मीठा क्षण आता है।
इन प्यालों में पड़ करके तो विष भी अमृत बन जाता है।

इन प्यालों में ही तो सारी
भरी सरसता है जीवन की,
सुख बन जातीं इनके द्वारा
सभी वेदनाएं तन-मन की।

मानव इनके हेतु इसी से हंस कर दुख भी अपनाता है!
इन प्यालों में पड़ करके तो विष भी अमृत बन जाता है!

बंदे को चिंता नहीं रह जाती। धार्मिक को चिंता नहीं रह जाती—सुख मिले, कि दुख न मिले। क्योंकि उसके पास तो एक कीमिया है, उसके पास तो दुख आकर भी सुख हो जाता है। उसके पास आते-आते अंगार फूल बन जाते हैं। उसके पास आते-आते कांटे तत्क्षण अपना रूप बदल लेते हैं। उसके पास आते-आते रात सुबह हो जाती है।

एक बार बंदा होने की कला आ जाए तो फिर—

बंदा करै सोई बंदगी, खिदमत में आठों जाम है रे।

फिर उसकी सुबह से सांझ और सांझ से सुबह सतत अखंड प्रवाह की भांति परमात्मा की अनुस्मृति से भरी रहती है। उसे अलग से बैठ कर स्मरण नहीं करना होता है। अलग से बैठ कर तो वे ही स्मरण करते हैं जिन्हें स्मरण करना नहीं आता। पांच बार नमाज वे ही पढ़ते हैं जिन्हें नमाज नहीं आती। जिन्हें नमाज आती है वे चौबीस घंटे नमाज में होते हैं। उनका उठना-बैठना नमाज है। उनका चलना-फिरना नमाज है। उनका सांस लेना बस पर्याप्त है, ध्यान है।

यारी मौला बिसारिके, तू क्या लागा बेकाम है रे।

और यारी कहते हैं कि तूने मालिक को तो बिसार दिया, मौला को तो बिसार दिया है।

यारी मौला बिसारिके, तू क्या लागा बेकाम है रे।

और न मालूम कितने बेकाम धंधों में लग गया है!

कौन सी बात बेकाम है और कौन सी बात काम की है? कसौटी एक है—मौत। जो मौत के पार तुम्हारे साथ जाएगा वह सार्थक; जो मौत तुमसे छीन लेगी वह व्यर्थ। तुम्हारा धन, तुम्हारा पद, तुम्हारी प्रतिष्ठा, तुम्हारा नाम, सब मौत छीन लेगी। इसमें से तुम कुछ भी बचा कर न ले जा सकोगे—एक कौड़ी भी नहीं, एक तिनका भी नहीं! यही कसौटी है। कस लेना मौत पर। जिस काम में भी लगे हो, गौर से देख लेना, इसमें से जो मिलेगा वह मौत के पार जाएगा? जाएगा तो ठीक। लगे रहना। फिर यह काम बंदगी है। और अगर लगे कि यह तो कुछ जाने वाला नहीं है, तो फिर उसमें पूरा जीवन मत गंवा देना। फिर उसमें ही सारी ऊर्जा मत समाप्त कर देना। फिर जितना जरूरी हो, कर लेना। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अपनी रोटी मत कमाना, कि अपने लिए एक छप्पर मत बनाना। ठीक जो जरूरी हो वह कर लेना।

और जरूरतें बहुत कम हैं। वासनाएं अनंत हैं, आवश्यकताएं बहुत कम हैं। आवश्यकताएं पूरी हो सकती हैं, वासनाएं कभी पूरी नहीं होतीं। और आवश्यकताओं से प्रार्थना में बाधा नहीं पड़ती, वासना से बाधा पड़ती है। अब कुछ नासमझ हैं जिन्होंने वासना को आवश्यकता समझ रखा है। और कुछ नासमझ हैं जिन्होंने यह सोच कर कि वासना आवश्यकता है, आवश्यकता को भी छोड़ दिया है। ये दोनों ही गलत हैं। एक भोगी है, एक त्यागी हो गया है। भोगी ने वासना को आवश्यकता समझ रखा है। वह कहता है कि जब तक मेरे पास करोड़ रुपये न होंगे, तब तक कैसे सुख हो सकता है? और जब उसके पास करोड़ हो जाएंगे, उससे भी सुख नहीं होगा। क्योंकि जब उसके पास लाख थे, तब वह

करोड़ मांगता था। अब करोड़ हो गए, तो गणित सौ गुना आगे फैल जाएगा। अब एक अरब होंगे, तो सुख होगा। और अरब होकर भी सुख नहीं होगा।

अमरीका का बहुत बड़ा धनपति एण्ड्रू कारनेगी जब मरा, मरने के ठीक कुछ घड़ी पहले किसी ने उससे पूछा कि आप तो तृप्त जा रहे होंगे? क्योंकि आपने अपने ही हाथ से अरबों रुपये कमा कर दुनिया को दिखा दिया।

एण्ड्रू कारनेगी जब मरा तो उसके पास दस अरब रुपयों की संपत्ति थी। और खुद की कमाई हुई! खाली हाथ शुरू किया था और दस अरब का साम्राज्य खड़ा कर दिया था। लेकिन एण्ड्रू कारनेगी ने उदासी से कहा कि नहीं, मैं प्रसन्न नहीं जा रहा हूं, क्योंकि मेरे इरादे सौ अरब कमाने के थे। मैं एक हारा हुआ आदमी हूं—नब्बे अरब से हारा हूं! तुम क्या दस अरब की बातें कर रहे हो!

क्या तुम सोचते हो एण्ड्रू कारनेगी के पास सौ अरब होते तो वह तृप्त मर जाता? जिनके पास सौ अरब थे, वे भी तृप्त नहीं मरते। सभी, जो वासनाओं को आवश्यकता समझ लेते हैं, भ्रांति में पड़ जाते हैं। और इनकी भ्रांति का एक दुष्परिणाम यह होता है कि कुछ लोग इससे उलटे हो जाते हैं, वे कहते हैं कि सब छोड़ देना है। तो वे अपनी रोटी भी नहीं कमाते, वे अपने वस्त्र भी नहीं कमाते। मगर रोटी की जरूरत तो छूटती नहीं, वस्त्र की जरूरत तो छूटती नहीं। कोई और तुम्हारे लिए कमाएगा।

तो तुम्हारा संन्यासी बोझिल हो जाता है, बोझ हो जाता है, भार हो जाता है। समाज के ऊपर, समाज की छाती पर चट्टान की तरह हो जाता है। ऐसे संन्यास के दिन लद गए। अब ऐसे संन्यास का कोई भविष्य नहीं है।

इसलिए मैं एक नये संन्यास को जन्म दे रहा हूं। एक ऐसे संन्यासी को, जो भोगी के विपरीत नहीं है और जो भोगी के साथ भी नहीं है। जो त्यागी भी नहीं है, जो भोगी भी नहीं है—जो दोनों के मध्य में है। जिसने इतनी बात समझ ली है कि वासनाओं के पीछे दौड़ना बेकाम है। आवश्यकताएं पूरी कर लेना उचित है। आवश्यकताएं पूरी करने में थोड़ी ही शक्ति लगती है। और आवश्यकताएं पूरी होकर जो शक्ति बच जाती है, उस शक्ति को ध्यान बनने दो, प्रार्थना बनने दो, पूजा बनने दो, अहोभाव बनने दो। और तुम पाओगे कि मृत्यु के समय जब तुम विदा होओगे तो मौत ने तुमसे कुछ भी नहीं छीना। क्योंकि आवश्यकताएं तो तुमने पकड़ी ही नहीं थीं, वे तो रोज की हैं—भोजन कर लिया, कोई बच थोड़े ही रहता है।

मौत के लिए तुम कुछ ज्यादा छोड़ न जाओगे छीनने को। मौत तुम्हें देख कर बड़ी उदास हो जाएगी। और तुम ले जाओगे एक बड़ी संपदा अपने साथ। और जो संपदा चिताओं के पार चली जाती है वही संपदा पंख बन जाती है तुम्हारे लिए मोक्ष के, परम मुक्ति के!

यारी मौला बिसारिके, तू क्या लागा बेकाम है रे।

जरा गौर करो, कितनी बेकाम की बातों में लगे हो! कोई प्रधानमंत्री बनने में लगा है, कोई राष्ट्रपति बनने में लगा है। बन कर भी क्या करोगे? जो बन गए हैं, उन्होंने क्या कर लिया है? उन पदों पर बैठ कर तुम सिर्फ हास्यास्पद मालूम होओगे। छोटे बच्चों जैसी बातें हैं—जो बड़ी कुर्सियों पर बैठ जाएं और समझें कि हम बड़े हो गए। कुर्सियां किसी को बड़ा

नहीं करतीं। बड़ा होना बड़ी और बात है। हां, जो बड़ा है, जहां बैठ जाता है, वहीं सिंहासन जरूर हो जाता है। मगर सिंहासन किसी को बड़ा नहीं करते।

बुद्ध जहां बैठेंगे, वहां सिंहासन है। कबीर के पैर जहां पड़ जाएंगे, वहां मंदिर खड़े होंगे। तुम्हारे भीतर संपदा हो तो तुम जहां बैठोगे, वहीं साम्राज्य निर्मित हो जाएगा। लेकिन वह साम्राज्य बड़ा सूक्ष्म है, और आंख वालों को ही दिखाई पड़ सकता है। और जिनके पास भाव की समझ है, उनकी प्रतीति में आ सकता है।

कुछ जीते बंदगी कर ले, आखिर को गोर मुकाम है रे।

फिर तो कब्र में विश्राम होगा।

आखिर को गोर मुकाम है रे।

आखिर तो कब्र मिलने वाली है। वहां पूर्णाहुति हो जाएगी तुम्हारी सारी जिंदगी की दौड़-धूप की, आपाधापी की।

कुछ जीते बंदगी कर ले...

यह जो जिंदगी थोड़ी देर को मिली है, यह जो ऊर्जा का परमात्मा ने दान दिया है, इसे प्रार्थना बना लो। इस ऊर्जा में से जितनी प्रार्थना बन गई, उतनी ही तुम्हारे जीवन की सार्थकता होगी। उतनी ही तुम्हारे जीवन की गरिमा होगी। उतना ही तुम्हारे जीवन का सौंदर्य होगा, महिमा होगी।

वाजिब ही को है दवाम, बाकी फानी
कय्यूम को है कयाम, बाकी फानी
कहने को जमीनो-आस्मां सब कुछ है
बाकी है उसी का नाम, बाकी फानी

सिर्फ उसका नाम बच रहता है। और उसके नाम से जो जुड़ गया, वह बच रहता है, उसकी याद बच रहती है। उसकी याद शाश्वत है, बाकी सब क्षणभंगुर है। पानी के बबूले हैं। अभी बने, अभी मिटे। ओस की बूंदें हैं। सुबह के सूरज की रोशनी में ऐसे चमकती हैं जैसे मोती हों, मगर अभी उड़ जाएंगी भाप होकर। थोड़ी देर बाद इनका कोई पता-ठिकाना न मिलेगा। ऐसी ही तुम्हारी आपाधापी की जिंदगी है—पानी का एक बबूला, कि ओस की एक बूंद, कि अब झरी, तब झरी, कि अब फूटा, तब फूटा!

कुछ शाश्वत से पहचान कर लो। कुछ सनातन से गांठ जोड़ लो। कुछ उस प्यारे से संबंध बना लो। कबीर कहते हैं: मैं राम की दुल्हनिया! ऐसा कुछ करो...ऐसा कुछ करो कि भांवर पड़ जाए उससे, जो सदा है, सदा रहा है, और सदा रहेगा।

कैसे उससे संबंध हो जाए? क्या हम करें? रोओ! नाचो! डोलो!

मुंह से उठा नकाब दो, मैं भी तुम्हें निहार लूं
आंखों को नूर कुछ मिले, देख जरा बहार लूं
पर्दे पड़े हैं हर तरफ, कैसा अजीब हिजाब है
झांक कहीं से दो जरा, मैं भी तो दिल निखार लूं
लहरें उधर मचल रहीं, चांद में क्या छिपे हो तुम

रात में ही अगर मिलो, आंखों में भर खुमार लूं
अब्र यह क्यों झलक रहा, नीले फलक में हो अगर
बर्क में कौंध उठो जरा, मैं भी तो हो निसार लूं
गुंचा व गुल में है कशिश, खुश्बू है इनमें रंग है
बू ही में कुछ महक उठो, फूलों से कर सिंगार लूं
तार जो दिल में बज रहे, खोया हुआ है इनमें सुर
उसका कोई पता नहीं, कैसे सम्हाल तार लूं
अपना ही दिल है क्या कहूं, फिर भी नहीं है हाथ में
उसकी रविश अजीब है, कैसे भला करार लूं
ढूंढ़ा है जिस जगह तुम्हें, पर्दे वहीं पड़े हुए
कौन सा वह मुकाम है, जाके जहां पुकार लूं
आंख जिधर चली गई, पाई उधर कशिश नई
मुझमें कशिश की गर कमी, किससे कशिश उधार लूं
दिल को अगर हो खींचते, पर्दा भी दो जरा उठा
आंख को रहगुजर बना, दिल में तुम्हें उतार लूं

पुकारो! बंधे-बंधाए शब्दों में नहीं, अपनी ही बात हो। फिर चाहे तुम्हारी प्रार्थना तुतलाने जैसी क्यों न हो, तो भी पहुंच जाएगी। बड़े सुसंस्कृत, बड़े व्याकरण से शुद्ध, बड़े शास्त्रीय शब्द न हुए तो चलेगा। तुम्हारे होने चाहिए शब्द! तुम्हारी प्रार्थना बस तुम्हारी ही प्रार्थना होनी चाहिए। प्रार्थना भी उधार लेते हो! किसी दूसरे के जूते उधार नहीं पहनते। किसी दूसरे के कपड़े उधार नहीं पहनते। किसी दूसरे की जूठन नहीं खाते। और उस परमात्मा के रास्ते पर जब भी चलते हो, तभी जूठन को अपने चारों तरफ सम्हाल लेते हो! यह तो अपमानजनक है। परमात्मा के साथ तो सीधा-सीधा संबंध होना चाहिए। भाव की बात हो।

मुंह से उठा नकाब दो, मैं भी तुम्हें निहार लूं
आंखों को नूर कुछ मिले, देख जरा बहार लूं
पर्दे पड़े हैं हर तरफ, कैसा अजीब हिजाब है

पर्दे पर पर्दे हैं!

झांक कहीं से दो जरा, मैं भी तो दिल निखार लूं
अब्र यह क्यों झलक रहा, नीले फलक में हो अगर
बर्क में कौंध उठो जरा, मैं भी तो हो निसार लूं

बदली में बिजली की भांति कौंध जाओ।

गुंचा व गुल में है कशिश, खुश्बू है इनमें रंग है
बू ही में कुछ महक उठो, फूलों से कर सिंगार लूं

चलो छोड़ो, फूल से ही महक उठो! इसी फूल से अपना सिंगार कर लूं।

दिल को अगर हो खींचते, पर्दा भी दो जरा उठा
आंख को रहगुजर बना, दिल में तुम्हें उतार लूं

तो फिर आंख को ही रास्ता बना लूं! आंख ही रास्ता बनती है। जरा आंख खोलो! जरा जागो! जरा इस प्रकृति को पहचानो! जरा इस प्रकृति के प्रेम में उतरो! इस प्रकृति को छेड़ने दो तुम्हारे हृदय के तार! प्रकृति से भागो मत, क्योंकि प्रकृति परमात्मा है। उसका प्रकट रूप, उसकी अभिव्यक्ति। इसी से जोड़ बनेगा। इसी से भांवर पड़ेगी।

कुछ जीते बंदगी कर ले, आखिर को गोर मुकाम है रे।

गुरु के चरन की रज लैके, दोउ नैन के बीच अंजन दीया।

आंख से ही बनता है रास्ता। आंख से ही वह उतरता है।

गुरु के चरन की रज लैके, दोउ नैन के बीच अंजन दीया।

गुरु के चरणों में जो झुका! गुरु के चरण तो केवल बहाना हैं, ताकि झुकने की कला आ जाए। वृक्षों के पास झुक जाओगे तो भी हो जाएगा। चांद-तारों के सामने झुक जाओगे तो भी हो जाएगा। झुकने के लिए कोई बहाना चाहिए। गुरु का अर्थ है: जो अब नहीं है। जो नहीं है, उसके सामने झुकोगे, तो तुम्हें भी नहीं होने की कला आ जाएगी।

गुरु का अर्थ है: जो मिट गया। आया परमात्मा और जिसे ले गया। जिसकी बूंद सागर में समा गई—और जिसकी बूंद में सागर समा गया! गुरु का अर्थ है: अब जो अपने को व्यक्ति की भाषा में सोचता ही नहीं; जो अब अपने को अलग मानता ही नहीं। इसीलिए तो उपनिषद कह सके: अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं! यह कोई अहंकार की उदघोषणा नहीं है; ठीक उलटी बात है, यह निर-अहंकार की उदघोषणा है।

इसीलिए तो जीसस कह सके: मैं हूं द्वार! मैं हूं मार्ग! मैं हूं सत्य! यह कोई अहंकार की घोषणा नहीं है। लगती ऊपर से ऐसी ही है! इसमें 'मैं' की कोई बात ही नहीं है। जीसस यह कह रहे हैं: मैं अब नहीं हूं—द्वार है, मार्ग है, सत्य है!

लेकिन तुम्हारी भाषा में बोलना पड़ता है तो तुम्हारे शब्दों के उपयोग करने पड़ते हैं। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं: सर्व धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज! सब छोड़-छाड़ कर, सब धर्म इत्यादि, तू मेरी शरण आ!

अहंकारी जब इसको पढ़ते हैं, उनको लगता है कि अरे, यह तो बड़े अहंकार की बात है! कृष्ण खुद ही अपने मुंह से कह रहे हैं कि मेरी शरण आओ!

कृष्ण इसीलिए कह पा रहे हैं, क्योंकि अब कृष्ण नहीं हैं। अब कृष्ण अपनी तरफ से तो समाप्त हो गए हैं। अब तो कृष्ण उसके ही प्रतिनिधि हैं। अब तो उसके लिए ही एक द्वार हैं।

गुरु का अर्थ है: जिसके भीतर अहं ब्रह्मास्मि का उदघोष उठा; जिसके भीतर अनलहक की गूंज उठी; जो अब नहीं है। उसकी चरणरज का अर्थ होता है—उसके चरणों में समर्पण।

समर्पण से ही आंख में अंजन लगाना होता है, तभी आंख खुलती है, अंधा आंख वाला होता है। समर्पण का काजल तुम्हारी आंख में लग जाए, तो जो नहीं दिखाई पड़ता है वह दिखाई पड़ने लगे। जो दिखाई पड़ता रहा है वह दो कौड़ी का हो जाए और जो अब तक नहीं दिखा था वही सब कुछ हो जाए।

सृष्टि अभी दिखाई पड़ती है; वह भी पूरी-पूरी नहीं। आंख पर काजल लग जाए समर्पण का तो स्रष्टा दिखाई पड़ता है। फिर सृष्टि उसका ही आवरण हो जाती है, उसका ही घूंघट! और अगर तुम्हारी प्रेयसी से तुम्हें प्रेम है, तो उसके घूंघट से भी प्रेम होगा।

गुरु के चरन की रज लैके, दोउ नैन के बीच अंजन दीया।
तिमिर माहिं उजियार हुआ, निरंकार पिया को देखि लीया।।

और जैसे ही तुमने समर्पण का अंजन आंख में दिया कि तत्क्षण, जरा भी देर नहीं होती—'तिमिर माहिं उजियार हुआ—तो मन का जो अंधेरा था वह मिट जाता है और भीतर उजाला ही उजाला हो जाता है। मन है अंधकार—विचारों की भीड़, वासनाओं की भीड़, आकांक्षाओं की भीड़—बड़ा गहन अंधकार है! और जैसे ही किसी ने समर्पण किया... समर्पण का अर्थ हैः अपने मन को किसी के चरणों में रख दिया। और गुरु तो शून्य है। तुमने मन उसके सामने रखा कि उसके शून्य में तिरोहित हो जाएगा। गुरु के चरणों में मन को रखते ही मन तिरोहित हो जाता है। जो वर्षों ध्यान करने से नहीं होता, वह एक क्षण गुरु के चरणों में सिर रखने से हो जाता है।

वर्षों ध्यान से भी यही करना होता है—मन को मिटाना पड़ता है। लेकिन तब तुम्हीं को मिटाना पड़ता है। इंच-इंच तोड़ना पड़ता है यह पहाड़। और गुरु एक ऐसी शून्य प्रक्रिया है कि जिसके चरणों में सिर रखा कि तुम्हारा सिर खो गया। फिर तुम बिना सिर के रहोगे। फिर धड़ ही धड़ बचा, फिर कोई सिर नहीं है। फिर कोई अहंकार नहीं है। और जहां अहंकार नहीं है वहां कैसा अंधेरा? अहंकार अर्थात अंधेरा। निरअहंकार अर्थात उजियार।

तिमिर माहिं उजियार हुआ...

और तब तुम्हारे जीवन में आ जाता है वसंत। तब तुम्हारे जीवन में आ जाता है मधुमास!

आज तो मधुमास रे मन!
आज फूलों से सुवासित हो उठी तृष्णा विजन की
आज पीले मधुकणों से भर गई छाती पवन की
आज द्राक्षा पर्णिका से उड़ चली मस्ती गगन में
आज पूनों बह चली रस-फुल्ल महुओं के सदन में
आज तो मधुमास रे मन!

आज पुरवाई घने वन में चली परिमल भरी सी
स्वर्ण कलशों में सजल केशर लिए चंपा परी सी
और वन-तुलसी न पूछो! गंध से निर्बंध लथपथ
हैं तृषित उर आज कैसा गीत आकुल, सुधि शिथिल, श्लथ
आज तो मधुमास रे मन!

कनक पुलकों में तरंगित चित्र-लेखा सी धरा छवि
दूर तक सहकार श्यामल रेणुका से घिर चला कवि
लो! प्रखर, सन-सन सुरभि से नागकेसर रूप विह्वल
बज उठी किंकिणि मधुप रव सी, हुई बन-बाल चंचल
आज तो मधुमास रे मन!

नील सागर ले उड़ी घन कुंतलों में कौन अपने
स्निग्ध नीलाकाश प्राणों में जगाता नील सपने
आज किसके रूप से जल-सिक्त, धूमिल, कामिनी-वन
आज संगीहीन मेरे प्राण पुलकित हैं अचेतन
आज मैं मधुमत्त उन्मन!

अनमने फागुन दिवस ये हो रहे हैं प्राण कैसे
आज संध्या के प्रथम ही भर चला उर लालसा से
आज आंधी सा प्रखर आलेष पिक की काकली में
एक अंगूरी पिपासा मुक्त अंगों की गली में
आज तो मधुमास रे मन!

मन मिटा कि वसंत आया। मन मिटा कि कोयल बोली। मन मिटा कि फूल खिले। मन मिटा कि रोशनी हुई। मन है तो अंधेरा है। और मन है तो पतझड़ है। और मन है तो मरुस्थल है सब। मन गया कि हरा-भरा उपवन, कि रस-भरा जीवन!

आज मैं मधुमत्त उन्मन!

और जहां मन गया, उन्मनी अवस्था आई।

आज तो मधुमास रे मन!

फिर मधु बरसा। फिर अमृत के द्वार खुले। फिर कोई मृत्यु नहीं है। फिर जीवन सच्चिदानंद है। फिर जीवन जीवन है। अभी तुम जिसे जीवन कहते हो, क्या खाक जीवन है! अभी तो जीवन से पहचान भी नहीं हुई।

तिमिर माहिं उजियार हुआ, निरंकार पिया को देखि लीया।

और जैसे ही भीतर उजियाला हो, वैसे ही उस परम प्यारे के दर्शन हो जाते हैं। क्योंकि परम प्यारा तुम्हारे भीतर उतना ही है, जितना तुम्हारे बाहर। तुम भी उसके एक रूप, उसके एक ढंग, उसकी एक अभिव्यक्ति! उसके रस की एक धार! उसके गीत की एक कड़ी! तुम भी उसके पैर की झंकार! भीतर जहां उजियाला हुआ, कि तुम चकित हो जाओगे—नहीं पाओगे अपने को, पाओगे परमात्मा को! नहीं पाओगे अपना कोई पता। खोजते रहोगे उजाले में और तुम्हारी कोई पहचान अपने से न होगी।

अंधेरे में हो तुम! उजाले में नहीं हो तुम। तुम्हारा होना और अंधेरा पर्यायवाची हैं; तुम्हारा न होना और उजाला पर्यायवाची हैं। शायद इसीलिए तो लोग अंधेरे को जोर से पकड़ते हैं, क्योंकि अंधेरा गया कि तुम गए। अंधेरे में लोग क्यों जी रहे हैं? अंधेरे का कुछ लाभ है। अंधेरे में कुछ आशा है। अंधेरे का कुछ प्रयोजन है। ज्ञानी पुकारते हैं कि जागो! तुम जागते नहीं। तुम करवट लेकर फिर सो जाते हो। ज्ञानी कहते हैं: स्वयं को देखो! तुम सुन लेते हो, मगर देखते नहीं। तुम कहते हो: देखेंगे, कभी देखेंगे, जरूर देखेंगे, बात तो ठीक है। अब आप कहते हैं तो ठीक ही होगी। आपकी बात इतनी ठीक है कि हम आपको नमस्कार करते हैं, कि आपकी पूजा करेंगे, कि मंदिर में आपकी प्रतिमा रखेंगे।

मगर ज्ञानी क्या कहते हैं, वह तुम कभी करते नहीं। जरूर तुम्हारे न्यस्त स्वार्थ के विपरीत है। तुम्हारा न्यस्त स्वार्थ क्या है? तुम्हारा एक गहन स्वार्थ है कि मैं रहूं। बुद्ध से लोगों ने बार-बार पूछा है कि आप कहते हैं निर्वाण में आत्मा बचेगी ही नहीं, तो फिर ऐसे निर्वाण से सार क्या है? फिर हम यहीं भले। फिर संसार ही भला, कम से कम हम हैं तो! फिर दुख ही भला, कम से कम हम हैं तो! तुम्हारा सुख, तुम्हारा आनंद, तुम्हारा महासुख जंचता नहीं, क्योंकि जब हम ही न होंगे तो महासुख का क्या सार?

तर्क से यह बात समझ में भी आती है कि जब मैं ही न होऊंगा तो महासुख से क्या सार? मगर तुम समझे नहीं। जब तुम न होओगे, तभी महासुख है। तुम्हारा नहीं है महासुख। महासुख तुम्हारी शून्यता का फूल है। बीज मिट जाता है तो वृक्ष। अगर बीज कहने लगे कि मैं मिटूं, फिर वृक्ष होगा, तो सार क्या है?

मगर वृक्ष में बीज ही तो प्रकट हुआ है मिट कर! परमात्मा में तुम ही मिट कर प्रकट होओगे। एक अर्थ में तुम मिट जाओगे—पुराने अर्थ में। पुराना तादात्म्य समाप्त हो जाएगा। तुम्हारी पुरानी सीमा टूट जाएगी। तुम्हारी पुरानी परिभाषा बिखर जाएगी। एक नये अर्थ में प्रकट होओगे। तब क्षुद्र थे, अब विराट होकर प्रकट होओगे। एक अर्थ में मृत्यु और दूसरे अर्थ में पुनर्जीवन।

तिमिर माहिं उजियार हुआ, निरंकार पिया को देखि लीया।

अहंकार गया तो निरंकार पिया को देख लिया। वह प्यारा अहंकार के अभाव में देखा जाता है। उस पर पर्दा नहीं है, तुम्हारी आंख पर अहंकार का पर्दा है। इस पर्दे को हटाओ।

जाग उठी जीवन में कैसी मधु की पुलक पुनीत हिलोर
कितना सुंदर रे यह मधुवन—कितना कलरव, हास्यविभोर
जाग उठी मेरे लघु मन में चिर यौवन के वैभव सी
तम अभिशप्त प्राणरजनी में किरणमयी हेमांगिनी श्री
इस जड़ता के स्नायुजाल में धमक उठा कैसा कंपन
महामृत्यु सी सुप्त धमनियों में लहरा कैसा प्लावन
अवसित महाशून्य में मेरा आत्ममरण, दुःसह पीड़न
शापज्वलित पापी प्राणों में जाग उठे मेरे पावन
छवि की रीती, शुष्क पंखुरियों में मधु का उदगम कैसा
व्यथा-मूक जर्जर प्राणों में यह उन्मन गुंजन कैसा
वह प्रचंड उन्माद, वेदना आज हुई कितनी शीतल
इस अशांत विमथित उर में क्या जाग उठे मेरे उज्ज्वल
कैसी अलख शांति बहती है नीर भरी पल-पल में
कैसा पवन पूत मद फैला है सारे भूतल में
एक बूंद में उमड़ पड़ा सागर का वीचि-विलास सघन
गीत-गंध-रस-विरहित उर में जाग उठे मेरे मोहन

वह प्यारा जाग उठे तुम्हारे भीतर तो पहले तो भरोसा ही नहीं आता। कैसे आए भरोसा? अशांति को जाना है अब तक और एकदम शांति का दीया जला! अब तक दुख से पहचान थी, एकदम सुख की गंध उठी! अब तक अंधेरा ही अंधेरा जीवन था, आज उजियारा हुआ! अब तक कुछ भी न जाना था, और आज परम प्यारे को जान लिया!

एक बूंद में उमड़ पड़ा सागर का वीचि-विलास सघन

एक छोटी सी बूंद में सागर का अवतरण!

एक बूंद में उमड़ पड़ा सागर का वीचि-विलास सघन
गीत-गंध-रस-विरहित उर में जाग उठे मेरे मोहन

भरोसा भी नहीं आता पहली बार जब यह घटना घटती है। पहली बार जब यह घटना घटती है तो आश्चर्य-विमुग्ध, अवाक रह जाता है भक्त। क्योंकि भक्त पाता है कि मैं भगवान हूं। कैसे भरोसा करे? कैसे मान ले? असंभव घटा है, अघट घटा है! मगर मानना ही पड़ेगा। मुकरा भी नहीं जा सकता है। जो घट ही गया है, उसे इनकार भी नहीं किया जा सकता है। कुछ दिन तक तो सन्नाटे में रह जाता है भक्त। कुछ दिन तक तो बोल ही नहीं पाता।

बुद्ध सात दिन तक नहीं बोले। समाधि फल गई, सात दिन तक चुपचाप बैठे रहे। कथाएं कहती हैं कि देवता स्वर्ग में बहुत बेचैन हो उठे—बुद्ध बोलेंगे या नहीं बोलेंगे? कहीं चुप ही तो न रह जाएंगे? क्योंकि कितनी मुश्किल से कभी कोई बुद्ध होता है और फिर चुप रह जाए! तो जो भटक रहे हैं रास्तों पर, अंधेरे में टटोल रहे हैं जो, उनके लिए कौन मार्ग देगा? उनके लिए कौन इशारे देगा? उनके लिए कौन निर्देश देगा?

बुद्ध चुप हैं, क्योंकि जो घटा है, ऐसा सन्नाटा छोड़ गया है अपने पीछे—न कुछ कहने को सूझता, न कुछ करने को सूझता! सात दिन तक उठे ही नहीं हैं वृक्ष के नीचे से। बैठे ही रह गए! पत्थर की मूर्ति होकर रह गए। मानने में नहीं आता कि ऐसा हो सकता है।

परमात्मा इस जगत में सबसे असंभव घटना है। फिर भी घटना घटी है, घटती है! और धन्यभागी हैं वे, जिनके भीतर सोया मोहन जाग उठे। तुम भी धन्यभागी हो सकते हो, मगर धन्यभाग की तैयारी करनी होगी। अतिथि को, परम अतिथि को बुलाना है, तो घर-द्वार सजाओगे या नहीं? परम अतिथि को आमंत्रित करना है, तो कुछ आयोजन करोगे या नहीं? बंदनवार बांधोगे या नहीं? 'स्वागत' द्वार पर लिखोगे या नहीं?

कुछ तैयारी करनी है। और तैयारी को अगर ठीक से समझो तो एक ही बात है तैयारी की—अहंकार को विदा करना है, निर-अहंकार का द्वार खोलना है। और तब एक क्षण में घटना घट जाती है।

जाग उठी जीवन में कैसी मधु की पुलक पुनीत हिलोर
कितना सुंदर रे यह मधुवन—कितना कलरव, हास्यविभोर
जाग उठी मेरे लघु मन में चिर यौवन के वैभव सी
जाग उठी जीवन में कैसी मधु की पुलक पुनीत हिलोर

आता नहीं भरोसा!

इस जड़ता के स्नायुजाल में धमक उठा कैसा कंपन
महामृत्यु सी सुप्त धमनियों में लहरा कैसा प्लावन

अवसित महाशून्य में मेरा आत्ममरण दुःसह पीड़न
शापज्वलित पापी प्राणों में जाग उठे मेरे पावन

जानते हैं हम तो केवल पापों को, पाप की पीड़ाओं को, पाप के दंश को। और यह कैसे हुआ?

शापज्वलित पापी प्राणों में जाग उठे मेरे पावन
छवि की रीती, शुष्क पंखुरियों में मधु का उद्‌गम कैसा
व्यथा-मूक जर्जर प्राणों में यह उन्मन गुंजन कैसा
वह प्रचंड उन्माद, वेदना आज हुई कितनी शीतल
इस अशांत विमथित उर में क्या जाग उठे मेरे उज्ज्वल

नहीं आता भरोसा, मगर करना पड़ता है भरोसा। हजार संदेह उठते हैं, मगर करनी पड़ती है श्रद्धा। क्योंकि जो घट ही गया है, अब उसे झुठलाया नहीं जा सकता।

कैसी अलख शांति बहती है नीर भरी पल-पल में
कैसा पवन पूत मद फैला है सारे भूतल में
एक बूंद में उमड़ पड़ा सागर का वीचि-विलास सघन
गीत-गंध-रस-विरहित उर में जाग उठे मेरे मोहन

गुरु के चरन की रज लैके, दोउ नैन के बींच अंजन दींया।
तिमिर माँहिं उंजियार हुआ, निरंकार पिया को देखि लींया।।
कोटि सुरज तंह छपे घने...

और जैसे हजार-हजार सूरज एक साथ निकल आएं! जैसे सूर्यों की कतारें निकल आईं! जैसे सूर्यों की दीपमाला सज गई!

कोटि सुरज तंह छपे घने, तींनि लोक धनीं धन पाइ पींया।

और जिसने उस धनी को पा लिया, उसी ने धन पाया। उस मालिक को पा लिया, उसी ने मालकियत पाई।

तींनि लोक धनीं धन पाइ पींया।

वह प्यारा इस सारे अस्तित्व का मालिक है। उसके साथ हम एक हो गए तो हम भी मालिक हो गए। खोते हैं हम क्या? खोने को हमारे पास है भी क्या? और पाते हैं कितना! बूंद जब सागर में उतरती है तो क्या खोती है? उसके पास था भी क्या? मगर सागर में उतरने के पहले बूंद भी झिझकती है, डरती है!

खलील जिब्रान ने लिखा है: जब कोई नदी सागर में गिरती है तो ठिठकती है क्षण भर को, डरती है, कंपित हो उठती है, लौट कर पीछे देखती है—वे सारी पर्वत श्रृंखलाएं, वे सुंदर यात्रापथ, वे वन, वे घाटियां, वे लोग, वे तीर्थ, वे पूजा के चढ़ाए गए फूल, अंधेरी रातों में बहाए गए दीये—वह सब याद आता होगा। वे सारी स्मृतियां, वे सारे सुंदर दिन जो बीत गए। और सामने है अथाह सागर! और एक कदम और कि नदी खो जाएगी; उसका अहंकार खो जाएगा; उसकी सीमा टूट जाएगी; उसका व्यक्तित्व न बचेगा।

जिब्रान ठीक ही कहता है कि डरती होगी नदी, घबड़ाती होगी नदी, ठिठकती होगी, लौट जाना चाहती होगी। मगर अब लौटने का कोई उपाय भी नहीं है। जो प्रार्थना में गया,

एक ऐसी घड़ी आती है कि फिर लौटने का कोई उपाय नहीं रह जाता। लौटना चाहो तो भी लौट नहीं सकते। उस विराट का सम्मोहन ऐसा आकर्षित करता है, ऐसी कशिश खींचती है कि तुम्हारे बावजूद भी तुम्हें सागर में उतरना ही होगा।

कोटि सुरज तंह छपे घने, तीनि लोक धनी धन पाइ पीया।

और उस परम प्यारे को पाते ही सब कुछ तुम्हारा है। इसके पहले कुछ भी तुम्हारा न था। और जो-जो तुमने कहा था मेरा, झूठा था। तुम ही न थे अपने तो और तुम्हारा कोई क्या होता! कहा मेरी पत्नी, कहा मेरा पति, कहा मेरा भाई, मेरा मित्र—सब झूठा है, क्योंकि तुम ही अपने नहीं। अभी तुम्हें यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं, अपने की तो बात ही छोड़ दो। अभी यह मैं क्या है, इसकी कोई पहचान ही नहीं। क्योंकि जो पहचानने गए, उन्हें तो यह मिला नहीं। जो नहीं पहचाने, वे ही कहते हैं—मैं हूं। जिन्होंने जाना, वे तो कहते हैं—मैं नहीं हूं। ज्ञान के प्रकाश में मैं का अंधेरा पाया नहीं जाता। और मैं तभी तक पाया जाता हैं, जब तक ज्ञान नहीं होता।

'मैं' एक भ्रांति है। फिर 'मेरा' भ्रांति से पैदा हुई भ्रांति है। 'मैं' ही असत्य है तो 'मेरा' तो असत्य होगा ही। फिर मेरा घर, फिर मेरा धर्म, मेरा मंदिर, मेरी मस्जिद, मेरी किताब, मेरा धर्मग्रंथ, मेरे सिद्धांत, सब तुम्हारी भ्रांतियां हैं, मैं की भ्रांतियां हैं। सब, समग्रीभूत रूप से, जो भी मैं से जुड़ा है, भ्रांत है। तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। लेकिन यह देखना कि कुछ भी नहीं है, बड़ा पीड़ादायी है। इसलिए हम मान कर चलते हैं, हम आंख बंद करके चलते हैं। हम कहते हैं कि नहीं, यह पत्नी मेरी है, सदा-सदा के लिए मेरी है। हम एक-दूसरे को बहुत भरोसा दिलाते हैं। पति पत्नी से कहता है: सदा-सदा के लिए तेरा हूं। जन्मों-जन्मों के लिए तेरा हूं। हम-तुम एक-दूसरे के लिए बने हैं।

पत्नी भी यही कहती है कि तुम्हारे अतिरिक्त और कोई पुरुष में मुझे रस ही नहीं है। और कोई पुरुष मुझे दिखाई ही नहीं पड़ता। बस, तुम्हीं हो जीवन के सार। तुम्हीं हो सब कुछ, मेरे प्राणों के प्राण!

मगर ये सब बातें हैं भुलावे की। हम एक-दूसरे को समझा रहे हैं। हम एक-दूसरे को सहारा दे रहे हैं। हम यह कह रहे हैं कि घबड़ाओ मत, मैं तुम्हारा हूं। इससे यह तुम्हारी प्रतीति बनी रहेगी कि तुम भी हो।

जितना तुम्हारे पास धन होता है, उतने तुम आश्वस्त हो जाते हो—इतना है मेरे पास, घबड़ाहट क्या है? जितना पद होता है, उतनी तुम्हारी अकड़ बढ़ जाती है। क्यों? क्योंकि इतना बड़ा मेरा पद है, तो मैं भी कुछ हूं।

ऐसे मैं की भ्रांति को हम सम्हालते चले जाते हैं। और इसी मैं की भ्रांति को सम्हालने का नाम संसार है। जो इस संसार के प्रति जाग गया, जिसने यह देख लिया कि यह सब भ्रांति है, यहां कुछ भी अपना नहीं है, कुछ अपना हो नहीं सकता है—बस उसके जीवन में उस परम धन की वर्षा हो जाती है।

सतगुरु ने जो करी किरपा, मरिके यारी जुग-जुग जीया।

मगर मर कर ही जी सकते हो। स्मरण रखना इस सूत्र को—मरिके यारी जुग-जुग जीया! सतगुरु ने जो करि किरपा!

लेकिन यह वचन बड़ा अदभुत है! तुम तो जाते हो गुरुओं के पास कुछ पाने। मरने नहीं, कुछ पाने—कि धन और मिल जाए, कि पद और मिल जाए। चुनाव लड़ने के पहले नेतागण गुरुओं के दर्शन करने जाते हैं कि चुनाव जीत जाएं। दुकान खोलने के पहले आदमी राम को स्मरण कर लेता है कि बोहनी ठीक हो। नया धंधा करने के पहले आदमी पंडित-पुजारियों को बुला कर यज्ञ-हवन करवा लेते हैं। मकान बनाने के पहले भूमिपूजन होता है।

तुम तो जब भी परमात्मा को स्मरण करते हो या परमात्मा के लोगों के पास जाते हो, तो कुछ आकांक्षा से जाते हो, मरने नहीं जाते। तुम जीवन का विस्तार चाहते हो, फैलाव चाहते हो। और इस तरह की आकांक्षाएं जो तुम्हारी पूरी करते हैं, जो तुम्हें आशीर्वाद देते हैं, वे सदगुरु नहीं हैं, वे मिथ्यागुरु हैं। उनके कारण ही तुम भटक रहे हो और भटकाए गए हो और भटकाए जाते रहोगे। वे तुम्हारे सेवक हैं। वे तुम्हारी बीमारियों को आशीर्वाद देते हैं।

तुम्हारी बीमारियां मिटानी हैं। और तुम्हारी सबसे बड़ी बीमारी है तुम्हारा मैं-भाव।

ठीक कहते हैं यारी : सतगुरु ने जो करि किरपा! बड़ी कृपा की सदगुरु ने। क्या कृपा की? मरिके यारी जुग-जुग जीया। कि यारी को मरने की कला सिखा दी, कि यारी को दिया धक्का, कि यारी को ऐसा चौंकाया, ऐसा चौंकाया कि यारी फिर अपने को पा ही न सका। मिटाया, ऐसा मिटाया कि कहीं कोई खोज-खबर न मिली। काटी गर्दन, ऐसी काटी कि बचने का कोई उपाय न छोड़ा।

कबीर कहते हैं :

कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
घर बारै जो आपना, चलै हमारे साथ।।

कहते हैं : लट्ठ लिए बाजार में खड़ा हूं। जो अपना सिर तुड़वाने को उत्सुक हो, जो अपने घर में आग लगा देने को उत्सुक हो...! बाहर के घर की बात नहीं हो रही है; भीतर के घर की बात हो रही है, जिसमें तुम बसे हो—अहंकार का घर।

सतगुरु ने जो करी किरपा, मरिके यारी जुग-जुग जीया।

और जो मरना सीख गया, वह जीना सीख गया। और जो मर गया बिलकुल, वह अमृत को पा गया। गोरख का वचन याद करो—

मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ जिस मरणी मरि गोरख दीठा।।

जैसे गोरख मर गया और मर कर जो उसने देखा, वैसा ही मरना तुम्हें भी फल जाए, तुम भी ऐसे ही मर जाओ!

मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।

मरण से ज्यादा और कुछ मीठा नहीं है। यह किस मृत्यु की बात हो रही है? यह तुम्हारी साधारण मृत्यु की बात नहीं है। वह तो तुम मरते ही रहे हो, न मालूम कितनी बार मरते रहे हो और फिर-फिर जन्मते रहे हो! यह उस मरण की बात है जिसके बाद कोई जन्म नहीं होता। यह महामरण की बात है, यह महामृत्यु की बात है।

यह सदगुरु की कृपा से ही संभव है। अपने आप तो तुम अपने को कैसे मारोगे? अपने आप को तो मारना ऐसे ही कठिन हो जाएगा जैसे कोई अपने जूते के बंदों को पकड़ कर खुद

को उठाने की कोशिश करे। अपने आप को मारना तो बहुत कठिन हो जाएगा, क्योंकि तुम मार-मार कर भी पाओगे कि मारने वाला बचा।

जो आदमी अहंकार छोड़ने की कोशिश करता है और निर-अहंकारी बनने की चेष्टा करता है, उसको एक नया अहंकार भर पैदा हो जाता है कि मैं निर-अहंकारी हूं, और कुछ नहीं। बस इतना ही होता है कि अहंकार नई वेशभूषा में उपलब्ध हो जाता है, जो कि पुराने से भी ज्यादा खतरनाक है, क्योंकि सूक्ष्म है। पुराना तो स्थूल अहंकार था; वह तो किसी को भी दिखाई पड़ता था। यह सूक्ष्म अहंकार अब दिखाई भी नहीं पड़ेगा। यह पारदर्शी अहंकार है। इसके आर-पार दिखाई पड़ता है, इसलिए यह खुद तो दिखाई ही नहीं पड़ेगा। यह शुद्ध कांच की भांति हो गया। अब बड़ी मुश्किल हुई। अब तुम कांच के घेरे में बंद हुए। तुम समझोगे मुक्त हूं, क्योंकि सूरज भी आता है, वृक्ष भी दिखाई पड़ते हैं, चांद-तारे भी दिखाई पड़ते हैं। तुम सोचोगे, अब मेरे आसपास कोई घेरा नहीं है। क्योंकि कांच का शुद्ध घेरा है।

संसारी जिसको हम कहते हैं, वह स्थूल अहंकारी है। और जिनको तुम त्यागी कहते हो—तुम्हारे ऋषि-मुनि, तुम्हारे साधु-संन्यासी—उनमें से अधिक, सौ में से निन्यानबे सूक्ष्म अहंकारी होते हैं। क्यों? क्योंकि वे मरे नहीं हैं। उन्होंने अपने को निर-अहंकार की साधना में लगाया है। निर-अहंकार की कोई साधना नहीं होती। जो निर-अहंकार को साधेगा, उसने अहंकार को ही नये रूप में साध लिया। निर-अहंकार की कोई साधना नहीं हो सकती है।

मुझसे लोग आकर पूछते हैं कभी कि हम कैसे निर-अहंकारी हो जाएं?

तुम कभी न हो सकोगे; क्योंकि निर-अहंकारी होने में लगोगे, यह नया अहंकार होगा। निर-अहंकारी नहीं हुआ जाता। फिर क्या करें? अहंकार को समझो। अहंकार को पहचानो। अहंकार को जाकर भीतर देखो—कहां है? खोजो! सदगुरु की कृपा से यह संभव हो पाता है कि वह तुम्हें ले चले तुम्हारे भीतर, तुम्हारे बावजूद; कि तुम भागो तो भागने न दे; कि पकड़े तुम्हारा हाथ, कि तुम छुड़ाना चाहो तो छोड़े नहीं; कि तुम्हें दिखा ही न दे, तब तक जाने न दे, हटने न दे। तुम्हें एक बात दिखा दे कि तुम नहीं हो। बस इतना जिस दिन हो गया, उस दिन तुम्हारा हाथ छोड़ देता है। फिर कोई प्रयोजन ही न रहा; तुम्हें दिख गया कि मैं नहीं हूं। निर-अहंकार नहीं साधा; अहंकार को देखा और नहीं पाया—अब जो शेष रह जाता है उसका नाम निर-अहंकार है। यह महामृत्यु है।

गोरख ने ठीक कहा कि यह बड़ी मीठी मृत्यु है, क्योंकि इस मृत्यु में अमृत का स्वाद मिलेगा। और यह ऐसी मृत्यु है कि इसी से तुम्हें दर्शन होंगे सत्य के।

तिस मरणी मरौं जिस मरणी मरि गोरख दीठा।

दिखाई पड़ा परमात्मा, जब तुम न रहे।

मरिके यारौं जुग-जुग जीया।

तब लग खोजे चला जावै, जब लग मुद्दा नहिं हाथ आवै।

खोजते रहना तब तक, जब तक कि परम सत्य हाथ न लग जाए।

तब लग खोजे चला जावै...

रुकना मत। रुकने के बहुत मौके आएंगे। मन बहुत बार लौट जाना चाहेगा। मन बहुत सी शंकाएं, दुःशंकाएं, कुशंकाएं पैदा करेगा। मन बहुत से संदेह उठाएगा, प्रश्नचिह्न जमाएगा।

मन कहेगा : किस उलझन में पड़ गए हो! सब ठीक-ठाक चलता था। सफलता मिलने के ही करीब थी। चार कदम और चले होते तो जगत में ख्याति मिल गई होती। इस किस धंधे में पड़ गए! इस किस उलझन में पड़ गए! यह कहां की भीतर की खोज में लग गए!

मन बड़े तर्क देगा। मरने के पहले मन अपने को बचाने की हर चेष्टा करेगा। स्वाभाविक भी है। आत्मरक्षा का प्रत्येक को अधिकार भी है। मन भी अपनी आत्मरक्षा करता है। और बड़ी तरकीब से करता है, बड़े तार्किक ढंग से करता है। मन कहेगा : न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है, न कोई मोक्ष है, न कोई स्वर्ग है। ये सब काल्पनिक कवियों की बातें हैं। मृत्यु के बाद और कुछ भी नहीं है। कौन मृत्यु के बाद कब लौटा है और बता पाया है! झंझट में न पड़ो।

ध्यान को बैठोगे, तो मन बड़े उपद्रव मचाएगा। इतने उपद्रव मचाएगा, जितने तुम जब ध्यान को नहीं बैठते तो नहीं मचाता। साधारणतः तुम अपनी दूकान पर बैठे रहते हो तो मन इतने उपद्रव नहीं करता। कभी जाकर एकांत में बैठ कर जरा ध्यान करना, एक घड़ी भर को। मन ऐसे उपद्रव खड़े करेगा, ऐसी लहरों पर लहरें, कि तुम भी चकित होओगे कि मैं आया था ध्यान करने, मन शांत करने, यह और अशांति हुई जा रही है! इससे तो घर पर ही भला था। अपने काम-धाम में लगा था।

जब तुम घर पर हो, काम-धाम में लगे हो, बाजार में उलझे हो, मन को कोई चिंता नहीं। मन तुम्हारा मालिक है, डरे क्यों तुमसे? जब तुम एकांत में बैठते हो, तुम मन की मालकियत खत्म करने में लगे। अब मन संघर्ष करेगा, प्रतिरोध करेगा। सब तरह के उपद्रव खड़े करेगा, सब तरफ के आकर्षण खड़े करेगा। हजार-हजार प्रलोभन देगा। और हजार भय दिखलाएगा अज्ञात के कि कहां चल पड़े हो? खो जाओगे! पागल हो जाओगे! और अज्ञात खतरनाक भी मालूम होता है, क्योंकि अपरिचित है। परिचित में एक तरह की सुरक्षा मालूम होती है, जाना-माना है। यह कहां चले? किस शून्य में चले?

ऐसे ही क्षण में सदगुरु की जरूरत है कि भागने न दे, कि द्वार रोक ले। उसका प्रेम तुम्हें भागने न देगा। उसका प्रेम तुम्हारे तर्कों से ज्यादा सबल है। उसकी मौजूदगी तुम्हारे विचारों से ज्यादा प्रबल है। अकेले में तो तुम भाग जाओगे। कौन रोकेगा? कौन अटकाएगा? कौन समझाएगा-बुझाएगा? कौन कहेगा कि थोड़ी देर और? कौन कहेगा कि अब कहां जा रहे हो, अब तो परमात्मा मिलने के ही करीब है!

बुद्ध एक जंगल से गुजरते हैं। रास्ता भटक गए हैं। आनंद बहुत थका-मांदा है, दिन भर की थकान है, सांझ होने के करीब आ रही है, गांव का कुछ पता नहीं है। एक आदमी से आनंद पूछता है कि भाई, गांव कितनी दूर है? वह कहता है : बस कोई दो कोस और। आशा बंधती है कि दो कोस! फिर दो कोस निकल जाते हैं। आनंद फिर किसी से पूछता है कि भाई, गांव कितनी दूर है? वह कहता है : बस यही कोई दो कोस। फिर दो कोस निकल जाते हैं, अब तो सूरज ढलने के भी करीब आ गया। आनंद बड़ा हैरान है कि ये कैसे दो कोस हैं जो पूरे नहीं होते! वह फिर किसी से पूछता है। वह कहता : ज्यादा दूर नहीं है भाई, यही कोई दो कोस। आनंद बुद्ध से कहता है कि इस इलाके के आदमी भी हद्द के झूठे मालूम होते हैं! छह कोस तो हम चल चुके, गांव का कोई पता नहीं!

बुद्ध ने कहा : ये लोग झूठे नहीं हैं। ये सिर्फ दयावान हैं। मैं जानता हूं कि ये क्यों दो कोस कहते हैं। ये इसलिए दो कोस कहते हैं कि तुम दो कोस चल लोगे। अगर ये कहें कि दस कोस, तुम यहीं बैठ जाओगे। तुम कहोगे : हो गई बात खत्म। ये दो कोस कहते हैं, कि तुम चल लोगे दो कोस। दो कोस की आशा बंधाए रखते हैं। बुद्ध ने कहा : मैं इनकी बात पहचानता हूं, क्योंकि यही तो मुझे करना पड़ता है तुम्हारे साथ। तुम कहते हो—और कितनी देर है समाधि में? मैं कहता हूं—बस, अब हुई, तब हुई। यही दो कोस! ये लोग मेरे जैसे लोग हैं।

ऐसी ही एक कहानी मैं और पढ़ रहा था। एक पति-पत्नी पहाड़ों की यात्रा को गए हैं और एक दिन जंगल में खो गए हैं। लौट रहे हैं। ठीक ऐसी ही कहानी है जैसी बुद्ध और आनंद की। बड़े हताश, बड़े उदास! और एक बूढ़ा किसान अपने झोपड़े के सामने बैठा है। उसकी बुढ़िया पास में ही गाय के लिए दाना डाल रही है। तो वे पूछते हैं कि भाई, डाकबंगला कितनी दूर है? हम डाकबंगले पर ठहरे हैं और रास्ता भटक गए हैं। बूढ़ा कहता है : यही कोई चार कोस। लेकिन बुढ़िया कहती है कि नहीं, जरा उनके चेहरे की तरफ तो देखो, वे कितने थके-मांदे हैं! दो कोस काफी है। जरा उनके चेहरे की तरफ देखो, कितने थके-मांदे हैं! कितने उदास! दो कोस काफी है, चार कोस नहीं। चार कोस अतिशय हो जाएगा, भारी पड़ जाएगा।

सदगुरु समझाए रखता है कि बस अभी हुआ। और ऐसा भी नहीं है कि वह झूठ कहता है। अगर तुम पूरे तन्मय हो जाओ तो अभी हो जाए। यह जो पुकार भीतर की सुनाई पड़ रही है तुम्हें, यह जो धीमी-धीमी सी आकांक्षा जगी है तुममें सत्य की तलाश की, यह कई बार मंदी पड़ जाएगी, कई बार बिलकुल खो जाएगी, सुनाई ही न पड़ेगी। तब लौट जाओगे वापस अपनी दुनिया में। लेकिन कोई चाहिए, जब तुम्हें भीतर की आवाज न सुनाई पड़े तो तुम्हारी भीतर की आवाज बन जाए। ऐसा कोई चाहिए, जिसकी आवाज तुम्हें अपने भीतर की आवाज का ही विस्तार मालूम पड़े। जो उस भाषा में बोले जिससे तुम्हारे भीतर की अंतरात्मा बोलती है। जिसमें तुम्हें अपना भविष्य दिखाई पड़े, ऐसा कोई गुरु चाहिए। जो तुम्हारे जीवन में अभी होने को है, जिसमें हो गया हो, ऐसा कोई गुरु चाहिए।

तब लग खोजे चला जावै, जब लग मुद्दा नहिं हाथ आवै।

कहते हैं यारी : रोकना मत खोज को। तब तक जारी रखना, जब तक कि सार हाथ में न आ जाए। और सार क्या है? वही जो मृत्यु के पार जा सकता है।

जब खोज मरै तब घर करै...

बड़ा प्यारा वचन है! और जब घड़ी आ जाए सार को पाने की, जब सार मिल जाए, तो खोज मर गई।

जब खोज मरै तब घर करै...

तब विश्राम कर लेना, तब घर कर लेना। तब आ गए अपने निज स्थल पर। अब न कहीं जाना है, अब न कुछ पाना है। अब करो विश्राम। अब फैला कर पैर तान लो चादर।

जब खोज मरै तब घर करै...

उसके पहले कहीं किसी पड़ाव को मंजिल मत समझ लेना। कहीं रास्ते में मत रुक जाना। किसी मील के पत्थर को मत समझ लेना कि मंजिल आ गई।

जब खोज मरै तब घर करै, फिर खोज पकरि के बैठ जावै।

फिर जो मिल गया है उसको पकड़ कर बैठ रहना। अब न कहीं जाना है, न कुछ होना है।

आप में आप को आप देखै...

अब घटना घट गई—अनलहक! अहं ब्रह्मास्मि!

आप में आप को आप देखै, और कहूं नहिं चित्त जावै।

अब तो चित्त जाएगा भी नहीं कहीं। चाहोगे भी ले जाना तो न ले जा सकोगे। वही चित्त जो पहले भीतर नहीं आता था और बाहर-बाहर भागता था, और भीतर लाना चाहते थे तो भी नहीं आता था; भाग-भाग जाता था, छिटक-छिटक जाता था; पारे की भांति था; जितनी मुट्ठी बांधते थे, उतना बिखर-बिखर जाता था; वही चित्त अब बाहर ले जाना भी चाहोगे तो न ले जा सकोगे। चूंकि अब परम विश्राम मिला, परम तृप्ति मिली!

बाहर तो दुख ही दुख पाए। सुख की तो केवल आशा थी। मिला सुख कभी नहीं। दिखाई पड़ा दूर क्षितिज पर! बढ़ते रहे और वह भी दूर हटता रहा! एक मृग-मरीचिका थी। दूर के ढोल सुहावने! पास आए तो दुख पाया। दूर से जो सुख मालूम पड़ा था, पास आकर दुख हो गया था। अब महासुख बरसेगा, तो चित्त जाए क्यों? अब तो डुबकी मारेगा तो निकलेगा नहीं।

आप में आप को आप देखै, और कहूं नहिं चित्त जावै।
यारों मुद्दा हासिल हुआ, आगे को चलना क्या भावै।

अब सवाल ही कहां है? अब चलने की बात कहां है? अब सार मिल गया। सार अर्थात परम प्यारा मिल गया!

चुप रहो! सौंदर्य की बहती विजनगंधी हवा
चुप रहो! संदर्भ से टूटे सृजन की शर्बरी
दूर अनजाने अनिद्रित कूल की भीगी हुई
चुप रहो! प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी।

चुप रहो! नीले कुहासे में डुबोए गीत ओ!
छिन गए हैं छटपटाती आस्था के स्वर सभी।
बिन उगे ही जल गई अभिव्यक्ति अपने बीज में
चुप रहो! ओ प्रेरणा के संपुटित अक्षर अभी।

चुप रहो! रस के अजन्मे अधबने विश्वास ओ!
रह गया है प्यार का हर लेख जिसका अनपढ़ा।
चुप रहो! ओ मंत्रद्रष्टा कथ्य सारे चुप रहो!
बह गया मन से सदा को कथ्य जिसका अनगढ़ा।

चुप रहो! सप्तर्षि मंडल के शिखर पर कांप कर
ज्योति के ओ प्रज्वलित आशय ध्रुवांतों के धनी!
चुप रहो कातर क्षणों की बंदिनी अनुभूतियां!
मत मुझे बांधो अनागत की प्रवंचक रागिनी।

चुप रहो! सारे अगम अनुबंध सुधि की राह के
सत्य का सब खून देकर भी रहो विश्रब्ध मन।
चुप रहो! ओ बालुका के स्वप्नपंखी मारुती!
चुप रहो। वैंधव्य में डूबी विवशता के रुदन!

चुप रहो! वनपंखियों की रूपगंधी ओ हवा!
आज तो कुछ भी कहीं कोई नहीं है, चुप रहो!
चुप रहो! अनुगूंजते ओ शंखवर्षी बादलो!
गुनगुनाती ओ गुफाओ, कंदराओ, चुप रहो!

जब विश्राम का क्षण आ जाता है, चुप्पी सध जाती है। न जाने का मन होता, न कुछ करने का मन होता, न कुछ कहने का मन होता। मन ही नहीं होता। मनन ही नहीं होता तो मन कैसे हो? गमन ही नहीं होता तो मन कैसे हो? कोई लक्ष्य न रहा; सारे लक्ष्य पूरे हो गए। कोई भविष्य न रहा; समय विलीन हो गया। वासना चुकी तो भविष्य चुक गया। और आगे जाने को कुछ न बचा, समय मिट गया। इस समय के मिट जाने के क्षण में ही शाश्वत तुम्हारे भीतर उतर आता है।

उस शाश्वत का नाम ही सार है। सत्य कहो उसे, परमात्मा कहो उसे, मोक्ष कहो उसे, निर्वाण कहो उसे—ये सिर्फ शब्दों के भेद हैं। और कुछ भी न कहो, चुप रहो, तो भी चलेगा। और कुछ कहो तो भी कहां कह पाते हो उसे? कह कर भी तो चुप्पी ही बनी रह जाती है। सब शब्द असमर्थ हैं। वह अकथ्य है, अनिर्वचनीय है।

ये बड़े प्यारे सूत्र हैं—प्रार्थना कैसे परमात्मा हो जाती है! प्रार्थना का सेतु कैसे एक दिन परमात्मा तक पहुंचा देता है!

बिन बंदगी इस आलम में, खाना तुझे हराम है रे।
बंदा करै सोई बंदगी, खिदमत में आठों जाम है रे।
यारी मौला बिसारिके, तू क्या लागा बेकाम है रे।
कुछ जीते बंदगी कर ले, आखिर को गोर मुकाम है रे।
गुरु के चरन की रज लैके, दोउ नैन के बीच अंजन दीया।
तिमिर माहिं उजियार हुआ, निरंकार पिया को देखि लीया।।
कोटि सुरज तंह छपे घने, तीनि लोक धनी धन पाइ पीया।
सतगुरु ने जो करी किरपा, मरिके यारी जुग-जुग जीया।।

तब लग खोजे चला जावै, जब लग मुद्दा नहिं हाथ आवै।
जब खोज मरै तब घर करै, फिर खोज पकरि के बैठ जावै।।
आप में आप को आप देखै, और कहूं नहिं चित्त जावै।
यारी मुद्दा हासिल हुआ, आगे को चलना क्या भावै।।

आज इतना ही।

सत्य के अनबोले बोल

प्रवचन ४

स्वामी चैतन्य भारती जब शिविर लेने जाते हैं, तो कहते हैं—मैं भी ज्ञान को उपलब्ध हो गया हूं। ऐसा किस भाव से कहते हैं?

मैं आपको सुनते-सुनते कई बार रोने लगता हूं और मुझे पता भी नहीं चलता है कि कब मेरे आंसू सूख गए और मैं आनंद-विभोर होकर उड़ानें भरने लगा! कृपया इस स्थिति को समझाएं।

आप कहते हैं कि यहां खोने को कुछ भी नहीं है। फिर भी मैं क्यों सब कुछ दांव पर नहीं लगा सकता हूं?

आप जीवन के जिस महाकाव्य को गाए चले जा रहे हैं, उसके अनबोले बोल क्या हैं? कभी उससे उठी प्रेम की उत्ताल लहरें अंतर-बाहर भिगो जाती हैं; कभी उससे उठी ध्यान की तरंगें मन-प्राण को शीतल कर जाती हैं, और फिर कभी शून्य घेरता है—संगीतमय होकर!

पहला प्रश्नः स्वामी चैतन्य भारती जब शिविर लेने जाते हैं, तो कहते हैं—मैं भी ज्ञान को उपलब्ध हो गया हूं। ऐसा किस भाव से कहते हैं?

आनंद सत्यार्थी! ज्ञान को कोई उपलब्ध हो तो लोगों के मन में विरोध का भाव क्यों जगता है? इस पर विचार करना। चैतन्य भारती ज्ञान को उपलब्ध हुए या नहीं, यह चैतन्य भारती समझें। तुम्हें क्यों चिंता है? तुम्हें क्यों अड़चन है? इस पर विचार करना।

चैतन्य भारती का ज्ञान या अज्ञान तुम्हारे जीवन की समस्या नहीं है। दूसरे की समस्याओं को अपनी न बनाओ। अपनी ही समस्याएं इतनी हैं कि हल हो जाएं तो परमात्मा को धन्यवाद देना। लेकिन कोई ज्ञान को उपलब्ध हो गया, ऐसा कहा—सच हो कि झूठ, यह सवाल नहीं है—कि लोगों को एकदम प्रतिरोध पैदा होता है, लोगों को चोट लगती है, उनके अहंकार को चोट लगती हैः तो अरे, चैतन्य भारती ज्ञान को उपलब्ध हो गए? यह कैसे हो सकता है!

तुमने उनसे भी बड़ी घटना घटा रखी है कि तुम अज्ञान को उपलब्ध हो गए हो! यह ज्यादा बड़ा काम है। क्योंकि ज्ञान तो स्वाभाविक है, अज्ञान परभाव है। ज्ञान तो नैसर्गिक है, अज्ञान कृत्रिम है। ज्ञानी तो तुम पैदा हुए हो, अज्ञान तुम्हारा अर्जन है। जब कोई कहे कि मैं अज्ञान को उपलब्ध हो गया हूं, तब चमत्कार है। कोई ज्ञान को उपलब्ध हो जाए, इसमें चमत्कार कुछ भी नहीं है, सभी को होना चाहिए ज्ञान को उपलब्ध। ज्ञान को उपलब्ध हो गया हूं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि उपलब्ध तो हम उसको होते हैं

जो हम नहीं हैं। ज्ञान तो हमारी स्वाभाविक दशा है, बोध तो हमारी आत्मा है। उसे तो हम लेकर ही आए हैं। वह तो सदा-सदा से हमारी स्थिति है।

आश्चर्य तो यह है कि रोशनी अंधेरे में कैसे खो गई! आश्चर्य तो यह है कि जागना जिसका स्वभाव है, वह सो कैसे गया! जब भी तुमसे कोई कहे, आनंद सत्यार्थी, कि मैं अज्ञानी हूं, तब चमत्कार को नमस्कार करना। ज्ञानी कोई कहे, इसमें क्या अड़चन है?

लेकिन लोगों को अड़चन होती है। क्योंकि जब भी कोई कहता है—मैं ज्ञानी, तो तुम्हारे भीतर चोट लगती है, तुम्हारे अहंकार को, कि मेरे रहते और तुम ज्ञानी हो गए! अभी मैं भी नहीं हुआ ज्ञानी, और तुम ज्ञानी हो गए! बर्दाश्त नहीं किया जा सकता यह।

समझदार अगर होओ तो कहोगे कि अरे चैतन्य भारती तक ज्ञान को उपलब्ध हो गए, तो अब मैं भी हो जाऊं! अब अड़चन क्या रही? जब चैतन्य भारती ज्ञान को उपलब्ध हो सकते हैं तो आनंद सत्यार्थी क्यों नहीं हो सकते? प्रसन्न होओ। कोई ज्ञान को उपलब्ध हो गया तो प्रसन्न होओ। आनंदित होओ। जश्न मनाओ कि एक और व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हो गया, तुम्हारे लिए रास्ता और आसान हो गया। अज्ञानियों की पंक्ति थोड़ी छोटी हो गई। क्यू थोड़ा आगे सरका, तुम भी थोड़ा आगे बढ़े।

नहीं, लेकिन उलटा होता है। किसी ने कहा कि मैं ज्ञान को उपलब्ध हुआ, कि तुम्हें चोट लगी, तुम्हें बेचैनी हुई!

और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि चैतन्य भारती ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं। यह चैतन्य भारती की चिंता है। यह तुम्हारी चिंता नहीं है। और ऐसी व्यर्थ की चिंताओं में लोग सदियां गंवाते हैं, जन्मों को खो दिया है उन्होंने। अभी भी सोच रहे हैं। अभी भी सोच रहे हैं कि बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध हुए थे कि नहीं? कि महावीर वस्तुतः तीर्थंकर थे कि नहीं? कि जीसस वस्तुतः ईश्वर के बेटे थे या नहीं? अभी भी सोच रहे हैं! इतनी देर में तो तुम्हीं बुद्ध हो जाते, तुम्हीं महावीर हो जाते, तुम्हीं मोहम्मद हो जाते। इतनी देर में तो तुम्हारी ही कुरान पैदा हो गई होती! इतना समय इसमें गंवाया है। और इससे होगा भी क्या? अगर यह तय भी हो जाए कि मोहम्मद पैगंबर नहीं थे, तो तुम्हें क्या लाभ? और यह भी तय हो जाए कि मोहम्मद पैगंबर थे, तो तुम्हें क्या लाभ? लाखों लोग मानते हैं कि मोहम्मद पैगंबर थे; लाभ क्या है? उतने ही लाखों मानते हैं कि नहीं थे; लाभ क्या है?

दूसरा कहां है, इससे तुम्हें कोई लाभ होने वाला नहीं है। ऐसे व्यर्थ के प्रश्न यहां लाओ ही मत। अपनी चिंता करो। समय ऐसे ही काफी गंवाया है, और न गंवाओ। अपने जीवन से संबंधित प्रश्न उठाओ, ताकि उन प्रश्नों को मैं काट सकूं, तुम्हें निष्प्रश्न कर सकूं।

यह प्रश्न उठाना भी हो तो चैतन्य भारती को उठाना चाहिए कि मैं ज्ञान को उपलब्ध हुआ या नहीं? तो चैतन्य भारती तो डर के मारे उठाते नहीं। बाहर जाकर कहते होंगे, यहां नहीं कहते। कहना चाहिए मुझसे।

तुम चिंता न करो चैतन्य भारती की। और जब कोई ज्ञान को उपलब्ध होगा तो मैं ही घोषणा करूंगा, तुम चिंता क्यों करते हो? चैतन्य भारती ज्ञान को उपलब्ध होंगे तो चैतन्य भारती को कहने की जरूरत नहीं रहेगी, मैं कहूंगा। मैं गवाही रहूंगा। इतनी जल्दबाजी करोगे, अपने मुंह मियां मिट्ठू बनोगे—व्यर्थ की चिंताएं और व्यर्थ की समस्याओं में उलझ जाओगे।

और फिर भी मैं तुमसे कहता हूं कि ज्ञान को उपलब्ध होना बड़ी घटना नहीं है, बहुत छोटी घटना है, सरल घटना है! सरल है, इसीलिए कठिन है। इतनी सरल है, इतनी सुगम है, यही कठिनाई है!

अहंकार कठिन बातों में रस लेता है, क्योंकि कठिन बातों में होती है चुनौती। अहंकार चढ़ना चाहता है गौरीशंकर। अहंकार जाना चाहता है चांद-तारों पर। यह अहंकार है जिसने ज्ञान को बहुत बड़ी बात बना लिया है। खूब बड़ी बना ली बात, अब चढ़ने का मजा है और शिखर पर झंडा गाड़ कर चिल्ला कर कहेंगे कि हम ज्ञान को उपलब्ध हो गए। यह 'मैं' का ही उदघोष रहेगा। और 'मैं' बिना उदघोष के नहीं रह सकता। मजा ही इस बात में है। मजा ज्ञान में कम है; ज्ञान को उपलब्ध हो गया हूं, इसकी घोषणा में ज्यादा है। और यही सब अज्ञान के रास्ते हैं।

मैं तुमसे कह रहा हूं यह कि ज्ञान तुम्हारा स्वभाव है; उपलब्ध नहीं होना है। उपलब्ध होने की भाषा ही जाने दो। यह कोई पाने की चीज नहीं है, जो आगे कभी भविष्य में मिलनी है, प्रयास से मिलनी है, प्रयत्न से मिलनी है। यह कोई ऐसी मंजिल नहीं है, जो चल-चल कर मिलनी है। यह ऐसी मंजिल है, जो बैठ जाओ तो मिल गई। बैठ जाओ तो पता चलता है कि मिली ही थी, दौड़ते थे इसलिए चूकते थे।

चैतन्य भारती इसी क्षण ज्ञान को उपलब्ध हो सकते हैं और आनंद सत्यार्थी भी इसी क्षण ज्ञान को उपलब्ध हो सकते हैं, क्योंकि ज्ञान को उपलब्ध हो। एक झीना सा घूंघट डाल रखा है; जब चाहो तब पर्दा हटा दो। लेकिन ये घोषणाएं पर्दे को और मोटा कर देंगी। ये घोषणाएं पर्दे को और सघन कर देंगी।

तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि चैतन्य भारती ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं। यही कह रहा हूं कि उपलब्धि की भाषा जाने दो तो चैतन्य भारती ज्ञान को उपलब्ध हैं ही। यह घोषणा छोड़ दो। इसकी चिंता ही न लो। और तुम भी, आनंद सत्यार्थी, इसी क्षण वहां हो जहां होना है। हम परमात्मा में हैं ही।

लेकिन हमने हर चीज को महत्वाकांक्षा बना लिया है—परमात्मा को भी, ज्ञान को भी, सत्य को भी। यह मन का खेल है, हर चीज को महत्वाकांक्षा बना देता है। क्योंकि जब महत्वाकांक्षा बन जाती है तो भविष्य पैदा हो जाता है। जब भविष्य पैदा हो गया तो बस यात्रा शुरू हुई कि अब पाना है ज्ञान, पाना है सत्य, पाना है मोक्ष। बस पाने की दौड़ मन है। और जहां मन है वहां कहां मोक्ष! वहां कहां ज्ञान!

जिस दिन ज्ञान घटेगा, उस दिन तुम चकित होकर हैरान होओगे कि कैसे आश्चर्य की बात है कि मैं अज्ञानी था! यह हो ही नहीं सकता। अज्ञान हो ही नहीं सकता और मैं मानता रहा, मानता रहा। मेरी मान्यता उसे बनाए रखी, बनाए रखी। मैं उसे जिलाए रखा हजार-हजार मेहनत करके।

और सबसे बड़ी मेहनत अज्ञान को बचाने की है कि ज्ञान पाना है। यह सबसे बड़ी आड़ है। ज्ञान पाना है, अर्थात आज तो होगा नहीं, कल होगा। और कल कभी आता नहीं। ज्ञान पाना है, मतलब भविष्य की योजना बनानी है। अभी तो जैसे अज्ञानी हैं, रहेंगे; कल ज्ञान को उपलब्ध होंगे।

लेकिन खयाल रखना, अगर आज अज्ञानी रहे, तो अज्ञान की पर्त आज चौबीस घंटे और मजबूत होगी। अगर आज नहीं टूट सकती थी तो कल कैसे टूटेगी? कल तो टूटना और मुश्किल हो जाएगी। तोड़नी हो तो अभी, इसी क्षण। टालना मत! टाली, कि सदा के लिए टाली। अभी या कभी नहीं!

तुम सब ज्ञानी हो, यह मेरा उदघोष! तुम अभी ज्ञानी हो, तुम्हें पता हो या न हो। सारा अस्तित्व ज्ञानपूर्ण है, क्योंकि परमात्मा सबके भीतर मौजूद है। तुम यह उपलब्धि की भाषा छोड़ दो।

तुम्हारे मन को चोट लगी कि चैतन्य भारती कहते हैं कि मैं ज्ञान को उपलब्ध हो गया। तुम्हें इस पर भरोसा नहीं आया। क्यों? क्यों भरोसा न आया? क्या अड़चन आई तुम्हें? यही अड़चन आई कि इतना कठिन काम और चैतन्य भारती ने कर लिया! इतना महाकठिन काम! कभी कोई बुद्ध, कभी कोई महावीर कर पाता है। चैतन्य भारती कर लिए!

तुमने गौरीशंकर नाहक खड़ा कर रखा है। ज्ञान कोई गौरीशंकर नहीं है, समतल भूमि पर चलना है। 'चलना' भी कहना ठीक नहीं, समतल भूमि पर बैठना है। विश्राम है ज्ञान, विराम है ज्ञान।

लेकिन हम व्यर्थ के प्रश्नों में और समस्याओं में समय खराब करते हैं।

चैतन्य भारती कहें तो खूब ताली बजा कर उनका स्वागत करना, फूलमालाएं पहना देना। हर्जा क्या है? चलो एक आदमी और ज्ञान को उपलब्ध हुआ। बैंड-बाजे बजा देना, शहनाई बजा देना। और उत्फुल्ल होना। बुरा क्या है? कोई दुर्घटना तो नहीं घट गई।

लेकिन मैं अपने संन्यासियों को कहना चाहता हूं: मैं तुम्हारी घोषणा करूंगा। जल्दी न करो। जल्दबाजी अज्ञानी का लक्षण है। जब मैं तुम्हारे लिए बोल सकता हूं तो तुम चुप ही रहो। तुम बोल कर अपने लिए व्यर्थ अड़चन खड़ी कर लोगे। और डर यह है कि तुम्हारे बोलने में कहीं अहंकार का रस ही न हो! ज्यादा संभावना यही है कि तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारी समाधि तुम्हारे अहंकार का नया आभूषण हो। तब ज्ञान तो और दूर हो जाएगा, समाधि और दूर हो जाएगी। और बजाय इसके कि तुम जागते, तुम और गहरी निद्रा में खो जाओगे।

और मैं चाहता हूं कि तुम जागो। जाग जाओगे तो मैं दुनिया को कह दूंगा, तुम घबड़ाओ मत। मैं चाहता हूं लाखों-लाखों लोग जागें। यह घटना इतनी सरल हो जानी चाहिए कि जो भी घड़ी भर शांत बैठना सीख ले वही जाग जाए। इतनी ही सरल बनाने की चेष्टा में संलग्न हूं। इसलिए मुझसे नाराज हैं साधु-संन्यासी, क्योंकि उनकी बड़ी-बड़ी दुर्धर्ष साधना को, बड़ी कठिन साधना को, जिसका वे सदियों से गुणगान करते रहे और जिसको पाने में जन्म-जन्म लगते हैं...उन्होंने संन्यास को बड़ा कठोर और कठिन बना दिया था, असंभव बना दिया था। उस पर ऐसी शर्तें लगा दी थीं कि कोई पूरी ही न कर पाए। मैंने सब शर्तें अलग कर ली हैं संन्यास से।

इसका अर्थ समझते हो? संन्यास से सारी शर्तें अलग करने का अर्थ है कि मैंने निर्वाण से सारी शर्तें अलग कर ली हैं। मैंने कह दिया है कि तुम जैसे हो ऐसे ही पर्याप्त हो। जरा भी कुछ जोड़ना नहीं है, जरा भी कुछ घटाना नहीं है। तुम जैसे हो, परमात्मा के प्यारे हो। इससे साधु-संत नाराज हैं। स्वामी—पुराने ढब के—बहुत नाराज हैं, परेशान हैं। उनकी परेशानी

स्वाभाविक है। क्योंकि उन्होंने इतना उपवास किया, इतनी तपश्चर्या की, घर-द्वार छोड़ा, तब वे संन्यासी हुए। तुमने न घर छोड़ा, न द्वार छोड़ा, न उपवास किए, न व्रत किए—और तुमको मैंने संन्यास दे दिया! तुम इस इशारे को समझो। इसका अर्थ यह है कि मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि संन्यास कोई पाने की बात नहीं है, सिर्फ समझ की एक छोटी सी किरण है। प्रयास नहीं है, सिर्फ बोध मात्र है।

मगर जब यह बोध तुम्हें हो जाए तो तुम चकित होओगे कि इस बोध को 'हो गया है', ऐसा किसी से कहने का भाव भी पैदा नहीं होगा। क्या कहना है? जो समझ सकते हैं, समझ लेंगे। हां, तुम्हारा जीवन, तुम्हारा उठना-बैठना प्रसादपूर्ण हो जाएगा। तुम्हारे एक-एक शब्द में माधुर्य हो जाएगा, संगीत हो जाएगा! तुम्हारे पास जो आएंगे, उन्हें प्रतीत होने लगेगी एक अपूर्व शीतलता। तुम्हारे पास बूंदाबांदी होने लगेगी। लोगों को खबर मिलने लगेगी। अपने से खबर मिलने लगेगी।

और यह ज्यादा आनंदपूर्ण हुआ होता कि आनंद सत्यार्थी को पता चलता कि चैतन्य भारती ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं। आनंद सत्यार्थी यह खबर लाते कि मुझे लगता है चैतन्य भारती ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं। तब मजा बहुत होता। तब आनंद बहुत होता। मगर चैतन्य भारती ने घोषणा करके आनंद सत्यार्थी को और दुश्मन बना लिया। अब तो चैतन्य भारती किसी दिन ज्ञान को भी उपलब्ध हो जाएं तो भी आनंद सत्यार्थी को दिखाई नहीं पड़ेगा, क्योंकि वे कहेंगे कि यह तो पुरानी ही घोषणा करते रहे हैं। आज ही चैतन्य भारती ज्ञान को उपलब्ध हो सकते हैं, मगर आनंद सत्यार्थी को भरोसा न आएगा।

कहना क्या है? हीरा पायो गांठ गठियायो, वाको बार-बार क्यों खोले! मिल गया हीरा, चुपचाप अपनी गांठ में सम्हाल लो।

फिर, मैं हूं यहां। शिष्य के बहुत काम गुरु अपने सिर ले लेता है—उसके पाप भी, उसके पुण्य भी; उसका अज्ञान भी, उसका ज्ञान भी। एक बार तुम मेरी नौका में सवार हो गए, फिर अब जो भी होगा, मुझे कहने दो। तुम इस तरह की बातें कहोगे तो व्यर्थ की अड़चनें पैदा होंगी। लाभ नहीं होगा किसी को, हानि होगी।

इस प्रश्न को मैंने इसीलिए लिया कि और-और लोगों ने भी मुझे पत्र लिखे हैं कि चैतन्य भारती ऐसा कहते हैं, कि चैतन्य भारती वैसा कहते हैं। कि चैतन्य भारती की इतनी शिकायतें मेरे पास आई हैं कि जिसका हिसाब नहीं है! और उन शिकायतों का कुल कारण इतना है कि तुम्हारे जीवन से प्रकट होने दो। मत कहो! तुम्हारे निःशब्द में यह भाव अपने आप दूसरे के प्राणों में जगमगाए। यह धुन दूसरे को सुनाई पड़े। बस ठीक है। कहने से प्रयोजन भी क्या है? क्या तुम सोचते हो तुम्हारे कहने से कोई मान लेगा कि तुम ज्ञान को उपलब्ध हो गए हो? जो मान भी लेते वे भी नहीं मानेंगे, क्योंकि तुम उनके अहंकार को चोट कर दिए। उनके अहंकार को घाव लग गया। वे बदला लेंगे। क्या तुम सोचते हो कि तुम्हारे यह कहने से कि तुम ज्ञान को उपलब्ध हो गए हो, तुम्हारी बातों का वजन बढ़ जाएगा? बातों में वजन होता है या नहीं होता है। तुम्हारी उदघोषणाओं से बातों का कोई वजन नहीं बढ़ता।

संन्यासी को खूब सावधान होना चाहिए—क्या कहे, क्या न कहे। खूब होशपूर्वक एक-एक शब्द बोलना चाहिए।

और चैतन्य भारती को मैं बाहर भेज रहा हूं; यह उनकी साधना है। उन्हें भेजता हूं शिविर लेने; यह उनको दी गई साधना है। इसमें जरा चूके तो गिरेंगे। यह कठिन साधना है, सम्हल कर चलने की जरूरत है। क्योंकि सबसे बड़ी कठिनाई दुनिया में है...भीड़ सबसे बड़ी कठिनाई है। लोग मुझे पूजें, लोग मुझे मानें, लोग सम्मान दें, लोगों की आंख मुझ पर लगे—यह रस अहंकार का सूक्ष्म से सूक्ष्म रस है।

तो जब मैं चैतन्य भारती को भेज रहा हूं तो उन्हें समझ ही लेना चाहिए कि यही उनका रोग होगा कहीं भीतर, जिसको तोड़ने की मैंने चेष्टा की है। किसी को ऐसे ही कहीं नहीं भेज देता हूं। यहां जिसको भी जो काम दिया गया है, उसका प्रयोजन है। जिस दिन प्रयोजन पूरा हो जाएगा, उस दिन काम बदल दिया जाएगा। चैतन्य भारती को भेज रहा हूं सिर्फ इसीलिए कि यही उनकी एकमात्र बीमारी है; जिस दिन यह टूट जाएगी, उस दिन ज्ञान मिला ही हुआ है, मिला ही था। बस यह एक बीमारी है, इस बीमारी को तोड़ने के लिए उन्हें बाहर भेज रहा हूं, भीड़ में भेज रहा हूं। क्योंकि उनको यहां आश्रम में बिठा दिया जाए, तो यह बीमारी को टूटने की चुनौती न मिलेगी। चुनौती से ही बीमारियां टूटती हैं।

तो जब मैं किसी को भेजता हूं कहीं, उसे समझ लेना चाहिए कि कुछ प्रयोजन होगा, कोई अर्थ होगा। किसी और को भेज सकता था। लेकिन इतने हजारों संन्यासियों में से चैतन्य भारती को चुना है जाने के लिए, मृदुला को चुना है जाने के लिए। तो समझ लेना चाहिए उनको कि कहीं कोई रस होगा। उस रस की आखिरी जड़ काटने के लिए तुम्हें भेज रहा हूं। उस जड़ को पानी मत दो, उसे काटो। जिस दिन कट जाएगी...

और आज कट सकती है, अभी कट सकती है! क्योंकि जड़ तुम्हारे मानने में है। यहां मानना गिरा कि वहां अज्ञान गया। अज्ञान को तुम सम्हाले हो। ज्ञान की घोषणा अज्ञान को बचने का आखिरी उपाय हो सकती है।

दूसरा प्रश्न: मैं आपको सुनते-सुनते कई बार रोने लगता हूं और मुझे पता भी नहीं चलता है कि कब मेरे आंसू सूख गए और मैं आनंद-विभोर होकर उड़ानें भरने लगा! कृपया इस स्थिति को समझाएं।

प्रदीप चैतन्य! यह स्थिति नहीं है, यह सौभाग्य है। इसे समझो मत, इसे जीओ। अक्सर तो हम उन बातों को समझना चाहते हैं जो समस्याएं हैं। समस्याओं को समझने के द्वारा हम हल करना चाहते हैं।

यह कोई समस्या नहीं है। यह समाधि की पहली पगध्वनि है। यह पास आती समाधि की पहली लहर है। यह पहली सुगंध है जो तुम्हारे नासापुटों को भर रही है। इसे समस्या न बनाओ। इसे समझने की चेष्टा न करो। क्योंकि समझने की चेष्टा की, तो अवरुद्ध हो जाएगी यह घटना, यह प्रवाह बंद हो जाएगा। क्योंकि जिस चीज को भी हम समझने बैठ जाते हैं, बुद्धि बीच में आ जाती है। घटना घट रही है हृदय में, समझना घटेगा बुद्धि में। बस बुद्धि बीच में आई कि हृदय सिकुड़ जाएगा।

हृदय बहुत संवेदनशील है। विचार, बुद्धि, तर्क, विश्लेषण, व्याख्या—इन सब को नहीं झेल पाता, बंद हो जाता है। तुम्हारे जीवन में प्रेम उठा, और कोई तुमसे पूछे—प्रेम क्या है, पहले समझाओ। अगर तुम समझाने बैठ गए, तो एक बात पक्की समझना कि वह जो प्रेम का छोटा सा अंकुर उमगा था, मर जाएगा। और तुम अगर समझने में लग गए कि प्रेम क्या है, तो प्रेम की जो झलक आई थी वह खो जाएगी। कुछ चीजें हैं जो समझी नहीं जातीं, जीयी जाती हैं।

तुमने कहा: 'मैं आपको सुनते-सुनते कई बार रोने लगता हूं और मुझे पता भी नहीं चलता है कि कब मेरे आंसू सूख गए और मैं आनंद-विभोर होकर उड़ानें भरने लगा।'

प्रदीप चैतन्य, शुभ हो रहा है, सौभाग्य हो रहा है! इसे समझने की चेष्टा न करो। समझना छोड़ो, इसमें डुबकी मारो। उसी डुबकी से समझ आएगी। समझ लगाई तो डुबकी रुक जाएगी। इसमें डूबो। भाव-विभोर हो जाओ।

लेकिन मन हर चीज के पीछे प्रश्नचिह्न लगाने की कला जानता है। हर चीज के पीछे! जिन चीजों पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाए जा सकते, उन पर भी प्रश्नचिह्न लगा देता है। और एक दफा प्रश्नचिह्न मन ने लगा दिया तो बस यात्रा अपना रुख बदल देती है, अपना मोड़ बदल देती है। तुम गलत रास्ते पर उतर जाते हो।

सुबह हुई, सूरज उगा, पक्षियों ने गीत गाए और मैंने तुमसे कहा कि कितनी सुंदर सुबह है! और तुमने पूछा: सौंदर्य यानी क्या? अब देखो, एकदम तुम्हारा चित्त न तो सूरज को देखेगा अब, न पक्षियों के गीत सुनेगा, न आकाश में भटकते हुए शुभ्र बादल देखेगा। यह सुबह की ताजगी, यह सुबह की मदमस्ती, सब तुमने एक तरफ एक प्रश्नचिह्न लगा कर हटा दी। तुम्हारी आंखें तुम्हारे प्रश्नचिह्न से भर गईं—सौंदर्य क्या?

और कौन सौंदर्य को कब बतला पाया है? कौन सौंदर्य को कब समझा पाया है? मैं भी न समझा सकूंगा। और जब भी ऐसी बातें समझाने की कोशिश की जाती है, तो कुछ समझाया जाता है और कुछ और समझ में आता है। ये बातें समझाने की हैं ही नहीं। मैं समझाऊं भी तो सुनोगे तुम, और तत्क्षण सुनते ही तुम्हारे भीतर अपने अर्थ पैदा हो जाएंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने एक मित्र से कह रहा था...। बड़ा खुश था और छाती फुलाए बैठा था। तो मित्र ने पूछा कि बड़े खुश हो, बड़ी छाती फुलाए बैठे हो, मामला क्या है? उसने कहा: आज मैंने पत्नी को ऐसी घुड़की दी! बस समझो चारों खाने चित्त कर दिया एक घुड़की में! मित्र ने पूछा कि भरोसा नहीं आता, क्योंकि तुम्हारी पत्नी को हम जानते हैं और तुम्हें भी जानते हैं। हमें वह दिन भी याद है जब पत्नी तुम्हारा पीछा की थी और तुम घबरा कर बिस्तर के नीचे छुप गए थे। पत्नी मोटी है और तगड़ी है, तो बिस्तर के नीचे तो आ नहीं सकती। तो वही एक बचाव की जगह है। और इसी बीच मेहमानों ने कुछ द्वार पर दस्तक दे दी थी। तो पत्नी हाथ जोड़ने लगी थी कि बाहर आ जाओ। अब मेहमान देखेंगे तो क्या कहेंगे! तो हमें वह दिन याद है कि तुमने कहा था कि नहीं आते, आज पता ही चल जाए दुनिया को कि इस घर का मालिक कौन है! जहां बैठना है वहां बैठेंगे! घर का मालिक कौन है, आज यह तय ही हो जाए! मेहमानों के सामने ही तय हो जाए, ताकि दुनिया को भी पता चल जाए कि घर का मालिक कौन है!

तो मित्र ने कहा : हम मान नहीं सकते कि तुम्हारी घुड़की से...

लेकिन मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि मानो। बड़ी बकवास लगा रखी थी उसने। खोपड़ी खाए जा रही थी। मैंने कहा : बस, एक शब्द और बोल कि सिर खोल दूंगा! कि एकदम रास्ते पर आ गई।

मित्र ने कहा : फिर क्या हुआ?

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा : फिर क्या हुआ, एक शब्द नहीं बोल सकी। बोली : अरे जा-जा! तीन शब्द बोली। एक घुड़की में रास्ते पर ला दिया। एक शब्द बोलती तो मजा चखा देता। डर के मारे तीन शब्द बोली कि अरे, जा-जा।

अर्थ कौन लगाएगा? अर्थ तो तुम लगाओगे। कोई सौंदर्य का पारखी अपने सौंदर्य-बोध को भी तुम्हारे भीतर उतार दे, तो भी तुम्हारे पात्र में पड़ते ही अमृत जहर हो जाएगा। तुम्हारा पात्र ऐसी गंदगी से भरा है! तुमने ऐसा कूड़ा-करकट अपने भीतर इकट्ठा कर रखा है कि किरण भी उतरेगी तो गंदी हो जाएगी।

इसलिए कुछ बातें समझाई नहीं जातीं। एक तो उन्हें समझाना कठिन है, क्योंकि वे शब्द की पकड़ में नहीं आतीं। दूसरा उन्हें समझाना उचित भी नहीं है, क्योंकि जिसको तुम समझाओगे, वह उनके अपने अर्थ निकालेगा।

इसलिए बुद्ध ईश्वर के संबंध में चुप रह गए। सत्य के संबंध में चुप रह गए। नहीं बोले सो नहीं बोले। लाख लोगों ने पूछा, लाख उपायों से पूछा; नहीं बोले सो नहीं बोले। जब भी बुद्ध किसी गांव में आते थे तो उनके शिष्य गांव में घोषणा कर देते थे कि ये ग्यारह प्रश्न बुद्ध से मत पूछना, उनका समय खराब मत करना।

उन ग्यारह प्रश्नों में सारे दर्शनशास्त्र के मूल प्रश्न आ जाते हैं। अगर तुम ग्यारह प्रश्न छोड़ दो तो फिर पूछने को कुछ बचता नहीं; या फिर पूछने को जीवन की वास्तविक समस्याएं ही बचती हैं, व्यर्थ का ऊहापोह नहीं बचता। फिर तुम्हारे रोग ही बचते हैं कि इनकी औषधि की तलाश तुम करो। फिर तत्व की ऊंची-ऊंची बातें और ऊंची-ऊंची उड़ानें नहीं बचतीं। फिर सौंदर्य क्या है? और सत्य क्या है? और निर्वाण क्या है? और ईश्वर क्या है? और ईश्वर ने जगत को बनाया तो क्यों बनाया? और जन्म के पहले हम थे या नहीं? और मृत्यु के बाद हम होंगे या नहीं? इस तरह के सारे प्रश्नों को बुद्ध ने कहा है अव्याख्य; इनकी कोई व्याख्या मत पूछना।

और फिर, तुम तो यह जो प्रश्न पूछ रहे हो, यह तुम्हारे भीतर घटना घट रही है। क्यों इसका स्वाद नहीं लेते? क्यों नहीं इसे पीते? इसमें और डोलो। और मस्त हो जाओ। अभी और इसमें डुबकी लग सकती है।

लेकिन मन डरता है डूबने से। मन कहता है : पहले सोच-समझ लो।

एक संन्यासी ने कल मुझे पूछा कि मैं आना चाहता हूं आपके पास; चाहता हूं आप मेरे सिर पर हाथ रखें। मगर मैं पहले यह पूछना चाहता हूं कि कहीं ऐसा तो न होगा कि आपकी शक्ति मेरी शक्ति को दबा दे? कहीं ऐसा तो न होगा कि मैं सदा के लिए आपका गुलाम हो जाऊं? इसमें कोई सम्मोहन तो नहीं छिपा है?

सिर पर हाथ...और कितने प्रश्नचिह्न मन ने उठा दिए! अब ऐसा आदमी क्या खाक

सत्य की यात्रा कर सकेगा! इतना भयभीत आदमी! इतना भीरु! इतना डरा हुआ आदमी एक कदम न उठा सकेगा। कैसे उठाएगा?

उन मित्र ने लिखा है कि पहले आप मुझे आश्वस्त करें। आना चाहता हूं। आप दूसरों के सिर पर हाथ रखते हैं, मन में मेरे भी बड़ी आकांक्षा उठती है। मगर पहले आश्वस्त करें, इसमें कोई जोखिम तो नहीं है?

अब मैं कैसे आश्वस्त करूं? और मैं ही आश्वस्त करूंगा, उससे हल क्या होगा? अगर मैं कह भी दूं कि बिलकुल आश्वस्त रहो, तो मन दूसरा संदेह उठाएगा कि इस आश्वासन पर विश्वास करना कि नहीं करना? जिस मन ने पहले प्रश्न उठाए थे, वह मन इतने से कुछ आश्वस्त तो न हो जाएगा। वह कहेगा कि पता नहीं, यह आश्वासन सच्चा है कि झूठा? फिर जोखिम कोई नहीं है, इसका पक्का भरोसा कैसे हो? कौन भरोसा दिलाए?

नहीं; मैं तुमसे नहीं कह सकता कि जोखिम नहीं है। जोखिम तो है। जोखिम पक्की है। यह मिटने का रास्ता है; और बड़ी जोखिम क्या होगी? तो एक ही आश्वासन दे सकता हूं कि जोखिम निश्चित है। मेरे पास आए तो मिटोगे। मुझसे निकटता बनाई तो तुम वही तो न रह सकोगे जो तुम हो। नहीं तो निकटता बनाने का अर्थ क्या हुआ? सामीप्य का प्रयोजन क्या हुआ? सत्संग का राज ही क्या है और? यही तो कि शिष्य गुरु के निकट आए, आए, आए...खो जाए। बचे न! बचे ही न!

तो मैं तुम्हें यही आश्वासन दे सकता हूं कि तुम्हें दबाऊंगा नहीं, तुम्हें बिलकुल मिटाऊंगा। दबाने में तो तुम बच जाओगे। दबाया हुआ तो कभी उभर सकता है, लौट सकता है। दबाया हुआ तो कशमकश करेगा। दबाऊंगा नहीं, सिर्फ मिटाऊंगा। तुम बचोगे ही नहीं, ऐसे उपाय कर रहा हूं। सम्मोहन नहीं है यह, यह तो सीधी मृत्यु है।

सम्मोहन का तो मतलब होता है कि आदमी अभी बचा है। और जो सम्मोहन में है वह जाग भी सकता है सम्मोहन से। नींद कितनी ही गहरी हो, टूट सकती है। सम्मोहन कितना ही गहरा हो, आदमी उससे चौंक सकता है।

बड़े से बड़े सम्मोहनविद भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि कितनी ही गहरी सम्मोहन की अवस्था हो, अगर उस आदमी की इच्छा है जागने की तो वह तत्क्षण जाग आएगा। अगर उसकी इच्छा के विपरीत तुम कोई काम कराना चाहते हो, उसका सम्मोहन तत्क्षण टूट जाएगा। इस पर बहुत प्रयोग हुए हैं। वह आदमी और सब काम कर देगा।

एक युवक कुछ वर्षों तक मेरे पास था। उसे, सम्मोहित होने में क्या होता है, इसे जानने की बड़ी आकांक्षा थी। तो मैं उसे सम्मोहन का पूरा शास्त्र सिखा रहा था। वह बड़े गहरे सम्मोहन में जाता भी था। और फिर उस अवस्था में उससे जो भी कहो, वैसा ही करेगा। अगर उसे एक तकिया दे दो और कहो कि यह बड़ी सुंदर स्त्री है, तो वह उसे बिलकुल गले लगा लेगा और नाचेगा और कूदेगा और चूमेगा, आलिंगन करेगा, और दीवाना हो जाएगा। अगर उसको यह भी कह दो कि दीवाल नहीं है यह, दरवाजा है, तो सिर टूट जाए, मगर निकलने की कोशिश करेगा।

वह एक दफ्तर में काम करता था। बड़ी कम तनख्वाह थी। और मेरे एक परिचित मित्र उसे अपने दफ्तर में लेने को तैयार थे दुगुनी तनख्वाह पर। मगर उस युवक की आदत थी कि

जिस चीज को पकड़ ले उसको छोड़ने में डरता था। वह नौकरी छोड़ने में डरता था। दुगुनी तनख्वाह की नौकरी मिलती है, ज्यादा सुविधापूर्ण नौकरी मिलती है, मगर वह नौकरी छोड़ने में डरता था। तो मेरे मित्र ने कहा कि आप इसको सम्मोहित करते हैं, यह दीवाल तक से निकलने की कोशिश करता है। आप सम्मोहन में ही क्यों नहीं कह देते इसे कि तू यह नौकरी छोड़ दे!

मैंने कहा: यह बात तो बड़ी सीधी है। उसे सम्मोहित किया। सब काम उसने करके दिखाए। गाय नहीं है और उससे कहा कि दूध दोह, तो वह बैठ गया और दूध दोहने लगा—वह जो गाय है ही नहीं, उसका दूध दोह रहा है! उससे जो कहा वही माना। तुम चकित होओगे, उसकी गहराई काफी बढ़ती थी। उसके हाथ पर कंकड़ रख दो और कहो कि यह अंगारा है, तो चीख मार कर कंकड़ फेंकता था। इतना ही नहीं, उसके हाथ पर फफोला आ जाता था। इतना गहरा उसका सम्मोहन जाता था। मगर जब मैंने उससे कहा कि यह तू नौकरी छोड़ दे, वह आंख खोल कर बैठ गया और उसने कहा कि नहीं छोड़ूंगा। (मैं एकदम हैरान हुआ!) नहीं छोड़ूंगा! बस यह भर बात आप मुझसे मत कहना।

साधारण कंकड़, ठंडा कंकड़ हाथ पर फफोला ले आता था! उसका मन ही धोखा नहीं खा जाता था, शरीर भी धोखा खा जाता था। शरीर पर फफोले का आना आसान मामला नहीं है। बड़ी गहरी उसकी निष्ठा थी। लेकिन जैसे ही नौकरी की मैंने बात की, वह एकदम उठ कर ही बैठ गया। वह लेटा भी नहीं रहा, कि चुपचाप पड़ा रहता, कुछ नहीं, एकदम उठ कर ही बैठ गया, उसने आंख खोल दी। उसने कहा: यह बात भर आप मुझसे मत कहना। नौकरी मैं न छोड़ूंगा!

सम्मोहनविद कहते हैं कि सम्मोहन कितना ही गहरा हो, तुम्हारी इच्छा के विपरीत तुमसे कुछ भी नहीं करवाया जा सकता। वह जो तुम कर रहे हो, वह भी तुम्हारी इच्छा के अनुकूल है। उसमें भी तुम्हारे संकल्प का ही हाथ है; तुम्हारे संकल्प के विपरीत नहीं है। यह भी तुम्हारी मर्जी है।

मैं तुम्हें सम्मोहित नहीं कर रहा हूं। संन्यास कोई सम्मोहन नहीं है। संन्यास तो आत्म-विसर्जन है। मैं तो तुम्हें मिटा रहा हूं। तुम्हें शून्य करना है, सम्मोहित नहीं। तुम्हारे भीतर कोई भी न बचे। तुम्हारी गर्दन ही काट डालनी है। और जिस दिन तुम्हारे भीतर कोई भी न बचेगा, एकदम सन्नाटा होगा—उसी सन्नाटे में तुम पहचानोगे अपने स्वभाव को! उसी सन्नाटे में, जब तुम मिट जाओगे, पाओगे कि तुम कौन हो!

इस विरोधाभासी वक्तव्य को खूब याद रखना, क्योंकि सत्य की इससे निकटतम और कोई घोषणा नहीं हो सकती: तुम मिट जाओगे तो पाओगे कि तुम कौन हो। तुम न रहोगे तो होओगे पहली बार।

जोखिम तो है। और जोखिम बड़ी है। सोच-समझ कर ही मेरे करीब आना!

प्रदीप चैतन्य, पूछते हो कि क्या हो रहा है तुम्हें।

व्याख्या न करूंगा, विवेचन नहीं करूंगा। लेकिन जो हो रहा है, अपूर्व हो रहा है। तुम धन्यभागी हो! तुम्हें आशीर्वाद देता हूं, विवेचन नहीं करता, व्याख्या नहीं करता। तुम इसमें और गहरे जाओ। तुम जोखिम उठाओ।

यह सावन की मद भरी रात!
श्यामल पुलकों में लुक-छिप कर उल्लास भरी बह रही वात
मधु पी-पी कर हो गए मत्त वन-वल्लरियों के शिथिल गात
यह सावन की मद भरी रात!

परिमल की घिरी घटा प्यारी, दिशि-दिशि से उमड़ा सोन पात
चंचल हैं रोम-रोम जग के, अंग-अंग रति-रस से विकल, स्नात
यह सावन की मद भरी रात!

नस-नस में छलक-छलक उठती कँसी तृष्णा मदिरा अज्ञात
किस नव तरंग से कसक वक्ष कर रहा प्रबल उत्तप्त घात
यह सावन की मद भरी रात!

इस प्रेरित लोलित रति-गति में जब झूम झमकता विसुध गात
गोरी बांहों में कस प्रिय को कर दूं चुंबन से सुरास्नात
यह सावन की मद भरी रात!

तुम्हारे जीवन में सावन आ रहा है। सावन की पहली खबर आ गई। वे आंसू आंसू नहीं, मोती हैं—जो तुम्हारी आंखों से झरते हैं। वे मोती हैं, क्योंकि तुम्हारी चेष्टा से नहीं झरते हैं। वे मोती हैं, क्योंकि तुम्हारे प्रयास से नहीं झरते हैं। क्योंकि झूठे नहीं हैं, इसलिए मोती हैं। सच्चे हैं।

तुम भाव-विभोर हो जाते हो, फिर आंखें गीली हो जाती हैं। जब आंखें स्नेह से भरती हैं, प्रीति से भरती हैं, तो और आंखों के पास देने को क्या है? आंसुओं की श्रद्धांजलि है। आंसुओं की गीतांजलि है। आंसुओं की आरती है! और वे आंसू तुम्हारी आंख में जले हुए दीये हैं। और इसीलिए जल्दी ही, पहले तुम रोते हो...'फिर पता नहीं चलता कब आंसू सूख गए और कब मैं आनंद-विभोर होकर उड़ानें भरने लगा।'

वे आंसू रास्ता खोलते हैं, तुम्हारी आंखों को निर्मल कर जाते हैं। और आंखें निर्मल हो जाती हैं, तभी उड़ानें भरी जा सकती हैं। वे आंसू तुम्हें हलका कर जाते हैं। और जब तुम हलके हो जाते हो तो पंख लग जाते हैं।

नहीं; तुम मत पूछो कि कृपया इस स्थिति को समझाएं। समझाऊंगा नहीं। इस स्थिति में और गहरे जाओ तो समझ आएगी। और वह समझ मस्तिष्क की नहीं होगी, हृदय की होगी। वह समझ प्रीति-पगी होगी। वह समझ 'समझ' होगी! उस समझ को ज्ञानियों ने ज्ञान नहीं कहा है, प्रज्ञा कहा है। वह अलग ही बात है।

एक है बुद्धि की समझ; वह अनुमान है। दर्शनशास्त्र उन्हीं अनुमानों से भरा है। और एक है हृदय की प्रीति-पगी समझ, प्रेम से उमगी समझ, प्रेम से नहाई हुई समझ। वह बात और है। वही धर्म का जगत है। वही समझ काम आएगी।

लेकिन उसे मैं नहीं समझा सकता। और पीओ! और मदमस्त होओ! यह जो सावन आ रहा है तुम्हारे चारों तरफ, यह जो तुम हरे होने लगे हो, ये जो फूल खिलने लगे हैं, ये जो घटाएं घुमड़ रही हैं—इनको बौद्धिक विचार बनाना मत भूल कर भी! अन्यथा पास आता सावन कब दूर हट गया, पता भी न चलेगा। अगर सोचने बैठ गए कि आंख में आंसू क्यों आते हैं, आंसू सूख जाएंगे। क्योंकि सोचना आंसुओं के विपरीत है। और आंसू सूख गए—सोचने के कारण—तो उड़ानें बंद हो जाएंगी। और तब मन सवाल उठाएगा कि क्या हो गया, अब उड़ानें बंद क्यों हो गईं? अब आंख में आंसू क्यों नहीं आते?

किसी मित्र ने मुझे पूछा है कि पहले मैं आता था, तो सुन कर आनंदमग्न हो जाता था। आंखें आंसुओं से भर जाती थीं, डोलने लगता था; जैसे नाग फन उठा कर, बजती बीन को सुन कर डोलने लगता है! लेकिन अब ऐसा नहीं हो पाता। क्या कारण आ गया है?

कुछ और कारण नहीं है; अब तुम जरा समझदार हो गए। अब तुम जरा सोच-विचार करने लगे। अब तुम कंपने के पहले सोचते हो कि कंपना क्या? वह तो सांप भी सोचने लगे कि यह बीन बज रही है तो मैं डोल क्यों रहा हूं? बस डोलना रुक जाएगा, तत्क्षण रुक जाएगा। जहां यह विचार आया कि डोलना बंद हो जाएगा।

विचार मस्ती के विपरीत है। और विचार सदा आता है। जब तुम पहली दफा यहां आते हो, तब तुम्हें कोई विचार नहीं होता। तुम सुनते हो बीन और डोलने लगते हो। फिर अनुभव हुआ, तो अनुभव के ऊपर मन प्रश्नचिह्न लगाता है। फिर प्रश्नचिह्न लगा कि बस अड़चन शुरू हुई। मन ने तुम्हें भटकाया। मन तुम्हें ले चला किसी और रास्ते पर, जो कि आत्मा का रास्ता नहीं है, जो कि परमात्मा का रास्ता नहीं है।

प्रश्न ही छोड़ दो। मेरे पास अगर आंसू घटते हों, तो अंगीकार करो अहोभाव से। अगर शरीर डोलने लगता हो, अंगीकार करो अहोभाव से। अगर थिर हो जाता हो, अंगीकार करो सहज भाव से।

चिन्मय योगी ने पूछा है, कि आपको सुनते-सुनते एकदम तंद्रा जैसी अवस्था हो जाती है। फिर न आप दिखाई पड़ते हैं, न आपके शब्द सुनाई पड़ते हैं। यह क्या हो रहा है? कहीं मुझसे ध्यान में कोई भूल तो नहीं हो रही है?

ये देखो मन की चालबाजियां! यह ध्यान की शुरुआत है—और मन कहेगा: ध्यान में कोई भूल हो रही है, इसीलिए तो तंद्रा छा जाती है। यह तंद्रा नहीं है। इसके लिए योगशास्त्र में अलग ही शब्द है—योगनिद्रा। यह नींद नहीं है। यह रसमयता की एक अवस्था है। इतनी रसमयता कि न मैं दिखाई पड़ूं, न मैं सुनाई पड़ूं। तुम सो नहीं गए हो। तुम मेरे साथ इतने आत्मलीन हो गए हो, इतने एक हो गए हो...!

सुनने के लिए दूरी चाहिए। देखने के लिए भी दूरी चाहिए। थोड़ा फासला तो चाहिए देखने के लिए। दूसरे को ही देख सकते हैं। दूसरे को ही सुन सकते हैं। अपने को कैसे देखोगे?

ऐसी घड़ियां आ जाएंगी, जब तुम इतने लीन हो जाओगे मेरे साथ कि न तुम्हें शब्द सुनाई पड़ेंगे, न तुम्हें मैं दिखाई पड़ूंगा। और यही घड़ियां हैं जब तुम्हें निःशब्द सुनाई पड़ेगा। और जब तुम्हें मेरी देह तो दिखाई नहीं पड़ेगी, लेकिन मेरा स्वरूप दिखाई पड़ेगा।

उस घटना के दो हिस्से हैं।

पहली घटना होगी कि मेरे शब्द सुनाई पड़ने बंद हो जाएंगे, मेरी देह दिखाई पड़नी बंद हो जाएगी। यह घट रहा है। अब अगर तुम इसी रास्ते पर चले गए बिना सोच-विचार किए—कि कहीं नींद तो नहीं आ रही, कहीं तंद्रा तो नहीं हो रही, कहीं ध्यान में कोई भूल-चूक तो नहीं हो रही—अगर तुम इसी रास्ते पर चले गए, चले गए...जल्दी ही, मैं जो नहीं बोल रहा हूं, जो नहीं बोला जा सकता है, जो शब्द में नहीं बंधता है, वह तुम्हें सुनाई पड़ेगा। मेरा शून्य तुम्हें सुनाई पड़ेगा!

बोलना तो आहत नाद है। ओंठों की टक्कर, कंठ के यंत्र की टक्कर से पैदा होता है। सत्य अनाहत नाद है। झेन फकीर कहते हैं: एक हाथ की ताली बजे—ऐसा है सत्य। आहत नहीं है, दो चीजों की टकराहट नहीं है।

वीणा के तार छेड़ देते हो, संगीत पैदा होता है। यह संगीत द्वंद्व से पैदा हो रहा है। तुम्हारी अंगुली ने तार को छेड़ दिया। यह संगीत एक तरह का संघर्ष है। इसलिए संगीत भी है, मगर इसमें विसंगीत जुड़ा हुआ है। एक और संगीत है जो आहत नहीं होता। उसी को अनाहत कहा है। उसी को ओंकार कहा है।

अगर तुम्हें मेरे शब्द सुनाई पड़ने बंद हो गए और मैं भी दिखाई पड़ना बंद हो गया, और आंखें भी खुली हैं और तुम यहां मौजूद भी हो और तत्क्षण कुछ हो गया कि कान काम नहीं करते; आंख खुली है और काम नहीं करती; तुम जागे हो और लगता है नींद लग गई—यह बड़ी प्यारी घटना है! ध्यान ठीक दिशा में जा रहा है, उसकी सूचक घटना है। अब जल्दी ही दूसरी घटना घटेगी, अगर चलते रहे इसी पर हिम्मत साध कर!

हिम्मत रखनी पड़ेगी, क्योंकि मन निश्चित ही सवाल उठाएगा कि क्या तुम बहरे हो गए? क्या तुम्हारी आंखें खराब हो गईं? तुम्हारा चित्त कहीं विभ्रम में तो नहीं पड़ गया है? तुम विक्षिप्त तो नहीं हो रहे हो? सुन रहे हो और सुनाई नहीं पड़ता! देख रहे हो और दिखाई नहीं पड़ता! कहीं कुछ मस्तिष्क के स्नायुओं में कोई गड़बड़ तो नहीं हो गई? कोई ध्यान ऐसा तो नहीं कर रहे हो जिससे कि तुम्हारा मस्तिष्क दुर्बल हो रहा है, या तुम विक्षिप्त हो रहे हो?

अगर ये सवाल न उठाए और कहा कि ठीक है, पागलपन तो पागलपन और नींद तो नींद और जो भी हो रहा है ठीक, अगर सब छोड़ दिया मुझ पर और चल पड़े, तो दूसरी घटना जल्दी ही सुनाई पड़ेगी तुम्हें—ओंकार सुनाई पड़ेगा! नाद सुनाई पड़ेगा जो आहत नहीं है! एक हाथ की ताली सुनाई पड़ेगी।

और वही सुनाई पड़ जाए तो तुमने मुझे सुना। और निराकार दिखाई पड़ने लगे यहां तुम्हें, तो ही तुमने मुझे देखा। तो ही मैं तुम्हारे काम आया। तो ही मैं तुम्हारी नाव बना। तो ही तुमने अपना हाथ मेरे हाथ में दिया।

यह सावन की मद भरी रात!
श्यामल पुलकों में लुक-छिप कर उल्लास भरी बह रही वात
मधु पी-पी कर हो गए मत्त वन-वल्लरियों के शिथिल गात
यह सावन की मद भरी रात!

डूबो! सावन आ रहा है—नाचो! झूले डालो! सावन आ रहा है—झूलो!

तीसरा प्रश्न: आप कहते हैं कि यहां खोने को कुछ भी नहीं है। फिर भी मैं क्यों सब कुछ दांव पर नहीं लगा सकता हूं?

मुकेश भारती! दांव पर लगाने का अर्थ होता है: ज्ञात की सीमा से अज्ञात में कदम रखना। स्वभावतः मन भयभीत होता है। नहीं इसमें कुछ अस्वाभाविक है। जो परिचित है, जाना-पहचाना है, उसमें जीने में भय नहीं होता। अपने घर के भीतर मालूम होते हैं। और कुशल होते हैं हम जाने-माने के साथ। जब अनजानी डगर पर कोई चलता है, अंधेरे बीहड़ में कोई प्रवेश करता है, तो थक जाते हैं, हिम्मत टूटती है, पैर ठिठक जाते हैं। मन कहता है: यह तुम क्या करने जा रहे हो? कहीं खो गए तो? कहीं न लौट सके तो? किस निर्जन में, अकेले रह जाओगे! संगी-साथी छूट जाएंगे! प्रियजन, मित्र, परिवार...।

ध्यान का मार्ग तो एकांत का मार्ग है। वहां तो तुम बिलकुल अकेले हो जाओगे। नहीं कि बाहर से पत्नी को छोड़ कर जाना पड़ेगा। मगर भीतर तो अकेले हो जाओगे। ध्यान में पत्नी को साथ तो न ले जा सकोगे। ध्यान में अपनी तिजोड़ी को भी साथ न ले जा सकोगे। और वही तुम्हारा बल है। और ध्यान में अपने ज्ञान को भी साथ न ले जा सकोगे। और वही तुम्हारे अहंकार की प्रतिष्ठा है; वही तुम्हारा सिंहासन है।

ध्यान में तुम कुछ भी न ले जा सकोगे; बिलकुल नग्न तुम्हें जाना होगा। डर लगता है! मन कहता है: कहां जा रहे हो? जाने-माने को छोड़ कर अनजान में? जैसे अज्ञात सागर में कोई अपनी नौका को उतारे! दूसरा किनारा दिखाई भी नहीं पड़ता है। हाथ में कोई नक्शा भी नहीं है। पतवारें भी छोटी हैं, नाव भी छोटी है। उत्ताल तरंगें हैं सागर की। मन कहता है: रुके रहो इसी तट पर। किस खतरे को मोल लेते हो? कहीं ऐसा न हो कि हाथ की रोटी भी जाए उसकी तलाश में जिसका कुछ पता भी नहीं, कुछ भरोसा भी नहीं! कहीं ऐसा न हो कि यह किनारा भी खो जाए और वह किनारा भी न मिले! कहीं मझधार में न डूबो!

इसलिए मुकेश, यद्यपि मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं है और तुम भी जानते हो कि तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं है...है क्या खोने को? फिर भी मन कहता है: नहीं सही कुछ, मगर जहां भी मैं हूं वह जगह पहचानी हुई है। वह भूतल जाना-माना है। उसका नक्शा मुझे ज्ञात है। रास्ते पहचाने हुए हैं, लोग परिचित हैं। कम से कम पैर के नीचे जमीन है। फिर इस जमीन पर चाहे थोड़े कांटे भी हों, चाहे थोड़े दुख भी हों, मगर इस पर मैं सदा-सदा से रहा हूं। उन कांटों का भी मैं आदी हो गया हूं।

ध्यान रखना, अगर पुराने दुख और नये दुख में चुनना हो, तो लोग पुराने दुख को चुनना पसंद करते हैं; क्योंकि कम से कम पुराना है, उसकी आदत तो हो गई है। यह नये की तो आदत भी नहीं है। पता नहीं कैसा सिद्ध हो! कहीं पुराने से भी भयानक सिद्ध हो! दुख भी नहीं छोड़ते हैं लोग।

फिर तुम्हारे दुख एकदम दुख ही नहीं हैं, उनमें सुखों की आशाएं भी मिश्रित हैं। तुम्हारी रातें एकदम रातें नहीं हैं, उनमें सुबह की झलकें भी छिपी हुई हैं। उनमें प्रभात की भी आशा है, सपना है। होगा प्रभात। रात है तो प्रभात भी आता होगा। दूर क्षितिज पर लगता है—अब मंजिल आई, अब मंजिल आई।

नहीं तुम्हारे पास कुछ खोने को है, क्योंकि खाली हाथ तुम आए हो और खाली हाथ तुम्हें जाना होगा। जन्म और मृत्यु के बीच जो भी तुम इकट्ठा कर लोगे, सब पड़ा रह जाएगा। सब ठाठ पड़ा रह जाएगा! तुम्हारा क्या हो सकता है उसमें कुछ, जिस पर तुम मुट्ठी न बांध सकोगे, जिसे तुम ले जा न सकोगे, जिसे तुम लाए भी नहीं थे, जो यहीं का यहीं रह जाएगा, उसमें तुम्हारा क्या है? खोने का भय क्या है? खोने को कुछ है भी नहीं।

मगर, तुम ठीक पूछते हो मुकेश, कि फिर भी मैं क्यों सब कुछ दांव पर नहीं लगा सकता हूं?

चुनौती स्वीकार करने में डर लगता है। चुनौती स्वीकार करने के लिए साहस चाहिए, अदम्य साहस चाहिए! और, हमारे जहर—समाज के जहर—सिर्फ कायरता सिखाते हैं। हम हर बच्चे को कायर बना देते हैं। हम हर बच्चे को भयों से भर देते हैं। सब बच्चे निर्भय पैदा होते हैं। हम जल्दी ही अपने भय की छूत उन्हें लगा देते हैं। हम कितने भय उन्हें लगा देते हैं जिनका हिसाब नहीं। कोई बच्चा अंधेरे में नहीं डरता, लेकिन हम अंधेरे में डरते हैं, जल्दी ही भय लग जाता है बच्चे को। बच्चे को क्या पता अंधेरे से डरने का? सच तो यह है, मां के पेट में बच्चा नौ महीने अंधेरे में रहा है। रोशनी से डरे तो हो भी सकता है, अंधेरे से क्यों डरेगा?

पश्चिम में जो वैज्ञानिक, बच्चों को कैसे ज्यादा प्राकृतिक ढंग से जन्म दिया जाए, उसकी खोज कर रहे हैं, उन्होंने जो पहली बात पकड़ी है वह यह है कि जब बच्चा पैदा हो तो तेज रोशनी नहीं होनी चाहिए कमरे में। क्योंकि बच्चे की आंखों पर भयंकर चोट पड़ती है। शायद दुनिया में इतने लोग जो चश्मा लगाए हुए हैं, उनको लगाने की जरूरत न रहे। यह बात समझ में आती है। पश्चिम का एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक इस खोज में लगा है। तो उसने पहली बात तो यह खोजी कि अब जो बच्चों को जन्म दिया जाए तो कमरे में तेज प्रकाश नहीं होना चाहिए। आमतौर से अस्पतालों में, जहां बच्चों का जन्म होता है, बड़ा तेज प्रकाश...। बच्चा आ रहा है अंधेरे से, नौ महीने के गहन अंधकार को जीकर आ रहा है। एकदम से उसकी कोमल आंख के तंतु तेज प्रकाश की झपट को नहीं सह पाते। उसकी आंखें पहले से ही तुमने चोट कर दीं।

किसी जानवर को चश्मा नहीं लगता है। सारे जानवरों की आंखें ठीक हैं। सिर्फ आदमी को चश्मा लगता है। जरूर कहीं कुछ आदमी की आंख के साथ बुनियादी भूल हो गई है। कहीं कोई आंख के तंतुओं को जला गया है, आंख के स्नायुओं को कोई चोट पहुंचा गया है।

बच्चे को अंधेरे का डर नहीं हो सकता। लेकिन हमें अंधेरे का डर है। हम अपना डर बच्चे को पकड़ा देते हैं। हम कहते हैं: अंधेरे में मत जा! हम बच्चे को रोशनी से लगाव बनवाते हैं। अंधेरे में जाता हो तो रोकते हैं। बच्चों को बिलकुल भय नहीं होता; सांप आ रहा हो, बच्चे सांप को पकड़ कर खेल सकते हैं। लेकिन हम भय लगा देते हैं। फिर सांप की तो बात दूर, केंचुए से भी बच्चा डरने लगता है। हमारा भय पकड़ गया। बच्चों को क्या भूत-प्रेत का कुछ पता है? हम भय लगा देते हैं। बच्चों को तो भगवान का भी पता नहीं है; हम भय लगा देते हैं। नरक का भय और स्वर्ग का लोभ और भूत-प्रेत का भय, अंधेरे का भय, सांप-बिच्छू का भय...हर चीज का भय! हम भय का एक घेरा बना देते हैं।

यह समाज की जालसाजी है। राजनीति है इसमें गहरी। हर आदमी को कायर बना दो तो हर आदमी गुलाम बन जाएगा। किसी आदमी को हिम्मत मत दो; हो हिम्मत तो ले लो; ताकि हर आदमी शोषण का शिकार बन जाए। जो बच्चा अंधेरे से डरेगा, भगवान से डरेगा, भूत-प्रेत से डरेगा, नरक से डरेगा, वह किसी से भी डरेगा। कोई भी ताकतवर दिखाई पड़ेगा, वह डरेगा। वह भयभीत होगा। वह हर कहीं झुकने को राजी होगा। उसकी तुमने कमर तोड़ दी। वह जिंदगी में छोटी-छोटी बातों के लिए समझौते करेगा। दो कौड़ी के लिए अपनी आत्मा बेच देगा।

आदमी को हम बाजार में बेचने योग्य चीज बनाना चाहते हैं, इसलिए उसे कमजोर कर देते हैं। मां-बाप को भी हिम्मतवर बच्चा, साहसी बच्चा बर्दाश्त नहीं होता, क्योंकि वह मां-बाप को दिक्कत देगा। मां-बाप भी इसी में सुविधा पाते हैं कि बच्चा आज्ञाकारी हो। आज्ञाकारी वही बच्चा हो सकता है जो भीरु हो; नहीं तो मां-बाप की गलत आज्ञा मानने को बच्चा राजी नहीं होगा। और मां-बाप की सभी आज्ञाएं सही नहीं होतीं। मां-बाप ही सही नहीं हैं तो सारी आज्ञाएं कैसे सही होंगी? तो गलत आज्ञाएं भी मानना है, मनवाना है, तो एक ही उपाय है कि बच्चे की हिम्मत तोड़ दो, डरवाओ उसे, सजाएं दो उसे।

छोटे बच्चों को हम कितनी सजाएं देते हैं? अकारण! लेकिन उनके पीछे एक राज है, सब सजाओं के पीछे एक राज है—बच्चा भयभीत हो जाएं, तो आज्ञाकारी होता है। डर के कारण आज्ञा मानता है। यह कोई बहुत प्रेम का लक्षण नहीं है। स्कूल में शिक्षक भी इसी में सुविधा पाता है कि बेंत से बच्चे डरते रहें। क्योंकि डरते रहें तो शांत रहते हैं, उसको सुविधा रहती है। नहीं तो वे सिर खाते हैं, उलटे-सीधे सवाल पूछते हैं। ऐसे सवाल पूछते हैं जो शिक्षक को क्या, किसी शिक्षक को जिनका उत्तर नहीं मालूम। और कोई शिक्षक नहीं चाहता कि उसे यह स्वीकार करना पड़े कि मेरे पास इसका उत्तर नहीं है।...डराओ! धमकाओ!

तुम्हारी शिक्षा की सारी प्रणाली भय पर खड़ी है। भला तुमने ऊपर-ऊपर से कानून बना दिए हैं कि बच्चों को मारा न जाए। बच्चे अभी भी मारे जा रहे हैं। तुमने ऊपर-ऊपर भला रुकावट डाल दी हो कि बेंत न चलाए जाएं बच्चों पर। लेकिन तुम्हारी परीक्षा क्या है? बड़ी सूक्ष्म भय की व्यवस्था है। तुमने डरवा दिया है बच्चों को—अगर प्रथम श्रेणी में न आए तो जिंदगी भर भूखे मरोगे! देखते हो, जैसे ही परीक्षा करीब आती है, बच्चे रात-रात नहीं सोते। लगे हैं पागलों की तरह उन बातों को याद करने में जिनका परीक्षा के बाद कभी जिंदगी में कोई उपयोग नहीं होगा। नब्बे प्रतिशत एकदम भूल जाएंगे परीक्षा के बाद। और अट्ठानबे प्रतिशत बातें जो स्कूल में सिखाई जा रही हैं, उनका जिंदगी में कभी कोई उपयोग नहीं होने वाला है। मगर भय की वजह से उनको कंठस्थ कर रहे हैं। भर रहे हैं खोपड़ी में। किसी तरह उगल देना है जाकर परीक्षा में!

तुम्हारी परीक्षाएं क्या हैं? सिर्फ वमन की प्रक्रियाएं हैं। पहले खोपड़ी में भर लो, फिर उलटी कर दो। और जितने ढंग से उलटी कर दो पूरी परीक्षा में, उतने तुम ज्यादा कुशल हो। स्मृति की परीक्षा है, बुद्धि की परीक्षा नहीं है। और सब भय पर आधारित है कि कहीं तृतीय श्रेणी में न आ जाओ, कहीं असफल न हो जाओ; नहीं तो बड़ी बदनामी होगी। बच्चा असफल होकर घर आता है तो देखो, मां-बाप उसे किस ढंग से देखते हैं—दो कौड़ी का

कीड़ा-मकोड़ा! कि तुम पैदा होते ही क्यों न मर गए! और अगर प्रथम श्रेणी में प्रथम आ जाए और स्वर्ण-पदक लेकर घर आए तो मां-बाप भी जलसा मनाते हैं, भोज देते हैं। छाती उनकी फूली नहीं समाती। बच्चे ने उनके अहंकार की तृप्ति कर दी, उनके अहंकार को खूब भर दिया।

शिक्षक डरवा रहे हैं, मां-बाप डरवा रहे हैं, पास-पड़ोसी डरवा रहे हैं, पंडित-पुरोहित डरवा रहे हैं, राजनेता डरवा रहे हैं। हर एक डराने पर लगा हुआ है। बीस-पच्चीस साल जब कोई आदमी इस तरह डरवाया जाएगा, तो फिर चुनौती स्वीकार करनी, नई, कठिन हो जाती है।

तुम मंदिर में नमस्कार करते हो, प्रेम के कारण? डर के कारण! कि कहीं गणेशजी नाराज न हो जाएं। नहीं तो गणेशजी को देख कर हंसी आएगी, नमस्कार करने का भाव ही नहीं पैदा हो सकता। छोटे बच्चों को भी हम गर्दन पकड़-पकड़ कर...

मेरे पास ले आते हैं कुछ लोग, खासकर भारतीय मित्र, अपने बच्चों को ले आते हैं! उनकी गर्दन पकड़ कर सिर झुका रहे हैं। वह बच्चा अकड़ रहा है, वे उनकी गर्दन पकड़ कर झुका रहे हैं पैर में। तुम क्या कर रहे हो? क्यों इस बच्चे को मारे डाल रहे हो? यह जिंदगी भर फिर झुकता रहेगा डर के मारे। और दो खतरे हो गए। एक तो डर के मारे झुकेगा, यह नुकसान हो गया। इसकी आत्मा गुलाम की आत्मा होगी। एक मानसिक गुलामी होगी, एक दासता होगी। और दूसरा खतरा कि कभी अगर सच में कहीं झुकने का मौका आएगा तो वहां भी इसका झुकना औपचारिक होगा। उस झुकने में प्राण नहीं होंगे, आत्मा नहीं होगी। उस झुकने में सच्चाई नहीं होगी। तो यह हर तरफ से नुकसान उठाएगा।

और सत्य एक चुनौती है—अज्ञात की चुनौती। उसके लिए साहस चाहिए!

तुम्हें लहर पुकारती!
न पास स्वर्ण की तरी
न पास पर्ण की तरी
न आस-पास दीखती
कहीं समुद्र की परी,
अपार सिंधु सामने
मगर न हार मानना
अनीस शक्ति बाहु में
अनंत स्वप्न के व्रती!
तुम्हें लहर पुकारती!

न पास ज्योति की किरण
न दूर मृत्यु के चरण
मिटा विभाग काल का
मुंदे कि काल के नयन!

तिमिर अभेद्य सामने
मगर न हार मानना,
सहस्र कण समुद्र लो
रहा उतार आरती!
तुम्हें लहर पुकारती!

तड़प रहे विनाश-घन,
न दूर हैं विनाश-क्षण,
सवेग डोलती धरा
सशब्द कांपता गगन,
प्रलय-प्रवाह सामने
मगर न हार मानना
अजेय शक्ति सांस में
महान कल्प के कृति!
तुम्हें लहर पुकारती!

अशब्द हो चला गगन
न सांस ले रहा पवन
विलीन हो चली धरा
ठहर न पा रहे चरण!
विनष्ट विश्व सामने
मगर न हार मानना
नवीन सृष्टि स्वप्न ले
तुम्हें लहर निहारती!
तुम्हें लहर पुकारती!

मुकेश, डरते हो जरूर, क्योंकि डरना सिखाया गया है।

मेरे पास आ गए हो, मैं तुम्हें अभय सिखाता हूं। हिम्मत करो! स्वीकार करो चुनौती अज्ञात की! वह जो दूर किनारा दिखाई नहीं पड़ता है, उसकी तलाश में ही तुम्हारी आत्मा पैदा होगी। क्योंकि उसकी तलाश में ही तुम्हारे भीतर कोई केंद्र पैदा होगा। तुम खंड-खंड न रह जाओगे, तुम अखंड हो जाओगे।

जितनी बड़ी चुनौती कोई स्वीकार करता है, उतना ही अखंड हो जाता है। चुनौती प्रक्रिया है एक होने की। और जो व्यक्ति चुनौती स्वीकार नहीं करता, फुसफुसा हो जाता है, टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। उसकी जिंदगी में कोई तेज नहीं होता, धार नहीं होती। उसकी तलवार बोथली होती है; साग-सब्जी भला काट लो उससे, बस साग-सब्जी ही कट जाए तो बहुत। उसकी तलवार किसी और काम की नहीं होती।

इसलिए मैं जब तुम्हारे साधु-संतों को देखता हूं—मंदिरों में, आश्रमों में—तो मुझे एक बात जो सबसे पहले दिखाई पड़ती है वह यह कि उनकी तलवार में धार नहीं है, बोथली तलवारें हैं। उनकी आंखों में बुद्धि की चमक नहीं है और न उनके व्यक्तित्व में प्रेम का प्रवाह है। भय के कारण वे संन्यासी हो गए हैं। कंप रहे हैं, डर रहे हैं कि कहीं कोई पाप न हो जाए! पुण्य को करने का आनंद नहीं है; पाप न हो जाए, इसका डर है।

इस भेद को खयाल में रखो! वह आदमी भी पुण्य करता है जिसको पुण्य करने में रस है। और वह आदमी भी पुण्य करता है जिसको पाप करने में भय है। इन दोनों के व्यक्तित्व में अंतर होता है, बुनियादी अंतर होता है। एक आकाश में जीता है, जिसे पुण्य करने में रस है, आनंद है; और एक नरक में जीता है, जिसे पाप करने में भय है। यद्यपि दोनों ही पुण्य करेंगे, मगर दोनों के पुण्य का मूल्य अलग-अलग होगा। एक के पुण्य में धार होगी, तेज होगा, चमक होगी, गरिमा होगी, प्रसाद होगा, नृत्य होगा, गीत होगा। और एक के पुण्य में बोझ होगा; ढो रहा है किसी तरह भय के कारण। एक गुलाम होगा और एक मालिक होगा।

तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी सिर्फ गुलाम हैं। डर रहे हैं कि पाप न हो जाए, कहीं नरक में न सड़ना पड़े! उनके शास्त्रों ने खूब डराया है उन्हें। और नरक के ऐसे-ऐसे वीभत्स चित्र खींचे हैं कि कोई भी डर जाए। जिन्होंने ये चित्र खींचे हैं, ये लोग भले लोग नहीं थे। ये लोग दुष्ट थे। ये तुम्हें गुलाम बना गए हैं। ये तुम्हें खूब डरा गए हैं। कड़ाहियों में जलाए जाओगे। लपटों में फेंके जाओगे। कीड़े-मकोड़े तुम्हारे शरीर में हजारों छेद बना कर घूमेंगे। मरोगे भी नहीं, आग में भी नहीं मरोगे, कड़ाहे में भी नहीं मरोगे—सिर्फ तड़फोगे! प्यास भयंकर लगेगी, सामने सरोवर होगा, लेकिन ओंठ सिले होंगे।

खूब सोचा लोगों ने भी! इनको तुम ऋषि-मुनि कहते हो! ये अडोल्फ हिटलर, स्टैलिन और माओत्से तुंग के पूर्वज थे, ऋषि-मुनि नहीं। इन्होंने जो सोचा, अडोल्फ हिटलर, स्टैलिन और माओत्से तुंग ने करके दिखाया। इन्होंने सोचा था, उन्होंने उसको व्यावहारिक रूप दिया। उन्होंने इस तरह की घटनाएं घटा कर बता दीं।

नहीं कोई नरक है कहीं, सिवाय चालबाजों की चालबाजी में। सिवाय तुम्हें गुलाम बनाने की योजना में, और कहीं कोई नरक नहीं है। और न कहीं कोई स्वर्ग है; क्योंकि स्वर्ग भी प्रलोभन है; वह भय का ही दूसरा हिस्सा है—लोभ। इधर भय दो, उधर लोभ दो।

सर्कस में तुम देखते हो, हाथी तक नचाए जाते हैं। तुम सोचते हो हाथी को कुछ मजा आ रहा है नाचने में? हाथी कुछ प्रसन्न हो रहा है पैर उठा-उठा कर फुदकने में? भार है। हाथी को पैर उठा कर फुदकना, उसकी तुम तकलीफ तो समझो! उसका वजन तो देखो! वह कोई नाचने को नहीं बना है। और जंगल में किसी ने उसे कभी नाचते देखा भी नहीं है। वह कोई मोर नहीं है, हाथी है। और इसीलिए तो सर्कस में देखने में तुम्हें मजा आता है कि अरे, हाथी नाच रहा है! स्टूल पर बैठा है हाथी! बीन बजा रहा है हाथी! और किस ढंग से हाथी को तैयार किया गया है, यह तुम्हें पता है? वही स्वर्ग-नरक!

एक ही प्रक्रिया आदमी आज तक जानता रहा है—कुछ भी करवाना हो तो आदमी को भय दो और लोभ दो। जब हाथी नाचता है तो उसको खाने को सुंदर-सुंदर चीजें मिलती हैं। जिस दिन नहीं नाचता, उस दिन भोजन बंद, कोड़े पड़ते हैं।

अब तो और भी वैज्ञानिकों ने...अब तो पश्चिम में जो सर्कसें बनती हैं, वे तो वैज्ञानिक ढंग से होती हैं। इतनी देर नहीं लगती उनमें। अब तो उन्होंने इस तरह के तख्ते बनाए हैं कि हाथी को उस पर खड़ा कर देते हैं और बिजली के शॉक मारते हैं, तो वह अपने आप ही उठाएगा पैर और नाचेगा, करेगा क्या? अब तुम नीचे से बिजली का शॉक दे रहे हो तो वह गरीब पैर न उठाए तो करे क्या? इसको नाच कहते हो!

तुम्हारे ऋषि-मुनि, तुम्हारे साधु-संन्यासी इसी तरह का नाच कर रहे हैं। नीचे नरक से शॉक आ रहे हैं—बिजली के शॉक! कोई भी नाचेगा, हाथी तक नाच लेता है! मगर यह नाच तो नाच नहीं है। यह तो नाच की दुर्दशा हो गई! और फिर लोभ है कि अगर वह नाच ले अच्छी तरह तो उसे अच्छा भोजन मिलेगा, विश्राम का मौका मिलेगा। तो सिंह जैसे बहादुर जानवर को भी सर्कस में करतब सिखा दिए जाते हैं।

हर आदमी सिंह की तरह पैदा होता है और सर्कस के कठघरों में समाप्त होता है। कोई हिंदू कठघरे में, कोई मुसलमान कठघरे में, कोई ईसाई कठघरे में—ये सब अलग-अलग सर्कसें हैं। कोई ग्रेट बाम्बे सर्कस और कोई ग्रेट रेमन सर्कस, सब सर्कसें हैं। कुछ भी करवा लो आदमी से—उसको सताओ और उसको प्रलोभन दो। तुम इसी में पले हो।

मैं तुम्हें एक नई भाषा सिखा रहा हूं—अभय की, अलोभ की। अब यह कैसे मजे की बात है कि जिन शास्त्रों में अलोभ की चर्चा है, उन्हीं में स्वर्ग का लोभ दिया गया है। तुम कभी विरोधाभास भी नहीं देखते! एक तरफ कहा है कि अलोभ महाव्रत और उन्हीं शास्त्रों में चर्चा है कि जो अलोभ साधेगा उसको स्वर्ग में परियां मिलेंगी, अप्सराएं मिलेंगी। यह तो खूब मजा रहा! यह कौन सा गणित है? अलोभ महाव्रत! जो लोभ छोड़ देगा वह महाव्रती है। और उसको मिलेगा क्या इसके पुरस्कार में? सुंदर-सुंदर स्त्रियां मिलेंगी, जिनकी देह स्वर्ण की! और कितनी ही धूप पड़े...एक तो स्वर्ग में धूप पड़ती ही नहीं, वातानुकूलित है स्वर्ग। मंद-मंद समीर सदा बहता है। मलय समीर बहता ही रहता है। लेकिन अगर धूप भी हो तो स्वर्ण-सुंदरियों को पसीना नहीं आता, शरीर से दुर्गंध नहीं उठती। स्वर्ण-सुंदरियां हैं, पसीना आएगा भी कैसे? सोने से कभी पसीना बहते देखा?

एक तरफ अलोभ और एक तरफ स्वर्ग का लोभ, ये दोनों एक साथ चल रहे हैं। एक तरफ आदमी को कहा जाता है अभय, और नरक का भय दिया जा रहा है, कि तुमने यह किया तो इस तरह सड़ोगे। और कितनी छोटी-छोटी बातों पर आदमी को कितने भय दिए गए हैं!

बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि मैंने जिंदगी में जितने पाप किए हैं, अगर सब खोल कर कह दूं, और जो नहीं किए, सिर्फ सोचे, वे भी खोल कर कह दूं, तो कठोर से कठोर न्यायाधीश भी मुझे चार से आठ साल के बीच की सजा दे सकता है, इससे ज्यादा नहीं। और इन सबके लिए मुझे नरक में जन्मों-जन्मों तक...! और ईसाइयों का नरक अनंतकालीन है, खयाल रखना। हिंदू वगैरह के नरक से तो छुटकारा है; एक दफा पाप चुकेंगे, फिर छुटकारा हो जाएगा, सीमा है। मगर ईसाइयों का नरक अनंतकालीन है।

बर्ट्रेंड रसेल की बात तो ठीक है कि कितने ही पाप किए हों, आखिर पापों की सीमा है। दंड की भी सीमा होनी चाहिए। सीमित पाप के लिए असीमित दंड, यह कौन सा न्याय है?

अनंतकाल तक नरक में सड़ते रहोगे। हिंदुओं का स्वर्ग, जैनों का स्वर्ग सीमित है। पुण्य चुक जाएंगे, बस वापस भेज दिए जाओगे; इतनी कमाई की थी, वह पूरी हो गई। यह स्वर्ग भी धन है। कमा लिया, फिर दो-चार दिन चले जाओ पहाड़, मस्ती कर लो। फिर जेब खाली हो गई, फिर आ जाओ वापस, फिर जुत जाओ जीवन की बैलगाड़ी में। फिर खींचो बोझ। फिर कमा लेना कुछ, फिर पहाड़ हो आना। दो-चार दिन खुशी मना लेना। हिंदुओं का स्वर्ग एक तरह का 'हॉली डे होम' है। कमाई कर ली कुछ, छुट्टी मिल गई कुछ, चले गए। लेकिन ईसाइयों का स्वर्ग अनंतकालीन है, जैसा नरक अनंतकालीन है। और मजे की बात यह भी है कि हिंदू और जैन और बौद्ध, इन्होंने तो अनंत जन्मों को माना है, तो समझ में भी आ सकता है कि अनंत जन्मों में अनंत पाप किए होंगे। मगर ईसाई तो एक ही जन्म को मानते हैं।

तो बर्ट्रेंड रसेल की बात तो अर्थपूर्ण है कि मैंने इस जिंदगी, एक ही जिंदगी है, इस जिंदगी में इतने पाप किए हैं वह मैं कह दूं खोल कर, और इतने मैंने किए नहीं हैं, सिर्फ सोचे हैं, करना चाहता था, किए नहीं हैं—तो भी मुझे चार से आठ साल के बीच की सजा मिल सकती है, वह भी सख्त से सख्त न्यायाधीश हो तो। इसके लिए अनंतकाल तक नरक में सड़ना पड़ेगा! और जिन्होंने चाय नहीं पी, और कॉफी नहीं पी, और सिगरेट नहीं पी, और शराब नहीं पी, बस इस कारण अनंतकाल तक स्वर्ग में मजा-मौज करेंगे! इस कारण! और मजा-मौज में वहां करेंगे क्या? न कॉफी, न सिगरेट, न शराब, तो मजा-मौज में करोगे क्या? तो मजे-मौज के लिए वह सारी व्यवस्था वहां करनी पड़ती है। जो-जो यहां छोड़ा है, वहां खूब इंतजाम है! बहिश्त में इंतजाम है, चश्मे बह रहे हैं शराब के। यहां कुल्हड़ों में पीना पड़ती है, वहां चश्मे बह रहे हैं। मारो डुबकी! जी भर कर पीओ। जितनी पीनी हो उतनी पीओ! यहां स्त्रियां छोड़ो, वहां अप्सराएं हैं, हूरें हैं!

यह अजीब आज तक की मनुष्य की धार्मिक चिंतना रही है। मैं तुम्हें नई भाषा दे रहा हूं—न कोई स्वर्ग, न कोई नरक।

लेकिन स्वर्ग और नरक प्यारे शब्द हैं, इनका अगर सम्यक उपयोग हो सके। तो जब भी तुम जबर्दस्ती कुछ करते हो तो नरक, झूठा कुछ करते हो तो नरक। नरक कोई स्थान नहीं है, बल्कि मनोविज्ञान है। वह जो हाथी नाच रहा है भय के कारण, वह नरक में है। और वह जो मोर, मेघ घिर आए आषाढ़ के, पंख फैला कर नाच रहा है, वह स्वर्ग में है। जब नृत्य सहज हो, सम्यक हो, तुम्हारे भीतर से उमगे, तुम्हारा अंतर्भाव हो, तब स्वर्ग। और जब जबर्दस्ती भय और लोभ के कारण तुम नाचो तो नरक।

जिंदगी दो ढंग से जीयी जा सकती है, एक ढंग नरक और एक ढंग स्वर्ग। मैं तुम्हें स्वर्ग का ढंग सिखा रहा हूं कि कैसे अभी और यहां स्वर्गिक ढंग से जीओ। यह पृथ्वी स्वर्ग है उनके लिए जो सुख की कला जानते हैं। यह पृथ्वी मोक्ष है उनके लिए जो मुक्ति की कला जानते हैं। और यह पृथ्वी नरक है उनके लिए जो नरक का ही निर्माण करने में कुशल हैं।

भय, लोभ, इन आधारों से जो जीता है वह जिंदगी को नरक बना लेता है। अलोभ, अभय, ऐसे जो जीता है वह जिंदगी को स्वर्ग बना लेता है।

और चुनौतियां स्वीकार करो, क्योंकि चुनौतियां ही तुम्हारे भीतर छिपी हुई प्रतिभा को निखार देंगी, धार देंगी। चुनौतियां ही तुम्हें एकजूट करेंगी। चुनौतियां ही तुम्हें संगठित करेंगी

भीतर। तुम एकाग्र हो जाओगे। और चुनौतियां ही तुम्हें जगाएंगी, क्योंकि जिसके जीवन में चुनौती नहीं है, वह सोया रहता है। जिसके जीवन में चुनौती है, कैसे सो सकता है?

तुम्हारे घर में आग लगी हो, फिर तुम सो सकते हो? कितने ही थके होओ, घर में आग लगी है, एक क्षण में थकान मिट जाएगी। एक क्षण में नींद समाप्त हो जाएगी।

चुनौती नींद को तोड़ देती है। चुनौती जीवन के सामान्य नियमों को तोड़ देती है। जीवन के सामान्य नियमों का अतिक्रमण हो जाता है। इसलिए तुमसे कहता हूं—

तुम्हें लहर पुकारती!
न पास स्वर्ण की तरी
न पास पर्ण की तरी
न आस-पास दीखती
कहीं समुद्र की परी,
अपार सिंधु सामने
मगर न हार मानना
असीम शक्ति बाहु में
अनंत स्वप्न के व्रती!
तुम्हें लहर पुकारती!
तिमिर अभेद्य सामने
मगर न हार मानना,
सहस्र कण समुद्र लो
रहा उतार आरती!
तुम्हें लहर पुकारती!

मैं तुम्हें पुकार रहा हूं—अज्ञात की यात्रा पर चलो! दांव तो लगाना होगा। साहस तो करना होगा। क्योंकि साहस ही तो नाव बनेगी। अभय ही तो पतवार बनेगा।

मगर तुम्हारा डर भी स्वाभाविक है। तुम्हारे डर की मैं निंदा नहीं करता हूं। तुम्हें डर सिखाया गया है। तुम करो भी तो क्या करो? यही तुम्हारा संस्कार है। मगर इतना भी तुमसे कहना चाहूंगा कि इस संस्कार को पकड़े रहो या छोड़ दो, यह तुम्हारे हाथ में है। इसलिए जिम्मेवारी समाज पर ही टाल कर बैठ मत जाना। मेरी बात का यह मतलब मत ले लेना। यह मत समझ लेना कि मैं यह कह रहा हूं कि अब हम क्या करें? समाज ने तो भय सिखा दिया, सो हम भय में जीएंगे!

नहीं; जब तुम्हें समझ में आ गया कि समाज ने भय सिखा दिया, तो अब तुम्हारा उत्तरदायित्व गहन हो गया। अब तुम छोड़ सकते हो इस भय को। अब तुम्हारा चुनाव है। अब तुम चाहो तो पकड़े रहो इस जंजीर को और चाहो तो छोड़ दो इस जंजीर को। जंजीर ने तुम्हें नहीं पकड़ा है; जंजीर को तुम पकड़े हो। तुम्हारे छोड़ते ही जंजीर गिर जाएगी। जंजीर को तुम में कोई रस नहीं है।

एक नदी बाढ़ पर आई हुई थी। मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्रों के साथ बाढ़ देखने गया था। एक कंबल बहता हुआ दिखाई पड़ा। कूद पड़ा।

मित्रों ने कहा: कहां जा रहे हो?

उसने कहा: वह कंबल!

जब कंबल को पकड़ा, तब चिल्लाया कि बचाओ! मुझे इस कंबल से छुड़ाओ!

मित्र कहने लगे: पागल हो गए हो नसरुद्दीन! कंबल को छोड़ना हो तो छोड़ दो। छुड़ाना क्या है?

उसने कहा: यह कंबल नहीं है, भेड़िया है।...सिर्फ भेड़िये के ऊपर की खाल दिखाई पड़ी तो वह कंबल समझा।...अब यह कंबल मुझे छोड़ता नहीं है।

लेकिन जिंदगी में ऐसी बात नहीं है। जिंदगी में बात...मुल्ला नसरुद्दीन जैसी हालत नहीं है कि कंबल ने तुम्हें पकड़ा हो। कंबल को तुम पकड़े हुए हो। कंबल को तुम में कोई भी रस नहीं है। तुम अभी छोड़ दो, इसी क्षण छूट जाए। और छोड़ोगे तो ही छूटेगा। और धीरे-धीरे कदम बढ़ाओ, एक-एक कदम सही। इंच-इंच बढ़ो, मगर बढ़ो। जरा ज्ञात के बाहर थोड़े पैर रखो। और अज्ञात का ऐसा आनंद है कि एक बार तुमने पैर रखे तो फिर तुम लौट कर ज्ञात की तरफ देखोगे नहीं। एक बार तुमने मजा ले लिया सागर की लहरों का, सागर की लहरों में जीने का, तुम फिर किनारा न खोजोगे, फिर तो तुम चाहोगे कि अब मझधार ही मेरा किनारा बने। अब तो यह सागर मुझे अपने में डुबा ले। अब कहां जाना है! यह किनारा भी छोड़ दोगे, वह किनारा भी छोड़ दोगे। किनारे की आकांक्षा ही सुरक्षा की आकांक्षा है। अब तुम असुरक्षा में जीओगे।

और जो असुरक्षा में जीता है, वही संन्यस्त है। संन्यास का अर्थ है: असुरक्षा में जीने का विज्ञान। गृहस्थ का अर्थ है: सुरक्षा में जीना। गृहस्थ का मतलब इतना ही नहीं होता कि घर में जो रहता है। घर में तो सभी रहते हैं। आश्रम भी आखिर घर ही है। किन्हीं घरों को तुम आश्रम का नाम दे देते हो, बस तुम सोचते हो संन्यस्त हो गए। घर में तो सभी रहते हैं। गृहस्थ का मतलब होता है: घर को पकड़ कर जो रहता है। और संन्यस्त का अर्थ होता है: घर को पकड़ा नहीं, सिर्फ घर में रहता है; घर से मुक्त है; जब चाहे चल पड़े।

एक फकीर से एक सम्राट बहुत प्रभावित हो गया। जापान की घटना है। सम्राट निकलता था रात अपने घोड़े पर सवार होकर गांव का चक्कर लगाने। रोज देखता था इस फकीर को एक वृक्ष के नीचे बैठा—मस्त! कभी बांसुरी बजाता फकीर। कभी नाचता फकीर। कभी गुनगुनाता गीत। कभी चुपचाप बैठा रहता आकाश के तारों को देखता। सम्राट रुक-रुक जाता। जब भी उसके पास से निकलता घोड़े पर, रुक जाता। क्षण भर उसकी छवि देखे बिना न रहा जाता। क्षण भर उसकी मस्ती को चखता। धीरे-धीरे इतना रस हो गया उसे उस फकीर में कि घड़ी कब बीत जाती, पता न चलता। वह खड़ा रहता—चुपचाप, उसकी मस्ती को देखता-परखता! मस्ती ऐसी थी कि खुद भी मस्त होकर घर लौटता! यह रोज का उपक्रम हो गया।

एक दिन इतना भावाभिभूत हो गया कि उस फकीर के चरणों पर गिर पड़ा और कहा कि महाराज, यहां अब न रहने दूंगा। वर्षा करीब आ रही है, वृक्ष है यह, इसके नीचे अब वर्षा में कैसे रहोगे? महल में चलो। मुझ पर कृपा करो! मुझे सेवा का अवसर दो।

वह फकीर तो उठ कर खड़ा हो गया। झोली उसने उठा ली। उसने कहा कि चलो।

सम्राट को बड़ा सदमा लगा। यह बड़े मजे की दुनिया है। सम्राट कह तो रहा था कि चलो, लेकिन प्रसन्न होता यही सुन कर कि फकीर कहता: कैसा महल? कहां का महल? हम जहां हैं वहां मस्त हैं! हम महलों वगैरह में नहीं जाते। हमने महलों इत्यादि का त्याग कर दिया है! अपेक्षा यह थी भीतर! तो और भी पैर पकड़ लेता। लेकिन फकीर उठ कर खड़ा हो गया तो सम्राट थोड़ा सदमे में आ गया कि मैं कुछ गलती में तो नहीं पड़ गया हूं! इस आदमी ने कुछ चालबाजी तो नहीं की! यह कोई महल में ही घुसने की तरकीब तो नहीं थी, कि यहां बैठ कर बांसुरी बजाता रहा, बजाता ही रहा, बजाता ही रहा! यह कहीं मेरे ऊपर ही तो जाल नहीं फेंक रहा था! कहीं यह सिर्फ कांटा ही तो नहीं था मछली को फांसने का! यह भी खूब फंसे! अब कुछ कह भी नहीं सकते। इसने एक बार मौका भी न दिया। इसने यह भी नहीं कहा कि नहीं-नहीं, मैं मजे में हूं। क्या वर्षा का करना है? एकाध बार तो कहता। यह कैसा फकीर है! सारा भाव चला गया।

हमारे भाव भी बड़े सस्ते होते हैं; क्षण भर में चले जाते हैं। फकीर तो बड़ा मस्त! सम्राट ने कुछ कहा ही नहीं, वह घोड़े पर सवार हो गया। सम्राट को नीचे चलना पड़ा, फकीर घोड़े पर बैठ कर चला। सम्राट के दिल को बड़ी चोट लगी कि यह तो बड़ी जल्दी मैंने कर ली। गलती हो गई। मगर अब अपनी बात फेर भी नहीं सकता। वचन का धनी है। तो कहा: ठीक है, अब यह पड़ा रहेगा महल में। इतने लोग पड़े हैं, यह भी पड़ा रहेगा। मगर प्रतिष्ठा उसके मन से खतम हो गई। हमारी प्रतिष्ठाएं बड़ी धारणाओं पर खड़ी होती हैं; जरा-जरा सी बात में टूट जाती हैं। हमारी प्रतिष्ठा का कोई मूल्य थोड़े ही है बड़ा।

फकीर तो महल में जाकर रहने लगा और सम्राट को रोज-रोज कष्ट बढ़ने लगा, क्योंकि फकीर ऐसी मस्ती से रहता! झाड़ के नीचे मस्त था तो आदर पैदा होता था कि वाह, कैसा गजब का त्यागी! वह वहां भी बांसुरी बजाता था, महल में भी बांसुरी बजाता था, मगर अब वह मखमल के गद्दों पर बैठ कर बजाता था। यहां तो छाती पर सांप लोट जाते थे सम्राट के, कि यह कहां का आदमी मैं घर में ले आया! यह कोई फकीरी है? सम्राट से भी ज्यादा शान से वह रहता था। सम्राट को तो कुछ चिंता-फिक्र भी थी, आखिर अपना राज्य, अपना महल, अपनी धन-दौलत...हजार उपद्रव। उसको तो कोई उपद्रव था ही नहीं। वह तो बांसुरी ही बजाए! नाचे! मस्त भोजन करे!

छह महीने किसी तरह सम्राट ने बर्दाश्त किया, लेकिन बात बढ़ती गई, बढ़ती गई, बढ़ती गई, सहने के बाहर हो गई। एक दिन उसने कहा कि महाराज, एक निवेदन करना है—अब मुझ में और आप में फर्क क्या है?

फकीर ने कहा: फर्क जानना चाहते हो?

सम्राट ने कहा: हां, महाराज।

फकीर ने कहा कि तुम छह महीने क्यों नाहक परेशान रहे? यह बात तुम्हें उसी वक्त पूछ लेनी थी जब मैं घोड़े पर बैठा था, क्योंकि मैंने तो देख ली थी यह बात तुम्हारे भीतर उसी वक्त उठ गई थी। जब मैं झोला उठा कर राजी हुआ था चलने को, उसी वक्त तुम्हारा चेहरा मैंने देखा था। यह प्रश्न तो उसी वक्त तुम्हारे भीतर था, तुम छह महीने...तुम बुद्धू हो! छह महीने क्यों छाती जलाई अपनी? वहीं पूछ लेते। मैं झोला डाल कर वहीं बैठ गया होता। क्यों

संकोच, लाज रखी? मगर मैं प्रतीक्षा ही कर रहा था कि देखूं कब तुम पूछते हो। तो कल सुबह फर्क बता दूंगा। लेकिन गांव के बाहर बताऊंगा।

सुबह सम्राट जल्दी उठा। उत्सुक था जानने को कि फर्क क्या बताता है यह फकीर अब। क्योंकि फर्क कुछ भी नहीं है। खाना जो मैं खाता हूं, वही खाता है, मुझसे ज्यादा। और मांग करता है—यह लाओ, वह लाओ। मैं जिस कमरे में रहता हूं, उससे ज्यादा सुंदर कमरे में रहता है। मेरा एकाध-दो नौकर से काम चलता है, यह दस-बीसों को उलझाए रखता है। इसकी जरूरतों का कोई अंत नहीं है, मांगे ही चला जाता है। कपड़े शानदार पहनता है कि कोई मुझे देखे तो समझे कि मैं कोई वजीर इत्यादि हूं, यह सम्राट मालूम होता है। और मस्त! और दिन भर बांसुरी बजाना, न कोई चिंता, न कोई फिक्र। कल देखें क्या फर्क बताता है!

सुबह फकीर के साथ सम्राट उठा, कहा: चलें महाराज। गांव के बाहर दोनों निकल आए। वह अपना झोला, वही बांसुरी, वही वस्त्र जो झाड़ के नीचे उसने पहन रखे थे, उनको झोले में छिपा कर रखा था, आज उन्हीं को पहन कर चला। नदी आ गई, गांव का अंत आ गया। वह कहने लगा सम्राट से कि थोड़े और आगे चलें, थोड़े और। दोपहर होने लगी। सम्राट ने कहा कि कब तक चलते रहें? बात जो कहनी है कह-कहवा दो!

उस फकीर ने कहा कि अब हम तो आगे जाते हैं, तुम चलते हो कि नहीं?

सम्राट ने कहा: मैं कैसे चल सकता हूं? मेरा महल, मेरी पत्नी, मेरे बच्चे, मेरी धन-दौलत।

तो फकीर ने कहा: यही फर्क है। हम जाते हैं, तुम नहीं जा सकते। तुम गृहस्थ हो। हम संन्यस्त हैं।

फिर एक क्षण को सम्राट को दिखाई पड़ा कि अरे, यह मैंने क्या कर लिया! बात तो सच है। कैसे अदभुत आदमी को गंवा दिया! छह महीने सत्संग भी नहीं किया। क्योंकि मैं सत्संग क्या खाक करता! मेरे भीतर तो यह चल रहा था कि यह आदमी तो साधारण आदमी निकला, खोटा निकला! सोना ऊपर से पुता था, भीतर मिट्टी है। एकदम पैर पकड़ लिए फकीर के कि नहीं महाराज, जाने नहीं दूंगा।

फकीर ने कहा कि मुझे कोई अड़चन नहीं, मैं चल सकता हूं! लेकिन फिर अड़चन तुझे होगी। मुझे क्या दिक्कत है, यह घोड़ा रहा तेरा, अभी बैठा जाता हूं। मगर नहीं, अब न जाऊंगा, क्योंकि तुझे फिर अड़चन होगी, तू फिर भी नहीं सम्हलेगा, तू फिर भी नहीं समझेगा।

और जैसे ही उसने कहा कि मैं फिर चल सकता हूं कि क्षण भर में महाराज का चेहरा बदल गया। सम्राट को फिर लगा कि अरे...!

फकीर नहीं रुका। फकीर ने कहा कि नहीं, अब तुझे अर्थ पता चल ही जाना चाहिए कि भेद क्या है। मुझे कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि जिसको अड़चन हो वह संन्यासी ही नहीं। मुझे क्या अड़चन है? महल में रहा तो और झाड़ के नीचे रहा तो, मुझे कोई भेद नहीं है। मेरी बांसुरी जैसी बजती थी, बजती रहेगी।

गृहस्थ का अर्थ वह नहीं जो घर में रहता है; गृहस्थ का अर्थ वह कि जो घर को पकड़ कर रहता है। और संन्यस्त का अर्थ वह नहीं कि जो घर को छोड़ देता है; संन्यस्त का अर्थ

वह कि जो घर को पकड़ कर नहीं रहता। छोड़ना पड़े तो तत्क्षण बाहर हो जाएगा, पीछे लौट कर भी नहीं देखेगा।

इसी संन्यास के लिए तुम्हें निमंत्रण दिया है। यह संन्यास तुमने स्वीकार भी किया है मुकेश! अब कदम बढ़ाओ। सिर्फ बाहर से संन्यस्त हो जाने से कुछ भी न होगा; अब भीतर से भी संन्यस्त होना है।

आखिरी प्रश्नः आप जीवन के जिस महाकाव्य को गाए चले जा रहे हैं, उसके अनबोले बोल क्या हैं? कभी उससे उठी प्रेम की उत्ताल लहरें अंतर-बाहर भिगो जाती हैं; कभी उससे उठी ध्यान की तरंगें मन-प्राण को शीतल कर जाती हैं, और फिर कभी शून्य घेरता है—संगीतमय होकर!

नरेंद्र! अनबोले बोल हैं, मगर उन्हें कैसे बोला जा सकता है? अनबोले हैं, अनबोले रहेंगे! हां, उन्हें सुना जा सकता है, लेकिन उन्हें बोला नहीं जा सकता।

ध्यान रखना, अनबोले, जरूरी नहीं है कि अनसुने रहें। अनबोले भी सुने जा सकते हैं। और वही कीमिया है शिष्यत्व की कि जो नहीं बोला जा रहा है वह भी तुम सुन लो। जो बोला जा रहा है, उसे तो कोई भी सुन सकता है। वह विद्यार्थी का लक्षण है। जो नहीं बोला जा रहा है, उसे जब तुम सुन लोगे तो शिष्य हुए। और जिस दिन तुम उसे जीने लगोगे, उस दिन भक्त हुए।

बस ये तीन सीढ़ियां हैं—विद्यार्थी, शिष्य, भक्त। विद्यार्थी सिर्फ सुनता है, जो बोला जाता है। शिष्य सुनता है, जो नहीं बोला जाता। और भक्त उसे जीता है। क्योंकि जीओगे तो ही समझोगे। अनबोले को सुन भी लिया तो क्या होगा? समझ नहीं आएगी। जब जीओगे तब समझ आएगी। इसलिए रोज बोलता हूं। विद्यार्थी होंगे, वे बोले में से कुछ ले लेंगे। शिष्य होंगे, वे अनबोले में से कुछ ले लेंगे। भक्त होंगे, वे अनबोले को जी लेंगे।

> शेष है,
> जो कहना है।
> कहा आज तक—
> बहुत,
> अनेकों बार
> अनेक रीतियों से।
> तुम समझे भी—
> जिसे,
> पता नहीं
> किस भांति?
> मैं...

क्षण-क्षण की अनुभूति
कहना
चाहता हूं,
सुनो!
शेष हैं,
जो
कहना हैं।

वह शेष ही रहेगा।

रवींद्रनाथ को मरते समय एक मित्र ने कहाः तुम धन्यभागी हो! मृत्यु की इस अंतिम घड़ी में परमात्मा को धन्यवाद दो कि तुमने छह हजार गीत गाए। इतने गीत किसी आदमी ने कभी नहीं गाए। और तुम्हारा हर गीत ऐसा है कि संगीत में बंधने योग्य—संगीत से सराबोर है!

पश्चिम में शैली को महाकवि समझा जाता है, उसके केवल दो हजार गीत हैं। रवींद्रनाथ के छह हजार गीत हैं। और गीत संख्या में ही ज्यादा नहीं हैं, गुण में भी ज्यादा हैं।

तो मित्र ने ठीक ही कहा था, लेकिन रवींद्रनाथ की आंखों से झर-झर आंसू गिर पड़े और उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, धन्यवाद न दे सकूंगा। मैं तो यही कहता हूं परमात्मा से कि अभी मैंने गाया कहां जो मुझे गाना था! अभी तो मैं केवल साज बिठा पाया था, अभी संगीत कहां पैदा हुआ था! और यह तुमने कैसा किया प्रभु कि विदा का क्षण आ गया! गीत गाने भेजा था, वह मैं गा न पाया। उस गाने की चेष्टा में ये छह हजार गीत पैदा हुए हैं; मगर जो शेष था वह शेष ही रहा है। साज बिठा पाया...!

शास्त्रीय संगीतज्ञ देखे न, साज बिठाते हैं। कभी आधा घड़ी लग जाती है। जो नहीं जानते हैं वे तो थोड़े हैरान होते हैं कि घर से ही बिठा कर क्यों नहीं आ गए! अब यहां ठोंका-ठांकी कर रहे हैं! वीणा कसी जा रही है। तबले ठोंके जा रहे हैं। पाउडर मला जा रहा है। यह क्या कर रहे हो? घर से ही क्यों नहीं करके आ गए? लेकिन कुछ चीजें हैं जो रेडीमेड नहीं हो सकतीं, जो क्षण-क्षण में बांधनी होती हैं। अब वह जो वीणा के तार कस रहा है, वह घर भी कस सकता था—तुम कहोगे। जरूर कस सकता था। मगर नहीं, उसे फिर कसने पड़ते। क्योंकि ये जो लोग मौजूद हैं, इनको बिना देखे तार नहीं कसे जा सकते। यह जो माहौल है, यह जो हवा है, इन्हें बिना देखे तार नहीं कसे जा सकते। इनके साथ-साथ तार कसे जाएंगे। यह वीणा के ही तार नहीं कस रहा है, यह वीणा और श्रोताओं के बीच संतुलन साध रहा है। यह न जानने वालों को समझ में नहीं आएगी बात। यह तार ही नहीं कस रहा है, यह तुम्हारे हृदय के साथ तालमेल बिठा रहा है। वह जो तबला कस रहा है, वह तबला ही नहीं कस रहा है। वह जो हथौड़ी से ठोंक रहा है तबले को, तबले को ही नहीं ठोंक रहा है; वह तुम्हारे कान के पर्दों को तबले के साथ बिठा रहा है। वह तबले को तुम्हारे अनुकूल बना रहा है। तुम सुनोगे। सुनने वाले बदल जाएंगे, फिर वीणा कसनी पड़ेगी।

मैं जो बोलता हूं वह तुम्हारी क्षमता के अनुसार होता है। अगर यहां सारे नये लोग बैठे हों सुनने को, तो मैंने तुमसे जो आज बोला, नहीं बोल सकता था। इसलिए गांव-गांव जाकर

लोगों से बोलना मुझे बंद कर देना पड़ा। क्योंकि एक बात अनुभव में आने लगी बार-बार कि अगर भीड़-भाड़ में बोलता रहा, तो जो मुझे कहना है, कह ही न पाऊंगा। कहना तो दूर, साज भी न बिठा पाऊंगा।

ऐसा हुआ, लखनऊ के नवाब ने—वाजिद अली शाह ने—वाइसराय को निमंत्रण दिया था। संगीत की महफिल जमी। अंग्रेज वाइसराय, पहली दफा भारत आया था। उसे कुछ शास्त्रीय संगीत का तो पता ही नहीं था। संगीत का भी ऐसे कुछ उसे पता नहीं था। बैठक जमी। और लखनऊ के संगीत के प्रेमी इकट्ठे हुए। बड़े से बड़े संगीतज्ञ बुलाए गए थे। वे कसने लगे—कोई अपनी वीणा, कोई अपनी सारंगी, कोई अपना तबला, कोई अपनी मृदंग—वे सब साज बिठाने लगे। और वाइसराय सिर हिलाने लगा—सोच कर कि संगीत शुरू हो गया! वाजिद अली तो बहुत हैरान हुआ। और दूसरे भी बहुत हैरान हुए कि यह क्या हो रहा है! और जब साज बैठ गए और संगीतज्ञ संगीत जन्माने को तत्पर हुए, तो उसने आंख खोली और वाजिद अली से कहा कि संगीत बंद क्यों हो गया? जारी रखा जाए। मुझे बहुत पसंद आया। यही जारी रखा जाए।

तो रात भर यही चला! अब वाइसराय कहे, वही तो मेहमान था, तो रात भर यही चला कि लोग वीणा कसते रहे, तबला ठोंकते रहे। वाजिद अली अपना सिर ठोंकता रहा। बाकी सुनने वाले सिर ठोंकते रहे। और वाइसराय बड़ा प्रसन्न होता रहा कि क्या गजब का संगीत हो रहा है! सुनने वाले के अनुसार...।

बंद कर देना पड़ा मुझे यात्राओं को। क्योंकि जो सुनने वाले थे, वे केवल इतना ही समझ सकते थे कि तबला ठोंका जाए कि वीणा की तार कसी जाए; बस उसको ही वे संगीत समझते थे। बैठ गया हूं इसलिए अब एक जगह, ताकि धीरे-धीरे सुनने वाले और मेरे बीच एक तारतम्य हो जाए, एक गहराई हो जाए, एक नाता हो जाए; एक लहर में हम बंध जाएं।

आज से कोई डेढ़ सौ साल पहले एक वैज्ञानिक ने पहली दफा एक अदभुत बात खोजी थी। अब उस खोज का महत्व बढ़ता जा रहा है। उस पर नये काम शुरू हुए हैं। उसने एक बात खोजी, अचानक खोज ली। अक्सर महत्वपूर्ण बातें अचानक खोज में आती हैं। एक घर में मेहमान हुआ। उस घर की एक दीवाल पर दो पुराने घड़ियाल—पुरानी घड़ियां, बड़ी-बड़ी घड़ियां, पेंडुलम वाली घड़ियां एक ही दीवाल पर लगी थीं। वह चकित हुआ यह जान कर... वैज्ञानिक था, तो गौर से देखा उसने कि दोनों के पेंडुलम बिलकुल एक से हिलते हैं! एक साथ लयबद्ध! तो उसने एक घड़ी का पेंडुलम पकड़ रखा। लय तोड़ दी। फिर छोड़ दिया पेंडुलम, चला दिया; मगर लय तोड़ दी। लेकिन चकित हुआ कि आधा घड़ी के बीच फिर लय थिर हो गई। फिर वापस पेंडुलम साथ ही साथ घूमने लगे। दोनों बाएं जाएं, दोनों दाएं जाएं, साथ-साथ। उसने कई बार यह प्रयोग किया, रात भर सो न सका। कई बार एक पेंडुलम को रोक दे और उलटा चला दे, कि जब पहला पेंडुलम बाएं जा रहा है, इसको दाएं चला दे। मगर थोड़ी-बहुत देर में बस, फिर वापस धीरे-धीरे धीरे-धीरे दोनों एक लय में बद्ध हो जाएं। बड़ा हैरान हुआ कि मामला क्या है? क्योंकि इन घड़ियों के बीच कोई संबंध नहीं है।

मगर संबंध हैं, जो दिखाई नहीं पड़ते। वर्षों की खोज से उसे पता चला कि वह जो एक पेंडुलम का हिलना है, वह पीछे की दीवाल में सूक्ष्म तरंग पैदा करता है—बड़ी सूक्ष्म तरंग,

कि वर्षों के बाद वह खोज पाया उस तरंग को! और वह तरंग दूसरे पेंडुलम को समझ में आ जाती है—और साथ डोलने का मजा!

प्रकृति हमेशा कम से कम शक्ति व्यय करके काम करती है...जिसमें कम से कम शक्ति व्यय हो! अगर दोनों एक-दूसरे के विपरीत डोलें तो दुगनी शक्ति व्यय होती है; अगर एक साथ डोलें तो आधी शक्ति व्यय होती है।

तो जब मैं जनता में, आम जनता में बोल रहा था तो बहुत शक्ति व्यय होती थी और फिर भी बड़ी मुश्किल बात थी। अब सिर्फ उनसे बोल रहा हूं जो प्यासे हैं। अब कुछ कहा जा सकता है। उनसे बोल रहा हूं जिनके पेंडुलम मेरे पेंडुलम के साथ गूंज रहे हैं, डोल रहे हैं; जिनका मुझसे हृदय का तार जुड़ा है।

इसलिए संन्यास की घटना अनिवार्य हो गई। अंततः सिर्फ संन्यासियों से ही बोलना चाहता हूं, जिनका तार मुझसे बिलकुल मिला हुआ है। फिर भी तुमसे कहूं: जो शेष है कहने को, शेष ही रहेगा। हां, चेष्टा हम करते रहेंगे उसे कहने की। और बहुत दूर तक हम उसके करीब भी पहुंचते रहेंगे, करीब-करीब उड़ानें होती रहेंगी। हम रोज-रोज करीब आते जाएंगे, मगर कुछ अनकहा अनकहा रहेगा।

सत्य सदा अनकहा रह जाता है। उसके कितने ही पास आ जाओ, कितने ही पास आ जाओ, उसे कहा नहीं जा सकता। लेकिन उसके पास आते-आते एक नई कला सीखने में आ जाती है—सुना जा सकता है।

फिर से दोहरा दूं। मैं रोज कहता जाता हूं। मेरे कहने से सत्य किसी दिन मैं कह सकूंगा तुमसे, ऐसा नहीं है। फिर क्यों कहे जाता हूं? इसलिए कहे जाता हूं कि जैसे-जैसे मैं करीब आने लगूंगा, जैसे-जैसे करीब आने लगूंगा—तुम भी सुनने की गहराई में बढ़ते जाओगे। और एक दिन वह घड़ी आ जाएगी, मैं तो नहीं कह सकूंगा, लेकिन तुम सुन लोगे। तुम्हारा विद्यार्थी शिष्य हो जाएगा। और सुन लोगे तो उसे जीना ही पड़ेगा। फिर उसके विपरीत न जी सकोगे। तुम्हारा भक्त पैदा हो जाएगा।

> है अभी कुछ और है जो कहा नहीं गया।
> उठी एक किरण, धाई, क्षितिज को नाप गई,
> सुख की स्मिति कसक भरी, निर्धन की नैन कोरों में कांप गई
> बच्चे ने किलक भरी, मां की वह नस-नस में व्याप गई
> अधूरी हो, पर सहज थी अनुभूति:
> मेरी लाज मुझे साज बन ढांप गई—
> फिर मुझ बेसबरे से
> रहा नहीं गया।
> पर कुछ और रहा जो
> कहा नहीं गया।

> निर्विकार मरु तक को सींचा है

तो क्या? नदी-नाले, ताल-कुएं से पानी उलीचा है
तो क्या? उड़ा हूं, दौड़ा हूं, तैरा हूं, पारंगत हूं,
इसी अहंकार के मारे
अंधकार में सागर के किनारे
ठिठक गया : नत हूं
उस विशाल में मुझसे
बहा नहीं गया।
इसीलिए जो और रहा, वह
कहा नहीं गया।

शब्द, यह सही है, सब व्यर्थ है
पर इसीलिए कि शब्दातीत कुछ अर्थ है।
शायद केवल इतना ही : जो दर्द है
वह बड़ा है, मुझी से
सहा नहीं गया।
तभी तो, जो अभी और रहा, वह
कहा नहीं गया।

ये तो कवि के वचन हैं। और कवि को तो सिर्फ झलकें मिलती हैं। क्योंकि उसका अहंकार पूरा नहीं जाता; झीना-झीना होता जाता है, लेकिन झीना पर्दा बना रहता है, बना रहता है। कवि और ऋषि में यही भेद है। कवि को झलकें मिलती हैं; मगर उसको भी यह झलक मिल जाती है कि—है अभी कुछ और है, जो कहा नहीं गया!

लेकिन ऋषि को तो सत्य का समग्र अनुभव होता है; झलक नहीं, वह तो सत्यमय हो जाता है। अहं ब्रह्मास्मि! वह तो ब्रह्ममय हो जाता है। अनलहक! मैं सत्य हूं, ऐसी उसकी प्रतीति हो जाती है। मैं मिट जाता है, सत्य ही रह जाता है।

उसे कहा नहीं जा सकता—मगर ऋषि उसे कहने की चेष्टा करते रहे हैं। उस चेष्टा से सुनने की कला आ जाती है सुनने वालों में।

मैं तो नहीं कह पाऊंगा, लेकिन तुम जरूर सुन पाओगे। उसी आशा में रोज कहे जाता हूं, जानते हुए—है अभी कुछ और है, जो कहा नहीं गया!

आज इतना ही।

कहे यारी घर ही मिलै

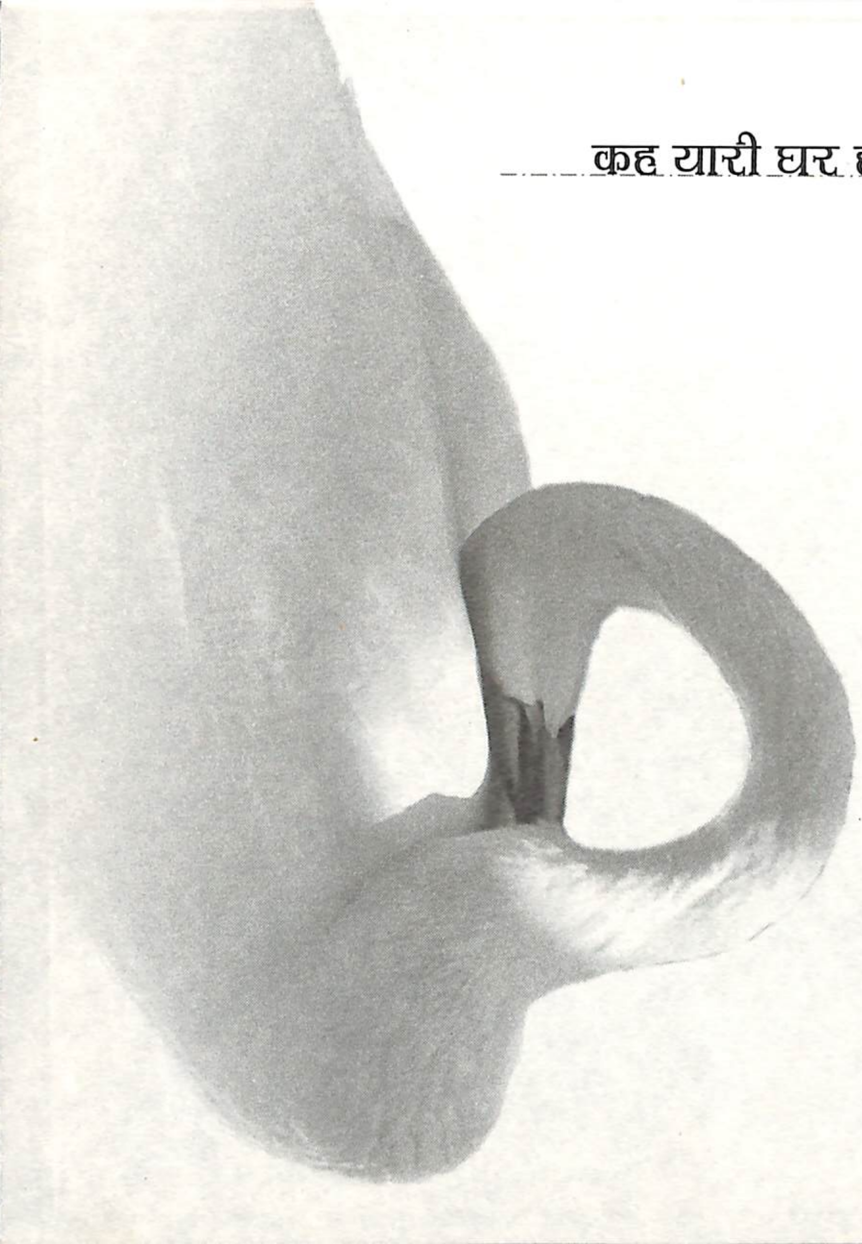

प्रवचन ९

जोतिसरूपी आतमा, घट-घट रही समाय।
परमतत्त मन भावनो, नेक न इत-उत जाय।।
रूप-रेख बरनौं कहा, कोटि सूर परकास।
अगम अगोचर रूप है, कोउ पावै हरि को दास।।
नैनन आगे देखिए, तेजपुंज जगदीस।
बाहर भीतर रमि रह्यो, सो धरि राखो सीस।।
आठ पहर निरखत रहौं, सनमुख सदा हुजूर।
कह यारी घर ही मिलै, काहे जाते दूर।।
आतम नारि सुहागिनी, सुंदर आपु संवारि।
पिय मिलन को उठि चली, चौमुख दियना बारि।।

यह मेरा एकाकी जीवन
कहां-कहां भटकेगा जाने।
पानी में बहते प्रसून सा
कहां-कहां अटकेगा जाने।

लहरों की इंगिति ही गति है,
परवश हूं मैं, यही नियति है।
धारा से तट, तट से झोंका
कब तक यों झटकेगा जाने।
यह मेरा एकाकी जीवन
कहां-कहां भटकेगा जाने।

अहंकारजित मति अति चंचल,
अनदेखा वह अंतश्शतदल,
प्रेम फूल संशय का कंटक
बन कब तक खटकेगा जाने।
यह मेरा एकाकी जीवन
कहां-कहां भटकेगा जाने।

इंद्र-जाल में नयन उलझते,

अनुतापों में पंख झुलसते।
तट पर ज्यों लहरें, मन-पंछी
कब तक सिर पटकेगा जाने।
यह मेरा एकाकी जीवन
कहां-कहां भटकेगा जाने।

परमात्मा के बिना जीवन एकाकी है, और एकाकी ही रहेगा। लाख हम उपाय करें, परमात्मा के बिना अकेलापन न कभी मिटा है, और न मिटेगा। मित्र हों, परिवार हो, प्रियजन हों, समाज हो, समूह हो, पर आदमी अकेला है और अकेला है। सिर्फ परमात्मा से जुड़ कर ही अकेलापन समाप्त होता है।

अकेलापन क्यों परमात्मा से जुड़ कर समाप्त होता है? क्योंकि परमात्मा में बूंद समा जाती है और बूंद सागर हो जाती है। एक-दूसरे में हम समा नहीं पाते। लाख हम प्रेम की बातें करें, बातें ही रह जाती हैं। लाख हम संबंध बनाएं, बस कामचलाऊ औपचारिक व्यवस्थाएं रह जाती हैं। पहले कितना ही रंग हो उनमें, वर्षा का एक झोंका भी वे रंग सह नहीं पाते हैं। और पहले कितना ही रोमांच होता हो, जल्दी ही सब चीजें ऊब पैदा करने लगती हैं। प्यारे से प्यारा व्यक्ति भी जल्दी ही साधारण मालूम होने लगता है। जैसे ही परिचय बनता है, वैसे ही सब गीत-काव्य खो जाते हैं। दूर के ढोल सुहावने लगते हैं; पास गए, सब सौंदर्य, सब शोभा नष्ट हो जाती है। पड़ोसी के बगीचे की दूब हरी मालूम पड़ती है, बस दूर से! जैसे-जैसे पास आते हो, स्वप्न टूटने लगते हैं।

और हमारे सारे संबंध और हमारा सारा प्रेम, नाते-रिश्ते—स्वप्नों का विस्तार हैं, मृग-मरीचिकाएं हैं। इसलिए ज्ञानियों ने हमारे मन के इस विस्तार को, इस संसार को माया कहा है। माया का अर्थ होता है : जो दिखाई तो पड़ती है, पर है नहीं। दिखाई तो ऐसी पड़ती है कि है, मगर जैसे-जैसे पास आओ, जैसे-जैसे पर्दे उठाओ, वैसे ही पता चलता है : कोई भीतर नहीं है। घूंघट उठाते ही दुल्हन खो जाती है। जब तक घूंघट है, तब तक दुल्हन है। ऐसा यह हमारे मन का संसार है।

और इसलिए भीड़ में भी आदमी अकेला है। चारों तरफ भीड़ तूफान की तरह, आंधी की तरह तरंगें ले रही हो, तो भी आदमी अकेला है। अकेलापन मिटता ही नहीं। कितना तो डुबाते हो उसे! शराब में डुबाते हो, सौंदर्य में डुबाते हो, कामवासना में डुबाते हो, धन की दौड़, पद की दौड़ में डुबाते हो! कितने तो तुमने मद खोजे हैं! कितने तो तुमने नशे खोजे हैं। ये सब नशे हैं—धन का नशा, पद का नशा...। यह सब शुद्ध शराब है! शराब से भी ज्यादा बदतर शराब है। क्योंकि शराब पीकर तो आदमी कल सुबह होश में आ जाएगा। लेकिन धन की शराब जिसने पी है, शायद जिंदगी भर होश में न आए। पद की शराब जिसने पी है, शायद जन्मों-जन्मों तक होश में न आए।

इसलिए मैं कहता हूं कि राजनीति और धर्म का कहीं मेल नहीं हो पाता। राजनीति का अर्थ है—पद की शराब पीया हुआ आदमी। दौड़ता ही रहेगा! और जितनी ही बड़ी मृग-मरीचिका हो, उतनी ही मुश्किल से टूटती है। क्योंकि दूरी इतनी होती है कि कभी दूरी

ही समाप्त नहीं होती, तो भ्रम कैसे टूटे? पर आदमी अकेला है। सब आयोजन, सब व्यवस्थाएं, और बीच में खड़ा आदमी अकेला है।

तुम जरा अपनी ही तरफ देखो और तुम पाओगे—पत्नी है, बच्चे हैं, परिवार है, सब है ऐसे तो, पर जरा भीतर झांको, तुम कितने अकेले हो! अकेले ही आए थे, अकेले ही जाओगे, अकेले ही जी रहे हो।

हां, अकेले जीना कठिन है। अकेले जीना पीड़ादायी है। अकेले जीना अत्यंत दुखभरा है। इसलिए हम अपने को भरमाते हैं कि नहीं, अकेले नहीं हैं। बेटा है, बेटी है, पत्नी है, पति है, मित्र हैं, परिवार है—अकेले नहीं हैं! इस अकेलेपन से बचने के लिए तो लोग ईसाई हो गए हैं, हिंदू हो गए हैं, मुसलमान हो गए हैं—ताकि भीड़ से संबंध जुड़ जाए। कम्युनिस्ट हो गए हैं, सोशलिस्ट हो गए हैं, फासिस्ट हो गए हैं—ताकि भीड़ से संबंध हो जाए। और भीड़ से तुम जितना संबंध जोड़ते हो, उतना ही परमात्मा से दूर होते जाते हो।

परमात्मा के पास जाना हो तो अपने अकेलेपन की पीड़ा को अनुभव करना होगा। दबाओ मत उसे—उभारो! उस पीड़ा को छिपाओ मत, ढांको मत, आवृत न करो, आच्छादित न करो—अनावृत करो! हटा दो सब धोखे के परदे और अपने एकाकीपन को उसकी प्रगाढ़ता में देख लो! चुभने लगे कांटा एकाकीपन का ऐसा कि चुभन चौबीस घंटे बनी रहे। इसलिए धर्मों ने शराब का विरोध किया है—सभी तरह की शराबों का विरोध किया है। तुम्हें पता है, हमारे पास शब्द हैं—धन-मद; उसका मतलब होता है धन की मदिरा। पद-मद; उसका अर्थ होता है पद की मदिरा। सारी शराबों का सारे धर्मों ने विरोध किया है, क्यों? शराब से कुछ दुश्मनी है? अंगूर के रस से कुछ विरोध है?

नहीं, कारण कुछ और है। शराब में कुछ खराबी नहीं है; खराबी है तुम्हारी इस चेष्टा में कि तुम अपने अकेलेपन को भुलाना चाहते हो। और जो आदमी अपने अकेलेपन को भुलाने में सफल हो गया, उसकी जिंदगी असफल हो गई, क्योंकि उसे परमात्मा की कभी याद न आएगी। अकेलापन गहन हो, सघन हो, निबिड़ होता जाए। तुम्हारी छाती अकेलेपन की पीड़ा से ऐसी दुखने लगे कि दुखावा मिटे ही न—तो उस पीड़ा में ही पहली बार स्मरण आता है कि परमात्मा से जुडूं। और सब से जुड़ कर देख लिया, व्यर्थ पाया; आखिरी उपाय कर लूं परमात्मा से जुड़ने का।

और अगर अकेलेपन को भुला दिया तो आखिरी उपाय तुम कभी करोगे नहीं। इसलिए विरोध किया है शराबों का।

इसलिए विरोध नहीं किया है कि शराब पीकर तुम धन गंवाते हो। इसका तो मतलब हुआ कि धर्म धन को बचाने के बड़े पक्ष में है। इसलिए विरोध नहीं किया है कि शराब पीकर तुम अपने घर-परिवार की फिक्र नहीं करते। तब तो उसका अर्थ होगा कि धर्म का कुल अर्थ इतना ही है कि घर-परिवार की फिक्र करो; संसार को सम्हालो। धर्म ने विरोध किया है किन्हीं और कारणों से। जब राजनेता विरोध करता है शराब का तो उसके कारण अलग होते हैं। जब धार्मिक विरोध करता है शराब का तो उसके कारण अलग होते हैं!

और राजनेता शराब का तो विरोध करता है और खुद शराबी है, पद की मदिरा पीए बैठा है! कौन शराबी इतना अकड़ कर चलता है जितना राजनेता अकड़ कर चलता है? कौन

शराबी इतनी हानि पहुंचाता है जगत को जितनी राजनीति पहुंचाती है? कौन शराबी ने ऐसे दुष्कृत्य किए हैं जैसा कि धन का दीवाना कर देता है?

धर्म का शराब से विरोध किसी और बहुत मौलिक कारण से है। वह मौलिक कारण है कि तुम अपने एकाकीपन को भुलाओ मत, एकाकीपन को जगाओ। उसी की ही प्रगाढ़ अग्नि में झुलसोगे जब तुम और सारा जगत तुम्हें जलता हुआ मालूम पड़ेगा, तभी खोज शुरू होगी। बाहर दौड़ कर बहुत देख लिया, अब एक आखिरी शरण बची है—आत्मशरण। अब भीतर चलें। आखिरी उपाय बचा है, उसे भी करके देख लें। और जिन्होंने आखिरी उपाय किया है, उनका अकेलापन मिट गया। और उस मिटने में भी बड़ा राज है। उनका अकेलापन इसलिए मिटा कि उनका अहंकार मिट गया। न रहा बांस, न बजेगी बांसुरी। जब तक अहंकार है, तब तक अकेलापन है। अहंकार ही अकेलापन है। मैं अलग हूं जगत से, यही तो अहंकार है। मैं पृथक हूं जगत से, यही तो अहंकार है।

निर-अहंकार का अर्थ होता है: मैं पृथक नहीं, अलग नहीं; इस समग्रता का एक अंग हूं। ये वृक्ष, ये चांद, ये तारे, ये लोग, इनसे मैं भिन्न नहीं हूं। मैं कोई छोटा-मोटा द्वीप नहीं हूं। मैं इस महाद्वीप का अंग हूं। मैं एक छोटा सा कण हूं इस विराट विस्तार का। इस अनंत सागर की लहरों में मैं भी एक लहर हूं। छोटी सही, मगर भिन्न नहीं हूं।

लहर सागर की है, सागर लहर का है। लहर में सागर ही लहरा रहा है। लहर सागर से क्षण भर को नहीं टूटी है; टूट नहीं सकती है। सागर में ही हो सकती है लहर। तुम लहर को घर न ला सकोगे। तुम लहर को पेटी में बंद न कर सकोगे। बंद कर लोगे तो लहर न रहेगी, पानी रह जाएगा। लहर तो सागर में ही हो सकती है। सागर की छाती पर ही लहर का नर्तन हो सकता है। सागर से जुड़ कर ही हो सकती है।

फिर, जल की बूंद को तो जल से अलग भी किया जा सकता है, लेकिन हम परमात्मा के सागर की ऐसी बूंदें हैं कि हमें अलग नहीं किया जा सकता। अलग हम हैं ही नहीं। अलग होना हमारी भ्रांति है। और हमारी सारी शिक्षा, हमारी सारी दीक्षा, हमारी संस्कृति, सभ्यता, हमें एक ही बात सिखाती है: अहंकार सिखाती है। बच्चा पैदा होता है बिलकुल निर-अहंकार में, निर्दोष! उसे पता ही नहीं होता कि मैं हूं। इसलिए तो छोटे बच्चे कहते हैं...भूख लगती है तो यह नहीं कहते कि मुझे भूख लगी है; कहते हैं, रामू को भूख लगी है। रामू उनका नाम है। कि मुन्ना भूखा है। छोटे बच्चे यह नहीं कहते कि मुझे भूख लगी है—मुन्ना भूखा है! जैसे किसी और को भूख लगी! अभी मैं का भाव नहीं जगा।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं: मैं का भाव तब जगता है जब तू का बोध होने लगता है। मैं पहले पैदा नहीं होता, पहले तू पैदा होता है। साधारण तर्क से हम सोचते हैं तो लगता है कि मैं पहले होता है पैदा। मैं पहले पैदा नहीं होता, पहले तू पैदा होता है। मनोवैज्ञानिक शोधें कहती हैं: मैं बाद में आता है, तू पहले आता है। फिर तू की छाया की तरह मैं आता है। तू क्यों पहले आता है? मां को बच्चा देखता है—कभी पास, कभी दूर; कभी दूध पिलाती, कभी नहीं पिलाती; कभी बच्चा रो रहा है और मां सुनती ही नहीं; कभी आ भी जाती है, कभी नहीं भी आती। कभी बच्चा अकेला हो जाता है, तलाशता है मां को। बच्चे को जो पहला बोध पैदा होता है, वह यह कि मां अलग है। और जैसे ही यह बोध पैदा हुआ कि मां

अलग है, वैसे ही दूसरा बोध ज्यादा देर नहीं रहेगा, आ जाएगा—कि मैं अलग हूं। जिस दिन यह घटना घटती है कि मैं अलग हूं, उसी दिन हमारे जीवन में उपद्रव की शुरुआत हुई।

फिर हम इसी मैं को मजबूत करते हैं। हम बच्चों को कहते हैं: अपने कुल की लाज रखना! तुम किस घर से आते हो, इसकी इज्जत रखना! तुम्हें स्कूल में प्रथम आना है। तुम्हें दूसरों को मात देनी है। तुम्हें आगे जाना है।...हमने शराबें पिलानी शुरू कर दीं! छोटे-छोटे बच्चों को हम शराब की आदत डलवा रहे हैं। जिस दिन हम कहते हैं महत्वाकांक्षा, उसी दिन हमने शराब ढालनी शुरू कर दी। जिस दिन तुमने कहा कि प्रथम आना है, दूसरों को पछाड़ देना है, तुम्हें आगे आना है, तुम्हें पंक्ति में प्रथम होना है—उसी दिन तुमने जहर पिला दिया! ये छोटे-छोटे बच्चे, जहर से भरे हुए, अब महत्वाकांक्षा की दौड़ में लगे रहेंगे। जिंदगी भर इनकी यह दौड़ चलेगी।

ये बड़े सौभाग्यशाली होंगे कि कभी ऐसे आदमी से इनका साथ हो जाए जो दौड़ के बाहर हो गया है। ऐसे आदमी के साथ को ही सत्संग कहते हैं, जो पद-मद, धन-मद, जो सभी तरह की शराबों से छिटक कर अलग हो गया है। जिसने एक बात जान ली कि मैं नहीं हूं, तो भुलाना किसको है? जिसने यह बात जान ली कि मैं नहीं हूं, उसकी सारी चिंताएं उसी क्षण गिर गईं। चिंताएं सब मैं के पीछे चलती हैं—मैं की बरात है।

तुमने शिवजी की बरात तो देखी है, उसमें कैसे उलटे-सीधे लोग चलते हैं—भूत-प्रेत, गंजेड़ी-भंगेड़ी, न मालूम किस-किस तरह के लोग, इरछे-तिरछे, उलटे-सीधे अस्त्र लिए! शिवजी की बरात का अर्थ होता है—अहंकार की बरात। उस अहंकार के पीछे सभी तरह का इरछा-तिरछापन, सब तरह के अंजेड़ी-गंजेड़ी-भंगेड़ी, सब तरह के उपद्रवी, सब तरह के पागल, भूत-प्रेत, सब उस बरात में चलते हैं। मगर दूल्हाराजा अहंकार है। अहंकार आ गया तो अब बस सबके लिए द्वार खुल गया! अब दुनिया के सब उपद्रव आ जाएंगे, अपने आप आ जाएंगे, द्वार खुल गया। सब सांप-बिच्छू अब अपने आप आ जाएंगे। और तब चिंताएं खड़ी होती हैं—कैसे बचाएं इस मैं को? डर लगता है कि यह बचेगा नहीं। और डर सच भी है। इसका होना ही बड़ी असंभव घटना है, बचना तो बहुत दूर!

हम किस तरह इस भ्रांति में बने रहते हैं, यह इस जगत का सबसे बड़ा चमत्कार है! इस अस्तित्व के साथ एक होकर भी हम कैसे यह भ्रांति पाल लेते हैं कि हम अलग हैं, यह चमत्कारों का चमत्कार है! यह आदमी ने असंभव करके दिखा दिया! यह मछली ने मान लिया कि मैं सागर से अलग हूं। यह लहर ने मान लिया कि मैं सागर से अलग हूं। यह पत्ते ने मान लिया वृक्ष के कि मैं वृक्ष से अलग हूं। वृक्ष की ही रसधार उसे जिलाती है और हरा रखती है।

तुम किसके कारण जी रहे हो? कौन तुम्हारे भीतर श्वास लेता है? शायद तुम सोचते हो कि मैं श्वास लेता हूं। तो तुम गलती में हो। रात तुम तो सो जाते हो, श्वास फिर भी कोई लेता है। तुम तो बेहोश हो जाओ, तुम्हें क्लोरोफार्म सुंघा दिया जाए, तुम्हें तो अपना पता ही न रहे, तो भी श्वास चलती है। एक बात पक्की है कि तुम श्वास नहीं लेते। अगर तुम श्वास लेते होते तो आदमी का जिंदा रहना मुश्किल हो जाता। रात सो गए, जरा गहरी नींद लग गई, खात्मा हो गया! जरा भूल गए श्वास लेना। किसी काम में उलझ गए और भूल गए श्वास लेना। फिल्म देखने चले गए और ज्यादा तल्लीन हो गए और भूल गए श्वास लेना। अगर

तुम्हें ही यादपूर्वक श्वास लेनी पड़ती तो तुम जिंदा नहीं रह सकते थे, कभी के समाप्त हो गए होते। नहीं; तुम्हारे बिना, तुम्हारे विचार के बिना कोई श्वास ले रहा है।

कौन तुम्हारे भीतर भोजन को पचाता है? तुम? कौन तुम्हारे भीतर रोटी को रक्त बनाता है? तुम? कौन तुम्हारे भीतर हृदय को क्रमबद्ध रूप से धड़काता है? तुम?

एक महल के पास पत्थरों का ढेर लगा है। एक छोटा बच्चा आया और उसने एक पत्थर उठा कर महल की खिड़की की तरफ फेंका। पत्थर जब आकाश में उठने लगा तो स्वाभाविक था...आदमी तक जब भ्रांति में पड़ जाते हैं तो पत्थर को तो तुम क्षमा कर देना। पत्थर ने भी सपने तो बहुत देखे थे आकाश में उड़ने के। कभी तोतों की हरी पंक्ति निकल गई थी, कभी बगुलों की सफेद पंक्ति निकल गई थी आकाश में। कभी दूर-दूर उड़ती आकाश में, बादलों के पार, चीलें देखी थीं। पत्थर के मन में भी सपने उठते थे कि कभी उडूं, कभी पंख फैलाऊं। मगर कैसे पत्थर पंख फैलाए? कैसे उड़े? आशा थी, कभी यह घटना घटेगी। और जब बच्चे ने पत्थर को फेंका तो स्वभावतः पत्थर का अहंकार जगा। उसने नीचे पड़े पत्थरों से कहा कि सुनते हो जी, आज सपना पूरा होने का दिन आ गया! आज मैंने पंख खोला है। आज मैं जाता हूं आकाश की यात्रा पर।

नीचे पड़े पत्थर मन कसमसा कर रह गए होंगे। दिल में तो उनके भी यही था, मगर हतभाग्य कि नहीं उनको यह घट पाया। ईर्ष्या से जल-भुन गए होंगे। क्योंकि यह पत्थर अपने ही भीतर पड़ा था कल तक, अपने ही बीच पड़ा रहा सदियों-सदियों से, आज उड़ने का सौभाग्य! इस जगत में कोई न्याय नहीं मालूम होता, अन्याय मालूम होता है। किस्मत ठोंक ली होगी अपनी। सोचा होगा, हम अभागे हैं! परमात्मा हमारे साथ नहीं है। यह पत्थर उड़ा जा रहा है, इनकार भी कैसे करते?

और पत्थर की छाती फूल गई होगी, जो उड़ रहा था। और जब जाकर टकराया महल की कांच की खिड़की से और कांच चकनाचूर हो गया, तो पत्थर ने कहाः मैंने हजार बार कहा है कि मेरे रास्ते में कोई भी न आए, नहीं तो चकनाचूर हो जाएगा।

अब पत्थर ने कुछ कांच को चकनाचूर नहीं किया है। इसमें कृत्य कोई भी नहीं है। यह तो पत्थर और कांच जब टकराते हैं तो कांच चकनाचूर हो जाता है, पत्थर चकनाचूर करता नहीं। यह कोई कृत्य नहीं है। यह तो सिर्फ स्वभाव है। पत्थर और कांच का यह स्वभाव है कि टकराहट हो जाए तो पत्थर नहीं टूटता, कांच टूटता है। यह सिर्फ स्वभाव है। इसमें न तो पत्थर ने तोड़ा है, न कांच टूटा है। यह बिलकुल प्रकृति का नियम है। पत्थर चाहता भी तो भी कांच को बचा नहीं सकता था। तो फिर तोड़ने का क्या अर्थ जब बचा ही न सकते थे? जब विवश थी घटना तो कृत्य नहीं बनती।

कांच बिखर गया भीतर के कालीन पर। पत्थर कालीन पर गिरा, और पत्थर ने कहा कि थक गया, लंबी यात्रा भी की, आकाश में भी उड़ा, दुश्मन का सफाया भी किया—थोड़ा विश्राम कर लूं! थोड़ा सुंदर कालीन पर विश्राम कर लूं!

यह कोई विश्राम न था। पत्थर गिरा था कालीन पर। लेकिन ऐसा ही तो हम करते रहते हैं। जो घटनाएं घटती हैं, उनके हम कर्ता हो जाते हैं। लोग कहते हैं कि मैं श्वास ले रहा हूं। लोग कहते हैं कि मैं जी रहा हूं। लोग कहते हैं कि मेरा जन्म। तुम्हारा जन्म वैसे ही है जैसे

किसी बच्चे ने पत्थर को फेंक दिया महल की तरफ। तुम फेंके गए हो जीवन में। किसने फेंक दिया, उन हाथों का तुम्हें भी पता नहीं है। क्यों फेंक दिया है, इसका भी कुछ पता नहीं है। और ऐसा भी हुआ है जिंदगी में कि कोई तुमसे टकराया है और कभी टूट भी गया है—और तब तुम कैसे अकड़ गए हो! तुम्हारी छाती कैसी फूल गई है!

नौकर ने आवाज सुनी पत्थर की, कांच के टूटने की, भागा हुआ अंदर आया। तब तक पत्थर बड़ा विश्राम कर रहा था और सोच रहा था कि मेरे स्वागत में खूब तैयारियां की गई हैं। लोगों को जैसे पता ही चल गया होगा कि मैं आता हूं। कालीन बिछा रखे हैं, धूप-दीप जला रखे हैं! सुंदर सुवास उड़ रही है। फानूस लटका रखे हैं। बहुमूल्य परदे लटके हुए हैं। मेरे लिए सारा इंतजाम कर रखा है। हो भी क्यों न, मैं कोई साधारण पत्थर तो नहीं हूं; आकाश में जो उड़ता है, ऐसा पत्थर हूं! जिसके पंख हैं, ऐसा पत्थर हूं! सदियों-सदियों में ऐसा पत्थर होता है। मैं कोई साधारण पत्थर नहीं हूं, अवतारी पत्थर हूं!

नौकर भागा हुआ आया, पत्थर को हाथ में उठाया फेंकने के लिए वापस। और पत्थर ने सोचा कि घर का मालिक आया, हाथ में लेकर स्वागत-सम्मान कर रहा है। और नौकर ने पत्थर वापस खिड़की से फेंक दिया। और पत्थर ने कहा: बहुत देर हो गई घर छोड़े। गृह की बहुत याद सताती है। महल होंगे कितने ही प्यारे और कालीन होंगे कितने ही बहुमूल्य, मगर वह सुख कहां जो पत्थरों के बीच, अपनों के बीच, अपनी मातृभूमि में उपलब्ध होता था! पत्थर वापस गिरने लगा पत्थर की ढेरी पर। बाकी पत्थरों ने आंखें खोल कर देखीं, चौकन्ने हैं, भरोसा नहीं आता कि यह क्या घटना घटी है, अभूतपूर्व घटना घटी है! सुना था कि कभी पुरखों में ऐसे पत्थर भी हुए हैं जो आकाश में उड़े हैं, मगर वे सब पुराण कथाएं थीं। अपनी आंखों से देखा। पत्थर न केवल उड़ा है, बल्कि वापस आ रहा है।

और जब पत्थर ढेरी में वापस गिरने लगा तो उसने कहा कि मित्रो! दूर-दूर की यात्राएं कीं। शत्रुओं का सफाया किया। महलों में विश्राम किया। सम्राटों के हाथों में सम्मान पाया। लेकिन तुम्हारी याद बहुत सताती थी। सब सुंदर था, मगर घर की बहुत याद आती थी। तुम्हारी याद खींच लाई है। मैं वापस आ गया हूं।

पत्थर फेंका गया है और कह रहा है: मैं वापस आ गया हूं! इस पत्थर की कहानी तुम्हारे अहंकार की कहानी है। न तुम्हारे जन्म में तुम्हारा कोई हाथ है। न तुम्हारी श्वास लेने में तुम्हारा कोई हाथ है। न तुम जब किसी के प्रेम में पड़ गए हो तो उस प्रेम में तुम्हारा हाथ है। कब कौन तुम्हारे भीतर रोटी को मांस-मज्जा बनाता है, कब कौन तुम्हारे भीतर भोजन को पचाता है, कब कौन तुम्हारे भीतर रक्त को दौड़ाता है, कब कौन तुम्हारे भीतर तुम्हारे हृदय को धड़काता है—और फिर भी तुम सोच रहे हो कि तुम अकेले हो, तुम अलग-थलग हो!

यह अहंकार की भाषा—कि मैं भिन्न हूं, कि मैं कर्ता हूं—एकमात्र भ्रांति है। जिसकी यह भ्रांति टूट गई, वही संन्यासी है। जिसने कहा: मैं कर्ता नहीं हूं, कर्ता परमात्मा है। जिसने कहा: मैंने कभी कुछ किया नहीं है; हां, घटनाएं हुई हैं; ज्यादा से ज्यादा मैं इतना ही कह सकता हूं कि मैं साक्षी हूं, कर्ता नहीं।

और बड़े मजे की बात है, कर्ता जब तक रहो तब तक मैं रहता है; जैसे ही साक्षी हुए, मैं खो जाता है। साक्षी-भाव में मैं बचता ही नहीं, कर्ता-भाव में मैं बचता है। इसलिए सारे

शास्त्रों का सार है—कर्ता से साक्षी पर रूपांतरण। और तब तुम जानते हो—अकेले नहीं हो। हो ही नहीं तो अकेले कैसे होओगे? परमात्मा है, मैं नहीं हूं।

यह मेरा एकाकी जीवन
कहां-कहां भटकेगा जाने।
पानी में बहते प्रसून सा
कहां-कहां अटकेगा जाने।

बस ऐसे ही बहते रहे हो—

पानी में बहते प्रसून सा
कहां-कहां अटकेगा जाने।

अब तक ऐसे ही चला है। और इसीलिए जिंदगी एक दुख की लंबी कथा है, एक व्यथा है। एक उदास स्वर है तुम्हारी वीणा में बज रहा। जहां उत्सव हो सकता था, वहां केवल सघनीभूत उदासी है। जहां फूल ही फूल खिल सकते थे, वहां कांटे ही कांटे बिखर गए हैं। और जहां ध्यान की सुगंध उड़ सकती थी, वहां चिंताओं की दुर्गंध के सिवाय कुछ भी नहीं। कैसे यह क्रांति हो?

यारी के आज के सूत्र उसी क्रांति की तरफ इशारा हैं—आखिरी इशारा! बिरहिनी मंदिर दियना बार! यह तुम जो भटक गए हो, यह जो विरह की दशा चल रही है, यह मिट सकती है—मंदिर दियना बार! अपने मंदिर में दीया जलाओ साक्षी का। होश का दीया जलाओ। बिरहिनी मंदिर दियना बार! एक छोटा सा काम, छोटा—और सबसे बड़ा भी। छोटा, क्योंकि दीया मौजूद है, बाती मौजूद है, तेल मौजूद है, सब मौजूद है—सिर्फ ज्योति जलानी है। किसी ज्योति के पास सरक जाना है, ताकि बुझे दीये में जले दीये से ज्योति उतर जाए। किसी सदगुरु को पकड़ लेना है, कहीं समर्पण कर देना है। कहीं झुक जाए बुझा दीया जले दीये के पास, तो ज्योति छलांग लगा लेती है। उस ज्योति की छलांग में ही तुम्हारे भीतर क्रांति घटित हो जाती है। अंधेरा गया; सुबह हुई। रात मिटी; प्राची पर सूरज निकला।

जोतिसरूपी आतमा, घट-घट रही समाय।

और जिस ज्योति की हम तलाश करते हैं, वह एक अर्थ में तो खोजनी है और एक अर्थ में घट-घट में जल ही रही है। खोजनी है इस अर्थ में, क्योंकि हमने उसकी तरफ पीठ कर ली है। और मौजूद है इस अर्थ में कि हमारे पीठ करने से भी बुझ नहीं गई है। सदगुरु केवल तुम्हें सन्मुख कर देता है परमात्मा के, मोड़ देता है तुम्हें। दौड़े जाते थे संसार की तरफ और विमुख थे परमात्मा की तरफ। मोड़ देता है तुम्हें—एक सौ अस्सी डिग्री वाला मोड़! विमुख कर देता है संसार की तरफ और सन्मुख कर देता है परमात्मा के। और उसी घड़ी में सारा जगत अलौकिक आलोक से भर जाता है। उसी घड़ी में अमृत की वर्षा हो जाती है।

यह शिथिल, गंध-गुंजित कोकिल सी
किस मधुपति से गई छली,
किस दरस-परस से विकल-तरल
मधु-निर्झर सी मंद-मंद चली!
पावस-समीर बह चली अली!

एक क्षण में अमृत की वर्षा हो जाती है। एक क्षण में पावस की समीर बह जाती है। एक क्षण में मधुमास आ जाता है।

पावस-समीर बह चली अली!
यह शिथिल, गंध-गुंजित कोकिल सी
किस मधुपति से गई छली,
किस दरस-परस से विकल-तरल
मधु-निर्झर सी मंद-मंद चली!
पावस-समीर बह चली अली!

फूलों सा गमक उठा यौवन
गाती हैं बालाएं कजली,
तृण-कुंज, कुसुम, द्रुम-पातों में
कैसा नव प्राण हिलोल अली!
पावस-समीर बह चली अली!

लो! झूम उठी डाली-डाली पर
कानन की किन्नरी कली,
लद गई प्रमुद पुलकों से विह्वल
मंजरियां मधु-गंध पली!
पावस-समीर बह चली अली!

घिर-घिर आते रस-चपल मेघ
खुल-खुल पड़ती चपला पगली,
चंचल हिंदोल सी डोल-डोल
उठती वल्लरियों की अवली!
पावस-समीर बह चली अली!

अधखिले मुग्ध अंगों में चंचल
रति-परिरम्भ हिलोर ढली,
प्रिय की मद-भरी उमंगों से
मैं खेलूं व्याकुल मदन-लली!
पावस-समीर बह चली अली!

एक क्षण में आ जाता है वसंत। हम पतझड़ में जी रहे हैं। नहीं कि वसंत नहीं है; हमने वसंत की तरफ पीठ कर रखी है। हम पतझड़ में जी रहे हैं, क्योंकि बाहर की तरफ भागे जा

रहे हैं। और जितना हम बाहर भागते हैं, उतना भीतर से दूर निकल जाते हैं। और भीतर है स्रोतों का स्रोत, रसों का रस! रसो वै सः! भीतर है वह जिससे जीवन मिलता है; वह जिससे ज्योति मिलती है; वह जिससे चैतन्य मिलता है। भीतर है जिससे प्रेम उमगता है। भीतर है जिससे प्रार्थना जगती है। भीतर है जिसे हम परमात्मा कहते हैं।

जोतिसरूपी आतमा, घट-घट रही समाय।

वह तुम्हारे भीतर समाया हुआ है जिसे तुम खोज रहे हो। वह सबके भीतर समाया हुआ है जिसे हम खोज रहे हैं। हम उसे खोज रहे हैं जिसे हमने कभी खोया नहीं है। हमारी खोज बड़ी बेबूझ है, बड़ी अटपटी है। उसे खोजते जिसे खो दिया है, तो बात तर्कपूर्ण हो सकती थी। हम उसे खोज रहे हैं जिसे हमने खोया नहीं। हम उसे खोज रहे हैं जो हम हैं। खोजने वाले में ही मंजिल छिपी है। और हम दौड़े चले जाते हैं।

यह मिलन हो न सकेगा। यह खोज अगर बाहर ही जारी रही तो हम विषाद से विषाद में गिरते जाएंगे। और यही कारण है! मनुष्य-जाति के इतिहास को जरा उठा कर देखो, जितना आदमी की बाहर की खोज सफल हुई है, उतना ही आदमी भीतर विषादग्रस्त हो गया है। धन बढ़ा है, वैभव बढ़ा है, ऐश्वर्य बढ़ा है; मगर ईश्वर क्षीण होता गया है। संपदा बढ़ी है, सुख बढ़ा है, सुविधाएं बढ़ी हैं; मगर फिर भी भीतर एक गहन विषाद, एक अंधेरी रात हो गई है। और जितनी सुविधा में आदमी हो, जितनी संपदा में आदमी हो, उतनी ही भीतर की दरिद्रता खटकती है। क्योंकि बाहर की संपदा की पृष्ठभूमि में, तुलना में भीतर की दरिद्रता बहुत साफ-साफ दिखाई पड़ने लगती है।

जैसे तुमने कहानी सुनी होगीः अकबर ने एक दिन एक लकीर खींच दी दरबार में आकर और अपने दरबारियों को कहा कि इस लकीर को बिना छुए छोटा कर दो। अब बिना छुए कोई लकीर छोटी कैसे हो? थक गए बहुत सोच-सोच कर दरबारी। फिर बीरबल उठा और उसने एक बड़ी लकीर उस लकीर के नीचे खींच दी। उस लकीर को छुआ भी नहीं, हाथ भी न लगाया, सिर्फ एक बड़ी लकीर उस लकीर के नीचे खींच दी। न उस लकीर को छुआ, न हाथ लगाया, न मिटाया, न पोंछा—और बस छोटी हो गई!

जिसके पास बाहर धन हो जाता है, उसे भीतर की दरिद्रता बहुत साफ दिखाई पड़ने लगती है। जिसके पास बाहर सुविधाएं होती हैं, उसे भीतर का नरक बहुत साफ दिखाई पड़ने लगता है। इसलिए जैसे-जैसे आदमी संपन्न हुआ है, विज्ञान ने जैसे-जैसे संपन्नता दी है, वैसे-वैसे आदमी विपन्न हुआ है। इधर संपदा बढ़ी है, उधर विपदा बढ़ी है। दोनों साथ-साथ चलते रहे, समानांतर चलते रहे।

हम जितने अपने से बाहर जाएंगे, अपने से दूर जाएंगे, उतनी ज्योति खोती जाती है; हम ज्योति के स्रोत से दूर होते जाते हैं। और जरा सा मुड़ने की बात है। एक क्षण में मुड़ो कि ज्योति सामने है। और ज्योति तुम्हारी आंख पर पड़े कि तुम ज्योतिर्मय हो जाओ।

उपनिषद के ऋषि कहते हैं कि हमें अंधेरे से प्रकाश की तरफ ले चलो। तमसो मा ज्योतिर्गमय! हमें मृत्यु से अमृत की तरफ ले चलो। मृत्योर्मा अमृतंगमय! यह प्रार्थना सारी मनुष्य-जाति की प्रार्थना है। कि हमें असत से सत की ओर ले चलो। असतो मा सदगमय! इन तीन छोटे से वचनों में सारी प्रार्थनाओं का निचोड़ आ गया, सारी पूजाओं का निचोड़ आ

गया। और इन तीन प्रार्थनाओं को भी एक ही पंक्ति में बांधा ज़ा सकता है—असतो मा सदगमय—कि हमें असत से सत की ओर ले चलो। असत है अंधकार और असत है मृत्यु। और सत है अमृत और सत है आलोक।

क्या करना होगा? कहां जाएं? किससे पूछें? कहां है मार्ग? कहां है द्वार? क्या है पता परमात्मा का?

वह तुम्हारे भीतर बैठा है और तुम उसका पता खोज रहे हो! और तुम्हें पता बताने वाले भी मिल जाएंगे। और वे कहेंगे: मस्जिद में है, और मंदिर में है, और काबा में है, और कैलाश में है, और गिरनार में है। और तुम चले! हज कर आओगे, हाजी भी हो जाओगे! तीर्थयात्रा कर आओगे, पुण्य का अहंकार घर लेकर लौट आओगे। गंगा में स्नान कर आओगे और सोचोगे कि धुल गए सब पाप। काश, इतना सस्ता होता। मगर तुम्हारी गंगा भी बाहर है, और तुम्हारा काबा भी बाहर है, और तुम्हारी काशी भी बाहर है। असली गंगा भीतर है। असली काबा भीतर है। असली काशी भीतर है। वहां डुबकी मारो तो धुल जाओ, जरूर धुल जाओ!

मगर एक मजा है, बाहर की गंगा में जाते हो नहाने तो तुम सोचते हो पाप धुल जाएंगे। पुण्य नहीं धुलेंगे, सिर्फ पाप धुल जाएंगे! यह तो बड़ी अजीब बात हुई। यह तो ऐसा हुआ कि एक आदमी के शरीर पर कुछ दुर्गंध थी, कुछ सुगंध थी। दुर्गंध तो धुल गई और सुगंध न धुली। अगर सच में ही गंगा में स्नान होगा तो मैं तुमसे कहता हूं: तुम्हारे पाप भी धुल जाएंगे, तुम्हारे पुण्य भी धुल जाएंगे। धुल ही जाने चाहिए। गंगा कैसे भेद करेगी कि क्या पाप है, क्या पुण्य है? और भीतर की गंगा में यही घटता है कि पाप भी धुल जाते हैं और पुण्य भी धुल जाते हैं, क्योंकि कर्ता का भाव ही मिट जाता है। फिर कौन पुण्य करने वाला और कौन पाप करने वाला?

इसे कसौटी समझो। जिस गंगा में तुम्हारे पाप और पुण्य दोनों धुल जाएं, समझना कि सच्ची गंगा है। जिस गंगा में तुम्हारी अस्मिता धुल जाए, अहंकार ही बह जाए कि तुम लौट कर फिर अहंकार को पकड़ न सको, समझना असली गंगा है। वही तीर्थयात्रा असली है जहां जाकर तुम लौट न सको। जहां से तुम लौट आओ, वह तीर्थयात्रा झूठी है। हाजी होकर लौट आओ, वह हज बेकार। मगर लौट आए तुम! असली तीर्थयात्रा से कभी कोई लौटता ही नहीं है। जो भीतर गया, वह लौटता नहीं, मिट ही जाता है, बचता ही नहीं है। उसके भीतर से फिर परमात्मा प्रकट होता है; वह स्वयं प्रकट नहीं होता। स्वयं तो गया। लहर तो गई, अब सागर ही निनाद करता है।

और कैसा मजा है कि जो भीतर है उसे हम बाहर खोजते हैं!

राबिया एक सांझ अपने दरवाजे पर कुछ खोजने लगी। बूढ़ी फकीर औरत! पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए। उन्होंने पूछा कि राबिया, तू क्या खोजती है?

उसने कहा: मैं सीती थी अपने कपड़े, मेरी सुई गिर गई।

तो लोग भी खोजने लगे। सांझ होती है। सूरज ढलता है। बूढ़ी औरत, कमजोर उसकी आंखें हैं। लोग भी खोजने लगे उसकी सुई। तब किसी एक समझदार ने पूछा कि राबिया, रास्ता बड़ा है, सूरज ढल रहा है, जल्दी ही रात हो जाएगी। तू ठीक-ठीक बता, सुई गिरी

कहां है? स्थान बता। तो वहीं हम खोजें तो मिल भी जाए। छोटी चीज है, इतने बड़े रास्ते पर खोजते हुए कहां मिलेगी?

राबिया ने कहाः यह तो तुम मत पूछो कि कहां गिरी है। क्योंकि सुई तो मेरे घर के भीतर गिरी है।

तो उन्होंने कहाः पागल औरत! शक तो हमें सदा से था कि तू पागल है।

संत पागल हैं, ऐसा शक तो लोगों को सदा रहता ही है। क्योंकि अगर संत पागल नहीं हैं तो फिर लोगों को लगेगाः क्या हम पागल हैं? दोनों में से एक ही कोई पागल होना ही चाहिए और एक समझदार। दोनों समझदार तो नहीं हो सकते। दोनों पागल नहीं हो सकते। दोनों की यात्राएं विपरीत हैं। जो धन के पीछे दीवाना है, वह ध्यानी को पागल समझेगा, स्वाभाविक। जो ध्यान के लिए चला है, वह धन के पीछे चलने वाले को पागल समझेगा, स्वाभाविक। राबिया समझती थी पड़ोस के लोग पागल हैं; पड़ोस के लोग समझते थे राबिया पागल है। उन्होंने कहाः हमें शक तो सदा था, लेकिन हमने कभी आदरवश तुझसे कहा नहीं। मगर आज अब हम बिना कहे नहीं रह सकते। अगर सुई घर के भीतर गिरी है तो बाहर क्यों खोजती है? और जो घर के भीतर गिरी है वह बाहर मिलेगी कैसे? तू खुद भी मूरख और हम सब को भी मूरख बनाया!

राबिया ने कहाः सुई तो घर के भीतर ही गिरी है, लेकिन मैं गरीब औरत हूं, मेरे पास दीया नहीं है, घर के भीतर अंधेरा हो गया है। बाहर डूबते सूरज की आखिरी किरणों की रोशनी है। तो तुम्हीं मुझे कहो, जहां अंधेरा है वहां खोजने से कैसे मिलेगी? जहां रोशनी है वहां खोज रही हूं।

लोगों ने कहाः यह बात तो ठीक है कि जहां अंधेरा है वहां खोजने से कैसे मिलेगी? रोशनी में ही मिल सकती है। मगर जहां खोई ही नहीं है, तो लाख रोशनी हो, रोशनी क्या करेगी?

तो राबिया ने कहाः मैं क्या करूं, तुम्हीं कहो भले लोगो!

तो उन्होंने कहा कि ऐसा कर, पास-पड़ोस से किसी से लालटेन उधार मांग। रोशनी भीतर ले जा।

राबिया खूब हंसने लगी। उसने कहाः न तो सुई गुमी है, न मुझे खोजनी है। मैं तो सिर्फ तुम्हें यह याद दिलाना चाहती थी कि अगर तुम्हारे भीतर रोशनी नहीं है तो पास-पड़ोस किसी से रोशनी मांगो और भीतर खोजो। क्योंकि जिसे तुम बाहर खोज रहे हो वह बाहर खोया नहीं, भीतर खोया है। और अगर भीतर अंधेरा हो तो मेरे पास आओ, मैं तुम्हें रोशनी दूंगी। मुझे मिल गया है। मैं तो सिर्फ तुम्हें यह याद दिलाने के लिए बाहर सुई खोजती थी कि देखें तुम क्या कहते हो! मुझे तुम पागल कहते हो? मैं तुम्हें पागल कहती हूं। नासमझो! तुम बाहर उसे खोज रहे हो जो भीतर है। और उसी कारण से खोज रहे हो जो मैंने बताया—भीतर अंधेरा है। लेकिन भीतर सिर्फ अंधेरा इसलिए मालूम होता है—है नहीं, मालूम होता है—क्योंकि तुम्हारी आंखें बाहर की तेज रोशनी की आदी हो गई हैं।

भरी दोपहरी में कभी घर लौटे हो बाजार से? आंखें तेज रोशनी की आदी हो जाती हैं। और जब तुम घर में प्रवेश करते हो तो अंधेरा मालूम होता है। मगर तुम जानते हो कि अंधेरा

नहीं है। घड़ी भर बैठ लोगे, सुस्ता लोगे, जल पी लोगे, आंख बंद करके लेट रहोगे, घर में रोशनी हो जाएगी।

हम जन्मों-जन्मों से बाहर की चकाचौंध में जीए हैं। इसलिए जब भीतर पहली दफा कोई आंख बंद करता है, अंधेरा ही अंधेरा मालूम होता है। न मालूम कितने संन्यासी मुझे आकर कहते हैं कि आप कहते हैं कि भीतर देखो, भीतर देखो, भीतर देखो; और जब भी हम देखते हैं तो सिवाय अंधेरे के कुछ भी नहीं दिखता। ठीक कहते हैं वे। पहले-पहले देखोगे तो अंधेरा दिखेगा। थोड़ा विश्राम करो भीतर। उसी विश्राम का नाम ध्यान है। थोड़ा भीतर बैठे रहो, बैठे रहो, बैठे रहो...। थोड़ी प्रतीक्षा करो, थोड़ा धैर्य करो। उसी धैर्य का नाम ध्यान है। उसी प्रतीक्षा का नाम प्रार्थना है। और जल्दी ही तुम पाओगे—आंखों ने अपना ढंग बदला। आंखें धीरे-धीरे भीतर देखने में समर्थ होने लगेंगी। आहिस्ता-आहिस्ता रोशनी प्रकट होगी। और ऐसी रोशनी कि जैसी रोशनी तुमने कभी जानी नहीं! तुमने बाहर की तेज धूप जानी है, जो जलाती है, जो भस्म करती है। तुमने उत्तप्त रोशनी जानी है। तुम भीतर शीतल रोशनी जानोगे—ठंडी! आग और ठंडी!

तुमने मूसा की कहानी सुनी है न! जब मूसा को पहली दफा परमात्मा का साक्षात्कार हुआ तो मूसा बहुत घबड़ा गए। भरोसा न आया। तूर के पर्वत पर जब मूसा चढ़े तो भरोसा न आया आंख पर—अपनी आंख पर भरोसा न आया! कंपने लगे! क्योंकि सामने देखा उन्होंने : एक झाड़ी हरी-भरी है और उसके भीतर से लपटें उठ रही हैं! और ऐसी लपटें जैसी उन्होंने कभी न देखी थीं। ऐसी ज्योतिर्मय लपटें जैसे सूरज निकल रहा हो। और झाड़ी हरी-भरी है सो हरी-भरी है। पत्ता भी नहीं कुम्हलाया है। फूल भी नहीं मुर्झाया है। और आग की लपटें उठ रही हैं! आग की लपटें और हरी झाड़ी! यह प्रतीक है भीतर की रोशनी का। भीतर की रोशनी शीतल है। भीतर की रोशनी बड़ी शांत है। उत्तप्त नहीं है, जलाती नहीं है, केवल आलोक देती है। भीतर बैठोगे थोड़ा, बैठते रहोगे थोड़ा, तो ज्योति दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी—और ऐसी ज्योति जो जीवन का स्रोत है।

जोतिसरूपी आतमा...

तुम्हारा स्वरूप ही ज्योतिमय है, ज्योतिर्मय है। तुम प्रकाश-स्वरूप हो।

...घट-घट रहीं समाय।

और किसी एक में नहीं, हर घट में वही मौजूद है।

परमतत्त मन भावनो, नेक न इत-उत जाय।

और वह जो परम प्यारा है, जिसके लिए तुम तड़फ रहे हो, जैसे मछली तड़फती हो सागर के बाहर तट पर पड़ी हुई, ऐसे तड़प रहे हो जिसके लिए तुम, वह मनभावना, वह परमतत्व, वह परम प्यारा...

नेक न इत-उत जाय।

कभी कहीं गया ही नहीं है तुम्हारे भीतर से। सदा-सदा से वहीं है। तुम वही हो। तत्वमसि! तुम उससे जरा भी भिन्न नहीं हो। तुमने भिन्नता मानी है, उसी में सारा संसार खड़ा हो गया है। तुमने भिन्नता मानी है, और नरकों पर नरकों की कतारें लग गई हैं। अभिन्न जानो, और स्वर्गों के द्वार खुल जाएं। अभिन्न जानो, और मोक्ष तुम पर बरस उठे!

और जिस दिन तुम यह जानोगे कि तुम ज्योतिस्वरूप हो, उस दिन अंधकार को भी प्रेम कर पाओगे। जिस दिन तुम जानोगे कि भीतर तुम्हारे परमात्मा बैठा है, उस दिन तुम बाहर को भी प्रेम कर पाओगे। क्योंकि जो भीतर है, बाहर उसका ही एक पहलू है। और जो प्रकाश है, अंधकार उसको ही प्रकट करने का एक उपाय है।

इसलिए एक बड़ी महत्वपूर्ण बात समझ लेना: जो बाहर खोजता रहता है, उसका तो भीतर से संबंध नहीं जुड़ता; लेकिन जो भीतर को जान लेता है, उसका बाहर से भी संबंध जुड़ जाता है। इसलिए त्यागी को मैं सिद्धपुरुष नहीं कहता। भोगी तो भटका ही है, त्यागी भी भटक गया है। असली सिद्धपुरुष तो वही है जिसके भीतर अब बाहर-भीतर का भी भेद न रहा। क्योंकि जिसे उसने भीतर देखा, उसी को उसने बाहर नाचते देखा। जिसे उसने भीतर ज्योतिर्मय देखा, उसी को उसने सूरज में देखा और सूरज को नमस्कार किया। उसी को उसने चांद में देखा और चांद को देवता कहा। और उसी को उसने वृक्ष में देखा और वृक्ष की पूजा की। उसी को उसने पत्थर में देखा।

इसीलिए तो हमने बुद्धों की प्रतिमाएं पत्थर की बनाईं। क्यों बनाईं? बुद्ध तो भीतर गए। उन्होंने तो परम चैतन्य को जाना। और प्रतिमा हमने पत्थर की बनाई! कारण है उसके पीछे, राज है उसके पीछे। हमने दोनों को जोड़ दिया। परम चैतन्य और पत्थर भिन्न-भिन्न नहीं हैं। पत्थर की प्रतिमा बना कर बुद्ध की, हमने यह घोषणा कर दी कि पत्थर में भी वही है।

कंटकों को प्यार मैं करता रहा हूं,
क्योंकि कंटक पुष्प के प्रहरी रहे हैं!

प्राण सी प्यारी मुझे है रात काली,
क्योंकि उसके पास है ऊषा निराली,
क्या पता शायद छिपाने को ऊषा के
ही निशा ने कालिमा तन पर लगा ली।
रात तब से आज तक सोई नहीं है,
जिस समय से हाथ ऊषा के गहे हैं!

क्यों मुझे हो जाए वह तरुवर न प्यारा,
है लता का प्राण जिसका ही सहारा,
और जिसके वक्ष पर चढ़ कर लता ने
मुग्धकारी रूप है अपना संवारा।
रात हो या दिन लता-हित शीत, आतप,
आंधियां, ओले सभी तरु ने सहे हैं!

मेघ मुझको इसलिए लगते भले हैं,
क्योंकि विद्युत के लिए तिल-तिल गले हैं,

अंक में ले, छोर तक नभ के जहां को
भी मचल जाती, उसे लेकर चले हैं।
हैं जहां बिजली तड़प कर तिलमिलाई,
अश्रु लाखों बस वहीं घन के बहे हैं!

प्रिय बहुत वह जिंदगी की भूल मुझको,
जो बना दे विश्व के प्रतिकूल मुझको,
खींच लाए ज्वार, पर भाटा घसीटे
तो स्वयं दौड़े बचाने कूल मुझको।
थक चुके जब विश्व दे आघात शत-शत,
हम हंसें, कह दें अभी हम जी रहे हैं!
कंटकों को प्यार मैं करता रहा हूं,
क्योंकि कंटक पुष्प के प्रहरी रहे हैं!

जिसने भीतर का फूल देखा, उसे बाहर के कांटे भी उस फूल के पहरेदार हो गए हैं।

प्राण सी प्यारी मुझे है रात काली,
क्योंकि उसके पास है ऊषा निराली,
क्या पता शायद छिपाने को ऊषा के
ही निशा ने कालिमा तन पर लगा ली।

जिसने भीतर देखा और रोशनी को पाया, बाहर का अंधेरा भी उसी रोशनी का आभूषण हो जाता है। जिसने अंतर्जगत को जान लिया, बाहर का जगत उसी अंतर्जगत की लीला हो जाता है।

रात तब से आज तक सोई नहीं है,
जिस समय से हाथ ऊषा के गहे हैं!
कंटकों को प्यार मैं करता रहा हूं,
क्योंकि कंटक पुष्प के प्रहरी रहे हैं!

सिद्ध वह है जिसने भीतर को जाना, और उसके भीतर में बाहर भी समाविष्ट हो गया। भोगी वह है जो केवल बाहर को जानता है। त्यागी वह है जो बाहर का दुश्मन है और भीतर को अभी जानता नहीं है। सिद्ध वह है जिसने भीतर को जाना, और भीतर को जान कर ही बाहर भी उस भीतर का अंग हो गया।

भीतर परमात्मा दिखाई पड़ जाए तो फिर सब तरफ परमात्मा दिखाई पड़ता है। तुम्हारी आंख में परमात्मा हो तो फिर तुम जो भी देखोगे उसी पर परमात्मा का अनुभव होगा।

राबिया ने अपनी कुरान की किताब में संशोधन कर दिया था! उसमें एक वचन कहीं आता है कि शैतान को घृणा करो। उसने काट दी पंक्ति। फकीर हसन उसके घर मौजूद था। उसने उसे पंक्ति को काटते देखा। उसने कहा: राबिया, यह तू क्या कर रही है? कुरान में संशोधन? यह कुफ्र है! कोई कुरान में संशोधन करता है?

तुम भी गीता में संशोधन कर सकोगे? हाथ कंप जाएंगे। कहीं कोई गीता में संशोधन करता है?

हसन ने कहा: यह तू क्या कर रही है?

राबिया ने कहा: मुझे करना पड़ रहा है। क्योंकि जब भी मैं इस वचन पर आती हूं, मुझे मुश्किल हो जाती है। पहले यह ठीक था, अब यह ठीक नहीं है। क्योंकि अब, जब से मैंने उसे जाना है, जिसे भी मैं देखती हूं, वही दिखाई पड़ता है। अब शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो तो भगवान दिखाई पड़ता है। मैं क्या करूं? कुरान को मेरे अनुसार मुझे कर लेना होगा। यह मेरी कुरान है, यह मेरी किताब है। यह वचन मुझे खटका देता है, अटका देता है। इस पर आकर मुझे उलझन हो जाती है। अब तो कोई उपाय नहीं बचा शैतान को देखने का। जब से उसे जाना है तब से बस वही है।

जिसने रोशनी जानी, उसे अंधेरा भी रोशन हो जाता है। और जिसने प्रेम जाना, वैमनस्य में भी उसका प्रेम ही झरता है। शत्रु से भी उसका प्रेम ही होता है। इसलिए जीसस ने कहा है: जैसे तुम अपने को प्रेम करते हो, वैसे अपने पड़ोसी को भी प्रेम करो। और जैसे तुम अपने को प्रेम करते हो, वैसे ही अपने शत्रु को भी प्रेम करो। होगा ही यह, करना न पड़ेगा। जिसने अपने को प्रेम कर लिया, उसके लिए शत्रु मिट गए।

जैन शास्त्रों में, जिन्होंने ज्ञान को उपलब्ध किया है, उनका नाम है—अरिहंत। अरिहंत का अर्थ होता है: जिसके शत्रु मिट गए। इसका यह मतलब मत समझना कि महावीर के कोई शत्रु नहीं थे। महावीर के लिए मिट गए थे। महावीर की तरफ से कोई शत्रु न था। लेकिन शत्रु तो अपनी तरफ से शत्रु थे। वे महावीर को परेशान कर रहे थे, पत्थर मार रहे थे, उनके कानों में खीले ठोंक दिए थे, उनको गांव-गांव से खदेड़ रहे थे। शत्रु तो अपने काम में लगे थे। मगर जैन शास्त्र ठीक कहते हैं कि महावीर अरिहंत हो गए। अरि यानी शत्रु, हंत यानी मार डाला जिसने अपने शत्रुओं को। सच में ही मार डाला! काट-काट कर नहीं कटते हैं शत्रु, ध्यान रखना। लेकिन भीतर अगर प्रेम का अनुभव हो जाए तो बाहर शत्रु समाप्त हो जाते हैं।

जोतिसरूपी आतमा, घट-घट रही समाय।
परमतत्त मनभावनो, नेक न इत-उत जाय।।

नहीं कहीं गया है तुम्हारा परमात्मा। इसलिए खोजने कहीं मत जाओ। बैठो। रुको, दौड़ो मत! ठहरो। जो ठहरा, उसने पाया। जो रुका, उसने पाया। जो दौड़ा, भटकता रहा। खोजो मत परमात्मा को। अपने में खो जाओ और तुम उसे पा लोगे। और तब जीवन में बड़ा मनभावन अनुभव होता है।

परमतत्त मनभावनो...

डोल उठते हैं प्राण। नाच उठते हैं प्राण।

साहिल से बेनियाज हुआ जा रहा हूं मैं
मौजों का इज्तिराब बना जा रहा हूं मैं
आईना बन गया हूं किसी के जमाल का

अपनी नजर में आप खुबा जा रहा हूं मैं
इश्के-जुनूं-नवाज हैं सूरत-गरे-खयाल
जैसे किसी की बज्म में आ-जा रहा हूं मैं
किस मंजरे-नशात से गुजरा हूं बेखबर
नक्शे-कदम पर अपने बिछा जा रहा हूं मैं
गोया मेरी तबाहियों में हैं कसर अभी
पामाले-इल्तिफात किए जा रहा हूं मैं
सजदे में झुक पड़ा हूं तेरे आस्तां से दूर
इस शर्म से जमीं में गड़ा जा रहा हूं मैं
शोरीदगी-ए-इश्क मबादा हो पर्दा-दर
आगोशे-बेखुदी में दिया जा रहा हूं मैं
ऐ इश्क तेरी खैर किधर ले चला मुझे
अपनी नजर से आप छिपा जा रहा हूं मैं
ऐसी पिला दी उस निगहे-मयफरोश ने
रंगीनियों में गर्क हुआ जा रहा हूं मैं

एक बार भी उसकी प्याली से एक घूंट भी पी लिया, तो जगत वही रहता है और वही नहीं रह जाता है। यहां हर चीज रोशन हो जाती है। पत्ते-पत्ते पर दीया जल उठता है। कंकड़-कंकड़ हीरे की तरह चमक उठता है।

ऐसी पिला दी उस निगहे-मयफरोश ने
रंगीनियों में गर्क हुआ जा रहा हूं मैं

रूप-रेख बरनौं कहा, कोटि सूर परकास।
अगम अगोचर रूप है, कोउ पावै हरि को दास।।

ऐसी रंगीनियों में डूब रहा हूं, ऐसी अनंत रंगीनियों में—कि रूप-रेख बरनौं कहा—कि चाहूं भी कि उसका वर्णन करूं, कुछ रूप-रेखा समझा दूं, तो नहीं समझा सकता। गूंगे का गुड़! चख तो लिया स्वाद, कहते नहीं बनता। वाणी अवरुद्ध हो जाती है। कंठ भर आता है ऐसे आनंद से कि शब्द नहीं फूटते।

ज्ञान की परम दशा कही नहीं जा सकती। हां, उस तक पहुंचने के मार्ग कहे जा सकते हैं। उसकी तरफ इशारा किया जा सकता है, अंगुली उठाई जा सकती है। मगर कोई शब्द समर्थ नहीं है उसे प्रकट करने को। उसकी प्यास जगाई जा सकती है, लेकिन उसका स्वाद नहीं दिया जा सकता। और सदगुरु स्वाद नहीं देता, प्यास जगाता है। वह तुम्हारे भीतर ऐसी उत्तुंग प्यास जगा देता है कि तुम्हें स्वाद करना ही पड़ेगा। तुम्हें जाना ही होगा अपने भीतर। वह तुम्हारे भीतर ऐसी अभीप्सा को जन्मा देता है कि अब तुम चैन न ले सकोगे। ऐसी बेचैनी तुम्हारे भीतर जगा देता है, तुम्हें ऐसा अशांत कर देता है...अब तुम थोड़ा चौंकोगे। क्योंकि तुम साधु-संतों के पास शांति के लिए जाते हो, चैन पाने के लिए जाते हो। और अगर वहां तुम्हें चैन और शांति मिलती हो तो समझना कि तुम गलत जगह आ गए।

संत तो वही है जो तुम्हें असली बेचैनी दे दे। उस बेचैनी में मजा जरूर है। बड़ा रस, बड़ा गहरा आनंद भी है उस बेचैनी में! और उस बेचैनी के कारण छाया की तरह एक चैन भी आएगा। जिसको भीतर की बेचैनी जग गई, उसको बाहर के जगत में चैन हो जाता है। क्योंकि तुम दोनों तरफ एक साथ बेचैन नहीं रह सकते। अगर तुम बाहर बेचैन हो, तो भीतर की तुम्हें अभीप्सा नहीं है। अगर तुम भीतर बेचैन हुए, तो बाहर कौन फिक्र करता है?

छोटी बीमारी हो और फिर बड़ी बीमारी आ जाए, तो छोटी बीमारी तत्क्षण भूल जाती है। जैसे सिर में दर्द है और कार का एक्सिडेंट हो जाए, हाथ-पैर टूट जाएं, मल्टी-फ्रैक्चर हो जाए—फिर क्या सिर में दर्द बचेगा? सिर के दर्द की याद ही न आएगी।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन घसिट-घसिट कर चलता है। किसी ने पूछा कि नसरुद्दीन...। और गालियां देता है चलते वक्त और पैर पटकता है।...क्या, मामला क्या है?

उसने कहा: ये जूते! दो नंबर छोटे हैं।

अब दो नंबर छोटे जूते पहनोगे तो गालियां निकलेंगी ही मुंह से, करोगे क्या? और पैर पटकोगे ही, घिसटोगे भी। पैरों में फफोले पड़े हैं।

तो उसने कहा कि कई दिन से देख रहा हूं। तो इनको पहनते क्यों हो?

तो उसने कहा: यही तो मेरे जीवन की एकमात्र राहत है, इनको छोड़ नहीं सकता। क्योंकि दिन भर के बाद जब परेशान घर लौटता हूं और जब इन जूतों को खोल कर फेंक देता हूं, बिस्तर पर लेटता हूं, तो स्वर्ग का सुख मालूम होता है। इन जूतों में ही मेरा सारा सुख है। और तो जिंदगी में कुछ है नहीं। बस जब इनको खोल कर रख देता हूं तो ऐसी राहत मिलती है कि तुम कल्पना नहीं कर सकते उस राहत की। उस राहत के लिए दिन भर तकलीफ झेल लेता हूं, मगर वह राहत नहीं छोड़ी जाती।

खयाल करो, एक अशांति है बाहर की, एक असंतोष है बाहर का—कि धन थोड़ा और ज्यादा हो जाए, कि पद थोड़ा और ज्यादा हो जाए। और उसके लिए तुम बहुत दौड़ते हो, बहुत दौड़ते हो। और खयाल रखना, धन के ज्यादा होने से सुख नहीं मिलता। लेकिन जब तुम खूब तड़प लेते हो धन ज्यादा होने के लिए और एक दिन धन ज्यादा हो जाता है, तो वही सुख मिलता है जो मुल्ला नसरुद्दीन को घर लौट कर जूते उतारने से मिलता है। वह तकलीफ असंतोष की, इतने दिन की दौड़-धाप, कि हो जाए एक लाख रुपया, और एक दिन हो गया, राहत की सांस लेते हो। मगर यह राहत की सांस ज्यादा नहीं रहेगी। कल सुबह फिर होगी। फिर जूता पहनो। फिर दौड़ो, अब दो लाख होने चाहिए। फिर कभी एक वक्त आएगा जब दो लाख हो जाएंगे और फिर एक क्षण तुम्हें राहत मिलेगी। मगर यह राहत ज्यादा देर न टिकेगी। कल सुबह फिर जूते पहनो। यह जूता तुम छोड़ नहीं सकते अब, क्योंकि तुम्हारी राहत इसी जूते पर निर्भर है।

इसलिए लोगों के पास कितना ही धन हो जाए, जरूरत से ज्यादा हो जाए, उपयोग भी न कर सकें इतना हो जाए, तो भी दौड़ नहीं बंद कर सकते, क्योंकि उसी दौड़ में तो कभी-कभी राहत के क्षण आते हैं। बाहर जिनका जीवन उलझा है बेचैनी से, ये लोग जाते हैं साधु-संतों के पास; चाहते हैं कि कुछ थोड़ी राहत मिले, कोई सांत्वना मिल जाए, कोई मलहम-पट्टी कर दे।

दो नंबर कम के जूते पहने हो, मलहम-पट्टी की जरूरत सदा रहेगी ही। और साधु-संतों का काम साधारणतः यही है कि मलहम-पट्टी कर दें, समझा-बुझा दें, लीपा-पोती कर दें—कि सब ठीक है, घबड़ाओ मत। यह दुख कट जाएगा, कोई चीज सदा नहीं रहती। जगत परिवर्तनशील है। सुख-दुख आते रहते हैं। कि पिछले जन्मों का कर्म-फल है, घबड़ाओ मत। कर्म-फल तो भोगना ही पड़ता है। धैर्यपूर्वक भोग लो तो आगे कर्मबंध नहीं होगा। राम-राम जप लिया करें सुबह। माला फेर लिया करें सुबह। सत्यनारायण की कथा करवा लिया करें कभी-कभी। तो इस जन्म में तो नहीं, लेकिन अगले जन्म में बहुत सुख मिलेगा। स्वर्ग निश्चित है। ऐसी राहतें, ऐसी सांत्वनाएं! तुम्हारी पीठ थपथपा दी, तुम चले आए।

सच्चे संत के पास जब तुम जाओगे तो उलटी ही घटना घटेगी। ये बेचैनियों की तो वह बात ही नहीं करेगा। वह नई बेचैनियां पैदा कर देगा। वह कहेगाः परमात्मा को पाना है। लाख रुपया कमाने में कोई बहुत बड़ा मामला थोड़े ही है। मिल जाता है। कोई लगा ही रहे जिद्द से तो मिल ही जाता है। कोई सिर मार कर घुस ही जाए तो मिल ही जाता है। थोड़ी छीना-झपटी है, मगर मिल ही जाता है। नियम से न मिले तो गैर-नियम से मिल जाता है। कानूनी ढंग से न मिले तो गैर-कानूनी ढंग से मिल जाता है। मिल ही जाता है। यह कोई बड़ा मामला नहीं है। बुद्धुओं को मिल जाता है; इसमें कोई बहुत बुद्धिमानी भी नहीं है। नहीं; सच्चा संत तो तुम्हारे भीतर एक नई आग जलाएगा और कहेगाः परमात्मा पाने में लगो! यहां क्या रखा है? इसमें कुछ भी नहीं है। मिल भी जाएगा तो कुछ नहीं है।

वह एक ऐसी आग जलाएगा, जो बुझाए न बुझे। वह तुम्हें उत्तप्त करके भेजेगा। वह तुममें नई बेचैनी के बीज बो देगा। ऐसी बेचैनी—परमतत्व को पाने की, परम मुक्ति को पाने की, निर्वाण पाने की। हां, एक फर्क पड़ जाएगा। अगर बेचैनी पकड़ ले, अगर तुम उसके रंग में रंग जाओ, अगर उसकी आग तुम्हारे तन-प्राण में लग जाए, तो तुम्हें बाहर की बेचैनियां भूल जाएंगी, क्योंकि वे छोटी पड़ जाएंगी। उनका कोई मूल्य ही न रह जाएगा। वे इतनी छोटी पड़ जाएंगी कि उनकी याद भी न आएगी।

इसलिए जिसको परमात्मा की खोज पकड़ लेती है उसको संसार के दुख छूट जाते हैं। इसलिए नहीं कि छूट जाते हैं, छोटे हो जाते हैं। इतने छोटे हो जाते हैं कि उनकी गिनती नकार में समझो। उनका क्या मूल्य! पैर में कांटा गड़ा हो और कोई तुम्हारी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाए, पैर का कांटा तुम्हें याद आएगा? अब छुरे की फिक्र करो कि कांटे की? बड़ी बीमारी छोटी बीमारियों को भुला देती है।

मैंने सुना है, बर्नार्ड शॉ ने अपने डाक्टर को फोन किया कि मुझे हृदय का दौरा पड़ा है, जल्दी आएं। आधी रात, बूढ़ा डाक्टर और बर्नार्ड शॉ रहता दूसरी मंजिल पर। आधी रात, उठा बूढ़ा, सीढ़ियां चढ़ा। हांफ गया। जाकर एकदम कुर्सी पर लेट गया। जोर से हांफने लगा। बर्नार्ड शॉ बिस्तर पर लेटा था, उठ आया। पूछा कि मामला क्या है? पसीना-पसीना हो रहा है बूढ़ा डाक्टर और जोर से हांफ रहा है। लगता है कि हार्ट-अटैक है। पंखा करने लगा। पानी पिलाया। थोड़ी-बहुत देर जब डाक्टर की यह हालत रही तो बर्नार्ड शॉ को यह याद ही न रहा कि मैंने उसे बुलाया है कि मुझे...।

जब डाक्टर थोड़ा ठीक हुआ और चलने को हुआ तो उसने कहाः फीस?

तो बर्नार्ड शॉ ने कहाः यह भी खूब रही! इलाज मैंने आपका किया और आप फीस मांगते हैं?

बर्नार्ड शॉ से उसने कहा कि नहीं, यह सब खेल था। यह हांफना और यह धड़कना, यह सब खेल था। यह तेरी बीमारी मिटाने के लिए इलाज था। बर्नार्ड शॉ को उसने कहा कि तू भी मजाक करता है तो मैंने सोचा कि आज मैं भी मजाक करूं।

और सच में ही, जब डाक्टर की यह हालत खराब थी, जब वह नाटक कर रहा था, तो बर्नार्ड शॉ एकदम भूल ही गया, बीमारी खत्म ही हो गई! याद ही न रही बीमारी की। बड़ी बीमारी के सामने छोटी बीमारी भूल ही जाती है।

संत तुम्हें एक असंतोष देंगे। एक ऐसा असंतोष जिससे बड़ा और कोई असंतोष नहीं है—एक दिव्य असंतोष—प्यास देंगे! लेकिन जो स्वाद उन्हें मिला है उसका वर्णन नहीं कर सकते हैं।

रूप-रेख बरनौं कहा, कोटि सूर परकास।

जैसे न मालूम कितने-कितने करोड़-करोड़ सूरज निकल आए हों, इतना प्रकाश है, मैं कैसे वर्णन करूं!

है जुस्तजू कि खूब से है खूबतर कहां
अब ठहरती है देखिए जाकर नजर कहां
या रब इस इख्तिलात का अंजाम हो बखैर
था उसका हमसे रब्त मगर इस कदर कहां
इक उम्र चाहिए कि गवारा हो नेशे-इश्क
रक्खी है आज लज्जते-जख्मे-जिगर कहां
हम जिस पे मरते हैं वो है बात ही कुछ और
आलम में तुझसे लाख सही तू मगर कहां

किससे तुलना करें उसकी?

आलम में तुझसे लाख सही तू मगर कहां

सब तरफ तू ही है, लाखों रूपों में तू ही है। लेकिन जब तुम उसकी परिपूर्णता को जानोगे तो सब चेहरे फीके पड़ जाएंगे, सब सौंदर्य कुरूप हो जाएगा, सब रोशनियां अंधेरी मालूम होने लगेंगी। जब तुम उस परम जीवन को देखोगे तो जिसको तुमने जीवन जाना था, वह मृत्यु जैसा मालूम पड़ेगा; और जिसको तुमने अमृत समझा था अब तक, वह जहर हो जाएगा। जिस दिन उस परम का अनुभव होगा, तुम्हारी सारी कोटियां उलटी-सीधी हो जाएंगी; तुम्हारा गणित सब अस्तव्यस्त हो जाएगा; तुम्हारी तर्क-सरणी काम नहीं पड़ेगी।

हम जिस पे मरते हैं वो है बात ही कुछ और
आलम में तुझसे लाख सही तू मगर कहां
है दौरे-जामे-अव्वले-शब में खुदी से दूर
होती है आज देखिए हम को सहर कहां
होती नहीं कुबूल दुआ तर्के-इश्क की
दिल चाहता न हो तो जुबां में असर कहां

जैसे बाढ़ आए, ऐसा परमात्मा आता है। जो बहा ले जाए तुम्हें एक तिनके की तरह, ऐसा परमात्मा आता है। तुम कहीं खोजे से भी न मिलोगे, तो कहे कौन? तुम्हारी बोलती ही खो जाएगी, तो बोले कौन?

ऋषि बोले हैं; मगर जो बोले हैं वह परमात्मा का निर्वचन नहीं है। जो बोले हैं वह मनुष्य की दशा है। उस मनुष्य की दशा में पार कैसे उठा जाए, इसके उपाय हैं। परमात्मा तक पहुंचने का द्वार और मार्ग क्या है, इसकी चर्चा है। विधि-विधान है, योग है। मगर जो पहुंच कर पाया है, उस संबंध में सन्नाटा है, चुप्पी है। कोई कभी नहीं बोला। या ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहा है कि उस संबंध में कुछ कहा न जा सकेगा, कि वह अव्याख्य है, कि वह अनिर्वचनीय है।

बुद्ध ने तो हद्द कर दी। बुद्ध ने तो इतना भी न कहा कि वह अनिर्वचनीय है। क्योंकि उन्होंने कहा : यह कहना भी उसके संबंध में कुछ कहना है। यह भी न कहा कि अनिर्वचनीय है, क्योंकि यह भी तो व्याख्या का अंग हो गया। यह व्याख्या हो गई। कोई चीज निर्वचनीय है, कोई चीज अनिर्वचनीय है, तो यह तो कोटि में बांधना हो गया। वह किसी कोटि में नहीं बंधता। वचन में तो आता ही नहीं, मौन में भी नहीं आता है। शब्द में तो पकड़ में आता नहीं, निःशब्द में भी नहीं प्रकट होता है। जाना ही जा सकता है, जीया ही जा सकता है।

इसलिए सदगुरु ले चलते हैं तुम्हारा हाथ पकड़ कर कि तुम भी जी सको। वे कहते हैं : तुम भी चखो। समझो मत, चखो।

अगम अगोचर रूप है, कोउ पावै हरि को दास।

अगम! अगम्य है वह। उसे न नाप सकते हो, न माप सकते हो। उसकी कोई थाह नहीं है। हमारे हाथ बड़े छोटे हैं। हमारे मापने के उपाय बड़े छोटे हैं। अगोचर है वह, इंद्रियातीत है। आंख से देखते तो रूप की चर्चा कर देते। कान से सुनते तो उसके संगीत की चर्चा कर देते। लेकिन न वह आंख है, न वह कान है, न वह किसी और इंद्रिय का विषय है। सारी इंद्रियों का विषय है और सारी इंद्रियों का अतिक्रमण भी। फकीरों ने कहा है : हमने उसे आंख से सुना और कान से देखा। यह सिर्फ इस बात को कहने की तरकीब है कि कुछ अबूझ घटना है। कबीर ने इसीलिए उलटबांसियां लिखीं। अबूझ घटना की तरफ इशारा करने को। कबीर ने लिखा है : एक अचंभा हमने देखा, नदिया लागी आग। हमने ऐसा अचंभा देखा कि नदी में आग लगी है! अब नदियों में आग नहीं लगती। आजकल की नदियों की नहीं कह रहा हूं। अमरीका में आजकल की नदियों में भी आग लग जाती है, क्योंकि इतना पेट्रोल और इतना तेल उनमें पड़ गया है। झीलों में आग लग जाती है अमरीका में। मगर बेचारे कबीरदास को क्या पता था कि हालत ऐसी बिगड़ेगी, कि नदियों में पानी नहीं होगा, पेट्रोल होगा। समुद्रों में आग लग जाती है अमरीका में। अभी कुछ ही दिन पहले मीलों तक आग फैल गई थी समुद्र में, क्योंकि इतने जहाज इतना तेल फेंक रहे हैं पानी में! मछलियां मर गई हैं। कुछ झीलों में अमरीका में मछली नहीं बच सकती—इतना जहर है! मगर जब कबीर ने यह लिखा था तब बिलकुल ठीक था। अब होते तो यह बात भूल कर भी न लिखते कि एक अचंभा मैंने देखा कि नदिया लागी आग। यह तो बात ही अब नहीं कही जा सकती, जमाना ही बदल गया। मगर तब नदियों में आग नहीं लगती थी।

कुछ ऐसी अनहोनी घटना है, ऐसी अघट घटना है, ऐसी रहस्यपूर्ण घटना है कि कोई इंद्रिय उसे पकड़ नहीं पाती। सभी इंद्रियों में झलकती है और फिर भी झलक के पार शेष है। पार से पार...जितना देखो उतना है। जान-जान कर भी जानना चुकता नहीं। जितना जानो उतना पता चलता है कि हम कितने अज्ञानी हैं!

अगम अगोचर रूप है, कोउ पावै हरि को दास।

लेकिन पाया जा सकता है। जाना भले न जा सके, पाया जा सकता है। और पाने की कला क्या है? हरि के दास हो जाओ। मालकियत छोड़ो। मालिक होने का खयाल छोड़ो। जीतने की आकांक्षा छोड़ो, हारने की कला सीखो। हारे को हरिनाम! वह जो हार गया बिलकुल उससे, बस वही जीत पाता है। प्रेम का शास्त्र यही है कि हारो तो जीत जाओ। जीतने की कोशिश करो तो हारे, बुरे हारे। वहां जो विजय के लिए गया है परमात्मा की, वह तो चारों खाने गिरा है, बुरी तरह पराजित हुआ है! हां, जो समर्पित होने गया है, अर्पित होने गया है, वह जीत कर लौटा है।

यह भी गणित उलटा है। इस संसार में तो जीतना हो तो जीतना पड़ता है। और जीतने की कोशिश न करो तो हार सुनिश्चित है।

मैक्यावेली ने इस संसार का गणित और शास्त्र लिखा है। उसने लिखा है कि अगर जीतना है तो हमले की प्रतीक्षा मत करना कि दूसरा करे। क्योंकि सुरक्षा का सबसे अच्छा उपाय हमला है। तुम पहले ही हमला कर देना, अगर जीतना ही है। तुम राह भी मत देखना कि दूसरा जब हमला करेगा, तब हम सुरक्षा करेंगे। दुनिया ढालों से नहीं जीती जाती, तलवारों से जीती जाती है। हमला पहले कर देना, क्योंकि जिसने पहले हमला किया, वह पहले से ही लाभ में हो गया। जो सुरक्षा में लग गया, वह पहले से ही मुश्किल में पड़ गया। यह इस संसार का गणित है जो मैक्यावेली ने लिखा है।

मीरा ने, यारी ने, महावीर ने, मोहम्मद ने उस जगत का गणित लिखा है। वह गणित क्या है? वहां अगर जीतना हो तो तलवार-ढाल सब गिरा देना, निःशस्त्र हो जाना, असुरक्षित हो जाना। संन्यास का मौलिक अर्थ है : असुरक्षित हो जाना, समर्पित हो जाना। कह देना कि तू मुझे जीत ले। मैं हारने को तत्पर हूं।

और उससे हारने में भी मजा है। इस संसार में जीतने में भी मजा नहीं और परमात्मा से हारने में भी मजा है। क्योंकि वह उसी को हराता है जो धन्यभागी है। और वह जिसको हराता है, वही जीत जाता है। उसकी हार, उससे हारना, सिंहासन पर विराजमान हो जाना है। इस जगत की जीत भी सिर्फ सूली पर लटका देती है।

तुम चाहो तो दिल्ली में जाकर देख लो, सूली पर लटके दिखाई पड़ेंगे लोग। और शांति से लटके भी नहीं हैं, कोई टांग खींच रहा है, कोई गर्दन उतार रहा है, कोई चूड़ीदार पाजामा खींच रहा है कि वही निकाल कर ले भागे। सारी कोशिश चल रही है। अपना-अपना चूड़ीदार पाजामा लोग कस-कस कर पकड़े हुए हैं कि कोई खींच न ले। इसीलिए तो चूड़ीदार पाजामा पहनते हैं, क्योंकि पहनना मुश्किल और खींचना-निकालना भी मुश्किल। उसकी यही खूबी है। अब कोई बंगाली धोती पहने हो तो गई! कब कौन ले गया, तुम्हें पता ही न चलेगा। चूड़ीदार पाजामे की बड़ी खूबी है। चूड़ीदार पजामा, अचकन...कोई अगर खींचना

भी चाहे तो आसान नहीं है। पहनाने के लिए भी एक आदमी की जरूरत पड़ती है और उतारने के लिए तो दो आदमियों की जरूरत पड़ती है। और जो पहने बैठा है, अगर उसे न उतरवाना हो, उछल-कूद करता रहे, तो बस, फिर...फिर तो तुम उतार ही नहीं सकते।

इस जगत में तो जीत भी बड़ी दुर्दशा साबित होती है। उस जगत में हार भी बड़ा सौभाग्य है।

...कोउ पावै हरि को दास।

विरले हैं वे जो हारने को राजी हैं, इसीलिए परमात्मा से मिलने वाला, परमात्मा को पाने वाला मुश्किल से मिलता है। मिल सकता है सब को, बस हारने की कला आनी चाहिए।

अदभुत प्रकाश है उसका। जरा तुम हारो।

कोटि सूर परकास।

जरा तुम मिटो। हारोगे तो मिटोगे। तुम विदा हो जाओ। हारोगे तो विदा हो जाओगे। और जहां तुम नहीं हो, वहां परमात्मा उतरता है।

गमे-मोहब्बत सता रहा हूँ, गमे-जमाना मसल रहा हूँ
मगर मेरे दिन गुजर रहे हैं, मगर मेरा वक्त टल रहा हूँ
वो अब्र आया, वो रंग बरसे, वो कैफ जागा, वो जाम खनके
चमन में यह कौन आ गया हूँ, तमाम मौसम बदल रहा हूँ

उसकी जरा सी झलक आ जाए कि वसंत आ जाता है, मधुमास आ जाता है!

गमे-मोहब्बत सता रहा हूँ, गमे-जमाना मसल रहा हूँ
मगर मेरे दिन गुजर रहे हैं, मगर मेरा वक्त टल रहा हूँ
वो अब्र आया, वो रंग बरसे, वो कैफ जागा, वो जाम खनके
चमन में यह कौन आ गया हूँ, तमाम मौसम बदल रहा हूँ
मेरी जवानी के गर्म लम्हों पे डाल दे गेसुओं का साया
यह दोपहर कुछ तो मोतदिल हो, तमाम माहौल जल रहा हूँ
ये भीनी-भीनी सी मस्त खुशबू, ये हलकी-हलकी सी दिलनशीं बू
यहीं कहीं तेरी जुल्फ के पास कोई परवाना जल रहा हूँ
न देख ओ महजबीं मेरी सम्त इतनी मस्ती भरी नजर से
मुझे यह महसूस हो रहा हूँ शराब का दौर चल रहा हूँ
'अदम' खराबात की सहर हूँ कि बारगाहे-रमूजे-हस्ती
इधर भी सूरज निकल रहा हूँ, उधर भी सूरज निकल रहा हूँ
वो अब्र आया, वो रंग बरसे, वो कैफ जागा, वो जाम खनके
चमन में यह कौन आ गया हूँ, तमाम मौसम बदल रहा हूँ

तुम जरा हारो, तुम जरा मिटो और मौसम बदले, कि खुशियों के बादल छा जाएं, कि अमृत की बूंदाबांदी हो, कि तुम्हारे भीतर जन्मों-जन्मों से पड़े हुए बीज फूट पड़ें, अंकुरित हो जाएं! कि तुम्हारे भीतर भी शाश्वत जीवन के पत्ते, फूल जगें, जन्में। कि तुम भी जानो कि

तुम कौन हो, क्या हो। मगर गणित समझ लेना। तुम जब तक हो, तब तक जान न सकोगे कि तुम कौन हो। तुम जब नहीं हो, तभी जान सकोगे कि तुम कौन हो। इस विरोधाभास को याद रखना।

कोउ पावै हरि को दास।
नैनन आगे देखिए, तेजपुंज जगदीस।
बाहर भींतर रमि रह्यो, सो धरि राखो सीस।।

और फिर दिखाई पड़ता है कि बाहर-भीतर वही।

नैनन आगे देखिए, तेजपुंज जगदीस।

गहन प्रकाश का पुंज है।

बाहर भींतर रमि रह्यो, सो धरि राखो सीस।।

चढ़ा दो अपनी गर्दन उस पर। गिरा दो अपनी गर्दन उस पर। मत बचाए फिरो अहंकार को। यह सिर मत उठाए फिरो। झुका दो कहीं। और जिस द्वार पर यह झुक जाए, वही द्वार मंदिर हो जाता है।

हम चूक रहे हैं। परमात्मा सब तरफ मौजूद है और हम चूक रहे हैं!

तुम अध्ययन नहीं कर पाए!
तुमने देखा दाएं बाएं,
तुमने ऊपर नीचे देखा,
आंखें फाड़ निहारा तुमने,
तुमने आंखें मींचे देखा।
किंतु किसी भी ओर कभी तुम
स्थिर नयन नहीं कर पाए!
तुम अध्ययन नहीं कर पाए!

उठते-गिरते रहे निरंतर
हृदय सिंधु के ज्वार तुम्हारे,
बनते मिटते रहे क्षणों में
सपनों के आकार तुम्हारे।
ये चंचल अरमान कहीं भी
पल भर शयन नहीं कर पाए।
तुम अध्ययन नहीं कर पाए!

बिखरे हुए पड़े हैं अक्षर,
बिखरी हुई पड़ी हैं कड़ियां,
बिखरे हुए पड़े हैं मोती,
बिखरी हुई पड़ी हैं लड़ियां।

तुम इन कड़ियों का, लड़ियों का
कुछ भी चयन नहीं कर पाए!
तुम अध्ययन नहीं कर पाए!

मौजूद है, मगर तुम अध्ययन नहीं कर पाए, मनन नहीं कर पाए, निदिध्यासन नहीं कर पाए। तुम चूक गए। तुम ध्यान नहीं कर पाए, बस। तुम एक क्षण को भी शांत होकर, मौन होकर, निर्विचार होकर नहीं देख पाए, बस। अन्यथा वही है, केवल वही है। उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है।

आठ पहर निरखत रहौं, सनमुख सदा हुजूर।

और जिन्होंने जरा सी भी ध्यान की झलक पा ली, शून्य का मजा पा लिया; जिन्होंने जरा झरोखा खोला अपने हृदय का, अपनी प्रीति का, अपनी प्रार्थना का, उनके लिए—

आठ पहर निरखत रहौं...

फिर तो जागे भी वही, सोए भी वही। उठते भी उसी में हो, सोते भी उसी में हो। खाते भी उसी में हो, पीते भी उसी में हो। वही खाते हो, वही पीते हो।

आठ पहर निरखत रहौं...

फिर तो जहां देखो वही है। वृक्षों में वही हरा, वृक्षों में वही लाल। वही सूरज की बरसती हुई रोशनी में स्वर्ण हुआ है। वही रात चांद से झरता है रजत की भांति, चांदी की भांति। वही झीलों में झलकता है, वही चांद-तारों में प्रकाशित है। वही लोगों की आंखों में टिमटिमा रहा है। वही है, वही है, और कोई भी नहीं है।

आठ पहर निरखत रहौं, सनमुख सदा हुजूर।

या मालिक! वह मालिक सब तरफ मौजूद है। उसने तुम्हें घेरा है। हवा का झोंका आता है तो उसी मालिक का झोंका आता है। श्वास चलती है तो वही। तुम उसी में हिंडोले ले रहे हो। तुम उसी में झूले ले रहे हो, पेंगें भर रहे हो।

कह यारी घर ही मिलै, काहे जाते दूर।

और कहां जा रहे हो?

कह यारी घर ही मिलै...

और तुम्हारे भीतर मौजूद है। और भीतर पहले पहचान हो जाए तो फिर बाहर पहचान होती है। इससे उलटा नहीं होता। लोग सोचते हैं: पहले बाहर पहचान हो जाए तो फिर भीतर पहचान होगी। ऐसा नहीं होता। पहले भीतर पहचान हो जाए, तब बाहर पहचान होती है।

इसलिए मंदिर-मस्जिदों में तुम्हारी पूजाएं व्यर्थ हैं। तुम बाहर पहचान करने में लगे हो। मूर्तियों के सामने चढ़ाए गए तुम्हारे फूल व्यर्थ गए हैं; उतारी गई आरतियां व्यर्थ गई हैं। तुम्हें अभी अपने में नहीं दिखा, जो निकट से भी निकट है वहां नहीं दिखा, तो पत्थर की मूर्ति में कैसे दिखेगा? तुम भलीभांति जानते हो पत्थर की मूर्ति हमारी बनाई हुई है, आदमियों की बनाई हुई है, बाजार से खरीदी गई है। तुम्हें अपने बेटे में नहीं दिखा, अपनी पत्नी में नहीं दिखा, अपने पति में नहीं दिखा, अपने में नहीं दिखा। निकट आओ! करीब आओ। वही तो तुम्हारे हृदय में धड़क रहा है, वहां नहीं दिखा और चले मंदिर में! और देखोगे मूर्ति में

तुम? नहीं दिखेगा। और अगर जरा समझदार हुए, जरा तर्कनिष्ठ हुए, तो शायद सदा के लिए चूक जाओगे।

महर्षि दयानंद के जीवन का उल्लेख है कि पूजा हुई—शिवरात्रि की महापूजा। पिता बड़े भक्त थे। बेटे को भी पूजा में बिठाया था। शिवरात्रि थी तो रात भर का जागरण था। दयानंद जिद्दी किस्म के आदमी थे और जिंदगी भर जिद्दी किस्म के आदमी रहे। तो रात भर का जागरण था तो बैठे ही रहे। उम्र तो कम थी, होगी बारह साल, तेरह साल। मगर पूत के लक्षण तो पालने में! वे बैठे रहे रात भर। पिता तो सो भी गए। असली पुजारी तो सो गया, मगर वे बैठे रहे, बैठे रहे; देखते रहे कि क्या होता है, क्या होता है। और जो हुआ, उसने उनकी जिंदगी बदल दी। हुआ यह कि जो लड्डू इत्यादि चढ़ाए थे शिव के लिंग पर, एक चूहा आ गया और लड्डू खाने लगा। और इतना ही नहीं, शिवजी पर चढ़ गया। शिवजी पर बैठ कर मस्ती से इधर-उधर देखने लगा। बस दयानंद के मन से सारी श्रद्धा चली गई, कि ये क्या शिवजी हैं! चूहे को भी भगा नहीं सकते! और हमारी चढ़ाई हुई पूजा और प्रसाद चूहा खा रहा है। और शिवजी डांट भी नहीं सकते कि भाग यहां से! हट यहां से! और शिवजी के ऊपर चढ़ कर चूहा बैठा है! ये क्या खाक हमारी रक्षा करेंगे!

यह ज़रा तीक्ष्ण बुद्धि व्यक्ति हो तो ऐसा हो जाएगा। और इसका दुष्परिणाम हुआ। लाभ तो नहीं हुआ, हानि हुई। अगर दयानंद को पहले भीतर जाना सिखाया गया होता, यह बाहर की पूजा न बताई गई होती, तो यह जो आर्यसमाज का उपद्रव पैदा हुआ, कभी पैदा नहीं होता। आर्यसमाज का असली जन्मदाता वह चूहा! बस, सारी पूजा पाखंड है, सब व्यर्थ है, यह भाव पैदा हो गया। फिर जिंदगी भर यही समझाते रहे वे लोगों को। इसमें एक तरफ से तो बात सच्ची है कि पूजा व्यर्थ है जब तक अंतर का अनुभव न हो। लेकिन अंतर का अनुभव होने के बाद पूजा में भी सार्थकता है।

समझो, अगर दयानंद को ध्यान करवाया गया होता, पूजा न करवाई गई होती पहले। मेरे हिसाब में, हर बच्चे को ध्यान करवाया जाना चाहिए, पूजा नहीं। क्योंकि पूजा में दो संभावनाएं हैं। जो बच्चे बुद्धू होंगे, वे जिंदगी भर पूजा में लगे रहेंगे। गोबर-गणेश जो होंगे, वे जिंदगी भर पूजा ही करते रहेंगे। और जो बच्चे थोड़े प्रतिभाशाली होंगे, तीक्ष्ण बुद्धि के होंगे, उनके लिए सदा पूजा एक थोथा आडंबर और पाखंड हो जाएगी। जल्दी ही तर्क उनका जगेगा और कोई न कोई बहाना मिल जाएगा उनको और पूजा व्यर्थ हो जाएगी। वे नास्तिक हो जाएंगे, या मूर्ति-भंजक हो जाएंगे, या पूजा को पाखंड सिद्ध करने वाले हो जाएंगे।

दोनों बातें अच्छी नहीं हैं। जो पूजा में ही लगा रहा बाहर की, वह भी चूक गया। और जिसने बाहर की पूजा को पाखंड समझा, वह भी चूक गया। लेकिन अगर बच्चों को पहले ध्यान में ले जाया जाए भीतर की तरफ...। और बच्चे ज्यादा आसानी से जा सकते हैं बूढ़ों की बजाय। क्योंकि बूढ़ों ने बहुत कचरा इकट्ठा कर लिया है ज्ञान का, उसको हटाने में समय लगता है। बच्चों के पास कोई कचरा नहीं है, निर्मल चित्त है। जरा उनको इशारे दे दिए जाएं और वे ध्यान में सरलता से उतर जाते हैं। यह दुनिया दूसरी हो सकती है, यह मनुष्यता नई हो सकती है—एक छोटे से सूत्र का सूत्रपात करना है। छोटे-छोटे बच्चों को ध्यान की झलक मिलनी चाहिए।

और बच्चे को अगर ध्यान की झलक मिली होती, अगर दयानंद को ध्यान की झलक मिली हुई होती, तो उस रात घटना और ही घटती। यही होता; चूहे को इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि दयानंद ने ध्यान किया था तो नहीं आता। चूहा तो आता, लड्डू भी खाता। और दयानंद ने अगर ध्यान किया होता तो और मस्ती से खाता। क्योंकि गैर-ध्यानी लड़का वहां बैठा था, चूहा थोड़ा डरता भी रहा होगा कि यह कोई उपद्रव न करे लड़का, यहां बैठा है! संकोच भी किया होगा चूहे ने। ध्यानी होता दयानंद तो शायद चूहा और भी मौज करता। शायद शंकरजी को लुढ़का देता या कुछ और करता। लेकिन दयानंद को कुछ और दिखाई पड़ता। दयानंद को शंकर की मूर्ति में तो शंकर दिखाई पड़ते ही, चूहे में भी शंकर दिखाई पड़ते। और तब यह भाव पैदा नहीं होता कि यह चूहा और शंकरजी की मूर्ति पर चढ़ कर बैठा है! परमात्मा ही परमात्मा है। फिर शंकरजी को ऊपर रखो कि चूहे को ऊपर रखो, क्या फर्क पड़ता है? गणेशजी तो चूहे की सवारी करते ही हैं। वे शंकरजी के बेटे हैं, वे चूहे की सवारी करते हैं। चूहे ने सोचा होगा कि हम भी थोड़ी सवारी करें। इसमें बात क्या है? इनका बेटा हम पर चढ़ा घूमता है, जरा बापजी को हम भी मजा चखाएं!

परमात्मा ही परमात्मा है—वही चूहे में, वही शंकर में, वही गणेश में, वही सब में! मस्त हुए होते कि यह देखो परमात्मा की लीला! कि वही चूहे में! वही शंकरजी में! शायद आनंदित हुए होते कि हमारी चढ़ाई हुई पूजा स्वीकार हो गई। चूहे के रूप में आकर परमात्मा ने उसे ग्रहण कर लिया। आनंदमग्न हुए होते। अगर ध्यान रहा होता!

मगर ध्यान नहीं था, केवल तर्क था। और आर्यसमाज धर्म नहीं बन सका—सिर्फ एक तार्किक विवाद, एक शास्त्रीय ढंग की प्रक्रिया रह गई। एक सामाजिक आंदोलन जरूर, एक तार्किक आंदोलन जरूर, मगर धर्म नहीं। क्योंकि धर्म का तर्क से कोई संबंध नहीं है।

दयानंद का सत्यार्थ प्रकाश पढ़ो और तुम समझोगे—तर्क ही तर्क है! छोटा तर्क, ओछा तर्क! तर्क ओछा होता ही है। ऊंचे से ऊंचा तर्क भी ओछा होता है। धर्म तो प्रेम की उड़ान है; हृदय के भीतर उठा संगीत है। धर्म का कोई तर्क से संबंध नहीं है।

आठ पहर निरखत रहौं, सनमुख सदा हुजूर।
कह यारी घर हीं मिलै, काहे जाते दूर।।

पहले घर में मिल लो, फिर सब जगह मिल जाएंगे।

आतम नारि सुहागिनी, सुंदर आपु संवारि।

उस प्रेमी को मिलना है तो स्त्रैण हृदय बनो। तर्क पुरुष है, प्रेम स्त्रैण है। गणित पुरुष है, प्रार्थना स्त्रैण है। अगर परमात्मा को पाना है तो तर्क से नहीं, क्योंकि तर्क तो जीतने चलता है। तर्क तो दूसरे को हराने में उत्सुक होता है। प्रेम बनो।

आतम नारि सुहागिनी...

स्त्री बनो। यारी ने बड़े अदभुत अर्थ की बात कह दी है। धर्म उन्हीं को उपलब्ध होता है जो अपने को उस परम प्यारे की प्रियतमाएं समझ लेते हैं। कृष्ण वह, और सब राधाएं। फिर मिलता है, क्योंकि प्रेम से मिलता है। और प्रेम स्त्रैण गुण है। और प्रेम हृदय के भीतर उठी उमंग है। तर्क तो बुद्धि का ही जाल है।

आतम नारि सुहागिनी, सुंदर आपु संवारि।

अपने को संवारो! उस प्यारे के लिए तैयार करो। जैसे कोई अपने प्यारे को मिलने जाती है स्त्री तो कैसी सजती है! कैसी संवरती है! कितनी-कितनी बार आईने में अपने को देखती है! कैसा अपने को...। हाथों में मेंहदी रचाती है। गहने सजाती है। वेणी में फूल गूंथती है। आंखों में काजल। प्यारा आ रहा है! कैसी दीवानी होकर अपने को तैयार करती है—उसको भा जाऊं! बस ऐसा ही भक्त अपने को तैयार करता है—उसको भा जाऊं! उसके योग्य हो जाऊं! उसकी कृपा की एक दृष्टि मुझ पर पड़ जाए, बस! उसकी एक दृष्टि काफी है।

आतम नारि सुहागिनी, सुंदर आपु संवारि।
पिय मिलन को उठि चली, चौमुख दियना बारि।।

अपने चारों तरफ दीये जलाती है। या उसके उठते ही चारों तरफ दीये जल जाते हैं!

पिय मिलन को उठि चली...

जैसे ही प्यारी, प्रियतमा अपने प्यारे को मिलने को उठती है—

...चौमुख दियना बारि।

या तो यूं कहें कि चारों तरफ दीये जला कर दीपावली मनाती है कि प्यारा आ रहा है; या उसके उठते ही चारों तरफ दीये जल जाते हैं और दीपावली हो जाती है। प्यारे से मिलने को जाती हुई प्रेयसी के पैरों में बंधे हुए घुंघरू की आवाज, उसके आभूषणों की खनन-खनन, उसके भीतर जलती हुई अभीप्सा, उसके रोएं-रोएं में पुलक—दीये जल जाएंगे, बुझे दीये जल जाएंगे! सब तरफ रोशनी हो जाएगी!

जो प्रेमी को खोजने चला है, वह अपने को मिटाता है। उसी मिटने में रोशनी हो जाती है। यह रोशनी तुम में हो जाए तो परमात्मा दौड़ा तुम्हारी तरफ चला आता है; तुम्हें उसे खोजने नहीं जाना पड़ता। इस प्रेम के दीये को अपने भीतर जलाओ।

बिरहिनी मंदिर दियना बार!

वो कब के आए भी और गए भी, नजर में अब तक समा रहे हैं
ये चल रहे हैं वो फिर रहे हैं, ये आ रहे हैं वो जा रहे हैं
वही कयामत है कद्दे-बाला, वही है सूरत, वही सरापा
लबों को जुंबिश, निगह को लर्जिश, खड़े हैं और मुस्कुरा रहे हैं
वही लताफत, वही नजाकत, वही तबस्सुम, वही तरन्नुम
मैं नक्शे-हिरमां बना हुआ हूं, वो नक्शे-हैरत बना रहे हैं
खिराम रंगीं, निजाम रंगीं, कलाम रंगीं, पयाम रंगीं
कदम-कदम पे, रविश-रविश पे, नये-नये गुल खिला रहे हैं
शबाब रंगीं, जमाल रंगीं, वो सर से पा तक तमाम रंगीं
तमाम रंगीं बने हुए हैं, तमाम रंगीं बना रहे हैं
तमाम रानाइयों के मजहर, तमाम रंगीनियों के मंजर
सम्हल-सम्हल कर सिमट-सिमट कर सब एक मरकज पे आ रहे हैं
बहारे-रंगीं शबाब ही क्या, सितार-ओ-माहताब ही क्या
तमाम हस्ती झुकी हुई है, जिधर वो नजरें झुका रहे हैं

शराब आंखों से ढल रही है, नजर से मस्ती उबल रही है
छलक रही है, उछल रही है, पिए हुए हैं, पिला रहे हैं

बस तुम तैयार हो जाओ।

पिय मिलन को उठि चली, चौमुख दियना बारि।

तुम तैयार हो जाओ, तुम भीतर का दीया जलाओ—आएगा परमात्मा! तुम्हारे ही भीतर से उठेगा, जगेगा, बाढ़ की तरह फैलेगा। तुमसे बह चलेगा और-और लोगों की तरफ।

बिरहिनी मंदिर दियना बार!

मंदिर हो तुम। अपने भीतर दीया जलाओ—ध्यान का दीया, प्रेम का दीया! और जिसके भीतर ध्यान और प्रेम का दीया जलता है, उसके भीतर निर्वाण अपने आप उतर आता है, मोक्ष अपने आप बरस जाता है।

आज इतना ही।

शरद चांदनी बरसी

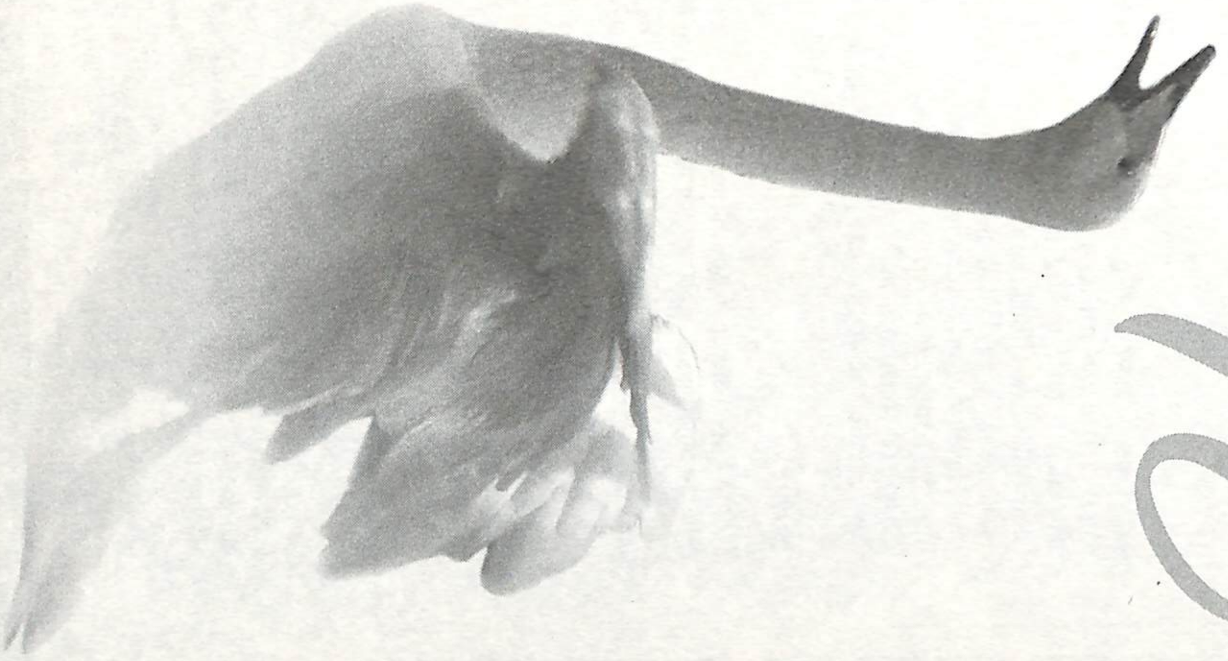

प्रवचन 10

आपने कहा—'सत्संग, जागो! सुबह पास ही है, हाथ फैलाओ और पकड़ो!
रुकी-रुकी सी शबे-मर्ग खत्म पर आई
मौत की रात समाप्त होने को आ गई।
वो पौ फटी, वो नई जिंदगी नजर आई
सुबह होने को है। नई जिंदगी का नया निखार, एक नई शैली, एक नया अंदाज! परमात्मा को याद करने का क्षण, सत्संग, करीब आ गया। नाचो, गुनगुनाओ, मस्त होओ, बांटो। जागो—नाचते हुए।'
इस मधुभरी मस्ती को छलकते देख अपने अपने न रहे। घर घर न रहा। यह कैसा प्रेम—दोस्त दूर हो गए! यह कैसा जागना हुआ—लोग नफरत करने लगे! यह कैसी नई जिंदगी आई—गुनगुनाती हुई, नाचती हुई, मधुभरी मस्ती ले आई! सब छूट गया!

रिंदों के लिए तो मयखाना काबे के बराबर होता है
मुर्शिद की गली का हर फेरा इक हज के बराबर होता है

प्यारे प्रभु!
यह तन-मन-जीवन सुलग उठे
कोई ऐसी आग लगाए है—कोई ऐसी आग लगाए है
प्रेम पथ पर चला है राही
मारग चला नहीं जाता
हाथ पकड़ कर मुझ अंधे को
हरि की ओर झुकाए है
कोई ऐसी आग लगाए है!

प्रभु, तेरो नाम
जो ध्यायो सब पायो
सुख लायो तेरो नाम!
जब से तेरी मरजी पर सब छोड़ा है, तब से जो कुछ हो रहा है, इससे 'गुणा' आश्चर्य-विमुग्ध है।

उस परमप्रिय का निर्वचन क्यों नहीं हो सकता है? जिसका अनुभव हो सकता है, उसका निर्वचन क्यों नहीं?

पहला प्रश्न: आपने कहा—'सत्संग, जागो! सुबह पास ही है, हाथ फैलाओ और पकड़ो!

रुकी-रुकी सी शबे-मर्ग खत्म पर आई
मौत की रात समाप्त होने को आ गई।
वो पौ फटी, वो नई जिंदगी नजर आई

सुबह होने को है। नई जिंदगी का नया निखार, एक नई शैली, एक नया अंदाज! परमात्मा को याद करने का क्षण, सत्संग, करीब आ गया। नाचो, गुनगुनाओ, मस्त होओ, बांटो। जागो—नाचते हुए।'

इस मधुभरी मस्ती को छलकते देख अपने अपने न रहे। घर घर न रहा। यह कैसा प्रेम—दोस्त दूर हो गए! यह कैसा जागना हुआ—लोग नफरत करने लगे! यह कैसी नई जिंदगी आई—गुनगुनाती हुई, नाचती हुई, मधुभरी मस्ती ले आई! सब छूट गया!

सत्संग! कहावत है: मुसीबत में जो साथ आए, वह मित्र। दुख में जो साथ रहे, वह साथी।

मैं तुमसे कहता हूं: मस्ती में जो काम आए, साथ रहे, वह साथी। दुख में साथ देने वाले तो बहुत मिल जाएंगे। मस्ती में साथ देने वाले लोग नहीं मिलते। और कारण साफ है। गणित स्पष्ट है।

दुखी आदमी पर दया करने में अहंकार को तृप्ति मिलती है। तुम भी जब भिखमंगे को दो पैसे दे देते हो तो जरा भीतर देखना। दिए तो हैं दो पैसे, लेकिन भीतर एक तृप्ति मिलती है कि अहा, कैसा दानी! मुझ जैसा कोई और करुणावान नहीं। इतने लोग निकले जा रहे हैं रास्ते से, किसी को चिंता नहीं है इस गरीब बूढ़े भिखारी की। एक अकेला मैं! दिए हैं दो पैसे, कुछ प्राण नहीं दे दिए हैं, लेकिन एक रौनक आ जाती है चेहरे पर। अहंकार में एक चमक आ जाती है। एक और आभूषण जुड़ जाता है कि दयावान, करुणावान!

सहानुभूति दिखाने में बड़ा रुग्ण मजा है। क्योंकि सहानुभूति दिखाने में तुम ऊपर होते हो और जिसको सहानुभूति दिखाते हो वह पड़ा है जमीन पर धूल-धूसरित। दुख में साथ देना बहुत कठिन नहीं है। सच तो यह है कि लोग दुख में ही साथ देते हैं। मस्ती में, आनंद में किसी को साथ देना बहुत कठिन है। क्योंकि जिसका तुम्हें साथ देना है वह तुमसे ऊपर! वह तुम्हारे अहंकार को चोट पहुंचा रहा है। तुम दया के पात्र, वह दया का पात्र नहीं है। तुम्हें झोली फैलानी पड़ेगी उसके सामने। वह भरेगा तुम्हारी झोली फूलों से। उसके पास है। उसके हृदय में आनंद नाच रहा है, गीत फूट रहे हैं। वह बरसाएगा अमृत तुम पर। नहीं; इसे झेलना मुश्किल हो जाता है।

सत्संग! जिन्होंने तुम्हें सदा दुखी जाना, आज अचानक तुम्हें आनंद-मस्त कैसे देखें? यह बर्दाश्त के बाहर है। यह नहीं सहा जा सकता। तो अपने पराए हो गए, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। न होते पराए तो आश्चर्य होता। दोस्त दुश्मन हो गए, यह सीधा गणित है। दोस्त दुश्मन न होते तो चमत्कार होता। जिन्होंने तुम्हें साथ दिया था दुख में, वे तुम्हें मस्ती में कैसे साथ दे सकते हैं? उन्होंने साथ ही इसलिए दिया था कि तुम दुखी थे। और तुम्हारे दुख में उन्हें एक रस था। तुम्हारे दुखी होने के कारण वे तुमसे ऊपर थे, तुम नीचे थे।

मैं विश्वविद्यालय में शिक्षक था। मेरे एक सहयोगी शिक्षक ने एक पारसी युवती से विवाह करना चाहा। मित्र तो ब्राह्मण थे। परिवार विरोध में था। समाज विरोध में था। लेकिन वे जिद्द पर अड़े थे। पारसी स्त्री गरीब थी। न केवल गरीब थी, बल्कि विधवा भी थी। वे मुझसे कहने लगे : इस गरीब स्त्री का उद्धार और कौन करेगा? फिर, इस विधवा से विवाह करना धर्म की बात है। कम से कम आप तो मुझे साथ दें।

मैंने कहा : मैं भी साथ नहीं दूंगा, पर मेरे साथ न देने का कारण और है। जहां तक मैं तुम्हें जानता हूं, तुम इस स्त्री के प्रेम में नहीं हो। तुम इसकी दीनता-दरिद्रता, इसके वैधव्य के प्रेम में हो, जो कि रुग्ण बात है। तुम अगर मुझसे कहो कि मुझे इस स्त्री से प्रेम है, मैं तुम्हारे साथ हूं। लेकिन तुम यह बात उठाते हो कि यह दीन है, दरिद्र है, विधवा है। यह कोई प्रेम की बात तो न हुई। यह तो तुम्हारा इसके दुख में रस है। समझो यह दीन-दरिद्र न होती और समझो कि यह विधवा न होती—फिर? फिर भी तुम विवाह करते?

वे थोड़े विचार में पड़ गए। मैंने कहा : तुम्हारी झिझक ही कहती है कि तुम्हारा प्रेम इस स्त्री की दीनता से है। और दीनता से प्रेम अहंकार की तृप्ति है। तुम अपने भीतर बड़ा अहंकार अनुभव कर रहे हो। समाज-सेवी! इत्यादि-इत्यादि, कि विधवा से विवाह करने चले हो! कि ब्राह्मण होकर, बड़े ऊंचे ब्राह्मण होकर एक पारसी युवती को मुक्ति दिलाने चले हो। तुम बड़े मुक्तिदाता, बड़े मसीहा! यह प्रेम नहीं है, सहानुभूति होगी। और सहानुभूति प्रेम नहीं होती।

स्मरण रखना, सहानुभूति में प्रेम होता ही नहीं। प्रेम को अगर कोई और शब्द खोजना हो तो वह है समानुभूति। सहानुभूति नहीं, समानुभूति। सिंपैथी नहीं, एंपैथी। प्रेम में समानुभूति होती है। जैसा दूसरा अनुभव करता है, वैसा ही तुम अनुभव करते हो। एक तरंगबद्ध हो जाते हो। तुम्हारी वीणा दूसरे की वीणा के साथ बजने लगती है। एक संगत पैदा होती है। तुम्हारे स्वर लयबद्ध हो जाते हैं। तुम दोनों की जीवन-ऊर्जा का, तुम्हारे दोनों के जीवन रस-स्रोतों का एक समागम होता है, एक संगम बनता है।

लेकिन सहानुभूति? सहानुभूति अपमानजनक शब्द है। मैंने उनसे कहा कि मैं भी तुम्हें सावधान किए देता हूं। तुम्हारे माता-पिता के कारण दूसरे हैं। मेरे कारण दूसरे हैं। तुम्हारे माता-पिता इसलिए डर रहे हैं कि विधवा से विवाह करोगे, यह उनके अहंकार को चोट पड़ रही है। तुम्हारे अहंकार को मजा आ रहा है कि देखो विधवा से विवाह करके दिखला रहा हूं! उनके अहंकार को चोट पड़ रही है। मगर ये दोनों की भाषा एक है। तुम्हारी बात में और तुम्हारे मां-बाप की बात में कोई भेद नहीं है। तुम्हारा गणित एक है। वे सोच रहे हैं: इतने ऊंचे ब्राह्मण होकर और विजातीय से शादी करोगे? यह पतन है। उनकी कुलीनता, उनके संस्कार, उनकी लंबी कुल की यश-गाथा, उस पर तुम धब्बा लगा रहे हो। और विधवा से विवाह करोगे, जो कि हिंदू धर्म के अनुसार वर्जित है। तो उनके धर्म को चोट लगा रहे हो तुम। उनकी प्रतिष्ठा है, उनको पूजने वाले लोग हैं। वे बड़े पंडित हैं, बड़े पुजारी हैं। बड़े ज्ञानी पुरोहित हैं। बड़े यज्ञ-हवन करवाते हैं। लोग उन पर हाथ उठाएंगे, इशारे उठाएंगे। लोग उन पर धूल फेंकेंगे। और कहेंगे कि अपने बेटे को न रोक पाए अधर्म करने से! उनके अहंकार को चोट लग रही है। और तुम्हारे अहंकार को मजा आ रहा है कि ऐसे ऊंचे कुल से आया हूं, फिर भी एक विधवा स्त्री को दया करके हाथ बढ़ाया है। तुम्हारी दोनों की भाषा एक है, गणित एक है, तर्क एक है। तुम अपने बाप के बेटे हो। और तुम्हारे बाप भी तुम्हारे बाप हैं। तुम में और तुम्हारे बाप में कोई फर्क नहीं है। एक सा ही खून बह रहा है। लेकिन मैं किसी और कारण से तुमसे कहता हूं कि यह विवाह मत करो। क्योंकि अगर तुम विधवा से विवाह कर रहे हो, विवाह हो जाने के बाद वह विधवा नहीं रह जाएगी, फिर क्या करोगे?

उन्हें मेरी बातें कुछ बेबूझ लगीं। उन्होंने कहा: आप भी खूब अजीब बातें करते हैं! इतने लोगों से मैं बात कर चुका, किसी ने मुझे ऐसा नहीं कहा। विश्वविद्यालय में सैकड़ों अध्यापकों से मेरी चर्चा हुई, क्योंकि महीनों से यह बात चल रही है, सब ने कहा कि हिम्मत करो। पढ़े-लिखे आदमी हो, क्या डरते हो, उठाओ जोखम! आप कुछ अजीब सी बातें कह रहे हैं!

मैंने कहा: तो तुम फिर विवाह कर लो और साल भर बाद मुझे मिलना।

साल भर भी नहीं हुआ, तीन-चार महीने बाद मुझे मिले। आंखें नीचे झुका लीं और कहा: आप ठीक कहते थे। मैंने विवाह विधवा से किया था और विवाह होते ही वह विधवा नहीं रह गई। और मैंने विवाह एक गरीब स्त्री से किया था, मुझसे विवाह करते ही अब वह गरीब नहीं रह गई। और मन वैसा प्रसन्न नहीं है जैसा मैं सोचता था; खिन्न है, उदास है।

मैंने कहा: अब तुम एक काम करो, मर जाओ, ताकि वह फिर विधवा हो जाए। फिर कोई उसका उद्धार करे। किसी और को अवसर दो अब तुम। अब तुम किसलिए जी रहे हो?

अब इतना और करो। इतना तो किया, इतना और करो—फिर उसे विधवा कर दो। और दान कर जाओ जो पैसा-लत्ता तुम्हारे पास हो, तो फिर दीन-दरिद्र हो जाए। और दोहरी विधवा हो जाए। फिर किसी को मसीहा होने का, उद्धार करने का अवसर दो। यह मौका किसी का क्यों छीन रहे हो? फिर कोई समाज-सेवक, कोई सर्वोदयी आएगा, उद्धार करेगा।

उन्होंने कहा: आप अजीब बातें करते हैं!

मैंने कहा: तुम पहले भी यही कहते थे कि अजीब बातें करते हैं। अब भी मैं ठीक-ठीक बात तुमसे कर रहा हूं।

मित्रता इस जगत में दुख की मित्रता है, सहानुभूति की मित्रता है। सत्संग! तुम अचानक मस्ती से भर गए। मित्र छिटक गए। छिटक ही जाएंगे। तुम उनसे ऊपर उठने लगे, यह तुम्हारी जुर्रत! यह तुम्हारी हिम्मत! तुम आकाश के तारे तोड़ने लगे और वे अभी धूल पर ही कंकड़ बीन रहे हैं, जमीन पर ही! वे अभी जमीन पर घिसट रहे हैं और तुम आकाश में उड़ने लगे! यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। तुम्हारी मस्ती को वे पागलपन करार देंगे। देना ही पड़ेगा उनको। आखिर उन्हें भी अपने अहंकार की रक्षा करनी है। तुम्हारी मस्ती को वे विक्षिप्तता कहेंगे। तुम्हारी इस मौज को वे पाखंड कहेंगे।

लेकिन जान लेना, जो मस्ती में साथ खड़ा न रह सके, उससे तुम्हारी दोस्ती रुग्ण थी, स्वस्थ नहीं थी। काश, सच यह दोस्ती होती तो वह आनंदमग्न होता, तुम्हें मस्त देख कर मस्त होता, तुम्हें छाती से लगाता।

और जिनको तुम कहते हो: 'अपने पराए हो गए...'

कौन यहां अपना है? सब सौदा है। सब हिसाब-किताब है। जिसको तुम तथाकथित प्रेम कहते हो, वह भी सब सौदा है और हिसाब-किताब है। उस सब में भी लेन-देन है, शोषण है, पारस्परिक शोषण है। पत्नी पति का शोषण कर रही है, पति पत्नी का शोषण कर रहा है। पति कहता है कि मैं चाहता हूं कि तू प्रसन्न हो, आनंदित हो। मगर यह बात सच नहीं है। कल अगर पत्नी किसी और के प्रेम में पड़ जाए और प्रसन्न हो और आनंदित हो, फिर तुम देखना यह पति अपनी बंदूक में गोली भरने लगेगा, अपने छुरे पर धार रखने लगेगा। अब भूल ही जाएगा कि मैंने कहा था कि तू आनंदित होगी, तू प्रसन्न होगी, तो मैं भी प्रसन्न होऊंगा। अब पत्नी आनंदित है, प्रसन्न है। इसमें क्या शर्त लगाते हो कि मेरे साथ ही प्रसन्न हो? प्रसन्न है, किसी के भी साथ है। अगर सच में प्रेम हो तो अब भी रहेगा। लेकिन हमारा प्रेम प्रेम कहां है? लेन-देन है, सौदा है। कांट्रैक्ट है हमारा प्रेम। शर्तबंदी है उसमें।

जिनको तुम सोचते थे—अपने हैं, भाई हैं, बंधु हैं—वे अब साथ नहीं दे रहे हैं। अड़चन स्वाभाविक है। उनकी भी अड़चन समझो। अगर तुम्हें साथ दें तो लोग उनको भी कहते हैं कि अरे, क्या हो गया है तुम्हारे भाई को? उन्होंने साथ छोड़ दिया। कम से कम अपनी झंझट छुड़ा ली। उन्होंने कहा कि हमने साथ ही छोड़ दिया, हमने त्याग ही कर दिया। उनको अपनी प्रतिष्ठा बचाए रखनी है समाज में। तुमने दांव पर लगा दी प्रतिष्ठा, उनको अपनी प्रतिष्ठा बचानी है। तुम्हारे साथ रहें तो उनकी प्रतिष्ठा भी दांव पर लग जाएगी। इतनी उनकी हिम्मत नहीं है। इतने दूर तक तुमसे नाता नहीं है। तुम्हारे साथ इतनी यात्रा करने की उनकी कभी तैयारी न थी। उन्होंने कभी सोचा भी न था कि तुम इतने दूर निकल जाओगे।

लेकिन घबड़ाना मत। दुख के साथी गए, सुख के साथी मिलेंगे। नये मित्र बनेंगे। यह जो मेरे संन्यासियों का जगत है, यह नये मित्र तुम्हें देगा। नये—जिनके संबंध स्वस्थ होंगे। यह तुम्हारा नया परिवार है। छोटा-मोटा परिवार गया, जाने दो। छोटे-मोटे आंगन छूटे, छूटने दो। यह पूरा आकाश अब तुम्हारा है।

यह संन्यास, तुम्हारे लिए मैं एक घर का ही तो निर्माण कर रहा हूं। नहीं तो संन्यास देने की जरूरत भी क्या थी? तुम बिना संन्यास के भी मुझे सुन सकते थे, ध्यान कर सकते थे। संन्यास का सूत्रपात इसीलिए है कि मुझे पता है कि तुम्हारे घर छूटेंगे, तुम्हारे परिवार टूटेंगे; तुम्हारी पत्नियां छोड़ेंगी, तुम्हारे पति छोड़ेंगे; तुम्हारे बच्चे तुम्हारा त्याग कर देंगे। फिर तुम्हें एक नया घर और एक नया समाज जरूरी होगा। अन्यथा बिलकुल अकेले पड़ जाओगे, टूट जाओगे, बिखर जाओगे। सह न पाओगे उतनी आग। कहीं कोई शरण चाहिए होगी। तो ये गैरिक मित्र तुम्हारे मित्र होंगे। यह गैरिक मित्रों का परिवार तुम्हारा परिवार है।

अच्छा ही हुआ कि तुम जाग गए और तुम्हें यह दिखाई पड़ गया—न तो मित्र मित्र हैं, न अपने अपने हैं। सब झूठे नाते-रिश्ते हैं। सच्चा तो इस जगत में केवल एक ही नाता होता है, वह ध्यान का नाता है। और बाकी सब नाते झूठे होते हैं। उनसे संबंध जुड़ जाए जो ध्यानी हैं, और इस कारण संबंध जुड़े कि तुम भी ध्यान के रास्ते पर चले हो, वे भी ध्यान के रास्ते पर चले हैं, ध्यान की तलाश में दोनों का संग-साथ हो गया, प्रभु की खोज में दोनों रास्ते पर मिल गए हैं और हाथ में हाथ ले लिया है, कि एक ही दिशा में जाते हैं तो साथ-साथ चलेंगे—ऐसे ही इस पृथ्वी पर सदा-सदा संन्यासियों के संघ निर्मित हुए हैं। बुद्ध का महासंघ निर्मित हुआ। एक ही दिशा में जाते हुए लोग, एक ही सत्य की तलाश में लगे लोग, स्वभावतः एक-दूसरे के साथ मैत्री का एक संबंध निर्मित कर लिए। यह मित्रता टिकेगी। यह मित्रता आनंद की मित्रता है। यह मदमस्ती की मित्रता है।

और अब इस मित्रता को पुराने आग्रहों में मत ढालना। इस मित्रता पर अपेक्षाएं मत रखना। क्योंकि अपेक्षाओं से ही बंधन निर्मित होते हैं। इसको शुद्ध मैत्री रहने देना—बिना किसी अपेक्षा के। न इसमें कुछ मांग हो, न इसमें मांग की कोई छिपी-दबी आकांक्षा हो। इसको शुद्ध मैत्री...शुद्ध मैत्री से मेरा अर्थ है: मैं आनंदित हूं, गीत गा रहा हूं, आते हो? तुम भी गाओगे गीत मेरे साथ? या तुम आनंदित हो, गीत गा रहे हो, आ जाऊं मैं और नाचूं तुम्हारे साथ? बस इतनी! आनंद को एक-दूसरे में बांटने की मित्रता। इससे ज्यादा न कोई आग्रह है, न कोई अपेक्षा है।

और कल जब कोई मित्र अपनी राह बदल ले और किसी और दिशा में जाने लगे, तो कोई कष्ट भी नहीं है। मिलन प्यारा था और विरह भी प्यारा है। जब अपेक्षा नहीं होती तो विरह से कोई कष्ट नहीं होते। जब अपेक्षा होती है तो विरह से कष्ट होते हैं। जब हम न्यस्त स्वार्थ बना लेते हैं तब अड़चन आती है।

तो अच्छा हुआ—गया पुराना घर, गए पुराने मित्र, गए परिवार, प्रियजन। अब नया परिवार, नये मित्र—और नया ढंग और नई शैली परिवार बनाने की और मैत्री बनाने की! भूल कर भी पुराने ढंग से परिवार मत बना लेना। नहीं तो फिर उसी जाल में पड़ जाओगे। अब पुराने ढंग की दोस्ती मत बनाना; सहानुभूति के संबंध ही मत बनाना। किसी के दयापात्र

होना अशोभन है। बांट सको तो बांटो अपने आनंद को। लेकिन अपने दुख की झोली मत बनाओ। यह तुम्हारी आत्मा का अपमान है। अपने परमात्मा को भिखारी मत बनाओ। रोओ मत, गिड़गिड़ाओ मत। तुम्हारे भीतर बैठा परमात्मा सम्राट है।

लेकिन जो हुआ वह होना ही था।

इसका निर्णय करो, सितारो—
किसके लिए बना हूँ कौन!

फागुन आया, जग बौराया,
कोयल बोली, फूल खिले,
और, दूर उस नील क्षितिज पर
धरती-अंबर गले मिले,
किंतु, सदा के डाही पतझर ने छोटा सा प्रश्न किया,
यह छोटा सा प्रश्न किया—
इसका निर्णय करो, सितारो—
किसके लिए बना हूँ कौन!

सावन आया, घन घहराया,
नदियां उमड़ीं, ताप मिटा,
दूर क्षितिज पर सरित-सिंधु का
अंतर अपने आप मिटा,
किंतु, सदा के डाही दिनकर ने छोटा सा प्रश्न किया,
यह छोटा सा प्रश्न किया—
इसका निर्णय करो, सितारो—
किसके लिए बना हूँ कौन!

सृष्टि बनी, स्रष्टा सकुचाया—
यह भी कोई चीज बनी!
जागा मानव, जगी मानवी,
जगी प्रेम की छांह घनी,
किंतु, सदा के डाही प्राणों के स्वर ने यह प्रश्न किया,
यह छोटा सा प्रश्न किया—
बनी मुखरता मानव के हित,
बना मानवी के हित मौन
इसका निर्णय करो, सितारो—
किसके लिए बना हूँ कौन!

तुम्हारे प्रेम के नाते प्रेम के नाते नहीं हैं, शोषण के नाते हैं। पति पत्नी का शोषण कर रहा है, साधन बना रहा है—अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए। पत्नी पति का शोषण कर रही है, साधन बना रही है। मनुष्य एक-दूसरे को साधनों में ढाल रहे हैं। और जिस व्यक्ति को भी तुमने साधन बनाया, तुमने उसका सम्मान नहीं किया। प्रेम तो बहुत दूर, सम्मान भी नहीं किया, समादर भी नहीं किया। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में साध्य है, साधन नहीं।

जर्मनी के प्रसिद्ध विचारक, दार्शनिक इमेनुअल कांट ने कहा है: नीति का आधारभूत नियम है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना साध्य है, साधन नहीं। किसी को साधन मत बनाना; वही अनीति है। और हम सब यही करते हैं। हमारे भीतर एक प्रश्न सदा चलता रहता है—

इसका निर्णय करो, सितारो—
किसके लिए बना हूँ कौन!

पति पत्नी के लिए बना, ऐसा पत्नी सोचती है। पति पत्नी के लिए बना, स्वभावतः ऐसी पत्नी की धारणा है; कहे, चाहे न कहे। और पत्नी पति के लिए बनी, ऐसी पति की धारणा है। और सदियों-सदियों से पति इसकी घोषणा भी करता रहा है कि मैं स्वामी हूं, तू दासी है। पत्नियां होशियार हैं। चिट्ठी इत्यादि लिखती हैं तो उसमें लिखती हैं: आपकी दासी! यह सिर्फ कूटनीति है। क्योंकि किसी भी घर में जाकर देख लो, पता चल जाएगा दास कौन है! पत्नी इतनी आश्वस्त है अपनी मालकियत की कि घोषणा भी नहीं करती। जानती ही है कि मानते रहो तुम अपने को स्वामी। हर्जा क्या है तुम्हारे स्वामी मानने से? उसे पक्का पता है कि स्वामिनी कौन है।

इसलिए तुम देखते हो, हमारी भाषा में शब्द है: घरवाली! घरवाला नहीं। क्योंकि हम जानते हैं घर किसका है—घरवाली का है। पतियों को भलीभांति पता है कि घर के भीतर उनकी हैसियत कितनी है। और पत्नी और पति के बीच यह समझौता है कि घर के बाहर तुम मालिक बने रहना, घर के भीतर मैं।

मुल्ला नसरुद्दीन से किसी ने पूछा कि तुम्हारी पत्नी से तुम्हारा कभी झगड़ा होता है?

उसने कहा: कभी नहीं! मैंने यह निपटारा पहले ही कर लिया। पहली ही रात, सुहागरात को ही मैंने कहा कि यह पहले ही तय हो जाए बात कि हम लड़ेंगे नहीं, झंझट नहीं करेंगे। दुनिया लड़ रही है, क्या सार है इसमें! पत्नी ने कहा: ठीक है।

कैसे निर्णय किया? मित्र ने पूछा।

तो उसने कहा: पत्नी ने कहा कि बड़ी-बड़ी समस्याओं के तुम निर्णय लेना, छोटी-छोटी समस्याओं के मैं निर्णय ले लूंगी। और तब से ऐसा ही चल रहा है—मुल्ला ने कहा—कोई झगड़ा आया नहीं।

मित्र को भरोसा न आया। किस पुरुष को भरोसा आएगा? उसने कहा कि मुझे जरा विस्तार से कहो, बड़ी-बड़ी समस्याएं यानी क्या?

तो उसने कहा कि ईश्वर है या नहीं? भूत-प्रेत होते हैं या नहीं? कितने नरक हैं, कितने स्वर्ग हैं? इस तरह के सब बड़े-बड़े प्रश्न मैं तय करता हूं। और छोटे-छोटे प्रश्न, जैसे कौन सी साड़ी खरीदनी है, बच्चे को किस स्कूल में भेजना है, कौन सी फिल्म देखनी है, कौन से

होटल में खाना खाने जाना है, कौन सा जेवर खरीदना है—ये सब छोटी-मोटी बातें, इनका निर्णय पत्नी करती है। तनख्वाह कैसे खर्च की जाए, कौन सी कार खरीदी जाए—ये सब छोटी-मोटी बातें हैं, इनका निर्णय पत्नी करती है। बड़ी-बड़ी बातें, इनका निर्णय मैं करता हूं।

पत्नियां कुशल हैं। छोटी-छोटी बातें उन्होंने अपने हाथ में ले रखी हैं। घर का राज्य उन्होंने अपने हाथ में ले रखा है। यह एक समझौता है। मगर दोनों अपने मन में यही सोच रहे हैं कि मालिक मैं हूं।

मालकियत का भाव ही घृणा का भाव है, प्रेम का नहीं। और तुम्हारे जीवन में जो थोड़ी सी पहली दफा आनंद की पुलक और झलक उठी है, बहुतों को डाह होगी। बहुतों को ईर्ष्या होगी। और उनकी ईर्ष्या से तुम परेशान मत होना। उनकी ईर्ष्या भी स्वाभाविक है। उन्होंने भी चाहा है कि वे भी मस्त होकर रहते। उन्होंने भी चाहा है कि वे भी नाचते और गाते। मगर यह नहीं हो पाया। उनके जीवन में यह नहीं हो पाया। उनकी जंजीरें बड़ी हैं। और जंजीरें तोड़ने की उनकी हिम्मत नहीं है। उनके हाथों में बेड़ियां पड़ी हैं। और बेड़ियों से छूट भागने का उनका साहस नहीं है। तुम्हारा साहस उन्हें दुस्साहस मालूम हो रहा है। वे तुमसे बदला लेंगे।

इस दुखी जगत में जहां हरेक दुखी है, जब भी कोई आदमी सुखी होगा, लोग उससे बदला लेंगे। तुम्हें अगर सहानुभूति चाहिए हो और बहुत मित्र चाहिए हों तो दुखी रहो। तुम्हें बहुत मित्र मिलेंगे, बहुत सहानुभूति मिलेगी। हरेक तुम्हारी पीठ थपथपाएगा, हरेक तुम्हारे आंसू पोंछेगा। मगर तुम्हें रोना पड़ेगा। जितना रोओगे उतने संगी-साथी मिलेंगे। तुम हंस रहे हो और यहां लोग रो रहे हैं। रोते हुए लोग तुम्हारी हंसी में कैसे साथ दें? नहीं, यह नहीं हो सकेगा।

लेकिन चिंता भी क्या लेनी? इसको समस्या भी क्यों बनाना? इस प्रश्न के साथ उलझो ही मत। तुम्हारी जिंदगी में एक छोटी सी किरण उतरी है, इस किरण की तलाश में और आगे बढ़ना है। प्रेम की थोड़ी झलक उतरी है, इसको प्रार्थना बनाना है, इसे परमात्मा तक पहुंचाना है।

चांद तो थक गया
गगन भी बादलों से ढंक गया,
वन तो वनैला है
अभी क्या ठिकाना कितनी दूर तक फैला है?
अंधकार।
घनसार
अरे पर देखो तो वो पत्तियों में
जुगनू टिमक गया!

अभी जुगनू ही टिमका है, और रात बहुत लंबी है; अंधेरा बहुत विस्तीर्ण है, दूर-दूर आकाश तक फैला है। मगर जुगनू भी टिमक गया, अगर एक छोटा सा दीया भी जल गया, तो तुम्हारा यात्रापथ अब प्रकाशित हो सकता है। रोशनी है, अगर यह भरोसा भी आ गया, तो फिर रोशनी के स्रोत खोजे जा सकते हैं।

मैंने तुमसे जो कहा, यह जान कर ही कहा है। सभी से यही कह रहा हूं कि जागो! सुबह पास है, हाथ फैलाओ और पकड़ो!

लेकिन यह खयाल रखना कि सुबह को पकड़ोगे तो रात के साथी छूट जाएंगे। उनसे संग-साथ ही रात का था। वे तुम्हारे सुबह के साथी नहीं हो सकते। सुबह के साथी तो वे होंगे जिनको सुबह मिल गई है। तुम्हें संग-साथ बदलना होगा। जब तुम अंधेरी गलियों में भटकते थे तो तुम्हारी दोस्ती थी किन्हीं से, जो अंधेरी गलियों में भटकते थे। तुम रोशन, प्रकाशित मार्गों पर आ गए तो तुम्हें दोस्ती भी बदलनी होगी। अब तुम यह आग्रह रखो कि अंधेरी गलियों के साथी संग-साथ में रहें, यह कैसे हो सकता है? दो ही उपाय हैं। या तो वे अपनी अंधेरी गलियां छोड़ें और प्रकाश के रास्तों पर आएं। और उनकी अंधेरी गलियों में बहुत स्वार्थ जुड़े हैं, बहुत न्यस्त स्वार्थ। वहां उन्होंने अपना पूरा जीवन लगा दिया है। ऐसे कैसे छोड़ दें? तुमने भी कुछ आसानी से नहीं छोड़ दिया है।

सत्संग मुझे जानते हैं कम से कम दस वर्षों से। अभी-अभी चार-छह महीने पहले संन्यास लिया है। तुम्हें भी इतनी देर लग गई, और मैं पुकारता रहा, पुकारता रहा। और जिनसे तुम्हारी दोस्ती है, वे तो यहां आते नहीं, वे तो यहां आने से भी घबड़ाते हैं। अब तुम्हारे संन्यास ने विघ्न खड़ा कर दिया। अब तुम्हारा संन्यास उनके सामने एक बड़ा प्रश्नचिह्न बन कर खड़ा हो गया। तुम्हारे मित्र डरेंगे कि कहीं तुमसे दोस्ती रखी और यह गैरिक रंग न चढ़ जाए! तुम्हारे मित्रों की पत्नियां डरेंगी कि जरा इन सज्जन से बचो! अब इनका संग-साथ छोड़ो! इनके साथ रहना अब खतरनाक है। कहीं यह रंग तुम्हें न लग जाए!

और जैसे बीमारियां लगती हैं, वैसे ही स्वास्थ्य भी लगता है। स्वास्थ्य भी बड़ी तीव्रता से संक्रमित होता है। हर चीज छूती है और लगती है। और जब दुख लोगों को पकड़ जाता है तो सुख भी पकड़ेगा।

मगर घबड़ाओ न। छोटी सी जिंदगी है, चार दिन की जिंदगी है। गीत अपना गाना है—चाहे कोई भी परिणाम हो और चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े!

गुम हैं इक कैफ में फजा-ए-हयात
खामुशी सिज्दा-ए-नियाज में है
हुस्ने-मासूम ख्वाबे-नाज में है
ऐ कि तू रंग-ओ-बू का तूफान है
ऐ कि तू जल्वागर बहार में है
जिंदगी तेरे इख्तियार में है
फूल लाखों बरस नहीं रहते
दो घड़ी और है बहारे-शबाब
आ कि कुछ सुन-सुना लें हम
आ मोहब्बत के गीत गा लें हम
मेरी तनहाइयों पे शाम रहे
हसरते-दीद नातमाम रहे
दिल में बेताब है सदा-ए-हयात
आंख गौहर निसार करती है

आसमां पर उदास हैं तारे
चांदनी इंतजार करती है
आ कि थोड़ा सा प्यार कर लें हम
जिंदगी जरनिगार कर लें हम
आ कि कुछ सुन-सुना लें हम
आ मोहब्बत के गीत गा लें हम

क्षण भर की जिंदगी है। अब गए, तब गए। क्या फिक्र करते हो घर की, परिवार की? क्या फिक्र करते हो मित्रों की, प्रियजनों की? एक ही बात की फिक्र करो कि तुम अपना गीत गाकर जाओगे, कि तुम अपना नृत्य नाच कर जाओगे, कि तुम अपनी सुगंध बिखरा कर जाओगे, कि मरते समय तुम्हें यह अपराध-भाव न लगेगा कि मैं अपनी जिंदगी अपने ढंग से न जी सका। बस, यही सिद्धि है। मरते समय तुम्हें यह आनंद रहे कि जैसा जीना था, वैसा जीया; जो करना था, वही किया; न तो झुका, न समझौते किए। अपनी मौज में रहा। अपनी मस्ती में रहा। जरूर बहुत कठिनाइयां आईं, लेकिन वे सब कठिनाइयां भी चुनौतियां हैं। और हर चुनौती आत्मा को निखारती है।

दूसरा प्रश्न :

रिंदों के लिए तो मयखाना काबे के बराबर होता है
मुर्शिद की गली का हर फेरा इक हज के बराबर होता है

दिनेश! ऐसा ही है। पियक्कड़ों के लिए तो मधुशाला ही काबा है। ऐसा ही है कि शिष्यों के लिए तो गुरु की परिक्रमा कर लेना हज का पूरा हो जाना है।

मगर पियक्कड़ होना आसान नहीं है। पीना बड़ा जोखिम का काम है। बाहर की शराब पीना तो बहुत जोखिम का काम नहीं है; भीतर की शराब पीना बहुत जोखिम का काम है। क्योंकि बाहर की शराब तो घड़ी दो घड़ी को बेहोश कर जाती है, फिर होश आ जाता है। और भीतर की शराब ने तो जो बेहोश किया सो किया; फिर होश कभी आता ही नहीं। एक घूंट भी उतर गई गले से तो तुम सदा के लिए दूसरे ही व्यक्ति हो जाते हो; तुम्हारा पुनर्जन्म हो जाता है। संसार वही रहता है और तुम वही नहीं रह जाते। इसलिए जगह-जगह अड़चन आती है।

यह देखा, अभी 'सत्संग' की अड़चन देखी! यह पियक्कड़ होने का फल! ठीक कहते हो—

'रिंदों के लिए तो मयखाना काबे के बराबर होता है'

पियक्कड़ कोई हो, तो जहां बैठ कर पी ले, वहां काबा है। जहां पियक्कड़ के पैर पड़ जाएं, वहां तीर्थ बनते हैं। नहीं तो तीर्थ बने कैसे?

काबा बना कैसे? किसी पियक्कड़ की याद है। किसी मोहम्मद की याद है।

गिरनार और शिखरजी बने कैसे? किन्हीं पियक्कड़ों की याद हैं—किन्हीं महावीरों की, किन्हीं पार्श्वनाथों की।

बोधगया कि जेरुसलम, ये पैदा कैसे हुए? सदियां बीत गईं, मगर यहां बैठ कर जिन्होंने पी थी भीतर की शराब, उनकी याद नहीं भूलती। आज भी वहां गंध आती है। आज भी वहां जाने वाला एक मस्ती के माहौल में डूबने लगता है। सदियां बीत गईं, पीने वालों की याद, पीने वालों की स्मृति, पीने वालों की छाया अब भी उन स्थलों को घेरे हुए है। पीने वालों का प्रसाद उस मिट्टी को भी सोना कर गया है। ऐसे ही तो तीर्थ बनते हैं।

मगर पीना बहुत कम लोगों को आता है। कुछ हैं जो भूल से बाहर की शराब को ही पीकर समझ लेते हैं कि पहुंच गए, हो गए सिद्ध। वे भी चूक गए! और कुछ हैं जो बाहर की शराब ही नहीं छोड़ते, जो बाहर की शराब में सभी शराबें छोड़ देते हैं—इस डर से कि पीने में खतरा है, पीने में बेहोशी है। कुछ हैं जो बाहर की शराब पीकर बरबाद हो जाते हैं, और कुछ हैं जो बाहर की शराब से बच कर बहुत बुद्धिमान हो जाते हैं और पीने का ढंग ही भूल जाते हैं, पीने का सलीका ही भूल जाते हैं, तो भीतर की शराब से वंचित रह जाते हैं। दोनों चूकते हैं। बाहर की शराब पीनी नहीं है और भीतर की शराब जरूर पीनी है—तब कोई पहुंचता है।

दिल की यकसूई ने बेपर्दा दिखवाया था तुझे
बीच में मुफ्त कदम आ गया बीनाई का

तल्लीनता ने तो तेरा पर्दा उठा दिया था, तेरा घूंघट हटा दिया था। मगर तभी बुद्धिमानी बीच में आ गई, तभी समझदारी बीच में आ गई।

दिल की यकसूई ने बेपर्दा दिखवाया था तुझे
बीच में मुफ्त कदम आ गया बीनाई का

और जो पांडित्य को उपलब्ध हो गया, तथाकथित ज्ञान को उपलब्ध हो गया, वह चूका। बाहर के पीने वाले चूक जाते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि बस यही शराब है दुनिया में। यह शराब है नहीं, शराब का धोखा है। अंगूरों से जो ढाली जाती है, वह सिर्फ धोखा है। आत्माओं में जो ढलती है, वह सच है। असली मधुशालाओं में आत्मा की शराब ढलती है, आत्मा की शराब निचुड़ती है।

कुछ तो प्रतीक्षा नहीं कर पाते, क्योंकि भीतर की जो शराब है, लंबी साधना से उपलब्ध होती है। भीतर की शराब समाधि से उपलब्ध होती है। लंबी, कठिन यात्रा है। प्राणों से ही निचोड़नी होती है वह भीतर की सुरा तो।

कहां से लाऊं सब्रे-हजरते-ऐयूब ऐ साकी
खुम आएगा, सुराही आएगी, तब जाम आएगा

मैं कहां से इतना धीरज लाऊं?

कहां से लाऊं सब्रे-हजरते-ऐयूब ऐ साकी

एक प्रसिद्ध संतोषी पैगंबर हुए हैं, उनके लिए कहा है: सब्रे-हजरते-ऐयूब! उन बहुत संतोषी पैगंबर की जैसी क्षमता थी प्रतीक्षा की, वैसी प्रतीक्षा की क्षमता मैं कहां से लाऊं?

कहां से लाऊं सब्रे-हजरते-ऐयूब ऐ साकी
खुम आएगा, सुराही आएगी, तब जाम आएगा

बड़ी देर लग रही है। जल्दबाजी में जो है, वह बाहर की शराब पी लेगा। क्योंकि बाहर की शराब बड़ी आसानी से मिलती है। बड़ी प्रतीक्षा चाहिए तो भीतर की मधुशाला का द्वार खुलता है। वहां मारते ही रहो टक्कर, वहां मारते ही रहो सिर, एक दिन द्वार जरूर खुलता है। मगर जब तुम पूरे प्राणपण से पुकारते हो, तब द्वार खुलता है।

तो कुछ तो प्रतीक्षा नहीं कर पाते, तो बाहर की व्यर्थ बातों में उलझ जाते हैं। कुछ बाहर की व्यर्थता तो देख लेते हैं, उस कारण बड़ी बुद्धिमानी को उपलब्ध हो जाते हैं। और फिर भीतर की यात्रा में वही बुद्धिमानी बाधा बन जाती है।

मुंह पे आशिक के मोहब्बत की शिकायत, नासेह
बात करने का भी नादां न करीना आया
आ गया था जो खराबात में, पी लेनी थी
तुझको सोहबत का भी जाहिद न करीना आया

यहां भी आ जाते हैं पंडित किस्म के लोग, शास्त्रीय किस्म के लोग—जो केवल शब्दों-शब्दों में ही जीते रहे हैं। वे आकर भी बिना पीए चले जाते हैं।

मुंह पे आशिक के मोहब्बत की शिकायत, नासेह

प्रेमी के मुंह पर तो, हे उपदेशक! प्रेम की निंदा मत कर। वहां तो चुप रह। क्योंकि प्रेमी के समक्ष तेरा बोलना अनुचित है। तुझे प्रेम का पता ही क्या है? वह तो प्रेमी को पता है।

मुंह पे आशिक के मोहब्बत की शिकायत, नासेह
बात करने का भी नादां न करीना आया

कितना ही हो तू बुद्धिमान और कितना ही शास्त्रों का बोझ हो, लेकिन तुझे अभी बात करने का भी तरीका नहीं आया।

आ गया था जो खराबात में, पी लेनी थी

और जब मधुशाला में आ ही गया था...

आ गया था जो खराबात में, पी लेनी थी
तुझको सोहबत का भी जाहिद न करीना आया

तुझे सत्संग का भी ढंग नहीं आता! तो पंडित हैं, वे विवाद में पड़ते हैं। सत्संग नहीं कर सकते, संवाद नहीं कर सकते, सिर्फ विवाद कर सकते हैं। सत्संग तो संवाद का निचोड़ है। सत्संग, सोहबत तो किसी सदगुरु के पास चुप बैठने की कला है, मौन बैठने की कला है, निर्विचार बैठने की कला है। और अगर कोई किसी सदगुरु के पास निर्विचार मौन बैठ जाए, तो सुरा बहने लगती है। सुरा बह ही रही है। लेकिन तुम्हारे विचारों की दीवालें, और तुम्हारे तर्क-जाल, और तुम्हारे सिद्धांत, और तुम्हारे शास्त्र बड़ी बाधाएं खड़ी करते हैं; सुरा को तुम तक पहुंचने नहीं देते।

आ गया था जो खराबात में, पी लेनी थी
तुझको सोहबत का भी जाहिद न करीना आया
मुगबचे हैं मुतहैय्यर, मुतबस्सिम साकी
पीने वाले तुझे पीने का न अंदाज आया

शराब पिलाने वाले हैरान हैं और पीने वालों को पीने का करीना भी नहीं, अंदाज भी नहीं।

पिलाने वाले सदा हैरान रहे हैं। बुद्ध ने पिलाई, कृष्ण ने पिलाई। और पीने वाले पीते ही नहीं। तुम देखते हो अर्जुन को? कृष्ण पिलाए जाते हैं और अर्जुन पीता ही नहीं। इसीलिए तो इतनी लंबी गीता चली। नहीं तो एक बार आंख में देख लेता कृष्ण की, सुरा ढल जाती, बात खत्म हो जाती। बिना बात के बात हो जाती। बिना कहे संवाद हो जाता। मगर नहीं, उठाए गया प्रश्न, किए गया संदेह। कृष्ण जैसे व्यक्ति के पास बैठ कर भी बकवास में लगा रहा।

फिर भी शक है कि अंततः भी समझ पाया या नहीं। कहता तो अर्जुन यह है अंत में कि मेरे सब संदेह मिट गए। मगर कौन जाने, सिर्फ थक कर कहता हो कि महाराज, अब तुम तो थकते नहीं, अब मेरी खोपड़ी और न खाओ, मेरे सब संदेह मिट गए। कौन जाने! संभावना इसी बात की बहुत है कि ऊब गया होगा कि यह आदमी पीछा छोड़ने वाला नहीं है। यह लड़वा कर रहेगा। तो कहा होगा कि ठीक है महाराज, अब जो होना है सो हो जाए। तुमसे बातचीत करने से तो युद्ध में ही उतर जाना बेहतर है।

ऐसी ही भावदशा हुई होगी। तो उसने कहा कि मेरे सब संदेह गिर गए। एकदम से सब संदेह गिर गए! इतनी देर तक नहीं गिरे और फिर एकदम से गिर गए! कोई आसार भी नहीं थे गिरने के। और कृष्ण ने कोई ऐसी बात भी नहीं कह दी थी नई जिसमें गिर गए हों। वे तो पहले से वही बात कह रहे थे, बार-बार वही बात कह रहे थे। इधर से, उधर से, हर तरफ से वही बात कह रहे थे।

गीता में एक ही बात तो दोहराई गई है—फलाकांक्षा छोड़ दे! फलाकांक्षा छोड़ दे! समर्पण कर! और क्या है? एक छोटे से शब्द 'समर्पण' में पूरी गीता आ जाती है। सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। आ जा मेरी शरण। छोड़ सब। कितनी बार तो कहा था, समझ में नहीं आया। फिर एकदम से आ गया।

संभावना इसी बात की है कि अर्जुन थक गया। जागा नहीं, थक गया। उसने कहा, अब और हुज्जत करने से कोई सार नहीं है। और भीड़ भी लग गई होगी। युद्ध का मौका था। चारों तरफ लाग खड़े थे। भीड़ लग गई होगी। और उसको भीतर-भीतर दिक्कत होने लगी होगी कि अब कब तक मैं प्रश्न पूछूं! लोग क्या कहेंगे—कैसा जड़बुद्धि है! और देर भी होने लगी होगी, इतनी लंबी गीता, तुम सोचो! अठारह अक्षौहिणी सेना खड़ी है। बैंड बज चुके हैं, बाजे बज चुके हैं, शंख-नाद हो चुके हैं। योद्धा मरने-मारने को तत्पर हैं। मरने-मारने में ऐसा रस है कि लोग अपने तीर चढ़ाए खड़े होंगे। तलवारें निकाल ली होंगी। और इतनी देर हुई जा रही है। तालें ठोंक रहे हैं और देर हुई जा रही है। नगाड़े बज रहे हैं और मल्लयुद्ध की तैयारी हो गई है। और यह अर्जुन व्यर्थ के प्रश्न पूछे जा रहा है। भीड़ लग गई होगी। लोगों में खुसर-फुसर होने लगी होगी कि हद हो गई! इसको इतना बुद्धू कभी नहीं समझा था! उसने देखी होगी कि हालत बिगड़ती जाती है, इससे लड़ लेना ही बेहतर है। इस बात की ही संभावना है कि थक कर उसने कह दिया कि मेरे सब भ्रम गिर गए।

क्यों कहता हूं कि इस बात की संभावना है? क्योंकि इतिहास नहीं कहता कि अर्जुन कभी भी बुद्धपुरुष बना। अगर सारे संदेह गिर गए होते तो अर्जुन की गिनती भी अवतारों में होती, बुद्धपुरुषों में होती। वह तो नहीं। सच तो यह है कि अंतिम यात्रा में जब स्वर्ग की ओर चले पांडव, तो सारे भाई धीरे-धीरे गल गए, अर्जुन भी गल गया। युधिष्ठिर जब मोक्ष के

द्वार पर पहुंचे तो सिर्फ उनका कुत्ता साथ था, और कोई भी नहीं। सब रास्ते में गल गए, मोक्ष तक कोई भी नहीं पहुंच पाया। अगर अर्जुन के सारे संदेह गिर गए थे तो फिर यह महाभारत की कथा कि मोक्ष की यात्रा में सब बीच में गल गए और मोक्ष तक केवल युधिष्ठिर पहुंचे और उनका कुत्ता पहुंचा...।

शायद कुत्ता ही अकेला था जो निःसंदिग्ध श्रद्धापूर्ण था, जिसकी श्रद्धा में कोई संदेह नहीं था। और इसलिए युधिष्ठिर ने मोक्ष में प्रवेश करने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा: पहले मेरा कुत्ता प्रवेश करे तो मैं प्रवेश करूं। जिसकी इतनी श्रद्धा कि जब मेरे सब भाई गल गए, मेरी पत्नी गल गई, संगी-साथी गल गए, कोई यहां तक नहीं पहुंच पाया, सब नीचे ही छूट गए, सबके पड़ाव आ गए और रुक गए—और मेरा कुत्ता भर मेरे साथ आया!

उसकी श्रद्धा रही होगी असंदिग्ध। उस कुत्ते को कहा जा सकता है कि वह बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ। अर्जुन को तो नहीं कहा जा सकता।

कृष्ण जैसे व्यक्ति का साथ हो, तब भी कहां सत्संग हो पाता है!

मुग़बचे हैं मुतहैय्यर, मुतबस्सिम साकी
पीने वाले तुझे पीने का न अंदाज आया

पिलाने वाले आते रहे, आते रहे—पैगंबर, तीर्थंकर, मसीहा—पिलाने वाले आते रहे। और तुम हो कि बैठे हो, पीते ही नहीं।

लेके खुद पीरेमुग़ां हाथ में मीना आया
मैंकशो! शर्म कि इस पर भी न पीना आया

खुद परमात्मा भी बहुत बार लेकर सुराही आ गया है।

लेके खुद पीरेमुग़ां हाथ में मीना आया
मैंकशो! शर्म कि इस पर भी न पीना आया

कैसे मैकश हो? कैसे पियक्कड़ हो? परमात्मा भी सामने खड़ा हो तो भी तुम झिझकते हो पीने से। तुम हजार-हजार तर्क खड़े कर लेते हो न पीने के लिए। तुम बड़े-बड़े संदेह कर लेते हो न पीने के लिए। तुम बड़े सिद्धांतों के जाल रच लेते हो न पीने के लिए।

पियक्कड़ होना, दिनेश, आसान नहीं है। बात तो ठीक है—

'रिंदों के लिए तो मयखाना काबे के बराबर होता है'

मगर रिंद तो होने चाहिए। रिंद हो तो मयखाना जरूर काबे के बराबर है। काबा क्या है फिर? लेकिन पियक्कड़ हो कोई। और—

'मुर्शिद की गली का हर फेरा इक हज के बराबर होता है'

सच है! लेकिन शिष्य कहां हैं? बहुत खोजो तो विद्यार्थी मिलते हैं।

विद्यार्थी का मतलब होता है: जो सूचनाएं संगृहीत करने में उत्सुक है। शिष्य का अर्थ होता है: जो ज्ञान की ज्योति बनने के लिए आतुर है। परमात्मा के संबंध में जो जानना चाहता है वह विद्यार्थी। और परमात्मा को जो जानना चाहता है वह शिष्य। मगर परमात्मा के संबंध में जानना बहुत आसान है; परमात्मा को जानना बहुत कठिन है। परमात्मा को जानने वाले को तो अपने को गंवाना होता है, खोना होता है। और जो अपने को खोता है उसे तो लोग पागल समझते हैं। यहां बुद्धिमान तो विद्यार्थी होने पर रुक जाते हैं। यहां तो दीवाने ही जाते हैं

परमात्मा को जानने को। क्योंकि परमात्मा को जानने का असली अर्थ होता है परमात्मा हो जाना। जिसने उसे जाना, वह वही हो गया। बूंद सागर को तभी जानेगी जब सागर में गिर जाए और सागर हो जाए।

जब अहले-होश कहते हैं अफसाना आपका
सुनता हूँ और हंसता हूँ दीवाना आपका

वे जो बुद्धिमान हैं, वे जो परमात्मा की बात करते हैं, तो जो परमात्मा के दीवाने हैं, जो जानने वाले हैं, वे हंसते हैं। पंडितों की बात सुन कर परमहंस हंसते हैं।

जब अहले-होश कहते हैं अफसाना आपका

क्योंकि उन्हें कहानी आपकी पता ही नहीं है और कहे जा रहे हैं। राम-कथा कहने वाले कितने लोग हैं, राम को कौन जानता है? और राम को बिना जाने तुम कितनी ही राम-कथा कहो, और कितनी ही कुशलता से कहो, कितनी ही सुसंबद्ध तुम्हारी तर्क-सरणी हो, मगर राम को बिना जाने राम-कथा कहोगे, तो दीवाने हंसेंगे।

और दीवानों के हंसने के पीछे राज है। वे हंसते हैं इसलिए कि तुम्हें जिसका पता नहीं है, उसकी बातें कर रहे हो! जिसकी तुम्हें कोई खबर नहीं है, जिसका तुम्हें सपने में भी कभी प्रतिबिंब नहीं मिला, उसकी बातें कर रहे हो!

औरों की बातें छोड़ो, अभी कुछ दिन पहले मोरारजी देसाई ने अहमदाबाद में रामायण पर प्रवचन दिए! अलीगढ़ में मुसलमान जलाए जाते रहे और मारे जाते रहे। उसी वक्त! और मोरारजी देसाई रामायण की कथा करते रहे अहमदाबाद में। यह भी खूब रही! और मोरारजी देसाई को रामायण से क्या लेना-देना है?

मगर राजनेता हर तरह के इंतजाम करता है! हिंदू इससे खुश होते हैं तो चलो रामायण; चलो इससे वोट मिलती है तो रामायण। मुसलमान की वोट लेना हो तो अल्ला-ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान। सन्मति का मतलब होता है—मुझे वोट देना। किसी और को दी, तो वह सन्मति नहीं है।

ये बातें...जिन्होंने परमात्मा का थोड़ा सा स्वाद लिया है, उन्हें बड़ी हंसी आएगी। मोरारजी देसाई रामायण पर बोल रहे हैं, यह देख कर कोई परमहंस न हंसेगा क्या? बहुत हंसी आएगी। यह तो खूब मजा हो गया। ये तो अंधे प्रकाश पर प्रवचन दे रहे हैं। ये बहरे शास्त्रीय संगीत की आलोचना कर रहे हैं, समालोचना कर रहे हैं, विश्लेषण कर रहे हैं। जिन्होंने कभी प्रेम नहीं जाना, वे प्रेम के काव्य लिख रहे हैं, महाकाव्य लिख रहे हैं। इनकी सब बातें व्यर्थ होंगी, दो कौड़ी की होंगी। मगर इनकी बातें भी चल जाती हैं, क्योंकि बाकी भी अंधे हैं। तो अंधों में अंधों की चल जाती है।

सच तो यह है कि अंधों में आंख वाले की चलना मुश्किल हो जाती है। क्योंकि आंख वाला जो कहता है, अंधे कैसे उससे राजी हों? अंधा जब कोई कुछ कहता है तो अंधे राजी हो जाते हैं, क्योंकि उनका भी अनुभव वही है। तालमेल बैठ जाता है। अंधे अंधों में बड़ा संबंध हो जाता है।

राजनीति अंधों के द्वारा अंधों को मार्गदर्शन देने का ही नाम है; और धर्म आंख वालों के द्वारा अंधों को। लेकिन हर धार्मिक व्यक्ति को अड़चन आ जाती है, क्योंकि अंधे नाराज होते

हैं। उनकी धारणाएं टूटती हैं, उनकी मान्यताएं टूटती हैं। और उनका अहंकार टूटता है, यह बात जान कर कि हम अंधे हैं।

और अंधों की भीड़ है, अगर लोकतांत्रिक ढंग से निर्णय करना हो तो जो अंधे कहें वही सच है। आंख वाले तो कभी-कभार होते हैं। आंख वालों के लिए तो पियक्कड़ होना जरूरी है, शिष्य होना जरूरी है, तभी आंख खुलेगी।

सागर हमारा, मीना हमारा
जन्नत हमारी, तोबा हमारा
दाता के दर से लेकर फिरेंगे
भर देगा इक दिन कासा हमारा
मय पे किसी को, खुम पे किसी को
साकी पे अपने दावा हमारा

वह जो पियक्कड़ है, वह कहता है : हमें कोई शराब का भी दावा नहीं है, सुराही का भी दावा नहीं है, प्याले का भी दावा नहीं है। इन छोटी-मोटी बातों की हम फिक्र नहीं करते। हमने तो साकी पर दावा कर लिया है। हमने तो मालिक पर दावा कर लिया है। और उसको पा लिया तो सब पा लिया।

मय पे किसी को, खुम पे किसी को
साकी पे अपने दावा हमारा

भक्त तो भगवान पर दावा कर लेता है। भक्त तो भगवान का दावेदार है। और सब उसका है; इसलिए भगवान का जिसने हाथ पकड़ लिया, सारे संसार का साम्राज्य उसका है। फिर तो उसके इशारे पर हवाएं चलने लगती हैं और उसके इशारे पर फूल खिलने लगते हैं।

असर देखो जरा लगजिश में 'या साकी' के कहने का
फरिश्ते दौड़ कर बाजू हमारा थाम लेते हैं

वह तो जब भी कहता है या मालिक! या साकी! जब भी याद कर लेता है परमात्मा को...

असर देखो जरा लगजिश में 'या साकी' के कहने का

कभी लड़खड़ाता है, कभी पैर डगमगाते हैं, और डगमगाते हैं बहुत। क्योंकि जो पीएगा उसके डगमगाएंगे।

असर देखो जरा लगजिश में 'या साकी' के कहने का
फरिश्ते दौड़ कर बाजू हमारा थाम लेते हैं

फिर तो सारा अस्तित्व उसे थामता है। देवदूत दौड़-दौड़ कर उसके बाजू थाम लेते हैं। पीने वाला गिरता ही नहीं। भीतर की शराब की बात कर रहा हूं। तुम भूल कर बाहर की शराब की बात मत समझ लेना। पीने वाले लड़खड़ाते तो हैं, मगर गिरते नहीं। उनका लड़खड़ाना भी एक भांति का नृत्य है। उनका लड़खड़ाना भी एक आनंद-उत्सव है।

दिनेश, बात तो यही है—

'रिंदों के लिए तो मयखाना काबे के बराबर होता है
मुर्शिद की गली का हर फेरा इक हज के बराबर होता है'

तीसरा प्रश्नः प्यारे प्रभु!

यह तन-मन-जीवन सुलग उठे
कोई ऐसी आग लगाए है—कोई ऐसी आग लगाए है
प्रेम पथ पर चला है राही
मारग चला नहीं जाता
हाथ पकड़ कर मुझ अंधे को
हरि की ओर झुकाए है
कोई ऐसी आग लगाए है!

तरु! इसके पहले कि हम परमात्मा को खोजें, परमात्मा हमें खोज रहा है। इसके पहले कि हम उसे पुकारें, उसने हमें पुकार दे ही दी है। पुकार ही रहा है अनंत काल से!

सच तो यह है, जानने वालों का कहना यह है कि जब भी कोई व्यक्ति परमात्मा को खोजने निकलता है, उसका अर्थ केवल इतना ही है कि परमात्मा ने उस व्यक्ति को खोज लिया है। जब भी कोई उसकी तलाश में निकलता है, उसका अर्थ इतना ही है कि परमात्मा ने कहीं किसी गहरे में उसके हृदय पर अपना हाथ रख ही दिया है।

हमारी खोज भी तो छोटी सी होगी। हमारी छोटी सी खोज उस विराट को कैसे पा सकती है? और हमारी खोज भी तो अंधी होगी, अज्ञान की होगी। अज्ञान की खोज की निष्पत्ति ज्ञान में कैसे हो सकती है? अंधे की खोज की निष्पत्ति किसी गड्ढे में, किसी खाई में गिरने में तो हो सकती है; मंजिल पर पहुंचने में कैसे हो सकती है?

जरूर जो पहुंचते हैं, उसके सहारे ही पहुंचते हैं। वही पहुंचाता है तो पहुंचते हैं। वही सम्हालता है तो सम्हलते हैं। यही तो भक्ति-शास्त्र की मौलिक मान्यता है, धारणा है, उसकी आधारशिला है कि हमारे किए कुछ भी न होगा। वही कुछ करेगा तो होगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम काहिल और सुस्त हो जाएं और बैठ जाएं और कुछ न करें। नहीं; जो हम से बन सके, हम जरूर करें। लेकिन यह भी याद रखें कि हमारा प्रयास हमारा ही प्रयास है छोटा सा। हमारा प्रयास इतना ही कर सकता है कि उसके बढ़े हुए हाथ को, जो हमारे हृदय को छू रहा है, हमें पहचनवा दे।

छोटा बच्चा रोता है मां के लिए। रोने से कोई मां के आने का कार्य-कारण का संबंध नहीं है। कोई रोने के कारण मां को आना ही चाहिए, ऐसी अनिवार्यता नहीं है। लेकिन बच्चा रोता है तो मां के आने की सुगमता हो जाती है। बच्चा यह सोचे कि मेरे रोने से तो आने का कोई कार्य-कारण का संबंध नहीं है, तो रोकर क्या करूं, चुपचाप पड़ा रहूं! तो शायद मां को दौड़ने का अवसर ही न आएगा। बच्चा रोए भी और जानना चाहिए कि रोने भर से उसके आने की कोई अनिवार्यता नहीं है। कोई ऐसा नहीं है कि सौ डिग्री तक पानी गरम किया तो भाप बनना ही चाहिए। बने तो कार्य-कारण। और कभी बने, कभी न बने, तो उससे बात जाहिर हो जाती है कि कार्य-कारण का संबंध नहीं है।

तुम रोओ तो परमात्मा आता है, लेकिन अनिवार्यता नहीं है। क्योंकि तुम्हारे रोने में अगर हृदय न हो, अगर अनौपचारिक प्रेम न हो, अगर समग्र समर्पण न हो—तो तुम्हारा

रोना ऊपर-ऊपर होता है। वह आवाज दूर-दूर तक आकाश तक पहुंच ही नहीं पाती। वह रोना इतना उथला होता है कि तुम्हारे ही अंतस्तल तक नहीं पहुंच पाता। लेकिन अगर तुम प्राणपण से रोओ तो एक बात समझ में आनी शुरू हो जाती है—कि मैंने रोना शुरू किया, उसके पहले उसका हाथ आ गया है।

शायद तेरी मोहब्बत कोई चुरा रहा हूँ
बन कर निशात रूहे-महजूं पे छा रहा हूँ
रूहे-तरब की सूरत गम में समा रहा हूँ
अश्कों में मुस्कुरा कर आहों में गा रहा हूँ
शायद तेरी मोहब्बत कोई चुरा रहा हूँ

बेसम्त-ओ-बेजिहत इक आलम हूँ और मैं हूं
इक सिहर, इक फजा-ए-मुबहम हूँ और मैं हूं
जैसे बगैर भूले कुछ याद आ रहा हूँ
शायद तेरी मोहब्बत कोई चुरा रहा हूँ

रातों को नींद बन कर छिपता हुआ नजर से
दिल में मेरे समाने आंखों की रहगुजर से
मुझको सुला-सुला कर ख्वाबों में आ रहा हूँ
शायद तेरी मोहब्बत कोई चुरा रहा हूँ

जिस तरह दोस्त गुजरे दीवानावार कोई
और फिर उसे पुकारे बेइख्तियार कोई
मेरे करीब होकर इस तरह जा रहा हूँ
शायद तेरी मोहब्बत कोई चुरा रहा हूँ

छेड़ा हूँ साजे-माहे-कामिल फलक पे जाकर
मसहूर कर रहा हूँ, किरनों की लय में गाकर
बेसौत-ओ-बेसदा इक नगमा सुना रहा हूँ
शायद तेरी मोहब्बत कोई चुरा रहा हूँ

तरु! कोई हृदय को चुराने आ गया है! इसलिए तो हमने भगवान को एक नाम दिया: हरि। हरि का अर्थ होता है: जो हृदय को चुरा ले, हरण कर ले। हरि का अर्थ होता है चोर। दुनिया की किसी भाषा में ऐसा प्यारा शब्द भगवान को नहीं दिया गया। बड़े ऊंचे-ऊंचे शब्द दिए गए हैं—राम, रहीम, रहमान, अल्लाह, जिहोवा—सब बड़े-बड़े शब्द हैं। किसी का अर्थ होता है महाकरुणावान। किसी का अर्थ होता है महादानी। किसी का अर्थ होता है

महास्रष्टा। लेकिन हमने जो शब्द दिया है उसका कोई मुकाबला नहीं! हरि जैसा कोई शब्द दुनिया में नहीं है। हरि का अर्थ होता है चोर, जो चुरा ही ले जाए! तुम बचाए रहो, बचाए रहो, बचाए रहो, जिंदगी-जिंदगी, मगर एक दिन वह चुरा ही ले जाएगा।

शायद तेरी मोहब्बत कोई चुरा रहा हूँ

और जब हरि चुराने आए तो बाधा न डालना। बस इतना ही भक्त को करना है। अड़चन न डालना। द्वार-दरवाजे खुले छोड़ देना। चोर जब आए तो अतिथि मानना, स्वागत करना, बंदनवार सजाना। चोर जब आए तो अपने हृदय को खुद ही उसके चरणों में रख देना। इतनी ही तो भक्त की कला है।

छेड़ा हूँ साजे-माहे-कामिल फलक पे जाकर

यह चांद-तारों में किसका गीत गूंज रहा है? यह कौन बांसुरी बजा रहा है चांद-तारों में? यह कौन सितार छेड़ दिया है?

छेड़ा हूँ साजे-माहे-कामिल फलक पे जाकर

यह पूरे चांद में किसकी वीणा बज रही है?

छेड़ा हूँ साजे-माहे-कामिल फलक पे जाकर
मसहूर कर रहा हूँ, किरनों की लय में गाकर

एक-एक किरण उसकी बांसुरी की आवाज है।

बेसौंत-ओ-बेसदा...

और ऐसी आवाज जो ध्वनि-विहीन है—अनाहत। जिसमें कोई शोरगुल नहीं है। जो शून्य है। शून्य संगीत!

बेसौंत-ओ-बेसदा इक नगमा सुना रहा हूँ
शायद तेरी मोहब्बत कोई चुरा रहा हूँ
बन कर निशात रूहे-मजनूं पे छा रहा हूँ
रूहे-तरब की सूरत गम में समा रहा हूँ
अश्कों में मुस्कुरा कर आहों में गा रहा हूँ
शायद तेरी मोहब्बत कोई चुरा रहा हूँ

तरु! चुरा लेने देना। बाधा न डालना, रुकावट न डालना। यह चोर नहीं है, यह मित्र है। यह चोरी नहीं है, क्योंकि इस चोरी में केवल तुम्हारे बंधन और तुम्हारी जंजीरें चुराई जाएंगी। इस चोरी में केवल तुम्हारा कारागृह तोड़ा जाएगा। इस चोरी में कैद तो मिटेगी, मुक्ति उपलब्ध होती है।

चौथा प्रश्न : प्रभु, तेरो नाम
जो ध्यायो सब पायो
सुख लायो तेरो नाम!

जब से तेरी मरजी पर सब छोड़ा है, तब से जो कुछ हो रहा है, इससे 'गुणा' आश्चर्य-विमुग्ध है।

गुणा! जो भी छोड़ता है, वही चकित होता है। क्योंकि कर-कर के जो नहीं हो पाया, वह छोड़ने से होता है। अपने से जो नहीं हो पाया, जब हम थक कर असहाय उसके चरणों में गिर जाते हैं, तत्क्षण हो जाता है।

कुछ चीजें हैं जो करने से होती हैं। वे सब छोटी-छोटी चीजें हैं। हमारा करना ही बहुत छोटा-छोटा है। हमारे हाथ कितने बड़े हैं? हां, रेत भरनी हो तो इस हाथ में भरी जा सकती है। कंकड़-पत्थर उठाने हों तो उठाए जा सकते हैं। चांद-तारे तो नहीं। हाथ की सामर्थ्य कितनी है? सागर तो इन चुल्लुओं में नहीं भरे जा सकते। और परमात्मा सागर है, परमात्मा विस्तीर्ण है। इसलिए तो हमने उसे ब्रह्म कहा। ब्रह्म का अर्थ होता है: जो फैलता ही चला जाता है।

तुम जान कर चकित होओगे: आधुनिक भौतिकी इस सिद्धांत को अभी-अभी खोजी है कि जगत रोज-रोज विस्तीर्ण हो रहा है। यह जो विश्व है, एक्सपैंडिंग है, यह विस्तीर्ण होता विश्व है। यह वैसे ही का वैसा नहीं है, यह फैल रहा है। और बड़ी तेजी से फैल रहा है! यह फैलता ही चला जा रहा है। ये चांद-तारे तुमसे रोज दूर होते चले जा रहे हैं—बड़ी तीव्र गति से! प्रकाश की गति से अस्तित्व फैल रहा है।

प्रकाश की गति बहुत है। एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील। जो तारा तुम देख रहे हो रात में, वह प्रति सेकेंड एक लाख छियासी हजार मील तुमसे दूर होता जा रहा है। उसकी अत्यधिक गति के कारण ही तो तुम्हें झिलमिलाहट मालूम होती है। तारे जो झिलमिलाते मालूम होते हैं, वह इसीलिए कि वे इतनी तेजी से भाग रहे हैं...ठहरे ही नहीं हैं। ठहरे होते तो झिलमिलाहट नहीं होती। सारा अस्तित्व फैलता जा रहा है।

यह तो अभी खोजा भौतिक शास्त्रियों ने। लेकिन इस देश में हमने करीब दस हजार साल से परमात्मा को नाम दिया है—ब्रह्म। अगर ब्रह्म का ठीक-ठीक अंग्रेजी में अनुवाद करो तो एक्सपैंशन होगा—जो फैल रहा है। ब्रह्म से ही शब्द बना है—विस्तार, विस्तीर्ण, वृहत्। जो बड़ा होता जा रहा है, वही ब्रह्म।

इस जगत को हम ब्रह्मांड कहते हैं। यह उसका प्रकट रूप है। इस विराट को कैसे हम आदमी की छोटी-छोटी मुट्ठियों में भरेंगे? यह तो मुट्ठी खोल कर पाया जाता है, मुट्ठी बांध कर नहीं पाया जाता। और मुट्ठी खोलने का अर्थ है समर्पण।

तू ठीक कहती है गुणा—

'प्रभु, तेरो नाम
जो ध्यायो सब पायो
सुख लाओ तेरो नाम!

जब से तेरी मर्जी पर सब छोड़ा, तब से जो कुछ हो रहा है इससे गुणा आश्चर्य-विमुग्ध है।'

जो भी छोड़ेगा उसकी मर्जी पर वह आश्चर्य-विमुग्ध हो जाएगा। एक घर छूटता है, सारे घर अपने हो जाते हैं। एक आंगन छूटता है, सारे आकाश अपने हो जाते हैं। एक बूंद छूटती है, सारे सागर अपने हो जाते हैं। और सबसे बड़ा आश्चर्य जो घटता है वह यह: अतीत खो जाता है, भविष्य खो जाता है, वर्तमान में थिरता हो जाती है।

हमारी भविष्य की इतनी चिंता क्या है? क्योंकि अपने सिर पर उठाए हैं—यह करना, यह करना; ऐसा करना; ऐसा हो पाएगा कि नहीं हो पाएगा! हजार चिंताएं, दुश्चिंताएं मन को घेरती हैं—सफलता मिलेगी या नहीं? मेरी आकांक्षाएं पूर्ण हो पाएंगी या नहीं? संभावना तो बहुत कम लगती है कि आकांक्षाएं पूर्ण हों, क्योंकि कभी किसी की नहीं हुईं। तुम अपवाद नहीं हो सकते हो। इसलिए डर भी लगता है, पैर भी कंपते हैं, प्राण भी कंपते हैं। भीतर आदमी भयभीत रहता है। सब तरह की योजनाएं बनाता है, सब तरह के जाल रचता है, विचार खोजता है—और फिर भी हारता है, फिर भी टूटता है!

चिंता का अर्थ होता है: भविष्य मेरे अनुकूल हो सकेगा या नहीं? और चिंता का यह भी अर्थ होता है कि अतीत जैसा हुआ, काश, वैसा न होता! अतीत के संबंध में भी लोग चिंता करते हैं कि कल मैंने जो ऐसा काम किया, अगर न करता।

अब हद्द हो गई मूढ़ता की! जो हो गया सो हो गया; अब उसे अनकिया नहीं किया जा सकता। अब कोई उपाय नहीं है। मगर लोग बैठ कर सिर धुनते हैं—कि मैंने यह बात न कही होती! कि मैंने यह काम न किया होता! लोग बड़ा पश्चात्ताप करते हैं। और इन पश्चात्ताप करने वाले लोगों को तुम धार्मिक भी कहते हो। धार्मिक और पश्चात्ताप! तब तो धार्मिकता मूढ़ता का ही दूसरा नाम होगा। धार्मिक पश्चात्ताप नहीं करता। पश्चात्ताप का तो अर्थ ही यह है कि जो मैंने किया वैसा न करता; ऐसा न होता, वैसा होता। मगर जो हो गया, हो गया; उससे अन्यथा अब कुछ हो नहीं सकता।

धार्मिक व्यक्ति वह है जो अतीत को ऐसे छोड़ देता है, जैसे सांप अपनी केंचुली को छोड़ देता है, पीछे लौट कर भी नहीं देखता। पश्चात्ताप धार्मिक नहीं है। पश्चात्ताप तो मन का ही उपद्रव है। पश्चात्ताप पीछे की तरफ मन का उपद्रव है और चिंता भविष्य की तरफ मन का उपद्रव है। और जिसने सब परमात्मा पर छोड़ दिया उसको क्या होता है? वह कहता है: परमात्मा ने जैसा करवाया वैसा हुआ। और परमात्मा जैसा कल करवाएगा वैसा होगा। मैं क्यों बीच में आऊं? जिसने सब परमात्मा पर छोड़ दिया, उसकी चिंता गई, उसका पश्चात्ताप गया। और जहां चिंता नहीं, पश्चात्ताप नहीं, वहां अतीत नहीं, भविष्य नहीं; वहां समय मिट जाता है। और समय का मिट जाना ही शाश्वत की उपलब्धि है। समय का शून्य हो जाना ही शाश्वत में प्रवेश है। उस प्रवेश का द्वार वर्तमान का क्षण है। जहां अतीत नहीं, भविष्य नहीं, वहां वर्तमान का क्षण अपने द्वार खोल देता है।

तुम वर्तमान में कभी होते ही नहीं। वर्तमान में तो सिर्फ भक्त ही हो सकता है। क्योंकि भक्त को कोई चिंता ही नहीं है। मारेगा तो मरेंगे। जिलाएगा तो जीएंगे। उसके हाथ से मरने में भी मजा है और उसके हाथ से जीने में भी मजा है। हाथ उसके हैं! मरने और जीने की किसको फिक्र है? गर्दन काटेगा तो वही काटेगा। अगर वही काटने वाला है तो मजा ही मजा है। और कल अगर उसने गलत करवा लिया था, उसकी मौज। उसका कोई प्रयोजन होगा। और ठीक करवा लिया था तो उसकी मौज। उसका कुछ प्रयोजन होगा।

न तो भक्त ठीक करने का अहंकार लेता है और न गलत करने का अपराध-भाव लेता है। भक्त बड़ी अदभुत दशा है। न ठीक करने का अहंकार—कि मैंने ऐसा किया, कि मैंने वैसा किया! कि इतना दान किया, इतना पुण्य किया, इतने उपवास किए, इतने व्रत किए!

भक्त यह करता ही नहीं। भक्त कहता है: कर्ता मैं हूं ही नहीं। कर्ता एक है। उसने जो करवाया वह किया। कभी उपवास करवाए तो उपवास किए और कभी व्रत करवाए तो व्रत किए। मैं कौन हूं? भक्त के लिए न कोई पुण्य है, न कुछ पाप है।

अनूठी कहानी है। कबीर के घर सुबह-सुबह बहुत लोग आते थे भजन-कीर्तन को। और जब वे जाने लगते तो कबीर कहते: अरे भाई, जाते कहां हो, भोजन तो कर जाओ! वह भीड़-भड़क्का रोज भोजन करती। कबीर गरीब आदमी, जुलाहे, किसी तरह कपड़ा बुन-बुना कर बेचते। इतने लोगों को रोज भोजन कहां से करवाएं? पत्नी परेशान, बेटा परेशान। आखिर बेटे ने एक दिन कहा कि बहुत हो गया। अब यह बंद करो। हम कहां से लाएं? अब तो गांव में कोई उधार देने को भी राजी नहीं है। बेटे ने क्रोध में कहा कि क्या हम चोरी करने लगें?

कबीर तो गदगद हो गए। उन्होंने कहा: अरे तो नासमझ, पहले क्यों नहीं बताया? इतने दिन से परेशान हो रहा था, पहले क्यों नहीं कहा?

कमाल तो बहुत हैरान हुआ—कबीर का बेटा, उसका नाम था कमाल—वह तो बड़ा ही हैरान हुआ कि ये क्या कह रहे हैं! समझे भी मेरी बात कि नहीं? उसने कहा: आप समझे भी कि नहीं, मैं कह रहा हूं—क्या चोरी करने लगें?

कबीर ने कहा: तो यह पहले ही सोचना था न! बेटा, इतने दिन तक क्यों उधार मांगता रहा? जब यह तरकीब भी है!

कमाल भी था तो कबीर का ही बेटा। उसने कहा: अच्छा तो ठीक है। तुम मजाक समझ रहे हो? तुम मजाक कर रहे हो? आज ही रात!

जिद्दी था बेटा भी। रात चलने लगा तो उसने कबीर से कहा: आप भी चलिए।...चोरी करने जा रहा है।...आप भी चलिए। क्योंकि अकेले मैं कितना ला सकूंगा? बनिए की दुकान में सेंध लगाएंगे, गेहूं का एक बोरा खींच लाएंगे। फिर खिलाओ जितने दिन तक खिलाना है लोगों को। फिर देखेंगे जब दुबारा मौका आएगा।

सोचा था, कबीर अब बात बदल देंगे, कहेंगे कि मैं तो मजाक कर रहा था। मगर कबीर उठ कर खड़े हो गए कि चल! जैसे मंदिर पूजा करने जा रहे हों! चल!

अब तो कमाल के भी पैर लड़खड़ाने लगे। मगर उसने भी कहा कि तर्क को आखिर तक खींचना जरूरी है। बात तो पूरी पक्की पता चल जाए कि कहां तक जा सकती है बात। सेंध लगाने लगा और कबीर खड़े देखते रहे, तब भी नहीं रोका। सोचा था कि जब सेंध लगाने लगूंगा, तब कहेंगे कि अरे, नासमझ! मजाक भी नहीं समझता? सेंध भी लग गई, बेटे ने सोचा, शायद अब कहें, अब कहें। मगर कबीर चुप ही खड़े हैं। बेटा सेंध लगा कर बैठा है। कबीर ने कहा: अब तू क्या कर रहा है? अब जाता क्यों नहीं भीतर?

उस बेटे ने सिर से हाथ मार लिया कि हद्द हो गई! यह तो दिखता है चोरी करवा कर रहेंगे। यह किस तरह की बात हुई!

यह बड़ी अनूठी घटना है कबीर के जीवन में। बेटा भीतर गया, आखिर कबीर का ही बेटा था, उसने कहा कि मैं भी कुछ हारने वाला नहीं, बात को आखिर तक ही ले जाना पड़ेगा, मगर निर्णय होना ही चाहिए। वह एक बोरा किसी तरह खींच-खांच कर लाया। सोचा कि शायद अब कहेंगे कि अब बस, बहुत हो गया, अब चल घर, छोड़ दे बोरा वहीं। कबीर ने

कुछ कहा तो बेटे ने समझा कि अब शायद कह रहे हैं। लेकिन कबीर ने यह कहा कि जाकर घर के लोगों को तो जगा दे कि चोरी हो गई, कि कोई तुम्हारा बोरा लिए जा रहा है। इतना तो अपना कर्तव्य है कि घर के लोगों को जगा दें। फिर उसकी मर्जी, फिर जो हो सो हो।

तो उसने कहा: यह भी खूब चोरी रही! यह पहले ही क्यों नहीं आपने कहा कि घर के लोगों को जगाना पड़ेगा?

इतना तो करना पड़ेगा। घर के लोग सोए हैं, उनको बेचारों को पता ही नहीं कि क्या हो रहा है, कि भगवान हम से क्या करवा रहा है! इतना तो हम कर सकते हैं कि घर के लोगों को जगा दें। फिर जो उसकी मर्जी।

भक्त की ऐसी दशा है—जो उसकी मर्जी। भक्त शुद्ध वर्तमान में ठहर जाता है; न उसे पाप है कुछ, न पुण्य है कुछ। यह बड़ी ऊंची बात है। यह द्वंद्वातीत बात है। यह अतिक्रमण है सारे भेदों का। इस दशा में वर्तमान का क्षण सब कुछ होता है—न पश्चात्ताप है, न पुण्य का दर्प है।

शरद चांदनी
बरसी
अंजुरी भर कर पी लो
ऊंघ रहे हैं तारे
सिहरी सरसी
ओ प्रिय कुमुद ताकते
अनझिप
क्षण में
तुम भी जी लो।

देखते हो, चांद-तारे अभी जी रहे हैं। फूल अभी खिल रहे हैं। नदियां अभी बह रही हैं। सागर अभी उत्ताल तरंगों से भरे हैं। हवाएं अभी गुजर रही हैं वृक्षों से। वृक्ष अभी हरे हैं। न तो वृक्षों को कल की कोई याद है, न आने वाले कल की कोई चिंता है। न चांद-तारों को कल का पता है, न आने वाले कल का कोई पता है। ऐसे ही तुम भी जी सकते हो। और ऐसे जीने का नाम ही धर्म है, ध्यान है।

शरद चांदनी
बरसी
अंजुरी भर कर पी लो
ऊंघ रहे हैं तारे
सिहरी सरसी
ओ प्रिय कुमुद ताकते
अनझिप
क्षण में
तुम भी जी लो।

सींच रही हैं ओस
हमारे गाने
घने कुहासे में
झिपते
चेहरे पहचाने
खंभों पर बत्तियां
खड़ी हैं सीठी
ठिठक गए हैं मानो
पल-छिन
आने-जाने
उठी ललक
हिय उमगा
अनकहनी
अलसानी
जगी लालसा
मीठी,
खड़े रहो ढिंग
गहो हाथ
पाहुन मन-भाने
ओ प्रिय रहो साथ
भर-भर कर अंजुरी
पी लो,
बरसी
शरद चांदनी
मेरा
अंतःस्पंदन
तुम भी क्षण-क्षण जी लो!
ओ प्रिय कुमुद ताकते
अनझिप
क्षण में
तुम भी जी लो।

समर्पण ले आता है तुम्हें क्षण में। चिंता गई, स्मृति गई, कल्पना गई। अचानक तुम पाते हो अपने को—अभी और यहां! और अभी और यहां परमात्मा है! अभी और यहां अस्तित्व है! उसी क्षण छलांग लग जाती है। अहंकार पाया ही नहीं जाता।

अहंकार जीता है अतीत में और भविष्य में। वर्तमान में उसकी मृत्यु हो जाती है।

वर्तमान अहंकार की मृत्यु है। और जहां अहंकार नहीं, वहां जो है, वही है। और तब बड़ा चकित हो उठता है हृदय। विस्मय-विमुग्ध, अवाक! आंखों पर भरोसा नहीं आता, कानों पर भरोसा नहीं आता। क्योंकि कान उन ध्वनियों को सुन लेते हैं जो ध्वनियां नहीं हैं। और आंख उस रूप को देख लेती है जो रूप में अटता नहीं है। और हृदय उस मेहमान को, उस पाहुन को पहचान लेते हैं, जो सदा-सदा से मौजूद था, न मालूम हम कैसे उसकी तरफ पीठ किए रहे! न मालूम हम कैसे अंधे थे, या कि आंखें बंद किए रहे! न मालूम हम कितनी गहन निद्रा में सोए थे!

पांचवां प्रश्न: उस परमप्रिय का निर्वचन क्यों नहीं हो सकता है? जिसका अनुभव हो सकता है, उसका निर्वचन क्यों नहीं?

यह बात महत्वपूर्ण है। नई नहीं है, बहुत पुरानी है। अति प्राचीन है यह प्रश्न। सदा-सदा पूछा गया है।

पश्चिम के एक आधुनिक दार्शनिक लुडविग विट्गिंस्टीन ने इस प्रश्न को बहुत प्रगाढ़ता से फिर इस सदी में उठाया था—कि जो अनुभव किया जा सकता है, वह निश्चित ही कहा जा सकता है। और जो कहा नहीं जा सकता, वह अनुभव ही नहीं किया गया होगा। लेकिन विट्गिंस्टीन सही नहीं है। ऐसे भी अनुभव हैं जो अनुभव तो होते हैं, मगर कहे नहीं जा सकते। शायद विट्गिंस्टीन ने किसी को कभी प्रेम नहीं किया। दार्शनिक-तार्किक करते भी नहीं। ऐसी झंझटों में पड़ते भी नहीं। शायद विट्गिंस्टीन ने कभी किसी को प्रेम नहीं किया, अन्यथा उसे पता चल जाता।

साधारण जीवन में भी एक स्त्री के तुम प्रेम में पड़ जाओ या एक पुरुष के, और उसे भी कहना मुश्किल हो जाता है। प्रेम क्या है, कौन कब कह पाया है! प्रार्थना तो और आगे की बात है। परमात्मा तो और-और आगे की बात है। लेकिन प्रेम को ही कौन कह पाता है! जिस स्त्री के सौंदर्य से तुम मुग्ध हुए हो, उसके सौंदर्य को शब्दों में कहां बांध पाते हो? एक स्त्री का—जो क्षणभंगुर है, जैसे तुम क्षणभंगुर हो; जो अभी है और कल नहीं हो जाएगी; और जिसका यौवन, जो आज बड़ा उद्दाम है और आज बड़ा प्रगाढ़ है, कल विदा हो जाएगा; पानी का बबूला है; पानी के बबूले पर चमक गई सूरज की किरण है; पानी के बबूले पर चमकी सूरज की किरण ने छोटा सा इंद्रधनुष पैदा कर दिया है—लेकिन नहीं, एक स्त्री का सौंदर्य भी कहां बंध पाता है शब्दों में! एक पुरुष का सौंदर्य कहां बंध पाता है शब्दों में!

छोड़ो स्त्री-पुरुष को। क्योंकि स्त्री-पुरुष फिर भी विकास का अंतिम चरण हैं। एक फूल का सौंदर्य कहां बंध पाता है शब्दों में! कौन कब कह पाया है? बड़े महाकवि टेनिसन ने कहा है: अगर एक फूल को मैं कह पाऊं पूरा का पूरा, तो उस फूल के कहने में ही सारे अस्तित्व के संबंध में वक्तव्य हो जाएगा। एक फूल को अगर कह पाऊं पूरा का पूरा—जितनी गंध उसकी, जितना रंग उसका, जितना रस उसका, जितना सौंदर्य उसका...। लेकिन कहां हम कह पाते हैं!

फिर जाने दो, फूल भी जरा रहस्यमय है। किसी ने तुम्हारे मुंह में बताशा रख दिया। उसकी मिठास कहां कह पाते हो! अनुभव तो होता है। और यह मत सोचना कि तुम कहने लगे मीठा-मीठा, तो तुमने कह दिया। कहने का मतलब यह होता है कि जिसने कभी मिठास नहीं देखी, उसको समझा पाओ, तब कहा। अगर बुद्ध कबीर से कहें और कबीर समझ जाएं, यह कोई कहना न हुआ। कबीर यारी से कहें और यारी समझ जाएं, यह कोई कहना न हुआ। आंख वाले आंख वालों से प्रकाश की बातें करें, यह कोई कहना न हुआ। कहने का तो मजा तब है जब आंख वाला बोले और अंधा समझे।

निर्वचन का क्या अर्थ होता है?

निर्वचन का अर्थ होता है—जिसने जाना वह बोले और जिसने नहीं जाना वह समझे, तो निर्वचन। तुम समझ लेते हो, किसी ने कहा मीठा, तुम समझ गए कि क्या अर्थ है। मगर कैसे समझे तुम? शब्द से समझे? मीठा शब्द ने तुम्हें कुछ मिठास दी? नहीं; तुमने भी बताशे खाए हैं। तुमने भी बताशों का स्वाद लिया है। सो तुम जानते हो कि मीठा शब्द का क्या अर्थ है। अर्थ शब्द में नहीं है, तुम्हारे अनुभव में है। इसलिए मीठा शब्द सार्थक मालूम होता है। लेकिन उस आदमी को कहो, जिसने मिठास जानी नहीं।

समझो, एक छोटा बच्चा पैदा हो, तभी हम उसकी जीभ में मिठास को अनुभव करने वाले जो तंतु हैं, उनको बिजली का शॉक देकर खत्म कर दें। यह बिलकुल आसान है, इसमें कुछ अड़चन नहीं है। पूरी जीभ मिठास का अनुभव नहीं करती। जीभ का कुछ हिस्सा है जो कड़वाहट का अनुभव करता है; कुछ हिस्सा है जो मिठास का अनुभव करता है; कुछ हिस्सा है जो खटास का अनुभव करता है। जीभ पूरी की पूरी सारे अनुभव नहीं करती।

इसलिए कभी तुम देखना, अगर कड़वी दवा तुम पीते हो या कड़वी दवा की गोली तुम खाते हो, तो तुम्हें चाहे खयाल में हो या न हो, कड़वी दवा की गोली जब भी कोई निगलता है तो उसे जीभ के बीच में रखता है। अब की दफा तुम खयाल करना। अनजाने ही करते रहे होओगे। जीभ के बीच में रखते हो, क्योंकि बीच में कड़वाहट का अनुभव नहीं होता। और फिर जल्दी से पानी गटक जाते हो। क्योंकि जीभ का जो आखिरी हिस्सा है, उसको अगर गोली छुए तो कड़वाहट का अनुभव होता है। वहीं कड़वाहट के तंतु हैं।

और ये तंतु तो बड़े सूक्ष्म हैं। ये बड़े जल्दी मारे जा सकते हैं। बुखार में मर जाते हैं, बिजली के शॉक की तो जरूरत क्या है! एक आठ-दस दिन बुखार आ गया, फिर स्वाद नहीं मालूम होता। क्योंकि वे तंतु बड़े सूक्ष्म हैं और नाजुक हैं।

हम एक बच्चे के साथ यह प्रयोग कर सकते हैं कि बच्चा पैदा हो, और उसके जितने तंतु हैं मिठास को अनुभव करने वाले, उनको हम साफ ही कर दें। उनकी प्लास्टिक सर्जरी कर दें। उनको निकाल कर अलग ही कर दें, जीभ को छील दें। फिर तुम कहना इससे कि बताशा मीठा है। वह कहेगा: कुछ और कहो, इतने से कुछ नहीं होता। मीठा यानी क्या? मीठे से तुम्हारा मतलब क्या है?

तुम भी बड़े हैरान होओगे कि अब मीठे से क्या मतलब बताना है। मीठा यानी मीठा! वह कहेगा: इससे कुछ हल नहीं होता। यह तो पुनरुक्ति है। मीठा यानी मीठा, इसमें क्या हल हुआ? जरा समझा कर बताओ।

क्या समझा कर बताओगे?

नहीं; अनुभव होते हैं और फिर भी निर्वचन नहीं हो पाता। और जिन अनुभवों का निर्वचन हो जाता है, उसका केवल इतना ही अर्थ है कि वे सामान्य अनुभव हैं, सभी को उनका अनुभव हो रहा है। लेकिन परमात्मा का अनुभव तो बड़ा असामान्य अनुभव है। कभी-कभार इक्के-दुक्के विरले व्यक्ति को होता है। उस विरले व्यक्ति की मुसीबत समझो। उसने जान लिया। लेकिन अब तुमसे कैसे कहे? गूंगे केरी सरकरा! बिलकुल गूंगा हो जाता है वैसा आदमी। और ऐसा भी नहीं है कि नहीं बोलता।

बुद्ध बयालीस वर्ष तक बोले, मगर ईश्वर के संबंध में एक शब्द न कहा। कहा ही नहीं। ईश्वर की बात ही बचाते रहे। तुम पूछो ईश्वर की, वे कुछ और ही उत्तर देंगे। तुम पूछो ईश्वर की, वे कहेंगे—ध्यान करो। अब यह कोई उत्तर हुआ? तुम भी कहोगे कि हम पूछते हैं—ईश्वर क्या? आप कहते हैं—ध्यान करो! हम पूछते हैं जमीन की, आप कहते हैं आसमान की; यह कोई उत्तर हुआ?

मगर बुद्ध भी क्या करें? बुद्ध इतना ही कह सकते हैं। तुम पूछते हो: बताशा कैसा? बुद्ध कहते हैं: बताशा खाओ। ध्यान यानी बताशा खाओ। बताशा चखो। उसी चखने से स्वाद मिलेगा। इस जीवन के साधारण अनुभव भी...किसी का सौंदर्य प्रकट नहीं हो पाता। तुमने अगर प्रेम किया हो तो तुम्हें थोड़ा अनुभव मिलेगा—उसका, जो अनिर्वचनीय है।

कितनी रंगीं है फजा, कितनी हसीं है दुनिया
कितना सरशार है जौके-चमनआराई आज
इस सलीके से सजाई गई बज्मे-गेती
तू भी दीवारे-अजंता से उतर आई आज

जब कोई किसी के प्रेम में पड़ता है तो उसे अनुभव होता है:

कितनी रंगीं है फजा, कितनी हसीं है दुनिया
कितना सरशार है जौके-चमनआराई आज

यही उद्यान, रोज तुम इससे गुजरते थे; और आज जब तुम्हारी आंखें प्रेम से भर गई हैं, तब तुम्हें लगेगा: कैसा उत्सव हो रहा है वृक्षों में आज! यही वातावरण सदा से था, लेकिन आज इसमें एक रसधार बहने लगेगी। यही दुनिया है और आज एकदम हसीन हो जाएगी—ऐसी हसीन कि कभी न थी।

कितनी रंगीं है फजा, कितनी हसीं है दुनिया
कितना सरशार है जौके-चमनआराई आज
इस सलीके से सजाई गई बज्मे-गेती
तू भी दीवारे-अजंता से उतर आई आज

और जब भी तुम किसी स्त्री को प्रेम करोगे, तुम्हें ऐसा न लगेगा कि वह स्त्री साधारण है। सारी दुनिया उसे साधारण समझे, मगर तुम्हें तो लगेगा कि अजंता की दीवार से कोई अप्सरा की तस्वीर थी जो नीचे उतर आई है। दुनिया तुम्हें पागल कहेगी। दुनिया कहेगी कि साधारण स्त्री है, हम भलीभांति जानते हैं। लेकिन तुम्हारे लिए उस साधारण में आज कुछ असाधारण दिखाई पड़ा। तुम्हारी प्रेम की आंख खुली। आज साधारण साधारण नहीं रहा,

आज असाधारण हो गया। हां, विवाह कर लोगे और कुछ दिन इसके साथ रहोगे, फिर साधारण साधारण हो जाएगा। क्योंकि इतनी क्षमता तुम्हारी नहीं है कि प्रेम की आंख सदा खुली रख सको; वह तो सुहागरात पूरी होते-होते ही बंद हो जाती है।

लेकिन जब तुम्हारी प्रेम की आंख खुली है थोड़ी सी, तब तुमसे कोई पूछे कि वर्णन करो, विवेचन करो, विश्लेषण करो, व्याख्या करो। तुम एकदम गूंगे हो जाओगे। तुमसे कुछ कहते न बनेगा।

कितनी रंगीं हैं फजा, कितनी हसीं हैं दुनिया
कितना सरशार हैं जौंके-चमनआराई आज
इस सलीके से सजाई गई बज्मे-गेती
तू भी दीवारे-अजंता से उतर आई आज

रुनुमाई की यह साअत यह तहीदस्ति-ए-शौंक
न चुरा सकता हूं आंखें न मिला सकता हूं
प्यार, सौंगात, वफा, नज्र, मोहब्बत, तोहफा
यही दौंलत तेरे कदमों पे लुटा सकता हूं

कब से तखईल में लर्जां था यह नाजुक पैंकर
कब से ख्वाबों में मचलती थी जवानी तेरी
मेरे अफसाने का उन्वान बनी जाती हैं
ढल के सांचे में हकीकत की कहानी मेरी

मरहले झेल के निकला हैं मजाके-तख्लीक
सइ-ए-पैंहम ने दिए हैं ये खद-ओ-खाल तुझे
जिंदगी चलती रही कांटों पर, अंगारों पर
तब मिली इतनी हसीं, इतनी सुबुक चाल तुझे

तेरे कामत में हैं इन्सां की बुलंदी का विकार
दुख्तरे-शहर हैं तहजीब का शहकार हैं तू
अब न झपकेगी पलक, अब न हटेंगी नजरें
हुस्न का मेरे लिए आखिरी मेयार हैं तू

यह तेरा पैंकरे-सीमीं, यह गुलाबी सारी
दस्ते-मेहनत ने शफक बनके उढ़ा दी तुझको
जिससे महरूम हैं फितरत का जमाले-रंगीं
तरबियत ने वो लताफत भी सिखा दी तुझको

आगही ने तेरी बातों में खिलाईं कलियां
इल्म ने शक्करी लहजे में निचोड़े अंगूर
दिलरुबाई का यह अंदाज किसे आता था
तू है जिस सांस में नजदीक उसी सांस से दूर

तेरी हस्ती, तेरी मस्ती, तेरा जल्वा, तेरा हुस्न
सौ दिए जलते हैं उमड़ी हुई जुल्मत के खिलाफ
लबे-शादाब पे छलकी हुई गुलनार हंसी
इक बगावत है यह आईने-जराहत के खिलाफ

हौंसले जाग उठे, सोजे-यकीं जाग उठा
निगहे-नाज के बेनाम इशारों को सलाम
तू जहां रहती है उस अर्शे-हसीं पर सज्दा
जिन पे तू मिलती है उन राहों को सलाम

आ करीब आ कि यह जूड़ा मैं परीशां कर दूं
तश्नाकामी को घटाओं का पयाम आ जाए
जिसके माथे से उभरती हों हजारों सुबहें
मेरी दुनिया में भी ऐसी कोई शाम आ जाए

एक छोटा सा प्रेम, एक साधारण सा स्त्री-पुरुष का प्रेम—और सारे शब्द ओछे मालूम पड़ने लगते हैं। तो प्रार्थना की तो बात ही कैसे करें? और फिर परमात्मा, वह तो परमप्रिय है। उसके लिए न कोई शब्द है, न कोई और अभिव्यक्ति का उपाय और माध्यम है।

तुमने पूछा है: 'उस परमप्रिय का निर्वचन क्यों नहीं हो सकता है?'

क्योंकि वह परमप्रिय है इसलिए।

तुमने पूछा: 'जिसका अनुभव हो सकता है, उसका निर्वचन क्यों नहीं?'

क्योंकि उसका अनुभव विरले लोग करते हैं। अनुभव करने वाले दो लोगों के बीच निर्वचन हो सकता है। और कहने की भी जरूरत न पड़े, बिन कहे भी हो सकता है।

फरीद और कबीर का मिलना हुआ था। वे दो दिन तक साथ बैठे रहे, न कोई कुछ बोला, न कुछ चाला। न कबीर ने कुछ कहा, न फरीद ने कुछ कहा। दोनों के शिष्य तो बड़े आतुर होकर बैठे थे कि कुछ बात होगी, कुछ गुफ्तगू होगी इन दो पहुंचे हुए सिद्धों में, कुछ चर्चा होगी। हम पर भी कुछ बूंदाबांदी हो जाएगी अमृत की। इनके बीच कुछ लेन-देन होगा तो हम भी कुछ सुन लेंगे। मगर नहीं कुछ बात हुई। एक शब्द नहीं आदान-प्रदान हुआ। मिले तो गले मिले। फिर विदाई हुई तो गले मिल कर विदाई हो गई। जैसे ही दोनों विदा हुए, कबीर के शिष्यों ने कबीर से पूछा कि यह क्या हुआ? आप हम से तो इतना बोलते हैं, आपकी जबान क्यों खो गई? आप चुप क्यों रह गए?

कबीर ने कहाः नासमझो! तुमसे बोलता हूं ताकि तुम प्यास से भर सको उस परमात्मा की। मगर अगर फरीद से बोलता तो नासमझी होती। क्योंकि जहां मैं हूं, वहीं फरीद है। वहां बोलने की कोई बात ही नहीं। जो मैंने चखा, वही उन्होंने चखा है। उन्हें भी स्वाद पता है, मुझे भी स्वाद पता है। गले मिले, उतने में बात हो गई। आंख में आंख डाली, उतने में सब हो गया।

फरीद के शिष्यों ने भी पूछा कि आपको क्या हुआ—जैसे ही गांव से विदा हुए—आप चुप क्यों रहे? हमसे तो इतना बोलते हैं!

फरीद ने कहाः पागलो, बोल कर क्या अपनी फजीहत करवानी थी? वह जो आदमी है, उसे पता ही है; उससे बोलना क्या? उससे कहना क्या? हम दोनों एक ही सागर में डुबकी मार रहे हैं। अब मैं कहूं कि बड़ा मजा आ रहा है सागर में डुबकी मारने का, तो यह व्यर्थ होगा वक्तव्य, क्योंकि वे भी डुबकी मार रहे हैं उसी सागर में! मेरा और उनका अनुभव एक। मैं भी मिट गया हूं, वे भी मिट गए हैं। यह तो जब हाथ में हाथ लिया, तभी समझ में आ गया। फिर कहने को क्या बचा था?

तो यह विरोधाभास खयाल में रखना। इस जगत में तीन तरह की वार्ताएं हो सकती हैं। पहली वार्ता, जो तुम्हें जगह-जगह होती हुई मिलेगी—दो अज्ञानियों के बीच। जगह-जगह हो रही है सिर-फोड़ी। एक-दूसरे की खोपड़ी में अपना-अपना कचरा डाल रहे हैं। बड़ा विवाद है—मैं सही, तुम गलत! बड़ी मैं-मैं, तू-तू है। सारा संसार इस वार्ता से भरा हुआ है। दूसरे ढंग की वार्ता—एक ज्ञानी और अज्ञानी के बीच। वहां बड़ी कठिनाई है। पहली वार्ता में कोई कठिनाई नहीं है। न तुम्हें पता है, न उसे पता है। दोनों का अनुभव शून्य है। इसलिए मजे से बातें करो। ईश्वर के संबंध में बातें करो, मोक्ष के संबंध में बातें करो; कोई अड़चन नहीं है। पान वाले भी, तांगे वाले भी ब्रह्मचर्चा कर रहे हैं; कोई अड़चन नहीं है। अड़चन है दूसरे ढंग की वार्ता में—जब ज्ञानी अज्ञानी से बोलता है। क्योंकि ज्ञानी बोलता है कुछ, अज्ञानी समझता है कुछ। और यह बिलकुल स्वाभाविक है। इसलिए अज्ञानी को सुनने का ढंग सीखना पड़ता है, सुनने की कला सीखनी पड़ती है। और ज्ञानी को अपनी अभिव्यक्ति को मांजना पड़ता है।

इसलिए सभी जानने वाले सदगुरु नहीं होते। जान तो लेते हैं, मगर जना नहीं पाते। सभी जानने वाले सदगुरु नहीं होते। फिर कौन जानने वाला सदगुरु होता है? जिसने जाना है और जिसने उस कला को भी ईजाद किया है जिससे अज्ञानियों के अंधेरे में भी थोड़ी सी खबर पहुंचाई जा सके। थोड़ी सी भनक सही। थोड़ी सी ध्वनि जगाई जा सके। सदगुरु का अर्थ होता हैः ऐसा ज्ञानी, जिसने स्वयं तो जाना है, जो दूसरे को जगाने की कला में भी निष्णात है। करोड़ों लोगों में एकाध ज्ञानी होता है। हजारों ज्ञानियों में एकाध सदगुरु होता है।

यह दूसरी वार्ता बड़ी कठिन है, अति कठिन है। इस झंझट में बहुत से ज्ञानी तो पड़ते ही नहीं। जान लिया, फिर वे चुपचाप आंख बंद करके रह जाते हैं। फिर वे बोलते ही नहीं। फिर वे चुप्पी साध लेते हैं। कौन झंझट करे! कौन सिर मारे! यह तो महाकरुणा पैदा हो तो ही संभव हो पाता है सिर मारना। नहीं तो जिनको तुम समझाने चले हो, वही तुम्हारी गर्दन काटने को तैयार होते हैं। कौन झंझट में पड़े!

समझो, जीसस अगर चुप रह जाते तो सूली न लगती। सुकरात अगर चुपचाप बैठा

रहता, मस्त रहता अपनी मस्ती में, तो जहर न पिलाया गया होता। और मंसूर ने अगर अनलहक की घोषणा न की होती अज्ञानियों के सामने—कि मैं ब्रह्म हूं, कि मैं सत्य हूं, कि बंदे में और खुदा में कोई फर्क नहीं है, बंदा खुदा है—अगर यह घोषणा न की होती...। घोषणा की थी कि लोग समझ सकें। याद दिलाने के लिए। मगर लोगों ने बदला लिया। हाथ-पैर काट डाले, गर्दन तोड़ दी।

बहुत से ज्ञानी चुप रह जाते हैं। और मजा यह है कि अज्ञानी भी इन चुप रह जाने वाले ज्ञानियों से बहुत प्रसन्न होते हैं। उनको सूली भी नहीं चढ़ाते, जहर भी नहीं पिलाते। क्यों अज्ञानी उनको सूली नहीं देते? दें भी कैसे, उन्होंने कुछ कहा ही नहीं। कहें तो अड़चन शुरू हो। और दूसरा, अज्ञानियों को भी इसमें सुख रहता है कि चुपचाप हैं, हमारी जिंदगी में कोई झंझट खड़ी नहीं करते। लेकिन कुछ ज्ञानी करुणावश बोले हैं। पृथ्वी उनके बोलने के कारण सौभाग्यशाली है। इस पृथ्वी पर जो थोड़ी-बहुत गरिमा है, गौरव है, वह इन थोड़े से बुद्धपुरुषों के कारण है जो बोले हैं; जो हर झंझट उठा कर बोले हैं; जो उनसे बोले हैं जो उनके दुश्मन हो जाएंगे बोलने के कारण। मगर बोले हैं!

बुद्ध ने कहा है: दो तरह के ज्ञानी होते हैं—एक अर्हत और एक बोधिसत्व। अर्हत वे—जो बोलते नहीं, जान कर चुप हो जाते हैं। बोधिसत्व वे—जो जान कर जगाने की चेष्टा में संलग्न होते हैं।

और तीसरी वार्ता है दो ज्ञानियों के बीच—करनी ही नहीं पड़ती, चुपचाप बैठ गए, हो गई। एक वार्ता है दो अज्ञानियों के बीच—बहुत करो, बहुत सिरमारी होती है, फल कुछ भी नहीं। और एक वार्ता है दो ज्ञानियों के बीच—शब्द उठते ही नहीं; कहने के पहले, जो कहना है, कह दिया जाता है, समझ लिया जाता है। और इन दोनों के बीच में एक वार्ता है—ज्ञानी और अज्ञानी के बीच। वह सर्वाधिक कठिन है। और वहीं निर्वचन का सवाल उठता है।

अनुभव हैं ऐसे, जो कहे नहीं जा सकते। लेकिन फिर भी उनके संबंध में तुम्हारी प्यास जगाई जा सकती है। तुम्हारे भीतर प्रज्वलित की जा सकती है एक अग्नि, एक लपट—जो उन अनंत-अनंत सूर्यों की तलाश में निकल जाए। तुम्हारे पंखों को फड़फड़ाने की कला दी जा सकती है। तुम्हें हिला कर जगाया जा सकता है, ताकि तुम उस अनंत की यात्रा पर चलो; ताकि तुम परमात्मा की खोज में लगो।

परमात्मा के संबंध में जो भी कहा जाता है, वह परमात्मा के संबंध में नहीं कहा जाता, सिर्फ तुम्हारी प्यास को उभारने के लिए कहा जाता है।

और तुम्हारी प्यास जग जाए, तो उसी प्यास में तुम्हारा अहंकार जलने लगता है। उसी प्यास की लपटों में तुम जल जाते हो, मिट जाते हो। और जहां तुम मिट गए, वहां परमात्मा है। मैं का न हो जाना परमात्मा का होना है। मिटो, ताकि हो सको।

बिरहिनी मंदिर दियना बार! जलाओ एक लपट, एक दीया अपने भीतर प्यास का। मंदिर हो तुम। ज्योति को जगाओ अपने मंदिर में। वही ज्योति तुम्हें महाज्योति की तरफ ले चलेगी। वही ज्योति एक दिन महाज्योति बन जाती है।

आज इतना ही।

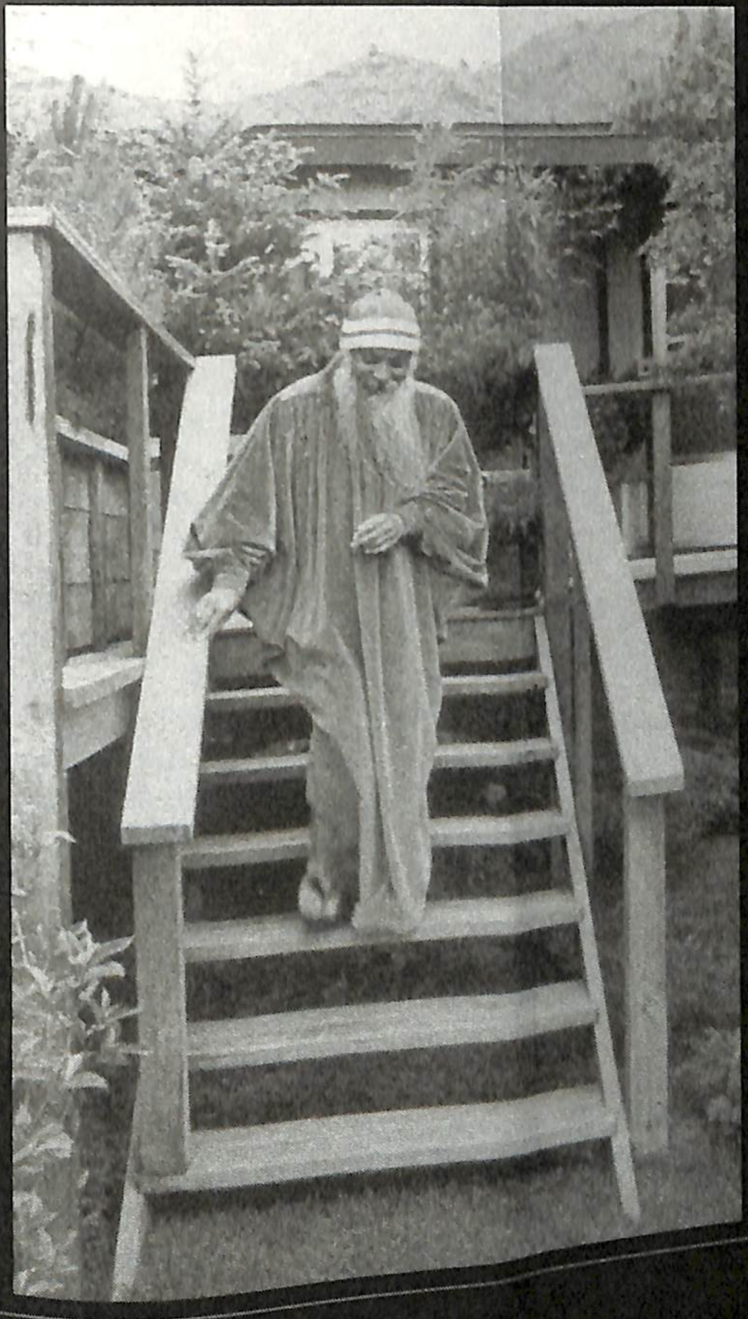

ओशो—एक परिचय

बुद्धपुरुषों की अमृत धारा में ओशो एक नया प्रारंभ हैं। वे अतीत की किसी भी धार्मिक परंपरा या शृंखला की कड़ी नहीं हैं। ओशो से एक नये युग का शुभारंभ होता है और उनके साथ ही समय दो सुस्पष्ट खंडों में विभाजित होता है : ओशो-पूर्व तथा ओशो-पश्चात।

ओशो के आगमन से एक नये मनुष्य का, एक नये जगत का, एक नये युग का सूत्रपात हुआ है, जिसकी आधारशिला अतीत के किसी धर्म में नहीं है, किसी दार्शनिक विचार-पद्धति में नहीं है। ओशो सद्यःस्नात धार्मिकता के प्रथम पुरुष हैं, सर्वथा अनूठे संबुद्ध रहस्यदर्शी हैं।

ओशो एक नवोन्मेष हैं नये मनुष्य के, नयी मनुष्यता के।

ओशो का यह नया मनुष्य 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक ऐसा मनुष्य है जो ज़ोरबा की भांति भौतिक जीवन का पूरा आनंद मनाना जानता है और जो गौतम बुद्ध की भांति मौन होकर ध्यान में उतरने में भी सक्षम है—ऐसा मनुष्य जो भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों तरह से समृद्ध है। 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक समग्र व अविभाजित मनुष्य है। ओशो का यह नया मनुष्य भविष्य की एकमात्र आशा है; इसके बिना पृथ्वी का कोई भविष्य शेष नहीं है।

अपने प्रवचनों के द्वारा ओशो ने मानव-चेतना के विकास के हर पहलू को उजागर किया। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, शिव, शांडिल्य, नारद, जीसस के साथ ही साथ भारतीय अध्यात्म-आकाश के अनेक नक्षत्रों—आदिशंकराचार्य, गोरख, कबीर, नानक, मलूकदास, रैदास, दरियादास, मीरा आदि पर उनके हजारों प्रवचन उपलब्ध हैं।

जीवन का ऐसा कोई भी आयाम नहीं है जो उनके प्रवचनों से अस्पर्शित रहा हो। योग, तंत्र, ताओ, झेन, हसीद, सूफी जैसी विभिन्न साधना-परंपराओं के गूढ़ रहस्यों पर उन्होंने सविस्तार प्रकाश डाला है। साथ ही राजनीति, कला, विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, शिक्षा, परिवार, समाज, गरीबी, जनसंख्या-विस्फोट, पर्यावरण तथा संभावित परमाणु युद्ध के व उससे भी बढ़कर एड्स महामारी के विश्व-संकट जैसे अनेक विषयों पर भी उनकी क्रांतिकारी जीवन-दृष्टि उपलब्ध है।

शिष्यों और साधकों के बीच दिए गए उनके ये प्रवचन छह सौ पचास से भी अधिक पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं और तीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित हो चुके हैं।

वे कहते हैं, "मेरा संदेश कोई सिद्धांत, कोई चिंतन नहीं है। मेरा संदेश तो रूपांतरण की एक कीमिया, एक विज्ञान है।"

ओशो का जन्म मध्य प्रदेश के कुचवाड़ा गांव में 11 दिसम्बर 1931 में हुआ, 21 मार्च 1953 को उनके जीवन में परम संबोधि का विस्फोट हुआ, वे बुद्धत्व को उपलब्ध हुए और 19 जनवरी 1990 को, ओशो कम्यून इंटरनेशनल में देह-त्याग हुआ।

ध्यान और सृजन का यह अनूठा नव-संन्यास उपवन, ओशो कम्यून, ओशो की विदेह-उपस्थिति में भी आज पूरी दुनिया के लिए एक ऐसा प्रबल चुंबकीय आकर्षण-केंद्र बना हुआ है कि यहां निरंतर नये-नये लोग आत्म-रूपांतरण के लिए आ रहे हैं तथा ओशो की सघन-जीवंत उपस्थिति में अवगाहन कर रहे हैं।

ओशो की समाधि पर स्वर्ण अक्षरों में अंकित है :

OSHO
Never Born
Never Died
Only Visited this
Planet Earth between
Dec 11 1931 – Jan 19 1990

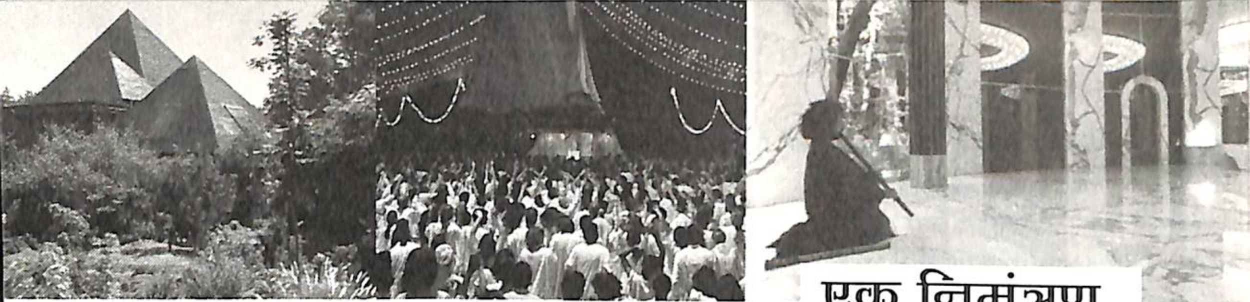

एक निमंत्रण

ओशो के प्रवचनों को पढ़ना, उन्हें सुनना अपने आप में एक आनंद है। इनके द्वारा आप अपने जीवन में एक अपूर्व क्रांति की पदचाप सुन सकते हैं। लेकिन यह केवल प्रारंभ है, शुभ आरंभ है। इन प्रवचनों को पढ़ते हुए आपने महसूस किया होगा कि ओशो का मूल संदेश है : ध्यान। ध्यान की भूमि पर ही प्रेम के, आनंद के, उत्सव के फूल खिलते हैं।

ध्यान आमूल क्रांति है।

निश्चित ही आप भी चाहेंगे कि आपके जीवन में ऐसी आमूल क्रांति हो; आप भी एक ऐसी आबोहवा को उपलब्ध करें जहां आप अपने आप से परिचित हो सकें, आत्म-अनुभूति की दिशा में कुछ कदम उठा सकें; कोई ऐसा स्थान जहां और भी कुछ लोग इस दिशा में गतिमान हों।

ओशो ने एक ऐसी ही ध्यानमय, उत्सवमय आबोहवा वाला ऊर्जा-क्षेत्र निर्मित किया है पूना में : ओशो कम्यून इंटरनेशनल। यहां ओशो की उपस्थिति में हजारों लोगों ने ध्यान की गहराइयों को छुआ है। सतत ध्यान के द्वारा यह स्थान ध्यान की एक ऐसी सघन ऊर्जा से आविष्ट हो गया है कि ओशो के देह-त्याग के बाद, आज भी आप उनकी ऊर्जा से स्पंदित इस बुद्धक्षेत्र में ओशो की उपस्थिति की अनुभूति कर सकते हैं तथा रूपांतरित हो सकते हैं।

विश्व के लगभग सौ देशों से लोग यहां आकर इस अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में ध्यान का रसास्वादन करते हैं। दुनिया में जितने भी प्रकार के लोग हैं—अपनी आधारभूत कोटियों में—ओशो ने उन सब के लिए विशेष प्रकार की ध्यान-विधियों को ईजाद किया है। आज विश्व की समस्त साधना-पद्धतियों की विधियां यहां एक ही छत के नीचे मौजूद हैं। ओशो कम्यून इंटरनेशनल विश्व भर में एकमात्र ऐसा केंद्र है जहां पर सभी राष्ट्रों और धर्मों के लोग अपने अनुकूल ध्यान प्रयोगों के द्वारा एक साथ रूपांतरित हो सकते हैं। ओशो कम्यून ऐसे ही एक नये मनुष्य की जन्मभूमि है, एक क्रांति-स्थल है।

इसमें आपका स्वागत है।

अतिरिक्त जानकारी के लिए संपर्क-सूत्र :
ओशो कम्यून इंटरनेशनल
17, कोरेगांव पार्क, पुणे-411001, महाराष्ट्र
फोन : 020-4019999 फैक्स : 020-4019990
e-mail - commune@osho.net
Web Site - http://www.osho.com

ओशो का हिंदी साहित्य

• The Mandukya Upnishad. • DIAMOND SUTRA
• Pythagorus • LOTUS SUTRA
• Herectilus. • Tantra.

उपनिषद
सर्वसार उपनिषद
कैवल्य उपनिषद
अध्यात्म उपनिषद
कठोपनिषद
ईशावास्य उपनिषद
निर्वाण उपनिषद
आत्म-पूजा उपनिषद
केनोपनिषद
मेरा स्वर्णिम भारत (विविध उपनिषद-सूत्र)

कृष्ण
गीता-दर्शन (आठ भागों में अठारह अध्याय)
कृष्ण-स्मृति

महावीर
महावीर-वाणी (दो भागों में)
जिन-सूत्र (दो भागों में)
महावीर या महाविनाश
महावीर : मेरी दृष्टि में
ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

बुद्ध
एस धम्मो सनंतनो (बारह भागों में)

अष्टावक्र
अष्टावक्र महागीता (छह भागों में)

लाओत्से
ताओ उपनिषद (छह भागों में)

कबीर
सुनो भई साधो
कहै कबीर दीवाना
कहै कबीर मैं पूरा पाया
न कानों सुना न आंखों देखा (कबीर व फरीद)

अन्य रहस्यदर्शी
अथातो भक्ति जिज्ञासा (शांडिल्य)
भक्ति-सूत्र (नारद)
शिव-सूत्र (शिव)
भजगोविन्दम् मूढ़मते (आदिशंकराचार्य)
एक ओंकार सतनाम (नानक)
जगत तरैया भोर की (दयाबाई)
बिन घन परत फुहार (सहजोबाई)
पद घुंघरू बांध (मीरा)
नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास)
संतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब)
कहै वाजिद पुकार (वाजिद)
मरौ हे जोगी मरौ (गोरख)
सहज-योग (सरहपा-तिलोपा)
बिरहिनी मंदिर दियना बार (यारी)
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलन)
दरिया कहै सब्द निरबाना
(दरियादास बिहारवाले)

हंसा तो मोती चुगैं (लाल)
गुरु-परताप साध की संगति (भीखा)
मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास)
झरत दसहुं दिस मोती (गुलाल)
नाम सुमिर मन बावरे (जगजीवन)
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी (जगजीवन)
कानों सुनी सो झूठ सब (दरिया)
अमी झरत बिगसत कंवल (दरिया)
हरि बोलौ हरि बोल (सुंदरदास)
ज्योति से ज्योति जले (सुंदरदास)
जस पनिहार धरे सिर गागर (धरमदास)
का सोवै दिन रैन (धरमदास)
सबै सयाने एक मत (दादू)
पिव पिव लागी प्यास (दादू)
अजहूं चेत गंवार (पलटू)
सपना यह संसार (पलटू)
काहे होत अधीर (पलटू)
कन थोरे कांकर घने (मलूकदास)
रामदुवारे जो मरे (मलूकदास)
जरथुस्त्रः नाचता-गाता मसीहा (जरथुस्त्र)

तंत्र
संभोग से समाधि की ओर
तंत्र-सूत्र (पांच भागों में)

योग
पतंजलिः योग-सूत्र (पांच भागों में)
योगः नये आयाम

बोध-कथा
मिट्टी के दीये

विचार-पत्र
क्रांति-बीज
पथ के प्रदीप

पत्र-संकलन
अंतर्वीणा
प्रेम की झील में अनुग्रह के फूल
ढाई आखर प्रेम का
पद घुंघरू बांध
प्रेम के फूल
प्रेम के स्वर
पाथेय

प्रश्नोत्तर
नहिं राम बिन ठांव
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र
मृत्योर्मा अमृतं गमय
प्रीतम छवि नैनन बसी
रहिमन धागा प्रेम का
उड़ियो पंख पसार
सुमिरन मेरा हरि करैं
पिय को खोजन मैं चली
साहेब मिल साहेब भये
जो बोलैं तो हरिकथा
बहुरि न ऐसा दांव
ज्यूं था त्यूं ठहराया
ज्यूं मछली बिन नीर
दीपक बारा नाम का
अनहद में बिसराम
लगन महूरत झूठ सब
सहज आसिकी नाहिं
पीवत रामरस लगी खुमारी
रामनाम जान्यो नहीं
सांच सांच सो सांच
आपुई गई हिराय
बहुतेरे हैं घाट
कोंपलें फिर फूट आईं
फिर पत्तों की पांजेब बजी
फिर अमरित की बूंद पड़ी

क्या सोवै तू बावरी
चल हंसा उस देस
कहा कहूं उस देस की
पंथ प्रेम को अटपटो
माटी कहै कुम्हार सूं
मैं धार्मिकता सिखाता हूं, धर्म नहीं

साधना-शिविर
साधना-पथ
मैं मृत्यु सिखाता हूं
जिन खोजा तिन पाइयां
समाधि के सप्त द्वार (ब्लावट्स्की)
साधना-सूत्र (मेबिल कॉलिन्स)
ध्यान-सूत्र
जीवन ही है प्रभु
असंभव क्रांति
रोम-रोम रस पीजिए

ध्यान, साधना
ध्यानयोग: प्रथम और अंतिम मुक्ति
नेति-नेति ✓
चेति सकै तो चेति
हसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानम्
समाधि कमल
साक्षी की साधना
धर्म साधना के सूत्र
मैं कौन हूं
समाधि के द्वार पर
अपने माहिं टटोल
ध्यान दर्शन
तृषा गई एक बूंद से
ध्यान के कमल
जीवन संगीत
जो घर बारे आपना
प्रेम दर्शन

अंतरंग वार्ताएं
संबोधि के क्षण
प्रेम नदी के तीरा
सहज मिले अविनाशी
उपासना के क्षण

झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां
बिन बाती बिन तेल
सहज समाधि भली
दीया तले अंधेरा

राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याएं
देख कबीरा रोया
स्वर्ण पाखी था जो कभी और
अब है भिखारी जगत का
शिक्षा में क्रांति
नये समाज की खोज
नये भारत की खोज
नये भारत का जन्म
नारी और क्रांति
शिक्षा और धर्म
भारत का भविष्य

विविध
अमृत-कण
मैं कहता आंखन देखी
एक एक कदम
जीवन क्रांति के सूत्र
जीवन रहस्य
करुणा और क्रांति
विज्ञान, धर्म और कला
शून्य के पार
प्रभु मंदिर के द्वार पर
तमसो मा ज्योतिर्गमय
प्रेम है द्वार प्रभु का
अंतर की खोज

अमृत की दिशा
अमृत वर्षा
अमृत द्वार
चित चकमक लागे नाहिं
एक नया द्वार
प्रेम गंगा
समुंद समाना बुंद में
सत्य की प्यास
शून्य समाधि
व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज
अज्ञात की ओर
धर्म और आनंद
जीवन-दर्शन
जीवन की खोज
क्या ईश्वर मर गया है
नानक दुखिया सब संसार
नये मनुष्य का धर्म
धर्म की यात्रा
स्वयं की सत्ता
सुख और शांति
अनंत की पुकार

ओशो के आडियो-वीडियो प्रवचन एवं साहित्य के संबंध में
समस्त जानकारी हेतु संपर्क सूत्र :

साधना फाउंडेशन, 17 कोरेगांव पार्क, पुणे-411001
फोन : 020-4019999 फैक्स : 020-4019990
e-mail - distrib@osho.net
Web Site - http://www.osho.com

विश्व का एकमात्र शुभ समाचार-पत्र

ओशो टाइम्स

*हर माह ओशो की क्रांति को
अपने पन्नों पर संजोए
नये मनुष्य का,
नई मनुष्यता का मुखपत्र...
व्यक्ति की, समाज की ज्वलंत
समस्याओं पर,
अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं पर
ओशो का नया दृष्टिकोण
मौलिक समाधान, ध्यान और
प्रेम पर आधारित
एक नई जीवन-शैली का आमंत्रण...*

हिंदी (मासिक पत्रिका)
एक प्रति का मूल्य 30 रुपये
वार्षिक शुल्क 330 रुपये
रजिस्टर्ड डाक से 570 रुपये

अंग्रेजी (मासिक पत्रिका)
एक प्रति का मूल्य 30 रुपये
वार्षिक शुल्क 330 रुपये
रजिस्टर्ड डाक से 570 रुपये

अधिक जानकारी हेतु संपर्क सूत्र :
**ताओ पब्लिशिंग प्रा. लि.,
50 कोरेगांव पार्क, पुणे-411001**
फोन : 020-4019999 फैक्स : 020-4019990
e-mail - othsubs@osho.net Web Site - http://wwwosho.com

मैं यहां कोई नया धर्म नहीं सिखा रहा हूं। धर्म तो जमीन पर बहुत हैं—तीन सौ धर्म हैं। अब इस उपद्रव में और उपद्रव बढ़ाने से क्या होगा? मैं यहां कोई नया शास्त्र नहीं दे रहा हूं। शास्त्र काफी हैं—वेद हैं, और कुरान हैं, और बाइबिलें हैं, और धम्मपद हैं, और गुरुग्रंथ हैं—और शास्त्र ही शास्त्र हैं!

मैं तो यहां मनुष्य को बदलने का एक नया विज्ञान दे रहा हूं। उस विज्ञान की आधारभूत शिला यही है कि हम मनुष्य को स्वयं से प्रेम करना सिखाएं। यह बात अभी तक नहीं की गई है। तुमसे यह तो कहा गया है कि देश को प्रेम करो। और तुमसे यह भी कहा गया है कि धर्म को प्रेम करो। और तुमसे यह भी कहा गया है कि जरूरत पड़े तो देश के लिए मर जाना, धर्म के लिए मर जाना। लेकिन तुमसे यह किसी ने भी नहीं कहा है कि अपने से इतना प्रेम करो, कि न तो देश के लिए मरने की तुम्हारी तैयारी हो, न धर्म के लिए मरने की तुम्हारी तैयारी हो। अपने से इतना प्रेम करो, कि तुम्हें कोई भी उपद्रवी, कोई भी पागल किसी तरह की आत्महत्या के लिए राजी न कर पाए। अपने से इतना प्रेम करो! तुम परमात्मा की कृति हो!

मैं यहां कोई नया धर्म नहीं दे रहा हूं। मैं तो यहां जीवन की एक नयी शैली दे रहा हूं। एक नये मनुष्य की आधारशिला रख रहा हूं। पुराने ढंग का मनुष्य असफल हो गया है; एक नये ढंग की मनुष्यता चाहिए।

ओशो

A REBEL BOOK

ISBN 81-7261-178-1